विश्व हिंदी पत्रिका

2020

विश्व हिंदी पत्रिका

2020

प्रधान संपादक
प्रो. विनोद कुमार मिश्र

संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423,
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : +230-6600800

ISSN No. : 1694-2477

सहायक संपादक
श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी

संपादन सहयोग
डॉ. वेद रमण पांडेय
आई.सी.सी.आर., हिंदी पीठ, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

टंकण टीम
श्रीमती विजया सरजु, श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु,
श्रीमती जयश्री सिबालक-रामसर्न, सुश्री निधि रामबर्न

निवेदन

विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने है।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना
आवश्यक नही है।

पृष्ठ सज्जा
आर. एस. प्रिंट्स

**स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित**

विदेश मंत्री
भारत

Minister of External Affairs
India

संदेश

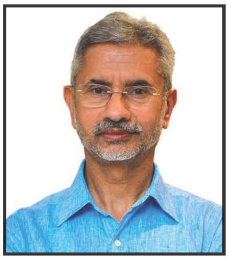

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि विश्व हिंदी सचिवालय इस वर्ष विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर अपनी वार्षिक पत्रिका के बारहवें संस्करण का लोकार्पण करने जा रहा है। यह पत्रिका समस्त विश्व के हिंदी सेवियों, अध्येताओं और शोधार्थियों और हिंदी जगत में हो रही प्रगति का आकलन करने का सुअवसर प्रदान करती है।

विश्व हिंदी सचिवालय भारत और मॉरीशस के दीर्घकालिक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक संबंधों का प्रतीक है और संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान करने के प्रति दोनों देशों की प्रतिबद्धता का परिचायक है।

मॉरीशस का हिंदी साहित्य बहुत समृद्ध है। मॉरीशस के साहित्यकार लगभग हर विधा में लेखन कार्य कर रहे हैं। आज मॉरीशस में शिक्षा, साहित्य, मीडिया आदि क्षेत्रों में हिंदी भाषा का भरपूर प्रयोग किया जा रहा है। मॉरीशस में विद्यालयों में प्राथमिक व माध्यमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालयी स्तर पर हिंदी भाषा व साहित्य की पढ़ाई की जा रही है। यह हर्ष का विषय है कि मॉरीशस ने कोरोना की स्थिति को संभाल लिया है और यहाँ अनेक सांस्कृतिक गतिविधियाँ फिर से आयोजित की जाने लगी हैं, जो शिक्षकों और छात्रों की हिंदी में रुचि को प्रगाढ़ करती है।

कोरोना में विश्व के सभी देशों की आर्थिक स्थिति प्रभावित हुई है। परंतु मानव ने हार नहीं मानी है। सूचना व संचार क्रांति का लाभ उठाते हुए साहित्य के विस्तार को गति प्रदान की जा रही है। ऐसे में ऑनलाइन गोष्ठियों और संगोष्ठियाँ भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की वाहिका 'हिंदी' को ऊर्जा प्रदान कर रही हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी और तकनीक की दृष्टि से हिंदी पूर्ण रूप से विकसित और समृद्ध भाषा के रूप में अपनी पहचान बना चुकी है और यह एक शुभ व सुखद संकेत है। शिक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी, बैंकिंग और अन्य घरेलू क्षेत्रों के साथ–साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियों में भी हिंदी भाषा में दक्षता प्राप्त कार्मिकों की माँग निरंतर बढ़ रही है।

मैं विश्व हिंदी पत्रिका के संपादन कार्य से जुड़े सभी सदस्यों को, इन प्रतिकूल परिस्थितियों में, पत्रिका के प्रकाशन के महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए बधाई देता हूँ और विश्वभर के सभी हिंदी प्रेमियों, शोधार्थियों, अध्येताओं व विद्यार्थियों को नववर्ष की मंगलकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(सु. जयशंकर)

172, South Block, New Delhi-110011 Tel : 91-11-23011127, 23011127, 23011165 Fax : 91-11-23011463
E-mail : diream@mea.gov.in

शिक्षा, तृतीयक शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय
मॉरीशस

संदेश

विश्व हिंदी पत्रिका के 12वें अंक के लिए संदेश देते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। हमेशा की तरह पत्रिका का यह अंक भी समस्त विश्व को विभिन्न देशों के हिंदी प्राध्यापकों, अनुसंधानकर्ताओं एवं विद्वानों के विविध शोधपत्रों एवं आलेखों से अवगत कराने का मार्ग प्रशस्त करेगा।

अनेक लेखकों एवं चिंतकों की रचनाओं को एकत्रित करना और उन्हें अंतिम रूप देकर पत्रिका के पूर्व अंकों में सम्मिलित करना परम्परागत रूप से एक महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। इस वर्ष यह कार्य अपेक्षाकृत अधिक दुष्कर एवं चुनौतीपूर्ण रहा।

यह सर्वविदित है कि कोविद–19 ने हर क्षेत्र की गतिविधियों को प्रभावित किया है। तथापि इस संक्रामक रोग से उत्पन्न तनावपूर्ण स्थितियों के बावजूद हमें पुरातन प्रणालियों पर पुनः चिंतन करने के अवसर प्राप्त हुए। परिणामस्वरूप आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक गतिविधियों को मंद पड़ने या पूर्णतः अवरुद्ध होने से बचाने के लिए डिजिटल माध्यमों का वैश्विक स्तर पर अभूतपूर्व प्रयोग किया गया। इसी के चलते डिजिटल मीडिया में हिंदी के प्रयोग में भी वृद्धि परिलक्षित हुई। एक समय था जब हिंदी ने डिजिटल मीडिया के क्षेत्र में संकोच के साथ प्रवेश किया था, किंतु सौभाग्यवश अब स्थितियाँ बदल चुकी हैं। मॉरीशस में कोविद–19 के कारण जब स्कूलों में ताला लगाना पड़ा तब प्रौद्योगिकी की सहायता से हिंदी–पाठों को विद्यार्थियों तक पहुँचाने में डिजिटल माध्यमों का नित्य प्रयोग किया गया।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि विश्व हिंदी सचिवालय ने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपनी क्षमता को विकसित करने की आवश्यकता को समझा और संस्कृति एवं भाषा के क्षेत्र में बेहतरीन कार्य संपादित करने के प्रयास आरम्भ किए। इस संदर्भ में हिंदी कंप्यूटर प्रयोगशाला की योजना को कार्यान्वित करना एवं विविध एप्स के माध्यम से ऑनलाइन हिंदी का विकास करना महत्त्वपूर्ण पहल रही। लॉकडाउन के दौरान हिंदी के अध्ययन और अध्यापन में तकनीक एवं प्रौद्योगिकी का भरपूर प्रयोग किया गया और यह प्रयास यथावत जारी है। साथ ही हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए अंतरराष्ट्रीय हिंदी संस्थाओं के सहयोग से विभिन्न मंचों पर वेबिनार, ऑनलाइन विचार–विमर्श और परिचर्चा का नियमित आयोजन किया जा रहा है।

यदि हम ई–हिंदी को भी अन्य भाषाओं के समानांतर स्थापित होते देखना चाहते हैं तो तकनीक एवं प्रौद्योगिकी पर आधारित कार्य योजनाओं का सफल क्रियान्वयन करना होगा। अतः विश्व हिंदी सचिवालय को इस दिशा में अपने अभिनव प्रयास अति सक्रियता से जारी रखने होंगे ताकि सचिवालय की विविध योजनाओं, गतिविधियों और क्रियाकलापों में इस नवीनतम पहल के परिणाम सशक्त रूप से दृष्टिगोचर हों।

मुझे विश्वास है कि विश्व हिंदी पत्रिका इन बदली हुई परिस्थितियों में नवीन प्रणालियाँ अपनाने के लिए मुख्य प्रेरणास्रोत बनकर विश्वभर के प्राध्यापकों, शोधकर्ताओं व विद्वानों को संबल प्रदान करेगी और हिंदी को सम्पुन्नत करेगी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह कार्य समन्वित सहयोग से ही संभव होगा। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पत्रिका के अगले अंक में और अधिक राष्ट्रों से प्राप्त शोध सामग्री शामिल करते हुए इसकी व्यापकता सुनिश्चित की जाए।

मैं विश्व हिंदी पत्रिका के इस नए अंक के लिए विश्व हिंदी सचिवालय और संपादकीय टीम को हार्दिक बधाई देती हूँ।

विश्व हिंदी समुदाय को मेरी ओर से नूतन वर्ष 2021, विश्व हिंदी दिवस और मकर संक्रांति की हार्दिक शुभकामनाएँ।

लीला दुकन-लछुमन

माननीया (श्रीमती) लीला देवी दुकन–लछुमन
उपप्रधान मंत्री
शिक्षा, तृतीयक शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री

भारतीय उच्चायुक्त
पोर्ट लुई, मॉरिशस

HIGH COMMISSIONER OF INDIA
PORT LOUIS, MAURITIUS

सत्यमेव जयते

संदेश

विश्व हिंदी सचिवालय हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी 'विश्व हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन करने जा रहा है। वर्ष 2020 में करोना महामारी के कारण उत्पन्न विभिन्न विवशताओं के बावजूद सचिवालय द्वारा अपनी इस नियमित पत्रिका का 12वां अंक प्रकाशित किया जाना सचमुच एक बड़ी उपलब्धि है।

विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस व भारत के ऐतिहासिक और कूटनीतिक संबंधों के साथ–साथ दोनों देशों की भावनात्मक निकटता का भी परिचायक है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की सातवीं आधिकारिक भाषा बनाए जाने की दिशा में भारत और मॉरिशस द्वारा किए जा रहे प्रयास सराहनीय हैं। विश्व हिंदी पत्रिका का वार्षिक प्रकाशन भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

हिंदी भाषा भारत की राजभाषा, जनभाषा और संपर्क भाषा है। इतना ही नहीं विदेशों में भी अनेक स्कूलों और विश्वविद्यालयों में हिंदी में अध्ययन–अध्यापन और शोधकार्य यह सिद्ध करते हैं कि हिंदी विश्व भाषा बनने की राह पर तेज़ी से अग्रसर है। तकनीक की दृष्टि से भी हिंदी ने अन्य कई भाषाओं के साथ अपना स्थान बना लिया है। आज संयुक्त राष्ट्र की हिंदी में समाचार वेबसाइट और ब्लॉग भी है।

इस पत्रिका के माध्यम से हिंदी जगत के सभी विद्वानों और हिंदी प्रेमियों को विश्वभर के अनेक लेखकों को पढ़ने का सुअवसर मिलता है। इससे ज्ञान के आदान–प्रदान के साथ–साथ भाषा का विस्तार भी होता है, भाषा के प्रवाह को और अधिक गति मिलती है, हिंदी जगत व शेष विश्व के बीच सेतु अधिक मज़बूत होता है और विश्व संस्कृति का एक आदर्श रूप देखने को मिलता है।

मैं, विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव, उपमहासचिव और उनके साथ इस पत्रिका के प्रकाशन में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से योगदान करने वाले सभी सदस्यों को इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए बधाई देती हूँ।

सभी को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ !

के. नंदिनी सिंग्ला

के. नंदिनी सिंग्ला

6th Floor, LIC Building, John Kennedy Street, Port Louis, Mauritius
Tel: (230)208 3775/6 Fax: (230)2088891/2086859
hc.portlouis@mea.gov.in
www.hcimauritius.gov.in

प्रधान संपादकीय

भाषाई आत्मनिर्भरता

मानव जाति की सबसे मूल्यवान धरोहर उसकी भाषा होती है और उसकी कीमत पर संसार का कोई भी विकास एवं उपलब्धि उसे स्वीकार्य नहीं हो सकती। किसी समुदाय को उसकी अपनी भाषा में सोचने एवं जीने के अधिकार से वंचित रखना उसकी अस्मिता को खंडित करना जैसे है। इसे आपराधिक कुकृत्य की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। भाषाई संस्कार समाज को कुंठित होने से बचा सकता है, उत्कर्ष प्रदान कर सकता है और सांस्कृतिक सहारे के छिनने के डर से मुक्ति प्रदाता बन सकता है। भाषाएँ निरंतर अंधकार से प्रकाश की ओर यात्रा करती रही हैं तथा सांस्कृतिक उत्तराधिकार के प्रति सतत सावधान रहते हुए अपने भीतर कई वैचारिक वातायन का निर्माण करती हैं, ताकि उत्कृष्ट परम्परा व सभ्यता के सार्वभौमिक स्वरूप को निखारने की राह आसान हो सके तथा हृदय और बुद्धि के अद्‌भुत सामंजस्य से भाषा की चिंतन धारा के प्रवाह से संसार को प्रौढ़, प्रांजल और आत्मविश्वास से रससिक्त करते हुए भाषा को आत्मनिर्भरता के मार्ग पर गतिशीलता प्रदान कर सके। भाषाई आत्मनिर्भरता के बिना कोई भी राष्ट्र सम्पूर्णता में आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। भारत जैसे देश में जहाँ की भाषाई सम्पदा अनमोल रही हो, फिर इतनी समृद्ध भाषाई अस्मिता वाले देश में ब्रिटिश उपनिवेश की भाषा पर पूरी तरह निर्भर होना भारतीय मनीषा को कुंद करने जैसा ही है। भाषाई आत्मनिर्भरता की यात्रा परंपरा और सभ्यता के समानांतर चलते हुए संवाहिका बन सभ्यता को परिभाषित करती है। आत्मनिर्भरता वह पारस है, जिसके संस्पर्श मात्र से स्वभाषा कुंदन बन अपनी कीमत कई गुना बढ़ा लेती है। भाषा व संस्कृति की विरासत जितनी ही परिष्कृत और समृद्ध होती है, सामुदायिकता का भाव उतना ही प्रगल्भ और प्रबल। उत्कृष्ट भाषायी समाज अपने ज्ञान–विज्ञान व विविध कलाओं का सृजन अपनी भाषा में कर भाषाई श्रेष्ठताबोध की राह को मज़बूत कर एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है, साथ ही साथ स्वभाषा स्वावलंबन, शिक्षा और स्वशासन की आधार भूमि भी तैयार करती है, फिर स्वभाषा की शब्द सम्पदा सम्पूर्णता में विस्तार पाती है।

भारत जैसे देश में सैकड़ों समृद्ध भाषाएँ व हज़ारों सुसम्पन्न बोलियाँ अपना सृजनात्मक अवदान कर भारतीय मनीषा को सर्वोत्कृष्ट आसन प्रदान करती हैं। ऐसे में यदि भाषाओं और बोलियों पर पूरी तरह निर्भर न रहकर किसी ऐसी भाषा पर निर्भरता सुनिश्चित की जाए, जिसका उस मिट्‌टी से कोई सरोकार न हो, जिसमें संस्कृति और सभ्यता की सुगंध न हो, तो फिर यह मानने में ज़रा भी हिचक नहीं होनी चाहिए कि भारतीय जन–मन की आशाओं और आकांक्षाओं पर अनिश्चितकालीन ग्रहण लगना लगभग तय है। किसी भी राष्ट्र की बुनियाद उस मिट्‌टी में पैदा हुई भाषाएँ होती हैं, जिसपर उस राष्ट्र के भव्य भवन का निर्माण होता है और उस भव्य भवन के आँगन में पल्लवित और पुष्पित होकर भाषाएँ जन आकांक्षाओं की पूर्ति करने में दक्षता प्राप्त करती हैं। इसके बाद धीरे–धीरे उसी मिट्‌टी से सांस्कृतिक ऊर्जा प्राप्त कर प्रौढ़ हो वही भाषाएँ संचार, व्यवहार और व्यापार का माध्यम बन अपने कर्तव्य का ईमानदारी से पालन करती हैं, किंतु किसी भी लोकतंत्रात्मक देश में भाषा नीति पर रचनात्मक विमर्श का न किया जाना जनतंत्र का अपमान नहीं तो क्या है? जनता की भाषा को सत्ता की भाषा बनाकर ही लोकतंत्र को सम्मानित किया जा सकता है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों में ही भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भाषा को लेकर एक स्पष्ट नीति की घोषणा की थी। उनका मानना था कि किसी भी राष्ट्र की समृद्धि, विकास एवं एकता–अखंडता बनाए रखने के लिए एक राष्ट्र भाषा को अंगीकार करना ही होगा। साथ ही साथ वे स्वदेशी और स्वभाषा के समर्थन के ज़रिए अन्य भारतीय भाषाओं के सम्वर्धन की भी आजीवन वकालत करते रहे। गांधी जी उस मत के भी समर्थक थे कि किसी भी राष्ट्र की बुनियाद उसी राष्ट्र की कोई भाषा होनी चाहिए। नदी, पहाड़, जंगल और समुद्र राष्ट्र निर्माता नहीं हो सकते। भाषा ही जन आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है, संस्कृति का महत्वपूर्ण

घटक भाषा होती है, सभ्यता का उत्कृष्ट प्रतीक भाषा होती है तथा स्वत्व व स्वाभिमान की रक्षा भी भाषा ही करती है। स्वत्व तथा स्वाभिमान को खोकर न तो भाषा की रक्षा की जा सकती है, न ही स्वाधीन हो स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखा जा सकता है। जनतांत्रिक चेतना को महत्वपूर्ण बनाने में भाषाई समुदाय की अहम भूमिका होती है। राष्ट्रीय एकीकरण, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्वाधीनता और जनतांत्रिक समाज की संरचना का मार्ग प्रशस्त और आश्वस्तकारी बनाने, भाषाई सेतु का निर्माण करने और भाषाई सम्प्रीति का मार्ग प्रशस्त करने में भी भाषाई समुदाय की अहम भूमिका होती है। किसी भी देश की सहोदरा भाषाएँ अपनी इंद्रधनुषी छवि और अपनी शब्द सम्पदा को आत्मसात कर अपनी क्षमता का विकास करती हैं। पारिभाषिक और दार्शनिक शब्दावली के साथ–साथ अवधारणाओं की सटीक और रचनात्मक व्याख्या की क्षमता का विकास करते हुए नए–पुराने प्रतिमानों को सहेज कर रखने का भाव पैदा कर भाषा चिरायु बनने का उपक्रम भी करती है। इस प्रक्रिया में उसे अपनी उदारवादी प्रकृति को कायम रखते हुए सामुदायिक अभिव्यक्ति के लिए निरंतर विमर्शों के नए–नए गवाक्ष खोलने ही होंगे, तभी जाकर समतामूलक समाज की आकांक्षाओं की प्रतिपूर्ति संभव हो सकेगी। साथ ही साथ भाषाई विरासत को संभालने की क्षमता भी विकसित हो सकेगी। तभी सामुदायिक संस्कृति निर्माण की व्यापक पृष्ठभूमि भी तैयार होगी व विकास के नवीन मानकों के साथ तालमेल बिठाने की बड़ी चुनौती का सामना भी करना होगा।

किसी भी राष्ट्र की बुनियाद वहाँ की मिट्टी से उपजी जनभाषाएँ होती हैं, जो अपनी सांस्कृतिक विरासत से ऊर्जा प्राप्त कर अपनी क्षमता को कई गुना बढ़ाने की कूबत रखती हैं तथा विचारों का नेतृत्व करते हुए संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक बन सामाजिक–चेतना का इतिहास रचती हैं। जन भाषाएँ ही शिक्षा का माध्यम बन मानव मुक्ति की कंकरीली–पथरीली राहें आसान करते हुए राष्ट्र निर्माण में अपनी अहम भूमिका तय करती हैं। और हाँ, भाषा का आधार केवल भाषाई संप्रेषण से निर्मित नहीं होता। भाषा के सांस्कृतिक आधार की एक सुदीर्घ परंपरा होती है। संस्कृति की संरचना में भी भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका भी होती है और उसके पीछे सांस्कृतिक परम्परा पूरी निष्ठा व आत्मविश्वास के साथ सहयात्री बन खड़ी रहती है। भाषिक व्याप्ति, भाषा की शक्ति, सम्प्रेषण व व्यावहारिक विस्तार भाषा को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में महनीय बनाते हैं। तमाम विघ्न–बाधाओं के बावजूद वर्षों की ऐतिहासिक यात्रा में भाषाएँ सम्प्रेषण से साहित्य सृजन तक की यात्रा में उपलब्धियों की कई इबारतें लिखती हैं तथा मज़बूत बंधन बन कालान्त तक राष्ट्र को विचलन के खतरे से बचाते हुए एक सूत्र में बाँधकर रखती हैं। इतना ही नहीं, वे समूची मानवता को वैचारिक पराधीनता से बचाने का यत्न भी करती हैं, किन्तु दुखद पक्ष यह है कि तथाकथित वैश्विक भाषा के इंद्रजाल में हमारे भाषाई स्वाभिमान को फाँसने की साज़िश सदियों से रची जा रही है। ऐसे में हमें संस्कार और विचार के स्तर पर भाषाओं को संचार और व्यवहार के अनुकूल बनाना ही होगा, वरना भाषाई स्वाधीनता की पूंजी को बचाए रखना कठिन हो जाएगा।

विगत कई सदियाँ इस बात की साक्षी रही हैं कि हम शस्त्र के अभाव में नहीं बल्कि शास्त्र के ज्ञान के अभाव में अपनी राष्ट्रीयता को खोते चले गए। राष्ट्र खंड–खंड होता चला गया। राष्ट्रीय सीमाएँ संकुचित होती चली गईं। शस्त्र के अभाव में मिली आंशिक या तात्कालिक हार को तो हम शास्त्र की मदद से जय में बदलने की क्षमता विकसित कर सकते हैं, क्योंकि शास्त्र हमें अतीत के गौरव का स्मरण वर्तमान के संघर्ष को मज़बूती और भविष्य के लिए अखंड राष्ट्र को बनाए व बचाए रखने के लिए स्वप्नदर्शी बनाने की सतत प्रेरणा देते रहते हैं। आज ज़रूरत इस बात की है कि हम शास्त्र की शक्ति को समझें, किन्तु उसे समझने के लिए भाषा की शक्ति को समझने की आवश्यकता होगी। पाश्चात्य दृष्टिकोण के प्रभाव में गढ़ी गयी मैकाले वाली अभारतीय शिक्षा व्यवस्था ने सबसे बड़ी क्षति भाषाओं को पहुँचाई है। स्वभाषा ज्ञान के अभाव में अभी तक समाज और देश के लिए भाषाओं को हितकारी न बनाया जा सका। परिणामस्वरूप चिरंतन वैचारिकी का ह्रास हुआ, हमारा इतिहास और भूगोल दोनों बदलकर रख दिया गया। हमारी शास्त्रीय चिंतन परम्परा को हाशिये पर रखते हुए नियति ने आयातित तिलस्मी चश्मे से हमें जैसा दिखाया गया हमने वैसा देखा। आज भी हम उस तिलस्म से मुक्त नहीं हो पाए हैं। उस तिलस्म से बाहर आने के लिए अपने देशी भाषा संसार का सहारा लेना पड़ेगा। यह निर्विवाद तथ्य है कि स्व भाषाओं में दी गयी शिक्षा मेधा को प्रखर और सांस्कृतिक चेतना को सम्पन्न व उद्दीप्त बनाती है तथा वर्तमान और भविष्य के समन्वयन से जनमानस को जीवन और जगत के हितार्थ एक योद्धा की भांति तैयार करती है। ऐसी शिक्षा सदैव अपनी सनातन परम्परा और सांस्कृतिक युग–बोध के साथ खड़ी दिखती है। परिणामस्वरूप हमारी परम्परा श्रेष्ठतर होती जाती है, साथ ही साथ अतीत के प्रति विनम्र और भविष्य के प्रति उदारमना भी। संस्कृति का स्वर सदैव नैतिक और रचनात्मक होता है, किन्तु संस्कृति की सत्ता युगीन दबाव से मुक्ति की कामना लगातार करती रहती है। मूल्यों के सांस्कृतिक प्रवाह के आवेग की तीव्रता को शांत करने का जब–जब उपक्रम किया जाता है, तब वह सामुदायिक जीवन पद्धति का अटूट हिस्सा बन जाता है और धारा का वह प्रवाह केवल संस्कारों व व्यवहारों तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि उसमें आगे ले जाने की

अपार क्षमता विकसित हो जाती है। भाषाई गरिमा को आहत करने के लिए भाषाई द्वेष का दैत्य सदियों तक पीछा ही नहीं करता है, बल्कि शाश्वत चिंतन की परंपरा तथा भाषाई व्यवहार को तार–तार भी करता है। फिर तार–तार हुई भाषा से राष्ट्रीय स्वायत्ता की रक्षा करना दुष्कर हो जाता है। फिर पछताने के सिवाय कुछ शेष रहता भी नहीं। तब भाषाएँ ही एकमात्र संबल बचती है, जो जातीय सभ्यता व संस्कृति का वाहक बन सामुदायिक चेतना को उत्कृष्टता प्रदान करती हैं।

वैश्विक परिदृश्य में हो रहे लगातार परिवर्तन के अनुरूप भाषाओं ने भी अपने भीतर परिवर्तनगामी चरित्र की उद्‌भावना की है। किसी भी राष्ट्र के शैक्षिक विकास का संरक्षण और संवर्धन भाषाएँ ही सुनिश्चित करती हैं तथा आदर्श संकल्पनाओं की पहचान कर नया आयाम प्राप्त करने की प्रेरणा भी देती हैं। फिर धीरे–धीरे युगानुकूल रचनात्मकता की धारा के प्रवाह को आगे बढ़ाते हुए सम्पूर्ण भूमण्डल में अपनी सार्थक मौजूदगी दर्ज करती हैं। भाषाओं की ठोस सामाजिक सांस्कृतिक मनोभूमि एवं रचनात्मक वैशिष्ट्य के आलोक में उनके विकास की संभावनाओं को श्रेष्ठताबोध के भाव से जाँचने की आवश्यकता है, क्योंकि पराजित मनोवृत्ति किसी भी भाषा के सामने चुनौती बन खड़ी नहीं रह सकती। अतः खोया हुआ और आहत भाषाई स्वाभिमान वापस लाने के लिए अपने भीतर वह भरोसा और आत्म–विश्वास उत्पन्न करना ही होगा, तब जाकर प्रौद्योगीकी के ज्ञान को स्वभाषा की कोख में विकसित व परिपक्व कर ज्ञान की भूमि को उर्वर बना सकते हैं। उत्कृष्ट संस्कृति की नव संरचना में ही स्वभाषा की भूमिका सुनिश्चित होती है और उपलब्धियों के नए मुकाम निर्मित किए जाते हैं, जो अनंतकाल तक कवच बन राष्ट्रीय अस्मिता को सुनिश्चित करने की दिशा में सक्रियता बनाए रखते हैं। फिर वैचारिक पराधीनता की आहट नहीं सुनाई देती है और राष्ट्र को सही अर्थों में धीर, वीर, गंभीर और अखण्ड बनाए रखने के समुन्नत मार्ग की निर्मिति संभव होती है।

जब भाषा की नदी संस्कृति के बनाए हुए घाटों से होकर बहती है तब आम जन उसी भाषा रूप को आदर्श मानकर उसमें डुबकी लगाते हैं, तभी भाषाई गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखना सम्भव हो पाता है। भूमण्डलीकरण भाषा की शुद्धता का समर्थन नहीं करता है, वर्णसंकर रूप का समर्थन अवश्य करता है। भाषा में स्थान–विशेष की निजता बनाए रखना ही उसे स्वीकार्य है, क्योंकि बाज़ार विकसित करने में सहूलियत होती है तथा भाषा और भाषागत प्रयोगों को लोगों पर थोपने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। फिर लोग उसी भाषा रूप को अपनाने को विवश भी हो जाते हैं। धीरे–धीरे उसे सही और सत्य मान लेते हैं। परिणाम स्वरूप उसी भाषा का समाज में व्यवहार होने लगता है। किन्तु एक संतुलित भाषा जिसमें विश्लेषण एवं संश्लेषण की अपार क्षमता विद्यमान हो तथा उसमें आगत शब्दों को आत्मसात कर अपनी प्रकृति के अनुरूप उन्हें ढालने का गुण हो, जहाँ अक्षर को अधिक महत्व दिया जाता हो और ध्वनि को कम। ऐसी स्वभाषाओं के साथ खड़ा होने का वक्त अब आ चुका है। बिना उनके साथ खड़े हुए भाषाई आत्मनिर्भरता की सोच को यथार्थ में बदल न पाएँगे।

– प्रो. विनोद कुमार मिश्र
महासचिव

संपादकीय

हिंदी के प्रतीकात्मक अर्थ

'भाषा' मनोभावों को अभिव्यक्त करने का साधन है। भाषा के इस सर्वमान्य अर्थ को ग्रहण करते हुए हिंदी अपने उद्भव, विकास और वैश्विक विस्तार की प्रक्रिया के अंतर्गत विभिन्न प्रतीकात्मक अर्थों में प्रकट होती रही है। विगत दो शताब्दियों के दौरान हिंदी ने अपनी विविध भूमिकाओं के आधार पर विशेष कार्यों को संपन्न किया है। परिणामस्वरूप हिंदी की कहानी राष्ट्रीयता, अस्मिता, धार्मिक निष्ठा, सांस्कृतिक गर्व, सृजन, संचार, मनोरंजन और संगठन की कहानी में परिणत हुई है। संसार की उन बहुत ही कम भाषाओं में से हिंदी एक है, जो विश्व भर की यात्रा करते हुए मात्र विचार–विनिमय का माध्यम न रहकर अधिक विस्तृत रूप में उभरी है। अपनी दीर्घकालीन यात्रा की उपलब्धियों के फलस्वरूप आज हिंदी को 'विश्व भाषा' का दर्जा प्राप्त हुआ है। परन्तु अपनी प्रतिष्ठा को शीर्ष तक पहुँचाने के लिए हिंदी को अतिरिक्त प्रतीकात्मक अर्थ धारण करना ही होगा।

भारत में 1857 की क्रान्ति के उपरान्त जब राष्ट्र के भावी विकास का प्रश्न उठा, तब सर्वाधिक व्यापक, सरल और उपयोगी भाषा हिंदी ही देश में मौलिक परिवर्तन से जुड़कर राष्ट्रीयता का प्रतीक बनी। खड़ी बोली से पूर्व भारत में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं का अस्तित्व रहा, परन्तु देश की अखंडता से जुड़ने का गौरव हिंदी को ही प्राप्त हुआ। भारत में नए युग के सूत्रपात के साथ ही महर्षि दयानंद कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक ही भाषा – हिंदी भाषा के प्रयोग का स्वप्न संजोकर अपने सभी व्याख्यान हिंदी में प्रस्तुत करने लगे। उनकी पुस्तकें भी हिंदी में ही प्रकाशित होने लगीं। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान पंडित मदन मोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, विनोबा भावे आदि देश–भक्त हिंदी की लोकप्रियता को ध्यान में रखकर इसे राष्ट्र–भाषा बनाने की दिशा में प्रयत्नशील हुए। 1918 में इंदौर में आयोजित आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए महात्मा गांधी ने उद्गार प्रकट किया–

"मेरा यह मत है कि हिंदी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए।"

भारत में हिंदी को पूर्ण रूप से राष्ट्रभाषा का गौरव दिलाने का संघर्ष अभी तक जारी है। राष्ट्रीय गौरव के हितार्थ भारत के वर्तमान प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर और बहुभाषिक समुदाय में अनिवार्य रूप से हिंदी में वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं। यह विश्वास भी अटल है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनने से भारत को एक अंतरराष्ट्रीय पहचान प्राप्त होगी।

अपनी जन्मभूमि से पृथक होने वाले व्यक्ति के लिए अस्मिता का अर्थ गहनतम् होता है और वह अपनी पहचान की रक्षा के प्रति अधिक सजग होता है। 19वीं और 20वीं शताब्दी में अनुबंधित श्रमिक के रूप में भारत भूमि छोड़कर दूरदेशों में जा बसने वाले भारतीयों की अंतरात्मा से आवाज़ आती रही कि "हम हिंदू हैं और हमारी भाषा हिंदी है।" इस आवाज़ के प्रति सचेत गिरमिटिया मज़दूरों ने अपनी मूल पहचान खोकर खोखला बनना स्वीकार नहीं किया। ब्रिटिश उपनिवेशों में जहाँ अंग्रेज़ी उच्च स्थान पर थी और 'क्रिओल' या 'जुलु' या मूल निवासियों की भाषा या अन्य पिजिन भाषा का प्रचलन था, वहाँ पुरखों की भाषा हिंदी भारतवंशियों की अस्मिता की रक्षा का प्रतीक बनी। गोरे शासकों द्वारा हिंदी की सुरक्षा हेतु कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई। मॉरीशस, फ़िजी, गयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीय मज़दूरों ने अपने स्वयं के प्रयासों से रात्रि में डिबरी जलाकर हिंदी के पठन–पाठन का शुभारम्भ किया और विविध चुनौतियों का सामना करके अपनी पहचान को बनाए रखा। मॉरीशस में 'हिंदी प्रचारिणी सभा', दक्षिण अफ्रीका में 'हिंदी शिक्षा संघ', गयाना में 'हिंदी प्रचार सभा', सूरीनाम में 'सूरीनाम हिंदी परिषद्', त्रिनिदाद एवं टोबेगो में 'हिंदी निधि न्यास' आदि की स्थापना हिंदी शिक्षा के माध्यम से अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने के ही प्रयास थे।

इस श्रृंखला में जहाँ स्थानीय अध्यापकों ने सेवा–भाव और लगन से भावी पीढ़ी को हिंदी का ज्ञान दिया, वहाँ भारत सरकार ने भी प्रोफ़ेसर रामप्रकाश, प्रोफ़ेसर वी. आर. जगन्नाथ, प्रोफ़ेसर शेरबहादुर झा, श्रीमती रत्नमयी दीक्षित, डॉ. रामजी तिवारी आदि हिंदी शिक्षकों को अलग–अलग देशों में भेजकर हिंदी शिक्षण को बढ़ावा दिया। समन्वित प्रयासों के बल पर ही आज लगभग 175 वर्ष बाद हिंदी का अध्ययन–अध्यापन कई देशों में विश्वविद्यालयी स्तर तक हो रहा है।

भारतीय शर्तबंद मज़दूर जब दासता की पीड़ा सहन करते हुए संकटमोचक के रूप में 'रामचरितमानस', 'हनुमान चालीसा' आदि धर्म ग्रंथों की ओर मुड़े, तब हिंदी उनकी धार्मिक निष्ठा का प्रतीक बनी। धीरे–धीरे विविध देशों में आर्य समाज के मंदिरों की स्थापना हुई और हिंदी ही वैदिक धर्म के प्रचार का माध्यम बनी। भारतवंशियों ने अपने धार्मिक उत्सवों में हिंदी का प्रयोग करने की परंपरा को निरंतर दृढ़ता प्रदान की। भजन–कीर्तन, सत्संग, पूजा–पाठ, यज्ञ–हवन आदि प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान हिंदी के पक्ष में व्यापक वातावरण का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होता रहा है। धर्म में अभिरुचि रखने वाले लोग हिंदी सीखने के प्रति स्वतः प्रेरित होते हैं।

''जैसा देश वैसा भेष'' कहावत के अनुरूप भारतवंशियों ने अन्य देशों की वेशभूषा, खान–पान, रहन–सहन आदि को कुछ हद तक अपनाया। परन्तु भारत को अपनी सांस्कृतिक जन्मभूमि मानकर उन्होंने भारतीय संस्कृति के साथ अपना संबंध अविच्छिन्न रखा। विश्व के अलग–अलग देशों में फैली भारतीयता पुश्तैनी भाषा हिंदी के प्रति प्रबल प्रेम का ही परिणाम है। हिंदी भाषा भारतवंशियों के लिए सांस्कृतिक गर्व का प्रतीक है। समर्पित संस्कृति कर्मियों की दानशीलता के फलस्वरूप विभिन्न भूभागों में स्वेच्छिक सांस्कृतिक संस्थाएँ खड़ी हुईं, जिनमें हिंदी में गोष्ठियाँ, सम्मेलन, सभाएँ और प्रतियोगिताएँ नियमित रूप से आयोजित होती रही हैं। कई शोधकर्ता हिंदी के माध्यम से सांस्कृतिक विरासत की खोज में संलग्न रहते हैं। भारत और मित्र देशों के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान समझौता संपन्न होने से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के केंद्र अनेक देशों में स्थापित हुए। भारतीय उच्चायोग के सहयोग से इन केंद्रों द्वारा संचालित सांस्कृतिक गतिविधियों में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के परस्पर अटूट संबंध का ही परिचायक है।

बीसवीं शताब्दी में हिंदी में सृजनात्मक लेखन के नित्य नए प्रयोगों के चलते हिंदी सृजन का प्रतीक बनकर अत्यधिक तीव्र गति से अपने विकास–पथ पर अग्रसित हुई। काव्य–लेखन से लेकर कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावृत्तांत, रिपोर्ताज, लघुकथा, व्यंग्य आदि हर साहित्यिक विधा में हिंदी साहित्यकारों ने अपूर्व सक्रियता का परिचय दिया। इसी शताब्दी में मॉरीशस में हिंदी की जितनी साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित हुईं, उतनी देश की औपचारिक भाषा अंग्रेज़ी और प्रचलित भाषा फ्रेंच में भी नहीं हो पाईं। हिंदी के नए रचनाकारों का विश्व भर में उदय होता रहा है और वैश्विक हिंदी साहित्य का सुन्दर रूप हमारे समक्ष प्रकट हुआ है। अब यदि हिंदी के पाठकों की संख्या बढ़ाने में सफलता प्राप्त होगी, तो हिंदी की उर्वरता को कायम रखना सहज होगा।

संचार के क्षेत्र में हुई भारी क्रान्ति के साथ ही हिंदी संचार का प्रतीक बनने की दिशा में भी बहुत आगे निकल चुकी है। मॉरीशस जैसे छोटे देश से लेकर अफ्रीका, ब्रिटेन, कनाडा, अमेरिका जैसे बड़े भूभागों में भी रेडियो और टेलीविजन स्टेशनों के माध्यम से हिंदी के कार्यक्रम असंख्य घरों में पहुँच रहे हैं। दफ़्तर आने–जाने वाले लोग भी यात्रा करते हुए रेडियो पर हिंदी कार्यक्रमों के साथ जुड़ते हैं। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हिंदी में संचार मुख्यतः प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं तक सीमित था। इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक पहुँचते–पहुँचते अधिकांश पत्र–पत्रिकाएँ ऑनलाइन उपलब्ध कराई जाने लगीं। साथ ही, इंटरनेट पर और सोशल मिडिया के प्रत्येक साइट पर उपस्थित होकर हिंदी अपने उज्ज्वल भविष्य का प्रमाण दे रही है।

धर्म, संस्कृति और साहित्य के उत्थान में सफल होने के साथ–साथ हिंदी आधुनिक युग में मनोरंजन का भी प्रतीक बनी। विश्व के असंख्य हिंदी प्रेमियों के लिए हिंदी प्रेम हिंदी सिनेमा और हिंदी गीतों के प्रेम का पर्याय है। भारतीय सिनेमा और हिंदी का नाता बहुत पुराना है और हिंदी के बिना भारतीय सिनेमा की कल्पना करना संभव नहीं है। भारतीय समुदाय में हिंदी सिनेमा और हिंदी गीतों की लोकप्रियता भूतपूर्व है। रूस और उसके सहयोगी देश पोलेंड, हंगरी, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया आदि से लेकर खाड़ी के देशों में और तमाम अन्य देशों में भी लोग हिंदी फ़िल्मों के प्रति आकर्षित होते हैं। विश्व के भिन्न भाषा–भाषी हिंदी गीतों को तन्मयता से सुनते हैं और शब्दों को याद करके प्रभावी ढंग से गीतों का गान करते हैं। टेलीविजन पर प्रसारित गायन के प्रतिस्पर्धात्मक धारावाहिकों में विश्व के कोने–कोने से अहिंदी भाषियों की बढ़ती प्रतिभागिता इसका ज्वलंत उदाहरण है। हिंदी फ़िल्मों में अभिनय करने की आकांक्षा से भी विदेशी हिंदी सीखकर उसका आनंदपूर्वक प्रयोग करते हैं।

विश्व बंधुत्व की पृष्ठभूमि पर हिंदी संपर्क भाषा की भूमिका निभाते हुए वैश्विक हिंदी परिवार के संगठन का भी प्रतीक बन चुकी है। विश्व हिंदी सम्मेलनों में जब विश्व भर से सैकड़ों हिंदी विद्वान, साहित्यकार, पत्रकार, भाषा–विज्ञानी, विषय–विशेषज्ञ एवं हिंदी प्रेमी एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, तब विश्वव्यापी हिंदी परिवार का अद्‌भुत संगठन परिलक्षित होता है। इस परिवार के सभी सदस्य हाथ से हाथ मिलाकर हिंदी के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य की पूर्ति करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। एक ही दिशा में चलने से वैश्विक हिंदी परिवार के सदस्यों के आपसी संबंध में भी गहराई आती है। इस निरंतर गहराते रिश्ते के कारण ही वैश्विक हिंदी परिवार व्हाट्सएप्प के आभासी मंच पर जुड़कर प्रतिदिन हिंदी संबंधी गतिविधियों की जानकारियाँ देते हुए एक–दूसरे तक हिंदी–सेवा का सुन्दर सन्देश पहुँचाता है।

वर्तमान आर्थिक युग में अपना महत्त्व पुष्ट करने के लिए हिंदी को अब आर्थिक उन्नति का प्रतीक बनना होगा। हिंदी यदि रोज़गार से जुड़कर हिंदी के अध्येताओं की आर्थिक शक्ति बढ़ाने में सक्षम होगी, तो उसकी गरिमा में चार चाँद लग जाएँगे। मॉरीशस में 20वीं शताब्दी में सैकड़ों लोग हिंदी सीखकर हिंदी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में भाग लेने लगे, क्योंकि इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने से उन्हें हिंदी शिक्षण क्षेत्र में आजीविका प्राप्त करने की संभावना थी। अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण हिंदी सशक्त भाषा सिद्ध हो चुकी है। अब आशा की जाती है कि आजीविका–प्राप्ति का साधन बनकर हिंदी आर्थिक उन्नति का एक सकारात्मक प्रतीक प्रमाणित होगी। इसी उपलब्धि के बल पर हिंदी उन्नत भाषाओं की प्रथम पंक्ति में विराजमान होगी।

डॉ. माधुरी रामधारी
उपमहासचिव

अनुक्रम

हिंदी : उद्भव एवं विकास

1.	प्रवासी हिंदी : इतिहास, स्वरूप एवं समस्याएँ	- डॉ. विमलेश कांति वर्मा	2
2.	विश्वभाषा हिंदी : व्याप्ति और स्वीकृति	- डॉ. रणजीत साहा	9
3.	भारत और उज़्बेकिस्तान के साहित्यिक संबंधों का विकास	- प्रो. तमरा ख़ोदजायेवा	14

हिंदी : लिपि, साहित्य और संस्कृति

4.	वैश्विक हिंदी : विकास और विस्तार	- प्रो. खेमसिंह डहेरिया	18
5.	रामायण से निःसृत लोकगीत	- श्रीमती नर्वदा खेदना	23
6.	भारतीय संस्कृति : जीवन विवेक की साहित्यिक परम्परा	- डॉ. आनन्द कुमार सिंह	29
7.	देवनागरी एवं डोगरी	- श्री यशपाल निर्मल	32

हिंदी का ई-संसार और जन-माध्यम

8.	रेडियो प्रसारण की भाषा	- श्री अरुण कुमार पाण्डेय 'अभिनव अरुण'	37
9.	ऑनलाइन शिक्षण : कोरोना संकट में आशा की एक किरण	- श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'	42
10.	ऑस्ट्रेलिया में हिंदी मीडिया	- डॉ. जवाहर कर्नावट	47
11.	कोरोना महामारी का दौर : ऑनलाइन हिंदी-शिक्षण की युक्तियाँ	- श्रीमती ए. राधिका	52
12.	हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में वेब मीडिया की भूमिका : हिंदी ब्लॉग्स के विशेष संदर्भ में	- डॉ. मनीषा शर्मा	58
13.	प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आगे बढ़ती हिंदी	- श्री श्याम सुंदर कथूरिया	64
14.	हिंदी के विस्तार में तकनीक और संचार की संस्कृति	- डॉ. कुमार भास्कर	71
15.	डिजिटल मीडिया में हिंदी और वैश्विक बाज़ार	- डॉ. संजय सिंह बघेल	77
16.	न्यू मीडिया की नज़र से हिंदी समाचार-पत्रों पर कोविड-19 का प्रभाव	- डॉ. शैलेश शुक्ल	83

हिंदी-शिक्षण

17.	हिंदी-शिक्षण के नए आयाम	- श्री अशोक ओझा	89
18.	अमेरिका में हिंदी अध्ययन-अध्यापन : दशा एवं दिशा	- डॉ. प्रेम सिंह	92
19.	विश्व पटल पर हिंदी : अध्ययन और अध्यापन	- डॉ. राम प्रकाश यादव	97
20.	अमेरिका में हिंदी शिक्षण व प्रशिक्षण की दशा	- डॉ. कुसुम नैपसिक	101
21.	मॉरीशस की प्राथमिक पाठशालाओं में हिंदी की पढ़ाई	- सुश्री आरती हेमराज़	108

हिंदी : विविध आयाम

22.	हिंदी के प्रसार में कनाडा की हिंदू इंस्टीट्यूट का योगदान	- डॉ. रत्नाकर नराले	114
23.	असम में हिंदी का विस्तार : एक अनुशीलन	- श्री जैनेंद्र चौहान	119
24.	समय और सच की भाषा हिंदी	- अजित्रा आर. एस.	123
25.	पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक समन्वय में हिंदी	- संगीता कुमारी पासी	128
26.	भारतीय तथा वैश्विक पटल पर हिंदी में रोज़गार की संभावनाएँ	- डॉ. पद्माकर पांडुरंग घोरपड़े	134
27.	फ़िजी हिंदी साहित्य सृजन : प्रो. सुब्रमनी के औपन्यासिक कृतियों का अवलोकन	- श्रीमती सुभाषिनी एस. लता	139
28.	न्यायपालिका और हिंदी : अवरोध और चुनौतियाँ	- प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी	144

हिंदी के पथप्रदर्शक

29.	उपनिवेशों में हिंदी भाषा के प्रथम प्रचारक : आर्य समाजी भाई परमानंद	- डॉ. राकेश कुमार दूबे	151
30.	गांधी : लेखकों के लेखक	- डॉ. कमल किशोर गोयनका	155
31.	हिंदी, प्रादेशिक भाषाएँ और दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि	- श्री उमेश चतुर्वेदी	159
32.	पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों की भाषिक बनावट-बुनावट	- प्रो.(डॉ.) सूर्यकांत त्रिपाठी	163
33.	महात्मा गांधी और मॉरिशस : एक अटूट संबंध	- डॉ नूतन पाण्डेय	171
34.	'गोदान' की हस्तलिखित पांडुलिपि	- आभार : डॉ. कमल किशोर गोयनका	182

हिंदी : आज के प्रश्न

35.	अंग्रेज़ी के कारण ही आज हिंदी की उपेक्षा हो रही है	- श्री गोवर्धन यादव	184
36.	क्या वैश्वीकरण ने सचमुच हिंदी को कुछ दिया है	- श्री संजय कुमार	189
37.	हिंदी भाषा पर अंग्रेज़ी का वर्चस्व	- डॉ. काजल पाण्डेय	195

श्रद्धांजलि

38.	आचार्य नंदकिशोर नवल का आलोचना कर्म	- डॉ. अभिषेक शर्मा	199
39.	प्रवासी लेखन का असमंजस और सुषम बेदी का साहित्य	- रेखा सेठी	202
40.	गिरिराज किशोर : मानवीय सरोकार के अप्रतिम रचनाकार	- प्रो. विनोद कुमार मिश्र	207

हिंदी : उद्‌भव एवं विकास

1. प्रवासी हिंदी : इतिहास, स्वरूप एवं समस्याएँ - डॉ. विमलेश कांति वर्मा

2. विश्वभाषा हिंदी : व्याप्ति और स्वीकृति - डॉ. रणजीत साहा

3. भारत और उज़्बेकिस्तान के साहित्यिक संबंधों का विकास - प्रो. तमरा खोदजायेवा

प्रवासी हिंदी : इतिहास, स्वरूप एवं समस्याएँ

– डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा
दिल्ली, भारत

भारतीय जहाँ–जहाँ भी गए, अपने साथ अपनी संस्कृति, अपना साहित्य और अपनी भाषा ले गए। वे जिस देश में भी रहे, वहाँ की भाषा तो उन्होंने सीख ली, किंतु अपनी मूल भाषा को वे भूले नहीं, अपितु उसे अमूल्य निधि के समान सुरक्षित रखते हुए उसके सम्मान तथा उसकी सुरक्षा के प्रति हमेशा सजग रहे। वे यह मानते रहे कि अपनी संस्कृति को बचाए रखने का मूलमंत्र अपनी भाषा की सुरक्षा तथा उसका सम्मान है। मॉरीशस के प्रतिष्ठित साहित्यकार अभिमन्यु अनत की अपनी भाषा के प्रति प्रतिबद्धता देखिए –

"छीनने नहीं दूँगा, तुम्हें लेकिन
अपनी पहचान, अपनी भाषा"

फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, गयाना, दक्षिण अफ़्रीका जैसे देशों में हिंदी भारतवंशियों के मध्य आज भी मातृभाषा के रूप में बोली जाती है तथा उसे वहाँ सम्मानित स्थान प्राप्त है, पर इनमें से कई देशों में हिंदी लुप्त होने के कगार पर है, जिसकी सुरक्षा के लिए आज प्रयत्न आवश्यक है।[1]

भाषा की प्रतिष्ठा उसके बोलने वालों की सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ी होती है। भारतीय भी विश्व के अनेक देशों में आजीविका की खोज में सुनहले भविष्य का सपना लिए हुए कहीं यायावर के रूप में, तो कहीं मज़दूर के रूप में गए थे, किंतु अपने परिश्रम, लगन तथा ईमानदारी से वे हर देश में सुशिक्षित, सुप्रतिष्ठित तथा सम्मानित नागरिक बन गए। उनकी उन्नत सामाजिक स्थिति के कारण ही उनकी भाषा भी सम्मानित भाषा बनी।

भारतीय आप्रवासन और प्रवासी भारतीय समाज

भारतीय आप्रवासन का इतिहास कम से कम पंद्रह सौ वर्ष पुराना है और इस भारतीय आप्रवासन को हम तीन प्रमुख चरणों में बाँट कर देख सकते हैं। भारतीय आप्रवासन के पहले चरण का प्रारम्भ उस समय से मानना चाहिए जब राजस्थान, गुजरात तथा पंजाब प्रांत के बंजारे अपनी यायावरी प्रवृत्ति के कारण भारत छोड़कर बाहर निकले और यूरोप, अमेरिका होते हुए सारे विश्व में फैल गए। कहीं ये रोमा कहलाए, कहीं ये सिगनी कहलाए, तो कहीं इन्हें जिप्सी नाम दिया गया। इन्हें नाचना–गाना प्रिय था, अपने समूहों में रहते थे, घूमते रहते थे और जहाँ मन किया वहीं डेरा डाल लिया और रम गए। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इन्हें घुमन्तू नाम दिया। भारत में ये घुमन्तू बंजारे, बडगूजर सिकलीगर, जात, सिन्धी पशुपालक समुदाय तथा विश्वकर्मा वर्ग के थे। इनकी भाषा रोमानी है, जो हिंदी की शब्द सम्पदा तथा हिंदी की व्याकरणिक संरचना वाली है और राजस्थानी हिंदी के ग्रामीण रूप से बहुत मिलती है, जिसमें मराठी, गुजराती तथा कश्मीरी आदि भारतीय भाषाओं के भी बहुत से शब्द आ गए हैं।

भारतीय आप्रवासन का दूसरा चरण 19वीं शती के पूर्वार्द्ध से प्रारम्भ होकर 20वीं शती के उत्तरार्द्ध तक का समझना चाहिए। यह वह समय है, जब ब्रिटिश और डच आदि उपनिवेशों में मज़दूरी करने के लिए भारतीयों को गिरमिट प्रथा के अंतर्गत बहला फुसलाकर और लालच देकर विदेश भेजा गया। इन प्रवासी भारतीयों का बड़ा दल सबसे पहले मॉरीशस (1834 ई.) फिर त्रिनिदाद (1845 ई.), दक्षिण अफ़्रीका (1860 ई.), गयाना (1870 ई.), सूरीनाम (1873 ई.) तथा फ़िजी (1879 ई.) समुद्री जहाज़ से पहुँचा था। इन देशों को जाने वाले भारतीय सामान्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के थे। वे अवधी तथा भोजपुरी बोलते थे। कुछ भारतीय खड़ी बोली का भी प्रयोग करते थे। अन्य प्रदेशों से जाने वाले भारतीय संख्या में इतने कम थे कि उनके बीच पारस्परिक व्यवहार की संपर्क भाषा अवधी और भोजपुरी ही रही, जिनमें कुछ अन्य भाषाओं के शब्दों का भी समुद्री यात्रा के दौरान समावेश हो गया। विदेशी भूमि पर कदम रखने के बाद वहाँ के मूल निवासियों तथा अंग्रेज़ अफ़सरों आदि से जब

उनका संपर्क हुआ, तो वहाँ के कुछ शब्द भी उनकी हिंदी में प्रायः तद्भव रूप में सम्मिलित हो गए। धीरे–धीरे उनकी शुद्ध अवधी या शुद्ध भोजपुरी का रूप बदलने लगा और एक नई भाषिक शैली का विकास हुआ। इसी प्रकार अनेक भाषिक शैलियाँ पनपीं, जिनके नए नामकरण भी कर दिए गए, क्योंकि वे भारत में बोली जाने वाली हिंदी से बहुत भिन्न थीं तथा इनमें स्थानीय भाषा का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में दिखाई पड़ता था। फ़िजी में बोली जाने वाली हिंदी को वहाँ के प्रवासी भारतीय फ़िजीबात कहते हैं, सूरीनाम की हिंदी को सरनामी, सरनामी हिन्दुस्तानी या सरनामी हिंदी कहा जाता है तथा दक्षिण अफ़्रीका की हिंदी को नेटाली। इन शैलियों का व्यवहार प्रवासी भारतीय अधिकांशतः घर में तथा अनौपचारिक बातचीत में करते हैं। इसमें साहित्यिक रचना बहुत कम होती है, पर साहित्यिक रचनाओं में इनका प्रभाव निश्चय ही देखा जा सकता है। चूँकि इन नई भाषिक शैलियों में साहित्य लेखन बहुत कम होता है, इसलिए इनका स्वरूप वहाँ के हिंदी लोकगीतों में या बोलचाल की भाषा में ही देखने को मिलेगा।

भारतीय आप्रवासन के तीसरे चरण का प्रारंभ भारत की स्वाधीनता के बाद से अर्थात् 1947 के बाद से समझना चाहिए। स्वेच्छा से अपने देश को छोड़कर उच्च शिक्षा के निमित्त या बड़े और प्रतिष्ठित पदों पर काम करने के निमित्त या अपने व्यापार को व्यापक बनाने के लिए भारतीय विदेश गए। विदेश में बसे ये भारतीय नियमित रूप से भारत आते–जाते रहते हैं। आज विदेश में इनकी दूसरी और तीसरी पीढ़ी है। अपने नए अपनाए देश में आर्थिक दृष्टि से संपन्न होते हुए भी वहाँ की संस्कृति में वे घुलमिल नहीं पाए। वे उस देश में धन कमाने आए एक व्यापारी के रूप में देखे जाते हैं। प्रतिष्ठित प्रवासी साहित्यकार सुषम बेदी[2] अपने उपन्यास 'हवन' में उनकी स्थिति बताते हुए बड़े खुले शब्दों में कहती हैं –

"हर हिन्दुस्तानी यहाँ एक व्यापारी है, अमेरिका के एक बड़े बाज़ार में हिन्दुस्तानी अपनी प्रतिभा, ज्ञान, कौशल और अनुभव को लेकर आता है और खुद को चढ़ा देता नीलामी पर। अच्छा दाम लग जाए, तो क्या खूब–बढ़िया सी नौकरी, सुन्दर सा घर, नमकीन सी बीवी और बलार्ड गर्ल फ्रेंड सबका सौदा हो जाता है। न बढ़िया दाम लगे, तो भी बैरा या दुकानदार की नौकरी ही सही। ले देकर किसी को यह सब घाटे का सौदा नहीं लगता।"

प्रवासी भारतीय और हिंदी

प्रवासी भारतीयों ने जिस दिन विदेशी भूमि पर पदार्पण किया उसी दिन से उन देशों में हिंदी का वृक्षारोपण हुआ समझना चाहिए। व्यक्ति और उसकी भाषा दोनों सर्वदा साथ चलते हैं।

विदेश में बसे हुए प्रवासी भारतीयों में सबसे बड़ी संख्या हिंदी भाषी भारतीयों की ही रही है। इसका कारण भी यही है कि हिंदी भारत में सबसे बड़े भूभाग की भाषा है। देश का आधा भूभाग हिंदी का मातृभाषा–भाषी क्षेत्र है। देश के 11 प्रदेशों की मातृभाषा हिंदी है। देश की दो तिहाई जनता हिंदी का मातृभाषा के रूप में प्रयोग करती है, पर हिंदी का यह प्रयोग मानक हिंदी का नहीं, यह प्रयोग हिंदी की 17 प्रधान उपभाषाओं का है, इसलिए जो भारतीय आप्रवासन के द्वितीय चरण में विदेश (मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, फ़िजी, दक्षिण अफ़्रीका देशों में) गिरमिट प्रथा के अंतर्गत गए, वे अधिकांशतः हिंदी पट्टी के थे और हिंदी की किसी न किसी उपभाषा के बोलने वाले थे। यही कारण है कि अपने–अपने समुदायों में वे अपनी उपभाषा या बोली का प्रयोग सामान्यतः करते हैं। बड़े बहु उपभाषा–भाषी समुदाय में खड़ी बोली या मानक हिंदी–परिनिष्ठित हिंदी का प्रयोग करते हैं, क्योंकि वह सर्वाधिक बोधगम्य भाषा माध्यम है।

भवानी दयाल सन्यासी[3] ने अपनी 'प्रवासी की आत्मकथा में दक्षिण अफ़्रीका में विविध भारतीय भाषाओं के बोलने वाले, जिनमें दक्षिण भारत के तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि भाषाओं के बोलने वाले प्रवासी भारतीय संख्या में बहुत थे और हिंदी भाषी कम, पर उन सबके बीच हिंदी ही माध्यम भाषा कैसे बनी, इसका बड़ा जीवंत विवरण प्रस्तुत किया है।

प्रवासी हिंदी और मानक हिंदी–भाषा द्वैत की स्थिति

फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम, दक्षिण अफ़्रीका सभी देशों में हिंदी के सन्दर्भ में भाषा द्वैत की स्थिति दिखेगी। प्रवासी हिंदी प्रवासियों की बोलचाल की भाषा है और प्रवासी भारतीय समाज में सामान्यतः उसी बोलचाल के रूप का प्रयोग करते हैं, पर औपचारिक अवसरों पर प्रवासी भारतीय मानक हिंदी के प्रयोग का प्रयत्न करते हैं।

प्रवासी भारतीयों ने सभी देशों में अपनी भाषा को टूटी–फूटी, अव्याकरणिक और 'अइली–गइली' आदि नाम दिए और मानक हिंदी की तुलना में अपनी बोलचाल की भाषा को महत्त्व नहीं

दिया, पर बोलचाल की भाषा प्रवासी भारतीयों के मध्य वही रही, क्योंकि वह उनकी अपनी भाषा थी, उसका ही वे परिवार में प्रयोग करते हैं, पर औपचारिक अवसरों पर वे मानक हिंदी या खड़ी बोली के प्रयोग की कोशिश करते हैं। वे स्पष्टतः यह भी कहते हैं कि उनकी अपनी मातृभाषा वह हिंदी है, जो उनके यहाँ विकसित हुई है न कि मानक हिंदी। मानक हिंदी भारत की हिंदी है।

प्रवासी भारतीयों की दृष्टि में मानक हिंदी या शुद्ध हिंदी भारत में बोली जाने वाली परिनिष्ठित खड़ी बोली है। प्रवासी भारतीय इसी मानक हिंदी को सीखना चाहते हैं। वहाँ मानक हिंदी में ही समाचार–पत्र छपते हैं, रेडियो तथा दूरदर्शन में भी इसी मानक हिंदी का प्रयोग होता है और सामाजिक अवसरों पर भाषण आदि में भी मानक हिंदी को ही प्रतिष्ठा प्राप्त है। विद्यालयों में भी मानक हिंदी ही सिखाई जाती है। यही कारण है कि बोलचाल की हिंदी पर भाषा की दृष्टि से प्रवासी भारतीयों ने कोई विशेष अध्ययन–अनुसंधान की बात नहीं सोची।

विदेशी विद्वानों ने प्रवासी भारतीयों के मध्य प्रचलित हिंदी की नई शैलियों के महत्त्व को समझा, क्योंकि उनके निकट आने का, उनसे घुलने–मिलने का सबसे सहज तरीका उनकी अपनी भाषा को समझना तथा उस पर अधिकार प्राप्त कर लेना था। यही कारण है कि विदेशी विद्वानों ने प्रवासी भारतीयों द्वारा बोली जाने वाली हिंदी की विविध भाषिक शैलियों पर विविध दृष्टियों से कार्य किया, इसका व्याकरण तैयार किया, अंग्रेज़ी–हिंदी द्विभाषी कोश तैयार किए और उनके महत्त्व को आंका।

विभिन्न देशों में बसे हुए भारतीयों के साथ हिंदी वटवृक्ष के समान विश्व में फैलती गई और उसके अनेक रूप हो गए। 4 अलग–अलग देशों में अलग–अलग रूपों में वह भारतीयों की संपर्क भाषा बनी। भारतीयों ने उसकी सुरक्षा, संरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए तन–मन–धन अर्पित भी किया।

विदेशों में प्रचलित हिंदी के विविध भाषिक रूप निम्नलिखित हैं –

फ़िजी हिंदी / फ़िजीबात

फ़िजी में भारतीयों के मध्य बोली जाने वाली हिंदी फ़िजीबात या फ़िजी हिंदी कही जाती है।[5] अधिक समय नहीं हुआ, जब फ़िजी में बसे भारतीय मूल के लोगों की संख्या देश की आधी जनसंख्या के बराबर थी। सभी भारतीयों के मध्य फ़िजी हिंदी आपसी व्यवहार की भाषा है। फ़िजी हिंदी सम्पूर्ण देश में भारतीयों के मध्य तो बोली और समझी जाती ही है, वहाँ के मूल निवासी काईबीती भी फ़िजी हिंदी बोलते और समझते हैं।

फ़िजी में हिंदी के दो रूप देखने को मिलेंगे। घर पर तथा अनौपचारिक अवसरों पर एक भारतीय जिस हिंदी का व्यवहार करता है, उस हिंदी का विकास उसके पूर्वजों द्वारा फ़िजी में हुआ। यह हिंदी का सहज बोलचाल का रूप है। औपचारिक अवसरों पर जिस हिंदी का प्रयोग एक भारतीय करना चाहता है वह हिंदी का परिनिष्ठित रूप है तथा इसको वह भारत की हिंदी कहता है। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक मंच पर एक भारतीय इस परिष्कृत हिंदी का प्रयोग करता है और अपनी बोलचाल की हिंदी को इस परिष्कृत हिंदी की तुलना में अपरिष्कृत, अशुद्ध तथा टूटी–फूटी भाषा भी कहता है।

आज का प्रवासी भारतीय बोलचाल की हिंदी के महत्त्व को पहचानता है, अपनी बोलचाल में इसी हिंदी का प्रयोग करता है। उसे यह लगता है कि परिनिष्ठित हिंदी उसे सीखनी तो चाहिए, किंतु उसकी अपनी जो हिंदी है, जो विदेशी परिवेश में उसके अपने पूर्वजों द्वारा विकसित की गई है, वही उसकी भावाभिव्यक्ति का सहज तथा प्रभावशाली माध्यम बन सकती है।

फ़िजी हिंदी पर कई विदेशी विद्वानों ने परिश्रम करके महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं। रोडने मोग ने 'फ़िजी हिंदी' शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें फ़िजी हिंदी की व्याकरणिक विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डाला है। सूजन हाब्स जो फ़िजी में कुछ वर्षों के लिए पीस कोर वालंटियर के रूप में आई थीं, उन्होंने फ़िजी हिंदी–अंग्रेज़ी द्विभाषी शब्दकोश प्रकाशित किया है। जे. एफ़. सीगल ने भी 'से इट इन फ़िजी हिंदी' नामक अपनी पुस्तक में फ़िजी हिंदी के लालित्य तथा उसकी भाषिक क्षमता पर अपनी टिप्पणी देते हुए उसकी महत्ता का परिचय दिया है और उसे फ़िजी में विकसित हिंदी की एक विशिष्ट भाषिक शैली कहा है, जो भारत में बोली जाने वाली हिंदी से नितांत भिन्न है। सीगल का विचार है, जैसे विश्व में अंग्रेज़ी की कई भाषिक शैलियाँ विकसित हुई हैं और जो ब्रिटिश इंग्लिश से पर्याप्त भिन्न हैं, उसी प्रकार फ़िजी हिंदी भी अपनी व्याकरणिक तथा उच्चारणगत विशेषता के कारण हिंदी से पर्याप्त अलग है।

'फ़िजीबात' या 'फ़िजी हिंदी' न तो भोजपुरी है और न ही

अवधी। वह हिंदी की फ़िजी में विकसित एक नई भाषिक शैली है, जिसमें अवधी की शब्दावली पर्याप्त मात्रा में है, अवधी संरचना के तत्त्व भी उसमें दिखाई पड़ेंगे तथा अंग्रेज़ी और काईबीती की शब्दावली को भी ग्रहण कर उसने अपना अलग रूप बनाया है, जैसे मोतो (मोती), यंगोना (फ़िजी का एक लोकप्रिय पेय), तांबुआ (घड़ियाल का दांत), कोरो (फ़ीजियन गाँव), लाली (काष्ठ वाद्य) आदि।[6]

फ़िजी हिंदी को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रो. सुब्रमणी ने अपने दो बृहत् उपन्यास 'डउका पुराण' और 'फ़िजी माँ', प्रो. ब्रिज विलास लाल ने 'मारिट', रेमंड पिल्लई ने 'अधूरा सपना', बाबूराम शर्मा, महेन्द्र चन्द्र शर्मा 'विनोद', कुशल सिंह, ठाकुर रंजीत सिंह 'फ़िजी पंडित' ने अपने व्यंग्यपूर्ण निबंधों द्वारा दी है ।[7]

सरनामी हिंदी / सरनामी हिन्दुस्तानी / सरनामी

सूरीनाम में भारतीयों का प्रवेश 1873 ई. में हुआ। आज सूरीनाम में भारतीय मूल के लोगों की संख्या 39 प्रतिशत है, जबकि वहाँ 35 प्रतिशत नीग्रो, 18 प्रतिशत इंडोनेशियन तथा 8 प्रतिशत अन्य जातियों के लोग रह रहे हैं। इस प्रकार संपूर्ण देश में भारतीयों की संख्या सबसे अधिक है। इन भारतीयों के मध्य आपसी बोलचाल की भाषा हिंदी है। इसी हिंदी को सरनामी हिंदी या सरनामी संज्ञा से अभिहित किया गया है। सरनामी हिंदी भी अवधी, भोजपुरी, ब्रज तथा खड़ी बोली का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करती है।[8]

सूरीनाम में सरनामी हिंदी में साहित्य सृजन हो रहा है। अमर सिंह रमण, सूर्य प्रसाद बीरे, जीत नारायण, सुरजन परोही, आशा राजकुमार, हरिदत्त लछमन 'श्री निवासी' आदि सूरीनाम के प्रसिद्ध हिंदी लेखक हैं, जो अपनी रचना सरनामी हिंदी में लिख रहे हैं।[9] इनकी रचनाएँ भारतीय समाज में बड़े चाव से पढ़ी और सुनी जाती हैं।

नेटाली हिंदी / नेटाली

दक्षिण अफ़्रीका में बसे हुए भारतीय मूल के लोगों के बीच बोली जाने वाली हिंदी की विशिष्ट भाषिक शैली को नेटाली नाम से अभिहित किया जाता है। दक्षिण अफ़्रीका चार प्रांतों में बंटा हुआ है – नटाल, केप, आरेंज फ़्री स्टेट तथा ट्रांसवाल। दक्षिण अफ़्रीका के महानगर डरबन में भारतीय मूल के निवासी सबसे अधिक हैं। यहाँ पर बोली जाने वाली हिंदी जो कि भोजपुरी हिंदी का एक विशिष्ट रूप है, भारतीयों के मध्य बोली जाती है। नटाल में प्रमुखतः हिंदी का व्यवहार होता है। इसलिए यहाँ की हिंदी को नेटाली नाम से अभिहित किया गया है।[10]

आज दक्षिण अफ़्रीका में नेटाली बोलने वाले भारतीय मूल के लोग अधिक नहीं हैं, यही कारण है कि नेटाली में साहित्य लेखन बहुत कम होता है। वहाँ के लोकगीतों में ही नेटाली का रूप देखने को मिल सकता है। भोजपुरी लोकगीतों का एक विशिष्ट रूप, जिसे "चटनी" नाम से संबोधित किया जाता है, आजकल प्रतिष्ठित भारतीय समाज में बहुत लोकप्रिय हो चुका है। विवाह के अवसरों पर इनकी माँग बहुत बढ़ गई है, क्योंकि पश्चिमी डिस्को की शैली में ढले ये भोजपुरी लोकगीत आधुनिक फ़ैशन के प्रतीक बन गए हैं। इन चटनी लोकगीतों ने भारतीय समाज के सांस्कृतिक तथा भाषिक मूल की ओर भारतीयों को फिर से आकर्षित किया है। यह नेटाली हिंदी है, जो भारतीयों को उनके मूल भारत से तथा उनके कर्मक्षेत्र दक्षिण अफ़्रीका से जोड़े हुए है।[11]

त्रिनिदादी हिंदी

त्रिनिदादी हिंदी से तात्पर्य, त्रिनिदाद देश की उस बोलचाल की हिंदी से है, जो त्रिनिदाद में आए गिरमिटियों के बीच संपर्क भाषा के रूप में विकसित हुई थी और आज भी प्रवासी भारतीयों की चौथी और पाँचवीं पीढ़ी के बुज़ुर्गों द्वारा पारस्परिक बोलचाल में सुनी जा सकती है। त्रिनिदाद और टोबेगो में बोली जाने वाली हिंदी को त्रिनिदाद में विभिन्न नाम दिए गए हैं। ये त्रिनिदादी हिन्दुस्तानी, त्रिनिदादी भोजपुरी, प्लांटेशन हिन्दुस्तानी और गाँव की बोली के नाम से भी कही जाती है। पर धीरे–धीरे अंग्रेज़ी की वर्चस्विता के कारण त्रिनिदाद में हिंदी का स्थान अंग्रेज़ी लेती जा रही है और त्रिनिदादी हिंदी लुप्त होने के कगार पर है।[12]

आज त्रिनिदाद की जनसंख्या में भारतीय मूल के लोगों का प्रतिशतक वर्ष 2011 के आंकड़ों के अनुसार 37.6% है, जो सबसे अधिक है। भारतीयों के बाद दूसरे स्थान पर अफ़्रीकन जनसंख्या 36.3% है। 1845 से 1917 के बीच जो भारतीय त्रिनिदाद आए वे अपने साथ भोजपुरी और अवधी लाये थे। बाद के दिनों में तमिल भाषी भी त्रिनिदाद पहुँचे पर हिंदी भाषी भारतीयों की अधिकता के

कारण तमिल का संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग न हो सका और हिंदी का संपर्क भाषा के रूप में विकास हुआ।

त्रिनिदाद आए भारतीयों ने त्रिनिदाद में प्रचलित अंग्रेज़ी सीखी पर घरों में बोलचाल के रूप में वे अवधी मिश्रित भोजपुरी का ही प्रयोग करते रहे। पर त्रिनिदादी हिंदी केवल अवधी और भोजपुरी का मिश्रित रूप ही नहीं है, वरन उसमें त्रिनिदाद में बोली जाने वाली अन्य भाषाओं के शब्दों का ऐसा और इतना मिश्रण हो गया है कि उनकी हिंदी भारत की हिंदी से बहुत अलग दिखती है।[13]

हिन्दुस्तानी का आज जो स्वरूप त्रिनिदाद में रह गया है, वह हिंग्लिश के रूप जैसा है, जिसमें अंग्रेज़ी अधिक है और हिंदी की शब्दावली या पदबंधों का प्रयोग मात्र है। आज बहुत से भारतीय मूल के त्रिनिदादी अपनी प्रार्थनाएँ और भजन हिन्दुस्तानी में ही गाते हैं, पर बोलचाल की भाषा के रूप में वह धीरे–धीरे लुप्त–सी ही है। केरेबियन 'चटनी संगीत' में हिंदी शब्दों का प्रयोग तो दिखता है, जो यह भी संकेत देता है कि बोलचाल के रूप में अब हिंदी लुप्त होती दिख रही है। आवश्यकता है हिंदी के लुप्त होते रूप के पुनरुद्धार की, जो हिंदी के वैश्विक स्वरूप को पुष्ट करेगी।

गयानी भोजपुरी

दक्षिण अमेरिका में गयाना अकेला देश है, जहाँ अंग्रेज़ी देश की राजभाषा है और जनवर्ग गयानी क्रियोल, जो अंग्रेज़ी आधारित क्रियोल है, बोलता है। आज वहाँ बसे भारतीय इन्हीं भारतीय गिरमिटियों के वंशज हैं और 174 वर्ष पूर्व पूर्वजों की भारतीय संस्कृति, परम्परा एवं रीति–रिवाज़ का आज भी पालन कर रहे हैं।

गयाना देश की राजभाषा अंग्रेज़ी है और शिक्षा प्रशासन, जनसंचार तथा अन्य क्षेत्रों में आज अंग्रेज़ी का प्रयोग होता है। अधिकांश जनता गयानी क्रियोली का प्रयोग करती है, पर सांस्कृतिक और धार्मिक अवसरों पर भारतीय भाषाओं का प्रमुखतः हिंदी का प्रयोग होता है, जो निरंतर घटता जा रहा है। गयानी क्रियोल अंग्रेज़ी, अफ़्रीकन तथा हिंदी शब्दों के मिश्रण से निर्मित बोली है। भारतीय और अफ़्रीकी जातीय समुदाय के मिश्रण से यहाँ की संस्कृति बहुत कुछ त्रिनिदाद की संस्कृति जैसी है। सतुआ, फुलौरी, परसाद और दाल पूरी आदि कितने ही हिंदी के शब्द हैं, जो गयाना में आपको जनसमाज के बीच सुनाई पड़ेंगे।

गयानी भोजपुरी वहाँ के बड़े–बूढ़ों के मध्य ही बची है। युवा पीढ़ी तो अब हिंदी को भूल–सी चुकी है, किन्तु उनकी क्रियोल में हिंदी के अनेक शब्द आज भी मिलेंगे, जो कभी हिंदी के पुनरुद्धार के कारण बन सकते हैं।[14]

रोमानी हिंदी

रोमा जनजातीय समुदाय यायावरी प्रकृति का है, इसलिए जहाँ–जहाँ वे गए और रहे वहाँ की रोमानी में उन देशों की भाषाओं के भी शब्द जुड़ते चले गए और रोमानी के अनेक भाषा रूप भी होते गए। अपने बल्गारिया प्रवास में मेरा कई रोमा विद्वानों से संपर्क हुआ, जिनकी भाषा अध्ययन में रुचि थी और उन्होंने मेरे साथ रोमा–हिंदी–बल्गारियन कोश पर कार्य भी किया। रोमा लोगों को बल्गारिया में 'सिगनी' नाम से अभिहित किया जाता है। वे अलग बस्तियों में रहते हैं। उनके रहन–सहन का तरीका जिन देशों में भी हैं, उससे अलग ही है। उनकी मान्यताएँ, रीति–रिवाज़, अनुष्ठान आदि भी विभिन्न है, जो मूल रूप में कहीं भारत की संस्कृति के लक्षणों से संपृक्त हैं।

रोमा लोगों की भाषा जिसे रोमानी की संज्ञा दी गई, उसमें विद्वानों का मानना है कि 40% - 50% शब्द हिंदी के तथा 30% - 35% सिन्धी और शेष पंजाबी, कश्मीरी, गुजराती और यूरोपीय भाषाओं के शब्द हैं।[15] रोमानी हिंदी पर अभी भी काम नहीं के बराबर हुआ है।

पार्या

रूसी भाषाविदों का विचार है कि उज़्बेकिस्तान तथा तजाकिस्तान में बोली जाने वाली भाषा पार्या भी हिंदी की ही एक भाषिक शैली है।[16] पार्या भाषा के लिए अफ़गानी, जवान–ई–अफ़गानी, इंकू, लफज़–ई–इंकू, सुरहानी, चंगर, चश्क गरक आदि नामों का भी प्रयोग होता है। इस भाषा के बोलने वाले अपने को अफ़गान शइखोल तथा पार्या भी कहते हैं। पार्या भाषा–भाषियों की संख्या आज कितनी है, इसके कोई प्रामाणिक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। पार्या भाषा–भाषियों की संख्या विद्वानों ने अनुमानतः 6000 बताई है। मार्गदोविच ने अपने एक प्रकाशन में उनकी संख्या जरफशां में 65 तथा दुशाम्बे में 300 बताई है।

पार्या भाषी अपना मूलस्थान अफ़गानिस्तान में लगमान बताते हैं। पार्या की न अपनी कोई लिपि है न ही लिखित साहित्य सम्पन्न है। लोकगीत तथा लोक कथाएँ दोनों ही पार्या में मिलती हैं। रूसी विद्वान ओरांस्की ने पार्या लोकसाहित्य पर पर्याप्त कार्य किया है।[17]

संरक्षण और संवर्धन की समस्या और चुनौती

प्रवासी हिंदी के सम्बन्ध में सबसे बड़ी समस्या और प्रमुख चुनौती यही है कि इन भाषा रूपों का संरक्षण और संवर्धन कैसे हो? विश्व की अनेक भाषाएँ आज विलुप्त होने के कगार पर हैं। कुछ विलुप्त हो चुकी हैं। विलुप्त भाषाओं के साथ उन भाषाओं के बोलने वालों की संस्कृति और उनमें संचित अभिव्यक्तियाँ भी लुप्त हो जाती हैं। अवधेय है कि मॉरीशस, त्रिनिदाद और दक्षिण अफ़्रीका में बोली जाने वाली हिंदी, जो वहाँ के प्रवासी भारतीयों के मध्य विकसित हुई थी, उनके दुख–सुख की, आशा–निराशा की अभिव्यक्तियों की संचित निधि थी, वह लुप्त हो रही है और उसका स्थान अंग्रेज़ी लेती जा रही है। फ़िजी और सूरीनाम में हिंदी की स्थिति अधिक अच्छी है। वे अपनी हिंदी की सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए निरन्तर संघर्षरत हैं। भाषा के विलुप्त होने के खतरे को समझते हुए फ़िजी के प्रो. ब्रज विलास लाल, प्रो. रेमण्ड पिल्लई, प्रो. सुब्रमणी, श्री महेन्द्रचन्द्र शर्मा 'विनोद', श्री महावीर मित्र, श्री काशीराम कुमुद, श्री बाबू राम शर्मा जैसे सृजनात्मक लेखक फ़िजी में और सूरीनाम में डॉ. जीत नराइन, श्री हरदेव सहतू, आशा राजकुमार, श्री अमर सिंह रमण जैसे व्यक्ति अपनी हिंदी को बचाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। वे इसमें साहित्य सृजन कर इसे प्रतिष्ठित कर रहे हैं और अच्छी साहित्यिक रचनाएँ देकर विदेश में भी हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं। यह सही है कि इन शैलियों में अभी भी कम रचनाएँ हो रही हैं, पर आशा की जाती है कि हिंदी के इन रूपों के महत्त्व को जैसे–जैसे हम समझेंगे, इनमें अधिक रचनाएँ आएँगी। परिनिष्ठित हिंदी इन भारतवंशियों की सायास सीखी हुई भाषा है, इसलिए जो अधिकार अपनी मातृभाषा अर्थात् 'फ़िजी हिंदी', 'सरनामी हिंदी' अथवा 'नेटाली हिंदी' पर इनका है, वह भारत की हिंदी पर नहीं हो सकता है और अच्छी प्रौढ़ रचनाएँ प्रवासी भारतीयों की अपनी विकसित हिंदी में ही हो सकेंगी।

किसी एक भाषा का लुप्त हो जाना उस भाषिक समुदाय की संस्कृति, अनुभूति और अभिव्यक्ति, आचार–विचार मान्यताएँ और आस्था–विश्वास का लुप्त हो जाना है। भाषा बचती तभी है, जब तक उसका बोलचाल में प्रयोग होता रहे। हमारा प्रयास होना चाहिए कि हिंदी के विदेश में विकसित इन भाषा रूपों को हम प्रोत्साहन दें, जिससे हिंदी विश्वभाषा के पथ पर और समर्थ भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो सके।

सन्दर्भ :

1. वर्मा, विमलेश कान्ति, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 12
2. सुषम बेदी, हवन, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली 1989, पृष्ठ 129
3. सन्यासी, भवानी दयाल, प्रवासी की आत्मकथा, प्रवासी भारतीयों की राष्ट्रभाषा आर्य युवक सभा, दक्षिण अफ़्रीका, होप इंडिया, गुड़गाँव 2013, द्वितीय संस्करण 2013, पृष्ठ 168–169
4. वर्मा, विमलेश कान्ति, हिंदी एक रूप अनेक, वाक् वर्ष 1,अंक 1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
5. वर्मा, विमलेश कान्ति व धीरा वर्मा, फ़ीजी में हिंदी–स्वरूप और विकास, पीताम्बरा प्रकाशन, नई दिल्ली 2000
6. वर्मा, विमलेश कान्ति, फ़ीजी बात, हिंदी की एक विदेशी शैली, बहुवचन अंक 46, वर्ष जुलाई–सितम्बर 2015, पृष्ठ 7–25, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
7. वर्मा, फ़िजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2012
8. वर्मा, विमलेश कान्ति, सरनामी हिंदी; साहित्यिक परिधि, चक्रवाक, संयुक्तांक 40–41, अप्रैल–सितम्बर 2017, पृष्ठ 22–39
9. वर्मा, विमलेश कान्ति व भावना सक्सेना, सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, राधा कृष्णा प्रकाशन व महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, नई दिल्ली 2000
10. सीताराम, रामभजन–नेटाली हिंदी, बहुवचन अंक 46, वर्ष जुलाई–सितम्बर 2015, पृष्ठ 86–104, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
11. Rambilass, B. Naitali - South African Bhojpuri, Journal of

Indological Society of South Africa Vol.5, 1996

12. Mahabir, Kumar, A Dictionary of Common Trinidadian Hindi, Illustrations S.K. Raghbir, Chakra Publishing House, San Juan, Tinidad and Tobago, Edition 2005 pp.79
13. वर्मा, विमलेश कान्ति, हिंदी–स्वदेश और विदेश में, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, लोधी एस्टेट, नई दिल्ली 2018
14. गंभीर, सुरेन्द्र, प्रवासी भारतीयों में हिंदी की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली व महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा 2017
15. अ. शशि, श्याम सिंह, विश्व के रोमा–जिप्सी तथा यायावर समुदायों का हिंदी संसार, प्रवासी संसार वर्ष 4, अंक 3, जुलाई–सितम्बर 200, पृष्ठ 90–92
    आ. वैष्णव, यमुना दत्त 'अशोक 'जिप्सियों की भाषा और हिंदी, प्रवासी संसार वर्ष 4, अंक 3, जुलाई–सितम्बर 2007, पृष्ठ 93–95
16. ओरान्स्क्या, तात्याना, पार्या भाषा : ताजिकिस्तान–उज़्बेकिस्तान में हिंदी की सगी बहिन, बहुवचन अंक 46, जुलाई–सितम्बर 2015, पृष्ठ 65–85
17. तिवारी, भोलानाथ, सोवियत संघ में बोली जाने वाली हिंदी बोली : ताजुज़्बेकी/ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन तथा संक्षिप्त शब्द कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

vimleshkanti@gmail.com

विश्वभाषा हिंदी : व्याप्ति एवं स्वीकृति

– डॉ. रणजीत साहा
नई दिल्ली, भारत

उक्त शीर्षक के कई निहितार्थ हो सकते हैं। क्या इसे प्रश्नवाची बनाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है! हिंदी को किस सीमा तक और कितनी दूर तक स्वीकृति मिली है? क्या भारत में और भारत के बाहर एक वैश्विक भाषा के नाते, पिछले सत्तर वर्षों में इसके विस्तार और रफ़्तार से आश्वस्त हुआ जा सकता है? हम अपने पड़ोसी देशों, यथा – बांग्लादेश, पाकिस्तान, म्यांमार (बर्मा), भूटान, चीन, श्रीलंका आदि में हिंदी के प्रचार–प्रसार में कोई अपेक्षित गति पैदा कर पाए हैं? यहाँ तक कि नेपाल में शैक्षणिक या अकादमिक स्तर पर प्राप्त उपलब्धियों से आश्वस्त हो सकते हैं?

उत्तर तो यही होगा कि हिंदी के प्रचार–प्रसार के पीछे साम्राज्यवादी मंसूबे या महत्त्वाकांक्षी इरादे कभी नहीं रहे। यहाँ तक कि स्वदेश में भी यह संपर्क भाषा के तौर पर अंतर भाषाई संबोधन और संवाद की सर्जनात्मक भूमिका निभाती रही। इसमें अन्य विदेशी भाषा (अंग्रेज़ी, स्पेनी, फ्रांसीसी; यहाँ तक कि उर्दू) की तरह आक्रामकता का तनिक भी लेश नहीं।

स्वभावतः आक्रामकता अंग्रेज़ी और उसकी साम्राज्यवादी शक्ति से संपोषित प्रकृति है। विश्व के भाषाई मानचित्र पर यदि भाषाओं के विस्तार का आकलन किया जाए, तो पता चलेगा कि एशिया और अफ़्रीका समेत कई दक्षिणी अमेरिकी देशों में युद्धोन्मादी एवं उपनिवेशवादी देशों ने अपनी दमनकारी नीतियों और शक्ति के बल पर अपनी–अपनी भाषाओं को विजित देशों पर बर्बरतापूर्वक थोपा। जो आदिम कबीले और सुदूर बसे क्षेत्रीय जनजाति के लोग तब अपनी भाषाएँ और पहचान बनाने में समर्थ रहे, सर्वग्रासी भूमंडलीकरण के दौर में, अब वे अस्तित्व की रक्षा में जुट गए हैं। यह बात दीगर है कि भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार समुचित संरक्षण के अभाव में प्रति सप्ताह किसी–न–किसी बोली का अस्तित्व मिटता चला जा रहा है। ऐसे आक्रामक विदेशी शासन तंत्रों और इनके अधीनस्थ व्यापारिक प्रतिष्ठानों ने विजित राज्यों की ऐतिहासिक धरोहरों एवं सांस्कृतिक विरासतों को ध्वस्त किया और लोगों की जुबान तक को छीन लिया ताकि विरोध के सबसे बड़े हथियार को नष्ट किया जा सके। भारत जैसे कई देश इस नृशंसता के शिकार हुए हैं; विस्तार में यह बताने की ज़रूरत नहीं।

भारत जैसे बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक देश ने अपनी स्वतंत्रता के बाद से ही केंद्र और विभिन्न राज्यों की भाषाओं के साथ समुचित संतुलन एवं तालमेल बनाए रखा। हिंदी की केंद्रीय स्थिति, निश्चय ही बहुभाषिक भारत की बहुसंख्यक आबादी के बीच और हिंदीतर भाषा–भाषियों के बीच सीधे संवाद की भाषा के तौर पर रही है। यह संख्या सत्तर–बहत्तर प्रतिशत तक बढ़ गई है, ऐसा बताया जा सकता है। यानी दो–तिहाई से अधिक लोग हिंदी बोलते–समझते हैं। पठन–पाठन की दृष्टि से भी, भारत के एक सौ अस्सी विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर और इसके बाद हिंदी में शोध करने की उपयुक्त व्यवस्था है! संचार माध्यमों की प्रगति के कारण भी पूर्वांचल–अरुणाचल और मिज़ोरम तक तथा सुदूर उत्तर लेह लद्दाख आदि क्षेत्रों में हिंदी ने अपनी जड़ें जमा ली हैं। तो भी, यह देखना ज़रूरी होगा कि एक सौ तीस करोड़ भारतवासियों में से, उपर्युक्त प्रतिशत के अनुसार, लगभग चालीस करोड़ आबादी तक हिंदी अभी भी अपनी पहुँच नहीं बना पाई है। और इस प्रश्न को भी संबोधित करने की ज़िम्मेदारी सरकार, शिक्षा व्यवस्था और हिंदी स्वैच्छिक संस्थाओं पर है।

हिंदी के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि इसे किसी भी हिंदीतर राज्य पर थोपा नहीं जाएगा और यह सच भी है। इसके दुष्परिणाम को हिंदी कई बार झेल भी चुकी है और इसे अपने आगे बढ़ते क़दम को पीछे हटा लेना पड़ा है। हिंदी के

प्रचार–प्रसार में जिन हिंदी सेवियों – महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, पुरुषोत्तम दास टंडन, केशवचंद्र सेन, विनोबा भावे, राजगोपालाचारी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने अपना जीवन सौंप दिया, उन्होंने स्वतंत्रता–पूर्व और बाद में संख्या बल के आधार पर हिंदी को कभी ज़बरदस्ती थोपने का उद्यम नहीं किया। यही नहीं, जब 1937–38 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अति उत्साह में तत्कालीन मद्रास प्रेसीडेंसी में अनिवार्य तौर पर लागू करना चाहा, तो स्थानीय लोगों का गुस्सा भड़क उठा। पुरुषोत्तम दास टंडन ने इस अवांछित घोषणा की शिकायत तत्काल महात्मा गांधी जी से की। कहा कि यह हिंदी की प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। भारत में प्रकाशित होने वाले कई अख़बारों ने इस घटना की आलोचना (निन्दा) की।

संपूर्ण भारत में हिंदी और हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी की उपस्थिति के कमोबेश प्रतिशत अक्सर आँकड़ों द्वारा दर्ज किए जाते हैं। लेकिन भारतेन्दु युग और स्वाधीनता आंदोलन के दौर से ही इसे 'राष्ट्रभाषा', स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 'राजभाषा' और फिर 'संपर्क भाषा' के तौर पर महिमामंडित, तो कभी तर्क–वितर्क द्वारा परिभाषित या सीमित किया जाता रहा है। एक ओर इसे 'जनभाषा' और 'आम भाषा' कहा गया, तो दूसरी ओर 'विश्वभाषा' कहकर गौरवान्वित किया जा रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, गठित राजभाषा आयोग, भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित अधिनियमों से जुड़े विवाद ने हिंदी अंग्रेज़ी के विरुद्ध अन्यान्य भारतीय भाषाओं के क्षेत्रीय अधिकारों और अस्मिता को चुनौती के तौर पर लिया। साथ ही, इसे बहुसंख्यक हिंदी भाषियों द्वारा अपना वर्चस्व लादने का राजनीतिक हथकंडा साबित कर पिछले दरवाज़े से थोपने का कुचक्र बताया गया। यह भी विडंबना ही रही कि जब–जब सांस्कृतिक, ऐतिह्य, सामाजिक सामरस्य और राष्ट्रीयता–जैसे प्रश्नों पर विमर्श किया जाता रहा, तब तक इसे क्षुद्र राजनीति और क्षेत्रीय आकांक्षाओं से जोड़कर देखा जाता रहा, परिणामतः हिंदी के उड़ान भरते पंख कतरे गए। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक भाषा–भाषियों के इस प्रायोजित टकराव से अगर सबसे अधिक लाभ किसी एक विदेशी भाषा को मिला तो वह थी – अंग्रेज़ी। इसकी जड़ों पर आज तक कोई मट्ठा नहीं डाल पाया।

बावजूद इन कठिनाइयों के, हिंदी की संघर्ष यात्रा अपनी समस्त गतिविधियों के साथ अबाध आगे बढ़ती रही। इस गतिशील यात्रा में, हिंदी की दर्जनों समर्पित संस्थाएँ – चाहे वे उत्तर भारत की हों या दक्षिण भारत की, निरंतर सक्रिय बनी रहीं। जहाँ तक भारतीयों और हिंदी जनमानस की बात है, उनके लिए हिंदी एक ही साथ राष्ट्रभाषा है, राजभाषा है और संपर्क भाषा भी है। यह संस्थागत शिक्षण का माध्यम है, तो आस्थागत मूल्यों का वाहक भी। यह एक ओर बाज़ार, विज्ञापन और विपणन की भाषा है, तो मनोरंजन, पर्यटन और तीर्थाटन की भाषा भी।

लेकिन जहाँ तक हिंदी के राजभाषा पद से जुड़े कार्य एवं दायित्व का प्रश्न है, यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार, सरकारी कामकाज में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग के लिए वचनबद्ध है। संविधान सभा ने 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अधीन कार्यरत राजभाषा आयोग ही समस्त सरकारी संस्थानों और उपक्रमों के लिए समय–समय पर कार्यक्रम निर्धारित करता है; ऐसे आदेश भारत के राष्ट्रपति के निर्देशानुसार जारी किए जाते हैं, इसलिए इन्हें मानना आवश्यक होता है। लेकिन राजभाषा कार्यान्वयन के साथ लोगों का जुड़ाव भावनात्मक स्तर पर नहीं हो पाया है और यह सरकारी तंत्र का अंग मात्र बनकर रह गया है।

वस्तुतः हिंदी जिस भावभूमि पर विचरण करती है, वह उर्वर भी है और बंजर भी है। उसे शिक्षा प्रांगण और सरकारी परिसर तक सीमित नहीं किया जा सकता। हिंदी की बहुरूपी छवि कई प्रकार की वेशभूषा और साज–सज्जा में नज़र आती है। यह कहीं उच्चस्तरीय पाठ्यक्रम और अनुसंधान की भाषा है, तो कहीं ठेठ हाट–बाज़ार की भाषा है। विद्वत्–गोष्ठी की भाषा है, तो गहन विचार–विमर्श की भाषा है। यह रेहड़ी, ठेले और खोमचेवालों की भाषा है। यह प्रेम–पत्रों की भाषा है, तो प्रेमी–प्रेमिकाओं की स्वप्न भाषा; कहीं मंदिरों में भक्तों की अरज से जुड़ी है, तो कहीं कोठों और बाई जी के मुजरों की भाषा है। बंबइया फ़िल्मों की भाषा और गानों ने तो सारी दुनिया को दीवाना बना रखा है। इन फ़िल्मों, नाटकों और नौटंकियों की भाषा को न तो नाथा जा सका है और न बाँधा जा सका है।

लेकिन जब भी मानक और व्याकरण सम्मत भाषा की बात आती है, तो इसके संरचनात्मक स्वरूप और व्याकरणिक ढाँचे को

सुव्यवस्थित एवं सुनिर्धारित करने के व्यक्तिगत तथा संस्थागत प्रयास किए जाते रहे हैं। नलिनी मोहन सान्याल, बाबूराम सक्सेना, कामता प्रसाद गुरु और किशोरी दास वाजपेयी आदि विद्वानों ने हिंदी की वर्तनी, लिपि, वाक्य रचना एवं भाषिक पदानुक्रम की समुचित और सम्यक व्याख्या की है। पंचानुनासिक व्यवस्था, संरचनात्मक गुण–दोष और अपवाद आदि पर विचार किया है। कहना न होगा, हिंदी अपने मानक एवं मुद्रित रूप में स्वीकृत व्याकरणिक नियमों का ही समुचित अनुपालन कर रही है।

यद्यपि नागरी लिपि के मानक स्वरूप को अभी तक हिंदी यथोचित ढंग से सुनिर्धारित नहीं कर पाई है। नागरी लिपि के अनन्य प्रशंसक एवं प्रवक्ता डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने जीवन के अंत में हिंदी की सर्वभारतीय स्वीकृति के लिए इसे रोमन लिपि में भी लिखे जाने का सुझाव दिया था। सुप्रसिद्ध अभिनेता और संस्कृतिकर्मी (इप्टा के सदस्य) बलराज साहनी ने बहुत पहले व्यावहारिकता को ध्यान में रखते हुए हिंदी को रोमन में लिखे जाने का आग्रह ही नहीं किया, बल्कि इसके लिए अभियान भी छेड़ा था। ऐसा निर्णय उन्होंने बंबई फ़िल्म जगत की उन भाषाई सीमाओं को देखकर ही किया था, जहाँ इक्का–दुक्का हिंदीभाषी अभिनेता या सहकर्मी को छोड़कर, नब्बे फ़ीसदी से अधिक लोग रोमन लिपि में लिखे संवाद और दृश्यालेख का ही इस्तेमाल करते हैं। यहाँ एक रोचक प्रसंग का उल्लेख करना आवश्यक लगता है। फ़िल्म 'संगम' (1964) के नायक सुंदर (राज कपूर) अपने मित्र (राजेन्द्र कुमार) से हिंदी में अपनी प्रेमिका (वैजयंती माला) के लिए हिंदी में पत्र लिखवाता है और हिंदी में उत्तर पाकर राजेन्द्र कुमार से पढ़वाते हुए कहता है – 'पंडितजी कहा करते थे कि हिंदी का ज्ञान बहुत ज़रूरी है', 'फ़िल्म का अंजाम सभी जानते हैं... 'दोस्तों को कभी पत्रवाहक बनाते नहीं।'

भाषा और लिपि की इस बहस में एक महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी का ज़िक्र ज़रूरी है, जो 'उत्तर प्रदेश उर्दू–हिंदी कमिटी' द्वारा आयोजित की गई थी, इसमें मैं भी एक सहभागी था। इस गंभीर चर्चा में जाने–माने फ़िल्म लेखक जावेद सिद्दीक़ी (सौ से ज़्यादा फ़िल्मों के संवाद लेखक) ने बताया कि कथानक (script) हो या संवाद (dialogue) – वे रोमन में ही लिखते रहे हैं और पिछले तीस–पैंतीस सालों में उन्हें कोई परेशानी पेश नहीं आई। इससे रोमन लिपि की व्यावहारिकता उजागर होती है। इस बारे में चेतन भगत और असगर वजाहत भी हामी भरते नज़र आते हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि पिछले बीस–पच्चीस वर्षों से भारत भी विश्वभर में आई संचार क्रांति का प्रमुख भागीदार रहा है। दिन–ब–दिन अद्यतन होनेवाले कम्प्यूटर, मोबाइल, ऑनलाइन सुविधाएँ एवं संदेश, डिजिटल गजेट, गिज़्मों, नए–नए रूपाकारों और अवतारों में हमारे बाज़ारों और फिर हमारे घरों में प्रकट हो रहे हैं। इन विज्ञानी अवतारों की भाषा अंग्रेज़ी है और इनके संकेत, संदेश और संबोधन, रोमन लिपि द्वारा ही स्पष्ट होते हैं। भले ही इनके अन्वेषक देश–फ्रांस, जर्मनी, चीन, कोरिया या ताइवान हों, संचार–संसार अंग्रेज़ी की रोमन लिपि के पंखों पर ही उड़ान भर रहा है। कम–से–कम इस मामले में इसे कहीं से चुनौती मिलने की संभावना नहीं है। अगर हिंदी को अपनी वैश्विक उपस्थिति को व्यापक स्तर पर स्थापित करना है, तो रोमन लिपि की उपादेयता को निस्संकोच एवं रचनात्मक ढंग से अपनाना होगा। लेकिन नागरी लिपि के लिए रोमन लिपि कोई भयावह भूत नहीं है। रोमन लिपि से हम सब परिचित हैं और इस कथन में भी पूरी सच्चाई नहीं है। लेकिन हमें रोमन लिपि से डटकर लोहा लेना होगा, जो फिलहाल संभव होता नहीं दिखता। पिछले चालीस–पचास सालों से उर्दू लिपि (खुशख़त) में लिखित अदब (साहित्य) रोमन में नहीं, बल्कि नागरी में लिप्यंतरित होकर हिंदी के माध्यम से हिंदी और ग़ैर–हिंदी पाठकों के बीच पढ़ा जा रहा है। उर्दू अदीबों का मानना है कि इस तरह उर्दू हिंदी के द्वारा ही सबसे ज़्यादा फैल रही है और दोनों के बीच अदबी दूरी मिटी है।

संवाद एवं संप्रेषण के अलावा हिंदी ने भारत की अनुपम विरासत और कलात्मक प्रस्तुतियों के साथ रूपंकर निर्मितियों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता विकसित कर ली है। निःसंदेह यह संपूर्ण भारत के राज्यों का प्रदेश है, लेकिन हिंदी ने समग्र तौर पर धर्म, संस्कृति, योग, कला (दृश्य–अभिनय–रंगकर्म) संगीत, यहाँ तक कि फ़िल्मों द्वारा भी, संपूर्ण विश्व के लिए भारत के प्रति एक आकर्षण पैदा किया है। यहाँ के वैविध्यपूर्ण पर्यटन स्थल, रंगारंग उत्सव और त्यौहार, मेले और ज़ायकेदार व्यंजन भी पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। भारत आने के लिए वे विशेष तौर पर हिंदी सीखने और समझने की तैयारी करते हैं और वार्तालाप पुस्तिका (द्विभाषिक) साथ रखते हैं।

भारत में दूरदर्शन और अनेक निजी चैनलों द्वारा प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों ने हिंदी प्रचार–प्रसार में अभूतपूर्व भूमिका अदा की है। पिछले बीस वर्षों से 'कौन बनेगा करोड़पति' (के.बी.सी.) और इसके प्रस्तोता महानायक अमिताभ बच्चन ने न केवल भारत के बल्कि विदेशों के असंख्य दर्शकों को इस अनूठे कार्यक्रम से जोड़े रखा है। इसी क्रम में एक और जनप्रिय कार्यक्रम का हवाला देना अन्यथा न होगा और वह है 'कपिल शर्मा शो'। मैंने अपनी विदेश यात्रा के दौरान रूस, बल्गारिया, रोमानिया, जापान आदि देशों में भारतीय, विशेषकर हिंदी के रिकॉर्डड कैसेट और डिस्क आदि से कक्षाओं एवं कार्यशालाओं में हिंदी सीखने वाले विद्यार्थियों को पाठ तैयार करते देखा है। वहाँ के टेलीविजन पर भारतीय फ़िल्मों को, उस देश की भाषा में 'डब' कर या संवाद पट्टी के साथ दिखाना आम बात है।

भारत के संदर्भ में, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा–भाषियों को अंग्रेज़ी सिखाने वाली एक अत्यंत लोकप्रिय प्रविधि है, 'रैपिडैक्स हिंदी–अंग्रेज़ी कोर्स'। इस स्वयंसेवी पुस्तिका, जिसमें रिकॉर्डड पाठ का कैसेट भी संलग्न होता है, पाठकों के बीच बेहद लोकप्रिय है। 'कौन बनेगा करोड़पति' के करोड़ों दर्शकों की तरह इसके भी करोड़ों पाठक हैं। इसके प्रकाशक का कहना है कि उसके तीन–चार प्रेस केवल इसी पुस्तक के विभिन्न भाषाई (तमिल, तेलुगु, गुजराती, मराठी, बांग्ला, पंजाबी आदि) संस्करण दिन–रात छापते रहते हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य तो वस्तुतः अंग्रेज़ी सिखाना है, लेकिन प्रकारांतर से यह उन्हें हिंदी या अपनी मातृभाषा सीखने में भी सहायता करती है। लगभग ढाई सौ पृष्ठों वाली यह द्विभाषिक पुस्तक स्नातक स्तर के पाठकों को जीवनोपयोगी पाठ यथा, बैंक, बाज़ार, दफ़्तर, बस टर्मिनल, स्टेशन पर्यटन, पत्र–व्यवहार आदि से परिचित कराती है।

हालाँकि भारतीय बाज़ारों में हिंदी से विदेशी भाषाएँ सिखानेवाली कई छोटी–बड़ी पुस्तकें उपलब्ध हैं। भारत सरकार के अधीनस्थ केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने विदेशियों को हिंदी सिखाने और हिंदी भाषियों को विदेशी भाषाएँ सिखाने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के साथ कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें (द्विभाषिक) प्रकाशित की हैं। इसी तरह केन्द्रीय हिंदी संस्थान (भारत सरकार) अपने मुख्यालय आगरा (उत्तर प्रदेश) समेत भारत के अन्यान्य राज्यों में स्थित विभिन्न शाखाओं द्वारा अंग्रेज़ी के साथ विदेशी भाषाओं के कार्यक्रम नियमित तौर पर चला रहा है। भारत के कई विश्वविद्यालय यथा – दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, कोलकाता वि.वि., विश्वभारती शांति निकेतन आदि में प्रमुख विदेशी भाषाओं के विभाग बहुत पहले से प्रमाण–पत्र, डिप्लोमा, डिग्री वग़ैरह के साथ शोध संबंधी पाठ्यक्रम का विधिवत् संचालन कर रहे हैं।

वैश्विक भाषा की अहमियत बताने और जताने के जितने पैमाने हो सकते हैं, हिंदी उन पर वर्षों से खरी उतर चुकी है। विश्व की सर्वाधिक बोली और समझी जानेवाली भाषाओं में इसका स्थान चौथा है। वैश्वीकरण और उदार बाज़ारवाद के चलते हिंदी आज कई देशों में अपने पाँव बड़ी मज़बूती से रख चुकी है। ऐसे कई देश हैं, जो भारत के साथ अपना कारोबार बढ़ाना चाह रहे हैं। विश्व की पाँचवीं अर्थव्यवस्था बनने का यह संकल्प तभी पूरा हो सकता है, जब संबद्ध देशों के साथ हमारी कारोबारी समझ और भी बेहतर ढंग से स्थापित हो सके। इस मामले में केवल भाषा ही सहायक हो सकती है। अब केवल भाषिक, सांस्कृतिक या शैक्षणिक स्तर पर ही नहीं, व्यावसायिक स्तर पर उन भाषाओं (यथा, चीनी, जापानी, कोरियाई, थाई, सिंहली) को सीखने और उन देशों में जाने की होड़–सी नई पीढ़ी में लग गई है। भारत के छोटे–छोटे शहरों में इन भाषाओं को सिखाने वाले कोचिंग सेंटर खुल गए हैं। अपनी नेपाल की यात्राओं के दौरान मैंने कई शहरों, बल्कि क़स्बों में उक्त भाषाओं को अल्पावधि में सिखाने का दावा करने वाले कई कोचिंग सेंटर देखे। नेपाल जाकर किसी भी हिंदी भाषी को यह जान पड़ता है कि वह भारत के ही किसी अंचल में है। हिंदी वहाँ खूब बोली और समझी जाती है। दूसरे, नेपाली की लिपि भी नागरी है, इसलिए वहाँ लगे साइनबोर्ड या सूचना पट मानो हिंदी में ही लिखे प्रतीत होते हैं। क्षेत्रीय प्रभाव के कारण वहाँ जो लोग हिंदी में बातें करते हैं, उसमें नेपाली का पुट होता है।

हिंदी, जैसा कि पहले बताया गया, न केवल भारत में बल्कि भारत के बाहर मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना आदि देशों में पहुँची, तो उन देशों के विशिष्ट भाषाई स्वरूप में रच–बस गई। मॉरीशस में जहाँ उसे क्रियोली भाषा की संरचना के साथ भोजपुरिया हिंदी में ढालना पड़ा, वहाँ सूरीनाम में सरनामी हिंदी के साथ। फ़िजी की हिंदी पिछले डेढ़ सौ वर्षों में 'फ़िजी हिंदी' या 'फ़िजीबात' की स्वीकृति पा चुकी है। त्रिनिदाद और टोबेगो

में 'भोजपुरी हिंदी' की संज्ञा के साथ हिंदी अपनी अलग पहचान बना चुकी है। हिंदी में स्वयं को सम और विषम परिस्थितियों के अनुरूप ढालने की अनन्य क्षमता है। भारत जैसे विशाल देश में ही हिंदी के अलग–अलग कई संस्करण हैं। संस्कृतनिष्ठ हिंदी को जहाँ व्यंग्य से 'रघुबीरी हिंदी' कहा जाता है, वहाँ आमफहम हिंदी को 'चलताऊ हिंदी'। स्थानीयता के आग्रह और प्रभाव के चलते कलकतिया, बंबइया, बिहारी, हिमाचली, नेपाली, पहाड़िया, दक्खिनी, भोपाली जैसी क्षेत्रीय शैलियाँ पचासों साल से चल रही हैं। हिंदी की अबाध यात्रा के ये सारे भाषिक संस्करण सहयात्री हैं। अगर रूपक की भाषा में कहा जाय, तो इन समस्त हिंदियों की शक्ति पाकर ही शक्तिस्वरूपा दशभुजा देवी दुर्गा निर्मित हुई हैं। लेकिन यह किसी की संहारिणी नहीं, बल्कि अखिल मातृस्वरूपा है, जो सदैव अपनी भारतीय संतति और संस्कृति की समृद्धि चाहती हैं।

इस आलेख में मैं अपनी एक विशेष चिंता, दूसरे शब्दों में आकांक्षा का उल्लेख करना चाहूँगा, जो संयुक्त राष्ट्र संघ की एक स्वीकृत भाषा के तौर पर हिंदी को सम्मिलित किए जाने से संबंधित है। वर्ष 1977 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के उद्‌बोधन और 1988 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव के हिंदी अभिभाषण के आलोक में यह प्रश्न अन्यथा नहीं होगा कि भारतीय संसद तथा अन्यत्र भी कई बार आश्वस्त किए जाने के बाद भी, विश्व की अन्य भाषाओं (अंग्रेज़ी, चीनी, जापानी, रूसी, स्पेनी एवं अरबी) के साथ, विश्व की चौथी सबसे ज़्यादा बोली जानेवाली हिंदी को स्थान क्यों नहीं मिला! एक संगोष्ठी के दौरान मुझे अमेरिका जाने और न्यूयॉर्क में ठहरने का सुयोग प्राप्त हुआ था। मैं न्यूयॉर्क में जिस जगह ठहरा था, वहाँ से संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्यालय मुश्किल से डेढ़ किलोमीटर दूर था। मैंने वहाँ दो बार परिभ्रमण के दौरान जनसंपर्क अधिकारी से हिंदी की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाही, लेकिन मुझे निराशा ही हाथ लगी। चूँकि भारत में यह प्रचारित किया गया था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी के औपचारिक प्रवेश से संबंधित कार्रवाई की जा चुकी है और इसके लिए सौ करोड़ डॉलर की राशि आवंटित की गई है। स्थिति जो भी हो, हिंदी को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने के संकल्प को पूरा करने की दिशा में भारत सरकार निश्चय ही सक्रिय और सचेष्ट रहेगी, क्योंकि इससे हिंदी का वैश्विक परिदृश्य अत्यंत सुदृढ़ होगा।

drsaharanjit@gmail.com

भारत और उज़्बेकिस्तान के साहित्यिक संबंधों का विकास

– प्रो. तमरा खोदजायेवा,
उज़्बेकिस्तान

इतिहास से ज्ञात होता है कि भारत और मध्य एशिया के संबंध बहुत पुराने हैं। तब से लेकर आज तक ये संबंध निरन्तर विकसित हो रहे हैं। भारत और उज़्बेकिस्तान के बीच राजनीतिक, आर्थिक, कूटनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक संबंध हमेशा से रहे हैं।

उज़्बेकिस्तान के अधिकतर निवासी हिंदी भाषा और भारतीय लेखकों से अच्छी तरह परिचित हैं। ताशकंद सरकारी प्राच्य विद्या संस्थान में दक्षिण एशियाई देशों की भाषाओं का विभाग है, जिसमें 10 से अधिक अध्यापक और अध्यापिकाएँ हिंदी, उर्दू भाषाएँ और भारत का साहित्य तथा इतिहास पढ़ाते हैं। इस विभाग में सौ से अधिक छात्र–छात्राएँ पढ़ते हैं। पढ़ने के साथ–साथ हिंदी, उर्दू भाषा और साहित्य से संबंधित विषयों पर शोध कार्य भी किया जाता है। साहित्य के प्रचार क्षेत्र में यह विभाग बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

भारत और उज़्बेकिस्तान की मित्रता की बहुमुख्य दिशाओं में से एक – हमारे साहित्यिक संबंध हैं। साहित्यिक संबंधों के बारे में एक कवि ने कहा था कि वे ऊँचे सफ़ेद बालों वाले हिमालय को पार कर सकते हैं, दिल की दहलीज़ पार करके, बाँहों के किवाड़ खोलकर बहुत बड़े फ़ासले को छोटा कर देते हैं। इन शब्दों का भड़कीला उदाहरण हैं – प्रसिद्ध भारतीय लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर और मशहूर उज़्बेक कवि अ. नवाई की रचनाएँ जो न सिर्फ़ पूरे एशिया में बल्कि संसार भर में प्रसिद्ध हो गई हैं।

सन् 1991 से जब उज़्बेकिस्तान स्वतंत्र राष्ट्र बन गया है, दोनों देशों के साहित्यिक संबंधों को और विस्तार देने के नए रास्ते और नई संभावनाएँ खुलती जा रही हैं। इस दिशा में ताशकन्द में भारतीय राजदूतावास और भारत का सांस्कृतिक केंद्र महत्त्वपूर्ण योजनाएँ अमल में ला रहे हैं।

आधुनिक काल में उज़्बेकिस्तान में भारतीय साहित्य से नज़दीकी परिचय प्राप्त करने और अध्ययन करने का काम 1925 से ही शुरू हुआ था, जब यहाँ रवींद्रनाथ टैगोर की कहानियाँ और कविताएँ उज़्बेकी और रूसी भाषाओं में प्रकाशित की गई थीं।

सन् 1940–1960 वर्षों के दौरान प्रेमचन्द, कृष्ण चन्दर, मुहम्मद इकबाल, मिर्ज़ा ग़ालिब, ख्वाजा अहमद अब्बास, अली सरदार जाफ़री, फैज़ अहमद फैज़, अमृता प्रीतम तथा यशपाल की रचनाएँ प्रकाशित की गईं।

1970–1980 के दौरान हिंदी, उर्दू, बंगाली, तमिल, पंजाबी साहित्य की रचनाओं का अनुवाद किया गया है। इसके साथ–साथ यह उल्लेखनीय है कि 20 सालों के दौरान (1960–1980) क़रीब 25 भारतीय लेखकों की रचनाओं का अनुवाद उज़्बेकी में हो चुका है।

इनमें प्रीतम सिंह साफ़िर की "मेरे ताशकन्द वाले दोस्त को" नामक कविता तथा अमृता प्रीतम का "काला गुलाब" नामक कविता–संग्रह है। 1978 में ताशकन्द में भारत के 30 लेखकों की कहानियाँ उज़्बेकी में ही एक सुन्दर पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गई। उसमें प्रेमचन्द, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, कृष्ण चन्दर, ख़्वाजा अहमद अब्बास, राजेन्द्र सिंह बेदी, इस्मत चुगताई, महेन्द्रनाथ, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय, ताराशंकर बंद्योपाध्याय (बंगाली), अमृता प्रीतम, गुर्दावसिंह रूपाना (पंजाबी), पन्नलाल पटेल (गुजरात), उपेन्द्र प्रसाद मोहंती (ओड़िया), खानदेकर, देशपांडे (मराठी), बोम्मी रे माली सुर्यराआ, इच्छापुररू जगन्नाथरा (तेलुगू), सोमू, जानकीरामन (तमिल), केशव देव, सरस्वती अम्मा (मलयालम), अश्वथ नरायण राओ (कन्नड़), बसवाराजा कत्तोमाली (कन्नड़) हैं।

प्रसिद्ध पंजाबी कवयित्री स्व. अमृता प्रीतम कई बार उज़्बेकिस्तान आई थीं। उज़्बेक कवयित्री जुल्फिया से उनकी दोस्ती सालों पुरानी थी। भारत वापस आने के बाद अमृता प्रीतम ने "आँसुओं का रिश्ता", "ख़बिदा हसीना" और "उज़्बेकिस्तान की जुल्फ" नामक निबंध लिखे हैं और 1962 में एक पुस्तक में उन्हें सम्मिलित करके "अतीत की परछाइयाँ" के नाम से प्रकाशित किया है।

अपनी ओर से उज़्बेकिस्तान में अमृता प्रीतम की कविताएँ उज़्बेकी और रूसी में उज़्बेक पाठकों को प्रदान की गई है। मशहूर उर्दू कवि मिर्ज़ा ग़ालिब की ग़ज़लों की किताब ने पाठकों के दिलों को मोह लिया है।

प्रसिद्ध उज़्बेक कवि और लेखक गफूर गुलाम, हमीद गुलाम, अस्कद मुहतार, हमीद अलीमजान, मिरतेमीर, साइदा जुनुनोवा और एरकीन वहीदोव आदि बहुत से कवियों ने भारत के साहित्य के विषय पर बहुत कविताएँ, लेख, निबंध, रेखाचित्र लिखे हैं। उदाहरण के लिए गफूर गुलाम ने अपने लेख में रवींद्रनाथ टैगोर, प्रेमचन्द, कृष्ण चन्दर, म. गुप्त जैसे बड़े लेखकों के नामों और उनकी रचनाओं का उल्लेख करके एक बड़ा निबंध तैयार किया था। उन्होंने मशहूर कवि बेदिल को अपना गुरु मानकर उनकी कविताओं का अनुवाद किया है।

दूसरा मशहूर उज़्बेक कवि ऊगुन ने (1970–1980) तीन नाटक लिखे : 'बेरूनी', 'अबु–अली–इब्न सीना' और 'ज़ेबुनिस्सो'। उन्होंने लिखा था कि इन रचनाओं में दोनों देशों के साहित्यिक संबंधों का लंबा और पुराना इतिहास नज़र आता है। इसके अलावा ऊगुन ने भारत के विषय पर 'हिमालय के ऊपर', 'बुलबुल', 'तारा चौधरी' नामक कविताएँ भी लिखीं।

इस आलेख में कई भारतीय लेखकों और कवियों के केवल नाम लिये गए हैं। इनके माध्यम से मैंने समकालीन भारतीय साहित्य की एक दिशा का एक आधा–अधूरा खाका ही सही, आपके सामने उभारने की कोशिश की है। स्पष्ट है कि इस सूची के बाहर भी ऐसे कवि और लेखक मौजूद हैं, जो सार्थक और महत्त्वपूर्ण हैं।

उज़्बेकिस्तान में भारतीय साहित्य के विकास को न सिर्फ़ अलग–अलग कालों में बल्कि अनेक स्तरों और दिशाओं में विभाजित करके विश्लेषित करना अवश्यक है, क्योंकि यह विषय बहुपक्षीय, बहुक्षेत्रीय, बहुस्तरीय है :

1. रचनाओं का अनुवाद और प्रकाशन करना
2. वैज्ञानिक विश्लेषण
3. हस्तलिखित ग्रंथ
4. साहित्यिक सम्मेलन
5. साहित्यिक पर्वों का आयोजन और प्रतिनिधि मंडलों का आदान प्रदान
6. शिक्षा संस्थाओं में साहित्य का अध्ययन करना

इनमें से मैं सिर्फ़ दो दिशाओं पर ध्यान देना चाहती हूँ। भारतीय साहित्य पर अध्ययन का काम उज़्बेकिस्तान में 1947 से शुरू हुआ। तब सबसे पहले रवींद्रनाथ टैगोर की रचना पर एक निबंध प्रकाशित किया गया और ताशकन्द विश्वविद्यालय की पूर्वी फ़ेकल्टी के भारतीय भाषाओं के विभाग में भारतीय लेखक कृष्ण चन्दर की रचना पर कई निबंध प्रकाशित हुए।

उर्दू साहित्य के प्रगतिशील कवियों की काव्य–रचना पर बड़ा काम भी किया गया था और 'अली सरदार ज़फ़री का काव्य–लेखन' नामक पुस्तक प्रकाशित की गई थी। प्रगतिशील उर्दू कवि और लेखक ख़्वाजा अहमद अब्बास के लेखन–कार्य पर दो पुस्तकें उज़्बेकी में तैयार की गयी थी। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने वाली महिला लेखिकाओं में से सुभद्रा कुमारी चौहान के जीवन पर शोधपरक कार्य भी पूरा किया गया है। नवीन सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर का विशिष्ट स्थान है। उनका 'बूंद और समुद्र' नामक उपन्यास, जो हिंदी के सर्वाधिक सफल उपन्यासों में स्थान पाने का अधिकारी है, ताशकन्द में उज़्बेक विद्वानों द्वारा विश्लेषित किया गया है। हिंदी साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन के इतिहास से संबंधित लेखकों की रचनाओं पर भी यहाँ काम किया गया, विशेषकर हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और प्रेमचन्द के लेखन–कार्य पर। हिंदी के बड़े लेखक, उपन्यासकार यशपाल के उपन्यासों का अध्ययन करके डॉ. बेकाएवा ने भी एक पुस्तक लिखी है।

उर्दू साहित्य के कहानीकार, नाटककार सआदत हसन मंटो की कहानियों का अनुवाद किया गया है और इस विषय पर कई निबन्ध भी लिखे गए हैं। उदाहरण के लिए गफूर गुलाम ने (1903–1966) अपने निबंधों में लिखा है कि भारतीय साहित्य ने अपने महान सुपुत्रों की रचनाओं से संसार की सभ्यता में बड़ा

योगदान दिया है, भारतीय साहित्य, केवल एक राष्ट्र की संपत्ति नहीं है, बल्कि समस्त विश्व की मूल्यवान धरोहर है।

उज़्बेक विद्वानों के शोधपरक कार्य में समकालीन भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध प्रतिनिधि रचनाकर मुहम्मद इकबाल, केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अशोक वाजपेयी, अली सरदार जाफ़री की जीवनी और रचनाओं की चर्चा की गई है और दक्षिण एशियाई देशों की भाषाओं के विभाग साहित्यिक कार्यक्रम में सम्मिलित हैं।

इसके अतिरिक्त कई विशेष छोटे पाठ्यक्रम भी पढ़ाए जाते हैं– 'उर्दू शायरी', 'उज़्बेकिस्तान और भारत के साहित्यिक संबंध', एम.ए. में नए पाठ्यक्रम के रूप में पढ़ाए जाते हैं – 'समकालीन भारतीय साहित्य में नयी धाराएँ', 'विदेशों से भारत के साहित्यिक संबंध', 'साहित्य–शास्त्र', 'पंजाबी साहित्य', 'बंगाली साहित्य', 'दक्षिण भारत का साहित्य'।

'भारत और उज़्बेकिस्तान के साहित्यिक संबंध' विषय के अध्ययन और अध्यापन के काम में जहाँ हम सफल हुए हैं, वहाँ इस कार्य में बहुत–सी कमियाँ, कठिनाइयाँ भी हैं। इन कमियों को हल करने के लिए एक–दो प्रस्ताव रखना आवश्यक लगता है।

1. उज़्बेक विशेषज्ञों व अध्यापकों को भारत में होनेवाले साहित्यिक सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर देना अति आवश्यक है।

2. भारतीय साहित्य पर नये वैज्ञानिक विश्लेषणों से परिचय प्राप्त करने के लिए, साहित्यिक पाठ्यक्रम को तैयार करने के उद्देश्य से, भारतीय विशेषज्ञों से विचार विनिमय करने, परामर्श करने के लक्ष्य से, नई पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने के लिए साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों में जाकर कार्य करने की सुविधा होनी चाहिए।

said_lola@mail.ru

हिंदी : लिपि, साहित्य और संस्कृति

4.	वैश्विक हिंदी : विकास और विस्तार	- प्रो. खेमसिंह डहेरिया
5.	रामायण से निःसृत लोकगीत	- श्रीमती नर्वदा खेदना
6.	भारतीय संस्कृति : जीवन विवेक की साहित्यिक परम्परा	- डॉ. आनन्द कुमार सिंह
7.	देवनागरी एवं डोगरी	- श्री यशपाल निर्मल

वैश्विक हिंदी : विकास और विस्तार

– प्रो. खेमसिंह डहेरिया
अनूपपुर, भारत

भारत के अलावा नेपाल, फ़िजी, पाकिस्तान, त्रिनिदाद टोबेगो, बांग्लादेश, सिंगापुर, दक्षिण अफ़्रीका, मॉरीशस जैसे देशों में बड़ी संख्या में लोग हिंदी बोलते हैं। भारत में हिंदी और अंग्रेज़ी दो कार्यालयीन (ऑफ़िशियल) भाषाएँ हैं। भारत के कई राज्यों में हिंदी के साथ वहाँ की क्षेत्रीय भाषाएँ भी बोली जाती हैं। नेपाल की कार्यालयीन भाषा तो नेपाली है पर यहाँ नेपाली के साथ मैथिली, भोजपुरी और हिंदी बोली जाती है। फ़िजी एक छोटा–सा देश है। यहाँ चार ऑफ़िशियल भाषाएँ हैं। हिंदी उनमें से एक है। नदरोगा भाषा भी यहाँ बोली जाती है। पाकिस्तान में अंग्रेज़ी और उर्दू को ऑफ़िशियल भाषाओं में शामिल किया गया। यहाँ सिंधी, पंजाबी, पश्तो, बलूची और हिन्दको भी बोली जाती हैं। थाइलैंड और टोबेगो में अंग्रेज़ी ऑफ़िशियल भाषा है, यहाँ पर स्पेनिश, फ्रेंच, हिंदी और भोजपुरी भी बोली जाती है। बांग्लादेश की ऑफ़िशियल भाषा बांग्ला है, यहाँ अंग्रेज़ी के साथ हिंदी भी बोली जाती है। सिंगापुर में माले और अंग्रेज़ी यहाँ की ऑफ़िशियल भाषा है, यहाँ तमिल, मंडारिन के साथ हिंदी भी बोली जाती है। दक्षिण अफ़्रीका में अंग्रेज़ी और अफ़्रीकन यहाँ की कार्यालयीन भाषा है, यहाँ की क्षेत्रीय भाषाओं के साथ हिंदी भी बोली जाती है। इसके अलावा इंग्लैंड, अमेरिका, मध्य एशिया में भी इसे बोलने और समझने वाले अच्छे खासे लोग हैं। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए सरकार की ओर से प्रयास किए जा रहे हैं। वैश्वीकरण और भारत के बढ़ते प्रभाव के साथ हिंदी के प्रति विश्व के लोगों में रुचि बढ़ी है। दूसरे देशों के साथ बढ़ता प्रभाव भी इसका एक कारण है, हिंदी विश्व के लगभग डेढ़ सौ विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। कई विश्वविद्यालयों में 'हिंदी चेयर' हैं। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है। 2001 की भारतीय जनगणना में भारत में 42 करोड़ 60 लाख लोगों ने हिंदी को अपनी मूल भाषा बताया जो कुल जनसंख्या का 41.03 प्रतिशत है। भारत के बाहर हिंदी बोलने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका में 6,48,983, मॉरीशस में 6,85,170, दक्षिण अफ़्रीका में 8,90,292, यमन में 2,32,760, युगांडा में 1,47,000, सिंगापुर में 5000, नेपाल में 8 लाख, जर्मनी में 30,000 हैं। न्यूज़ीलैंड में हिंदी चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। कम्प्यूटर और इंटरनेट ने पिछले वर्षों में विश्व में सूचना क्रांति ला दी है। आज कोई भी भाषा कम्प्यूटर तथा कम्प्यूटर सदृश अन्य उपकरणों से दूर रहकर लोगों से जुड़ी नहीं रह सकती। हिंदी की इंटरनेट पर अच्छी उपस्थिति है। गूगल जैसे सर्च इंजन हिंदी को प्राथमिक भारतीय भाषा के रूप में पहचानते हैं। फ़रवरी 2018 के सर्वेक्षण के अनुसार इंटरनेट की दुनिया में हिंदी ने भारतीय उपभोक्ताओं के बीच अंग्रेज़ी को पछाड़ दिया है। एक सर्वेक्षण रिपोर्ट ने इस आशा को सही साबित किया है कि जैसे–जैसे इंटरनेट का प्रसार छोटे शहरों की ओर बढ़ता जाएगा, हिंदी और भारतीय भाषाओं की दुनिया का विस्तार होता जाएगा।

इस समय हिंदी में सजाल (Websites), चिट्ठे (Blogs), विपत्र (email), गपशप (Chat), खोज (Web-search), सरल मोबाइल सन्देश (SMS) तथा अन्य हिंदी सामग्री उपलब्ध हैं। इस समय इन्टरनेट (अन्तरजाल) पर हिंदी में संगणन के संसाधनों की भी भरमार है। शब्दनगरी जैसी नयी सेवाओं का प्रयोग करके लोग अच्छे हिंदी साहित्य का लाभ अब इंटरनेट पर भी उठा सकते हैं। मुंबई में स्थित 'बॉलिवुड' हिंदी फ़िल्म उद्योग पर भारत के करोड़ों लोगों की धड़कन टिकी रहती हैं। विदेशों में 25 से अधिक पत्र–पत्रिकाएँ लगभग नियमित रूप से हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं।

भारत के उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू कहते हैं कि

हिंद की भाषाएँ बढ़ेंगी, तब हिंदी आगे बढ़ेगी। भाषाई जनगणना के अनुसार भारत में मातृभाषाओं के रूप में 19 हज़ार 500 से अधिक भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। 121 भाषाएँ ऐसी हैं, जिनका प्रयोग करने वाले शायद 10 हज़ार के आसपास देशवासी हैं। खेदजनक है कि हमारे देश की 196 भाषाएँ आज संकटग्रस्त श्रेणी में हैं। हम उन्हें नष्ट होने से बचाने का प्रयास करें। इसका एकमेव मार्ग है कि हम उनका लगातार प्रयोग करें। महान भारतीय कवि दण्डी ने कहा था कि भाषाओं का प्रकाश छिन जाने पर हम अंधी दुनिया में भटकते रह जाएँगे। भारत की कई जनजातीय भाषाएँ आज समाप्ति की कगार पर हैं। संसद सदस्यों के लिए एक प्रावधान किया गया है, ताकि वे सदन में संविधान की 8 वीं अनुसूची में दी गई 22 भाषाओं में से किसी भी भाषा में अपने विचार व्यक्त कर सकें । अनेक सदस्य अंग्रेज़ी के बजाए हिंदी में सहजता से बोलते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने इसी दिशा में कदम बढ़ाकर हाल ही में अपने न्याय–निर्णय देशी भाषाओं में उपलब्ध कराने का संकल्प किया है। वित्त मंत्रालय ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भर्ती परीक्षाएँ अंग्रेज़ी और हिंदी के अलावा 13 क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से आयोजित कराने का निर्णय लिया है। रेलवे और डाक विभाग ने भी अपनी भर्ती परीक्षाएँ राज्यों की राजभाषाओं के माध्यम से आयोजित कराना प्रारंभ किया है। विश्व की सर्वाधिक युवा जनसंख्या भारत की है। 35 वर्ष से कम आयु वर्ग के युवाओं की संख्या 65 प्रतिशत है। हमें इस ऊर्जावान युवा पीढ़ी को उसकी मातृभाषा और बोलियों का अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रेरित करना होगा।'[1] हिंदी के भविष्य को लेकर हम भले चिंता जताते हों, लेकिन सच्चाई यह है कि दुनिया में हिंदी बोलने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। 2015 के आंकड़ों के अनुसार यह दुनिया में सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा बन चुकी है। 2005 में दुनिया के 160 देशों में हिंदी बोलने वालों की अनुमानित संख्या 1,10,29,96,447 थी। उस समय चीन की मंदारिन भाषा बोलने वालों की संख्या इससे कुछ अधिक थी। लेकिन 2015 में दुनिया के सभी 206 देशों में करीब 1,30,00,00,000 (एक अरब तीस करोड़) लोग हिंदी बोल रहे हैं और अब हिंदी बोलने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज़्यादा हो चुकी है। नंबर एक के सिंहासन से मंदारिन को उतार विश्व में 64 करोड़ लोगों की मातृभाषा हिंदी है, भारत में 78 प्रतिशत लोग हिंदी बोलते हैं, 20 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा है हिंदी। 44 करोड़ लोगों की तीसरी या चौथी भाषा हिंदी है। विश्व में सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषाएँ संख्या (करोड़ में) हिंदी –130, मंदारिन–120, अंग्रेज़ी–90, स्पेनिश–51.8, अरबी–42.2, मलय/इंडोनेशियन–24.7, फ्रेंच–23.3, बांग्ला–22.4, पुर्तगाली –22.1, रूसी–20.1, जर्मनी–14.1, यहाँ तक कि चीन अपने 10 लाख सैनिकों को भी हिंदी सिखा रखी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी विश्व की प्रथम भाषा बन चुकी है। द्वितीय स्थान पर चीन की मंदारिन और तीसरे स्थान पर अंग्रेज़ी आती है।

हिंदी भाषा की प्रशासनिक शैली अत्यधिक प्रयोजनमूलक तथा उपयोगी मानी जा सकती है। भारत के राजभाषा के पद पर आसीन होने के बाद हिंदी को प्रयुक्ति के अनेक दायित्वों का निर्वाह करना पड़ रहा है। इसी के साथ सरकारी कामकाज में उसका प्रयोग अनिवार्य होने के कारण उसमें प्रशासन से जुड़ी एक नयी पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण और प्रचलन हुआ। प्रशासनिक कामकाज से संबंधित वाक्य–रचना शब्द–प्रक्रिया तथा कार्यालयीन पद्धति के निर्वाह स्वरूप उसमें आई तटस्थता आदि इस शैली में दृष्टिगोचर होती है। सरकारी प्रशासन के काम–काज की भाषा प्रयुक्ति में भावुकता, कोमलता, मुहावरे, कहावतें तथा अन्य कौशल आदि का लोप होकर उसमें निर्वैयक्तिकता, तटस्थता, नीरसता, तथ्यात्मकता आदि का प्रस्फुटन हुआ है। प्रशासनिक भाषा–शैली में उत्तम पुरुष की अपेक्षा अन्य पुरुष सम्बोधनों और लेखन प्रणाली का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया जाता है। इसी के साथ, प्रशासनिक भाषा–शैली में कार्यालयीन परम्परा एवं कार्य–प्रणाली से संबद्ध तकनीकी शब्दावली तथा वाक्य विन्यास का बँधा–बँधाया ढाँचा अपाहिज होता रहता है। प्रशासनिक हिंदी के मुख्य प्रयोग के रूप में केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में कानूनी प्रावधानों के अनुपालन के अनुसरण में प्रयुक्त हिंदी का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। सरकारी कामकाज के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, संस्थानों, बैंकों तथा अन्य सम्बन्धित कार्यालयों की व्याप्ति को दृष्टिगत रखते हुए आवश्यक है कि यह पहले निर्धारित कर लिया जाए कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालय के अन्तर्गत कौन से कार्यालय आएँगे।

सरकारी कार्यालय तथा सरकार के अधीन नियम, संस्थान,

कम्पनी, प्रतिष्ठान, बैंक आदि सभी में टिप्पण तथा मसौदा लेखन का प्रयोग आमतौर पर किया जाता है। किन्तु सरकार के मंत्रालयों, विभागों और कार्यालयों में टिप्पण तथा मसौदा लेखन को अत्यधिक अहमियत दी जाती है, क्योंकि इन सरकारी कार्यालयों में, फ़ाइलों का प्रचलन अधिक मात्रा में है। कार्यालय में पत्र आने के बाद उसके निपटान तक उसे एक विशिष्ट पद्धति के अनुसार विशिष्ट प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। यथा आवतियों पर कार्यवाही मंत्रालय के नाम आए हुए सभी पत्रादि, जिनको कार्यालय की भाषा में आवतियाँ कहते हैं, मंत्रालय की केन्द्रीय रजिस्ट्री में आते हैं और तब वे अलग होकर अनुभागों में बाँट दिए जाते हैं। जहाँ तक हो सके रजिस्ट्री कहीं ऐसी जगह होती है, जहाँ से वह सभी अनुभागों का काम समान रूप से जल्दी–जल्दी और अच्छी तरह कर सके।

देश की 130 करोड़ जनता का लगभग 70 प्रतिशत भाग गाँवों में निवास करता है। शहरी आबादी का भी प्रायः शत प्रतिशत भाग अंग्रेज़ी का प्रयोग नहीं करता। कुल 2 प्रतिशत लोग ही अंग्रेज़ी का प्रयोग करते हैं। कायदे से अंग्रेज़ी राज्य इस देश में 1857 की क्रांति के बाद स्थापित हुआ और 1947 में अंग्रेज़ विदा हो गये। इसके पहले ईस्ट–इंडिया कंपनी ने छुट–पुट रूप में कई राज्यों पर राज्य किया। अगर दोनों की अवधि मिला भी दी जाए, तो लगभग डेढ़–दो सौ सालों का राज्य अंग्रेज़ों का माना जाना चाहिए। जिसमें संपूर्ण राज्य–व्यवस्था उनके हाथों लगभग 90 साल रही, और हमें आज़ाद हुए 68 साल हो गये, किन्तु दुर्भाग्य है कि हम 90 साल की जमाई हुई जड़ें, जो केवल 02 प्रतिशत जनता पर प्रभावी हैं, उनको आज तक हिला नहीं पा रहे हैं। इसका कारण भाषा नहीं, वह गुलामी की मानसिकता है, जिसने नए अंग्रेज़ और अंग्रेज़ियत पैदा कर दी है। इसी मानसिक गुलामी का इससे बड़ा क्या सबूत हो सकता है कि भारतवर्ष के एक गरीब का फ़ैसला अदालतों में होता है, न्यायाधीश और वकील, जिरह सुनते और करते हैं, किन्तु क्या कहा जा रहा है, यह उस गरीब को नहीं मालूम। यहाँ तक कि यदि उसे मृत्युदंड की सज़ा सुनाई जाती है, तो यदि सब लोग हँसते हैं तो वह गरीब भी हँस देता है। इन हँसने वाले सूरमाओं से कहिये ज़रा अंग्रेज़ी में हँसकर दिखाओ या अंग्रेज़ी में रोकर दिखाओ, तो बगलें झाँकने लगेंगे, क्योंकि हँसना–रोना आदि बातें किसी भाषा का विषय नहीं हैं और जो भाषा हमारी भाव संवेदनाओं को न जगा सके, वह हमारे किस काम की। यह संवेदनाएँ तो केवल अपनी भाषा और सबसे ज़्यादा मातृभाषा ही जगा सकती है। हिंदी इस देश की मातृभाषा ही नहीं, राष्ट्रभाषा ही नहीं, प्राणभाषा है। हिंदी में इस राष्ट्र के प्राण बसते हैं, धड़कते हैं।

अंग्रेज़ी को विश्वस्तरीय भाषा कहने वालों से पूछिए कि अपना ट्रेक्टर, अपना साबुन, शराब, बोतल बंद दानापानी और शीतल पेय इस देश की भाषा में गा–बजाकर क्यों बेचे जाते हैं। इसका सीधा–सा कारण यह है कि वह बेचने वाले बनिए जानते हैं कि इस देश की भाषा में यहाँ के नागरिकों की संवेदनाएँ जगाकर ही अपना माल बेचा जा सकता है। इस दुकानदारी में भाषा आड़े नहीं आती, लेकिन दुर्भाग्य है कि गाँव की गोरी का अभिनय करने वाली और उन भोले–भाले गरीब लोगों के पैसों पर इठलाने वाली छोरी जब पत्रकारों या टी.वी. चैनल वालों को इंटरव्यू देती है, तो अंग्रेज़ी झाड़ने लगती है, तब उसे हिंदी में बोलना लज्जाजनक लगता है। यह है गुलामी की मानसिकता, जो उनके दोहरे चरित्र और दोगले व्यवहार को प्रकट कर जाता है।

दुनिया की बहुत बड़ी आबादी वाले चीन और भारत जैसे राष्ट्रों में अंग्रेज़ी का प्रतिशत नहीं के बराबर है, फिर हम किस बूते पर अंग्रेज़ी को विश्वभाषा मानने की बात करते हैं। रूस हो या जर्मनी, फ़्रांस हो या इटली, दुनिया के सभी मुल्क अपने–अपने देश की भाषाओं पर गर्व करते हैं। राष्ट्रीय हिंदी परिषद्, मेरठ की पत्रिका के जुलाई 1994 के अंक में "हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बन सकती है" लेख छपा है। संसार में हिंदी बोलने वाले तथा समझने वालों की जितनी संख्या है, उसके अनुसार हिंदी निश्चित रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनने योग्य हैं, किन्तु इस दिशा में किए जाने वाले प्रयत्न तब तक फलीभूत नहीं होंगे, जब तक भारत की राजभाषा के रूप में हिंदी का समुचित प्रयोग नहीं होगा। अभी भी हिंदी भाषी क्षेत्रों में ही अनेक कार्यालयों में काफ़ी काम अंग्रेज़ी में होता है तथा हमारे जो राजनीतिक नेता विदेश जाते हैं अथवा विदेशों में स्थित जो भारतीय राजदूतावास हैं, वे सब वहाँ हिंदी का नहीं अंग्रेज़ी का प्रयोग करते हैं। इस कारण विदेशी लोग अनेक बार हमसे पूछते हैं कि क्या हमारी अपनी कोई भाषा नहीं है। इस स्थिति में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को कामकाज की भाषा बनाए जाने के प्रस्ताव को

कोई गंभीरता से नहीं लेता। हम तब तक उपहास के पात्र बने रहेंगे, जब तक स्वयं अपने देश में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने का गंभीर प्रयत्न न करें। जब भारत में हमारे समस्त काम अथवा अधिकांश काम हिंदी में होंगे, तब हमारी इस आवाज़ में बल आएगा कि हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की भी भाषा होनी चाहिए।

दुनिया की विविध भाषाओं के और यहाँ तक कि अंग्रेज़ी के चैनलों को भी झक–मारकर हिंदी में अपना रूपान्तरण करना पड़ा है, क्योंकि वे उपभोक्ता मंडी का सच जान गए हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में भारत में उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। इसके परिणामस्वरूप अनेक विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत में आईं, तो हिंदी के लिए एक खतरा दिखाई दिया था, क्योंकि वे अपने साथ अंग्रेज़ी और सिर्फ़ अंग्रेज़ी का पिटारा लेकर आई थीं। मीडिया महारथी रूपर्ट मरडोक स्टार चैनल लेकर आए। ज़ाहिर है कि वह अंग्रेज़ी में बड़ी धूमधाम से शुरू हुआ था। इसी तर्ज पर सोनी, डिस्कवरी, कार्टून नेटवर्क, एनिमल वर्ल्ड आदि भी अंग्रेज़ी में अपने कार्यक्रम लेकर भारत में आए। मगर आज इसकी क्या स्थिति है? इन सबको विवश होकर हिंदी की ओर मुड़ना पड़ा, क्योंकि इन्हें अपनी दर्शक संख्या बढ़ानी थी, अपना व्यापार, अपना लाभ बढ़ाना था। आज टी.वी. चैनलों एवं मनोरंजन की दुनिया में हिंदी सबसे अधिक मुनाफ़े की भाषा है। कुल विज्ञापनों का लगभग 75 प्रतिशत हिंदी माध्यम में है। 'कौन बनेगा करोड़पति' की लोकप्रियता ने मीडिया के क्षेत्र में हिंदी के झंडे गाड़ दिए, कमाई तथा प्रसिद्धि के अनेक कीर्तिमान भंग कर दिए तथा आने वाले समय में हिंदी के सुखद भविष्य के सपने जगा दिए हैं। आज सभी चैनल तथा फ़िल्म निर्माता अंग्रेज़ी कार्यक्रमों और फ़िल्मों को हिंदी में 'डब' करके प्रस्तुत करने लगे हैं, क्यों? क्योंकि हिंदी उनके लिए सोने का अंडा देने वाली मुर्गी सिद्ध हो रही है। आज भारत में सर्वाधिक पत्र–पत्रिकाएँ तथा उनके पाठक हिंदी में हैं। सर्वाधिक फ़िल्में हिंदी में बनती हैं, ज्ञान–विज्ञान और साहित्य की सर्वाधिक पुस्तकें हिंदी में लिखी और छापी जा रही हैं। कम्प्यूटर और इंटरनेट के क्षेत्र में भी हिंदी की स्थिति निरंतर बेहतर हो रही है।

हिंदी संस्कारित भाषा है। अंग्रेज़ी का 'यू', हिंदी 'आप' का अर्थ नहीं दे सकता। हिंदी वैज्ञानिक भाषा है, जैसी बोली जाती है, वैसी लिखी और पढ़ी जाती है। हिंदी का नौ दो ग्यारह होना, अंग्रेज़ी में नाईन प्लस टू से प्रकट नहीं हो सकता अर्थात् अंग्रेज़ी रसहीन भाषा है, शुष्क भाषा है। वह कैसी भी लिखी, बोली और समझी जाती है।

हिंदी राष्ट्र की राजभाषा है। अतः आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा जो कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित किए जाते हैं, इसका लाभ हिंदी भाषी ही नहीं, अपितु अन्य लोग भी आसानी से उठा सकते हैं, क्योंकि आजकल शहरों में नहीं, गाँव में रेडियो और टेलीविजन का महत्त्व बढ़ा है। दिल्ली दूरदर्शन –1. और दिल्ली दूरदर्शन – 2. द्वारा जो प्रसारण किया जाता है, वह हिंदी में ही होता है, जिससे ग्रामीणों को बहुत लाभ मिलता है, उनमें साहित्यिक अभिरुचि पैदा होती है। अतः यहाँ हिंदी भाषा की महत्ता महत्वपूर्ण हो जाती है। स्वतंत्रता से पूर्व 5–6 हज़ार पारिभाषिक शब्द थे, किन्तु अब उनकी संख्या एक लाख से ऊपर है और दिनों–दिन उनमें वृद्धि होती जा रही है। हिंदी शब्द समूह अनेक प्रभावों को ग्रहण करते हुए तथा नए शब्दों से समृद्ध होते हुए अधिक समृद्ध होता जा रहा है।

हिंदी राजभाषा से राष्ट्रभाषा और अब विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। ताज़ा सर्वेक्षण में हिंदी विश्व की पहली भाषा है। वैश्वीकरण के दौर की हिंदी को जानने वाले 982 मिलियन हैं, जबकि चीनी जानने वाले 874 मिलियन हैं। यही हाल बाज़ारीकरण का हैं, रूपर्ट मरडोक सोनी जैसे चैनल अंग्रेज़ी में लाए, परन्तु हिंदी की माँग और बाज़ार को देखते हुए, चैनल को हिंदी में परिवर्तित किया। हिंदी की शब्द संख्या 2.50 लाख है, जबकि अंग्रेज़ी के मूल शब्द 10,000 हैं। समय ठीक है, हिंदी अपनी गति से आगे बढ़ रही है, अपने–अपने स्तर से हिंदी भाषा के उन्नयन के लिए प्रयास करते रहना चाहिए। वैश्विक स्तर पर 73 राष्ट्रों के 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन, अध्यापन व अनुसंधान की सुविधा उपलब्ध है। अमेरिका के 38, रूस के 07, जर्मनी के 17, जापान के 02, श्रीलंका के 03 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन हो रहा है। चीन के बीजिंग विश्वविद्यालय तथा आकाशवाणी में हिंदी का बोलबाला है। पाकिस्तान के पंजाब व करांची विश्वविद्यालय में हिंदी पठन की व्यवस्था है। जापान के क्योतो और ओसाका विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है। वहाँ से 'ज्वालामुखी', सर्वोदय तथा 'जापान

भारती' पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। यूरोप और अमेरिका में भी हिंदी कार्य प्रशंसनीय स्तर पर है। लन्दन, केम्ब्रिज व यॉर्क विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग इसके प्रमाण हैं। बी.बी.सी. द्वारा निरंतर 'हिंदी ' का प्रसारण हो रहा है। फ्रांस, इटली, स्वीडन, ऑस्ट्रिया, नॉर्वे, डेनमार्क, स्विट्ज़रलैंड, हॉलैंड, पोलैंड, चेक गणराज्य, जर्मन, रोमानिया, बल्गारिया, हंगरी आदि राष्ट्र भी हिंदी के संदर्भ में कदापि पीछे नहीं हैं। तुर्की, ईराक, मिस्र, लीबिया, संयुक्त अरब अमीरात, दुबई, अफ़गानिस्तान, उज़्बेकिस्तान तथा मध्य एशिया के राष्ट्रों में भी हिंदी का प्रचार–प्रसार है। इस प्रकार हिंदी आज विश्व के कोने–कोने तक पहुँच चुकी है। अंग्रेज़ी, रूसी, स्पेनिश, फ्रेंच, अरबी एवं चीनी को संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। हिंदी भाषा अब भी वह स्थान पाने में संघर्षरत है। लेकिन आज हिंदी ने अपनी क्षमता के बल पर वैश्विक स्तर पर विश्वभाषा बनने का सम्मान पाया है, इसमें कदापि संदेह नहीं है। हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रीय भूमिका रही है। जो विश्व के अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई हैं। अनन्त कुमार सिंह कहते हैं कि 'हिंदी की खड़ी–बोली के प्रथम रचनाकार के रूप में ख्यात अमीर खुसरो, उनका लेखन तथा उनका बहुआयामी व्यक्तित्व एक मील का पत्थर है। हिंदी खड़ी बोली को जन्म देने, उसे संवारने, सरल बनाने और गुरु परंपरा की गरिमा को और भी गहराई प्रदान करने में उनका नाम लिखा जा सकता है। कबीर, तुलसी, जायसी, रैदास, प्रेमचन्द, टैगोर, निराला सरीखे लोग साहित्य और समाज की धरोहर हैं। हिंदी भाषा को समृद्ध करने में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है।'[3] डॉ. साकेत सहाय का कहना है कि – 'हिंदी की पूरे देश में व्यापक स्वीकार्यता के कारण इसके स्वरूप में काफ़ी भाषागत बदलाव आए हैं। स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली यह भाषा आज देश की सांस्कृतिक व राजनैतिक एकता को भी मज़बूत कर रही है। हिंदी की सम्पर्क भाषा की भूमिका जहाँ हमें स्थानीयता और जातीयता से परे लेकर जाती है, वहीं इसका भाषायी भारतीय समय में व्याप्त क्षेत्रीय, जातीय व भाषायी दुराग्रह को समाप्त करने में भी मददगार सिद्ध हो रहा है। विविधता भरे इस देश में सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एकता लाने में हिंदी की भूमिका जगज़ाहिर है।'[4]

अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि हिंदी के विकास तथा उसकी प्रगति के विषय में प्रबुद्धजनों को तथा सामान्य जनता को अधिकाधिक जानकारी कराई जाए, जो सुविधाएँ हिंदी में उपलब्ध हैं, उनका उपयोग किया जाए, हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए समन्वित प्रयास किया जाए। हिंदी की प्रगति के मार्ग में जो कठिनाइयाँ हैं, उनका विश्लेषण किया जाए और समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक हल खोजे जाएँ। इसके लिए अपने क्षेत्र के महाविद्यालयों में हिंदी प्रेमी प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों के सहयोग से गोष्ठियाँ आयोजित करना उपयोगी होगा। इसी प्रकार हिंदी प्रेमी उद्योगपतियों, व्यापारियों आदि के सहयोग से उनकी भी गोष्ठी आयोजित कराना उपयोगी होगा।

संदर्भ–ग्रंथ

1. एम. वेंकैया नायडू, उपराष्ट्रपति, भारत, अनुवाद–रवीन्द्र देवघरे, दैनिक भास्कर, जबलपुर, 10 जनवरी 2020, विश्व हिंदी सम्मेलन दिवस पर विशेष, पृ. 04
2. ओमप्रकाश तिवारी, दैनिक जागरण, वर्ष 42, अंक 265, गोरखपुर, मंगलवार, 10 जनवरी 2017, नगर संस्करण पृ. 18
3. राजभाषा भारती, वर्ष–39, अंक 150, जनवरी–मार्च 2017, भारत सरकार गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग पृ. 15
4. वही, पृ. 46

रामायण से नि:सृत लोकगीत

– श्रीमती नर्वदा खेदना
मॉरीशस

महर्षि वाल्मीकि कृत संस्कृत गर्भित 'रामायण' व तुलसी कृत 'श्री रामचरितमानस', दोनों ही सर्वोच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। लोकमंगल तथा लोक हिताय की दृष्टि से 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता अधिक मानी जाती है। उसकी लोक मानस की सरल भाषा ने जन–जन के मन में स्वतः जगह बना ली है। उत्तम रचना होने के साथ–ही–साथ, एक आदर्श पारिवारिक जीवन, आदर्श पातिव्रत जीवन व आदर्श भ्रातृ–प्रेम को जिस रोचकता एवं ओजस्विता से प्रस्तुत किया गया है, वैसा शायद ही किसी और कृति में की गई हो। अतः श्री रामचरितमानस को एक सर्वांग सुन्दरतम काव्य कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी।

भक्तिकाल की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' की रचना संवत 1631 ई. सरयू नदी किनारे आरम्भ की तथा संवत 1633 ई. अथ. र्ात् दो वर्ष, सात महीने व छब्बीस दिन में सात कांडों में सम्पूर्ण कर, अपनी लेखनी को विराम दिया।

'श्री रामचरितमानस' से हमारे इस छोटे मॉरीशस टापू का बहुत गहरा सम्बन्ध है। मॉरीशस जिसकी उपमा अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने स्वर्ग से की थी, यह निस्संदेह इसलिए, क्योंकि मॉरीशस संस्कारों की धरती है। यहाँ हर कौम के लोग–हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सभी एक–दूसरे के पर्व–त्योहारों में समान रूप से भाग लेते हैं, फिर, चाहे वह दीपावली, ईद या क्रिस्मस हो।

इतिहास पीढ़ी–दर–पीढ़ी यही साक्षात्कार करता आ रहा है कि 18वीं शताब्दी में तक़रीबन 468,000 शर्तबंध मज़दूरों को भारत से यहाँ दीन–हीन अवस्था में लाया गया था। वे हमारे पूर्वज थे। उनकी व्यथा को यहाँ कदाचित दोहराएँगे नहीं, क्योंकि उन्होंने कभी हार नहीं मानी थी, वे साहसी थे, हौसला हमेशा बुलंद था और ऐसी जटिल परिस्थिति में उनका एक मात्र सहारा था, उनकी अपनी संस्कृति, उनका अपना संस्कार। उस अन्धकारमय सुरंग में 'श्री रामचरितमानस' ने रोशनी बन संजीवनी बूटी का काम किया। कहते हैं, राम से बड़ा राम का नाम होता है। अमृतमयी श्री राम नाम ने ऐसी लीला रचाई कि घना पड़ा जंगल बन गया हिन्द महासागर का तारा, मॉरीशस देश। हमारे पूर्वजों के अपने संस्कारों, अपनी संस्कृति, व अपनी अथक मेहनत पर अटल विश्वास की बदौलत यह संभव हो सका।

लोकगीत

प्राचीन काल से संगीत, मानव–मन को शांति प्रदान करने का एकमात्र साधन रहा है। मनुष्य अपनी भावनाओं को संप्रेषित करने के लिए संगीत का सहारा लेता है। आत्माभिव्यक्ति हेतु संगीत का पक्ष मनुष्य ही नहीं, अपितु देवगण, प्रकृति, पशु–पक्षी व कीट–पतंग भी लेते हैं।

नारद मुनि जहाँ अपनी वीणा की धुन पर नारायण की मधुर तान छेड़ते थे, वही तानसेन बुझते दीए को अपने गायन से पुनः प्रज्ज्वलित करने का सामर्थ्य रखते थे।

इधर प्रकृति के कण–कण में भी संगीत की छाप है। हवा की साँय–साँय में संगीत, पत्तों की सरसराहट में संगीत, नदियों में कल–कल करते बहते पानी में संगीत, पक्षियों के कलरव में संगीत, तो झींगुरों के समूह–गान में भी, सर्वत्र संगीत बिखरा पड़ा है। ऐसे में हमारे पूर्वज, प्रकृति के बीचों–बीच रहते हुए संगीत से दूर कैसे रह सकते थे?

हमारे सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्त्वपूर्ण अंग संगीत ही तो है। हमारे पूर्वजों ने अपने साथ न सिर्फ़ अपने धार्मिक–ग्रन्थ, अपितु अमूर्त विरासत के रूप में लोकगीत को भी नहीं छोड़ा। उनके सुख–दुख के साथी 'रामचरितानस' से निःसृत लोकगीतों ने हर कदम पर साथ निभाया। 'लोक' का अभिप्राय साधारण जनता से है, जिसकी कोई व्यक्तिगत पहचान नहीं, अपितु

सामूहिक पहचान है। लोकगीत को कोई एक व्यक्ति नहीं, बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए गाए गीतों को लोकगीत कहा जाता है। इस प्रकार 'रामचरितमानस' के पात्रों से प्रभावित कई लोक गीत प्रसिद्ध हैं, जिनमें श्री राम जनम, उनकी शौर्य गाथा तथा सिया–राम विवाह से जुड़े असंख्य लोकगीत जो आज भी शादी–ब्याह की शान हैं।

ललना गीत

इसे संस्कार गीत भी कहा जाता है, जिसे श्रद्धा–भक्ति से गाया जाता है। जैसे, शिशुओं के जन्मोत्सव पर गाए जाने वाले गीत होते हैं, मुंडन संस्कार के गीत, उपनयन संस्कार के गीत आदि। जब संस्कार गीत की बात होती है, तो ललना गीत सब से प्रचलित है। ललना के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

"अयोध्या में बाजे ला बधाइयाँ श्री राम जी जनम भये हो ....
अहो ललना ...
अहो ललना ...गोदिया में खेले श्री राम जी ...
कौशल्या खेलावे ला हो ..."

यह ललना आज भी उतना ही लोकप्रिय और प्रसिद्ध है, जितना कि त्रेता युग में श्री राम जी के जन्म पर रहा होगा।

"दादा के अंगनवा में कुइयाँ खदैयला हो ...
अहो ललना ... अहो ललना
कुइयाँ के पियर–पियर मटिया हो....
जाइ के जाग्यअ उनकर दादा के नाती जनम लेले हो ...
अहो ललना..."

हमारी दादी–नानी थरिया–लोटा बजाकर गाया करती थीं और आज भी यह परम्परा उतनी ही प्रचलित है। रेडियो के माध्यम से जन्मदिन के अवसर पर ललना गीतों की माँग अभी भी की जाती है तथा स्थानीय कलाकार अपने धुन में इन गीतों को गाते रहते हैं।

उपनयन संस्कार

सोलह संस्कारों में दसवाँ संस्कार है उपनयन, जिसे यज्ञोपवीत भी कहा जाता है। प्राचीन काल से विद्या ग्रहण से पूर्व यह संस्कार शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास के लिए किया जाता रहा है। बाल्यावस्था में श्री राम अपने तीनों भाई सहित जब गुरुकुल के लिए प्रस्थान कर रहे थे, उसी सन्दर्भ में एक लोकगीत है।

उपनयन संस्कार गीत :

"चिकन माटी के चौका बनयली ...
चाहि चौका पर बैठेलन राजा दशरथ...
राम बरवा गोदिया लेले ...
जेकर जनेववा होवे ...
पिछवरया पंडित भइया वेगी चली आवो ..."

हिन्दू धर्म में संस्कारों का बहुत बड़ा महत्त्व है। जब भी हम जीवन में कुछ नया करने जाते हैं, तो परम पिता परमेश्वर से कार्य की सफलता के लिए प्रार्थना करते हैं।

माता सीता भी अपने विवाह से पूर्व माता गौरी से योग्य वर व देवर की कामना करती है।

मनोकामना पूर्ति पर आधारित यह लोकगीत :

"सीता जी माँगे ला हो...
दशरथ ऐसन ससुर ...
अहो सीता जी माँगे ला अयोध्या के राज सरजू नहनर को ...
कौशल्या ऐसन सासू...
अहो सीता जी माँगे ला अयोध्या के राज सरजू नहनर को ...
सीता जी माँगे लाहो लक्ष्मण ऐसन देवर ...
अहो सीता जी माँगे ला अयोध्या के राज सरजू नहनर को ...
राम ऐसन भगवन ....
अहो सीता जी माँगे ला अयोध्या के राज सरजू नहनर को ..."

लोकगीत के और कई प्रकार हैं, जैसे वीर रस से परिपूर्ण – लोरिकायन (राजा–महाराजा की वीरता पर आधारित), झूमर गीत या बिरहा गीत।

बड़े–बुजुर्ग कहा करते थे कि हमारे परदादा अपनी व्यथा बिरहा गाकर सुनाया करते थे। परिस्थिति चाहे जैसी भी हो, घर की चाहे जैसी भी दशा हो, बहू–बेटियाँ हर मुश्किल का सामना करती हुई जीवन यापन करती थी, पर कभी बड़ों के सामने मुँह नहीं खोलती थीं। उनमें अपार सहन शक्ति थी। घर–गृहस्थी पर कभी आँच आने नहीं देतीं। बस प्रभु राम नाम का ही आसरा था।

बिरहा :

"पिस पिस जंतवा चढ़यले गेहुवा ...
आजू भैया अस्ट्लन पहुनवा...हो राम
मच्या बैसलहन... सासु बरहैतीं
काहे देबो भैया जेवनरन्या हो राम ..."

लोकगीत सामान्य मानव की सहज संवेदना से जुड़े हैं। भारतीय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के शब्दों में "लोकगीतों में, धरती गाती है, पर्वत गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, फसलें गाती हैं और उत्सवों के अवसर पर मधुर कंठों से लोक समूह लोकगीत गाते हैं।"

सन् 1890 के दशक में मॉरीशस में परिस्थिति सामान्य नहीं थी, फिर भी अपनी संस्कृति को गति देने के उद्देश्य से, अँधेरे में मशाल बनकर सामने आने वाले भारत के बिहार राज्य से श्री नन्दलाल जी को शत–शत प्रणाम है। वे भी शर्तबंध मज़दूर के रूप में ही आए थे तथा लाबुर्दोने, कॉटेज की शक्कर कोठी में, सरदार की हैसियत से कार्यरत थे। वे, वही महान आत्मा थे, जिन्होंने मॉरीशस में पहली बैठका की नींव रखी थी और साप्ताहिक तौर पर रामायण गान की परंपरा का आरम्भ किया था। उन्होंने तीन दशकों तक सुचारू रूप से फ़ॉर्बाक रोड, लाबुर्दोने, कॉटेज में रामायण गायन की प्रथा जारी रखी। यही नहीं, श्री नन्दलाल जी ने होली के अवसर पर चौताल और रामलीला के आयोजन का भी श्री गणेश किया। चौताल गाने की यह परंपरा आज भी गाँव–गाँव व शहर–शहर में है।

उन दिनों होली के अवसर पर चालीस दिनों तक चौताल गायन हुआ करता था। आज भी कई जगहों पर चौताल की प्रतियोगिताएँ होती हैं, जिनमें बड़े–बुजुर्ग–युवा सभी भाग लेते हैं। इस मौके पर बैठकाओं में चाय–पकोड़ों की व्यवस्था भी की जाती थी। आज भी यह परंपरा है।

झाल–मंजीरा, ढोलक बजाते लोग बड़ी खुशी के साथ चौताल गाते थे और आज भी गाते हैं। विश्वास है कि लोकगीत की यह प्रथा आगे भी जारी रहेगी।

चौताल :

"काहंवा से आ...वेला ... राम और लक्ष्मण
काहंवा से आवे हनुमान ...
डाले तुलसी के मा...ला (2)
उत्त...र से आवे ला... राम... और लक्ष्मण
दक..क्षिण... से आवे हनुमान...
डाले तुलसी के मा...ला।"

1840 से 1890 के अंतराल में भारत के बिहार राज्य, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, केरल तथा अन्य कई प्रान्तों से हमारे पूर्वज, नए सपने संजोए, अपनी नई दुनिया बसाने यहाँ आए थे।

कठोर परिश्रम के मध्य उन्होंने अपनी संस्कृति को जीवित रखा और धीरे–धीरे श्री नन्दलाल जी के नेतृत्व में कई रामायण मंडलियों का गठन होने लगा। इन टोलियों द्वारा नित्य रूप से रामलीला का आयोजन होने लगा और गाँव–गाँव की बैठकाओं में इसका मंचन होने लगा तथा बच्चा–बच्चा राम लीला में प्रस्तुत लोकगीतों को गाता–गुनगुनाता रहता था।

इसी बीच एक और पुण्यात्मा ने सूर्य की किरण बन, समाज को आलोकित करने का सफल प्रयास किया। वे थे, बिहार राज्य से आए, सरदार धरमसिंह। सन् 1850 से 1880 के दशक में, इन्होंने कई बैठकाओं की स्थापना की तथा नन्दलाल जी द्वारा प्रज्वलित अग्नि 'रामलीला' को और प्रज्ज्वलित करने में एड़ी–चोटी का ज़ोर लगाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। 19वीं शताब्दी के मध्य से देश भर में राम लीला का भव्य आयोजन आरंभ हो गया। नाट्य शैली में रामचरितमानस की अक्षुण्ण अमृत धारा जन–जन को शीतलता प्रदान करने लगी। छोटे से बड़े सभी एकजुट होकर, हर्षोल्लास के साथ अपनी इस अमूर्त विरासत को नए आयाम तक पहुँचाने की दिशा में कार्यरत हो गए। गर्व की बात तो यह है कि सन् 2005 में यूनेस्को (UNESCO) द्वारा रामलीला को विश्व अमूर्त विरासत की सूची में शामिल कर दी गयी।

रामचरितमानस धीरे–धीरे हमारे पूर्वजों के लिए एक आशीर्वादात्मक ग्रन्थ बन गया। ऐसा इसलिए संभव हो पाया, क्योंकि तुलसी के राम ने साधारण मनुष्य की भाँति अपना जीवन मुश्किलों का सामना करते हुए बिताया। तभी, रामचरितमानस संतमुखश्रुत से लोकगीतों के रूप में विख्यात होने लगा। इसमें निहित उपदेशों को लोक जीवन में नित्य रूप से उतारा गया। श्री राम का चरित्र लोक हिताय है, यही कारण है कि लोकगीतों में श्री राम की छवि मनभावन बन पड़ी है।

लोक–गीत परंपरा से विवाह संस्कार भी जुड़ा हुआ है, जैसे

कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। शादी–ब्याह में सिया–राम के विवाह से सम्बंधित लोक–गीतों के बिना आज भी कोई विधि सम्पन्न नहीं हो सकती।

विवाह के इन लोक–गीतों को मॉरीशस में 'गीत–गवाई' नाम से जाना जाता है, जो हमारे पूर्वजों की ही देन है। विवाह से जुड़ी कई परम्पराएँ होती हैं, जैसे 'माती–कोड़ाय, दो मेला, विवाह गीत, झूमर, विदाई गीत आदि।

परछावन गीत :

विवाह से पूर्व वर पक्ष एवं कन्या पक्ष से सम्बंधित लोक–गीतों का भी उल्लेख किया जाता है तथा ये गीत रामायण से पूर्णतः सम्बन्ध रखते हैं।

इन्हीं लोकगीतों में से एक अंश :

"शुभदिन आज तुम्हार आयो जी, वर ब्याहन जायो
मंगल मूर्ति, सुन्दर सुरती...
कर जोर नमस्ते सुनाओ जी, वर ब्याहन जायो
चंदन, थार, कपूर, सुगंधी...
प्रेम से आरती उतारऽ जी, वर ब्याहन जायो ..."

ये लोकगीत आज भी हमारी संस्कृति से जुड़े हुए हैं। तभी तो चाहे कितने भी आधुनिक गाने हों, फिर भी पारंपरिक लोकगीतों की बात ही अलग है।

गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित मानस में श्री राम, लक्ष्मण, सीता, चौदह वर्ष वनवास के लिए अयोध्या से निकलकर निषाद राज के साथ गंगा नदी के तट पहुँचते हैं, जहाँ केवट मिलता है। श्री राम केवट से नाव मांगते हैं ,लेकिन केवट नहीं मानता है, कहता है कि मैं तुम्हारा भेद जान गया :

"मांगी नाव न केवटू आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।।"

तुम्हारे चरणों के स्पर्श से पत्थर, सुन्दर स्त्री बन गई थी, मेरी नाव तो लकड़ी की है और यही मेरे परिवार के भरण पोषण का आधार है :

"छुअत सिला भइ, नारि सुहाइ।
पाहन ते न काठ कठिनाई।।"

फिर केवट श्री राम के चरण धोते हैं, इसके बाद ही उन्हें श्रद्धा भाव के साथ गंगा पार करवाते हैं।

ये लोकगीत हमारे सांस्कृतिक धरोहर हैं। इन सभी गीतों में मानो श्री राम जी और माता सीता की छवि नज़र आती हैं।

आज भी हरेक कन्या श्री राम जैसे आदर्श पति की कामना करती है तथा हर वर सीता जैसी संगिनी की इच्छा रखता है। मॉरीशस में विवाह के अवसर पर इन गीतों का गायन ज़रूर होता है। इस अमूर्त विरासत को 1 दिसंबर 2016 को यूनेस्को (UNESCO) की सूची में शामिल कर दिया गया है तथा भावी नयी पीढ़ी तक सुरक्षित पहुँचाने के उद्देश्य से पूरे मॉरीशस में पचासों 'गीत गवाई' स्कूल कायम किए गए हैं, जहाँ बुजुर्ग दादी–नानी, जिन्हें गीथारिन कहते हैं, वहाँ जाकर अपने इन लोक गीतों को युवाओं तक पहुँचाने में सफल प्रयास कर रही है। इन्हें मौखिक से लिखित रूप दिया जा रहा है। हर्ष की बात है कि आजकल मात्र वृद्ध जन नहीं, अपितु जवान भी ये गीत सीख रहे हैं और इस प्रकार रामायण से जुड़े पारंपरिक लोक गीत मॉरीशस में भारतीय संस्कृति को जीवित रखने में अप्रतिम योगदान दे रहे हैं। हमारे सभी संस्कार गीतों का आलंबन राम–सीता हैं। इन लोकगीतों की बदौलत हमारी संस्कृति जीवित है। यह ऐसी संस्कृति है, जो शाश्वत है।

लोक संस्कृति

'रामायण' एक तरफ़ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मूल्यों को उजागर करता है, तो दूसरी ओर लोक जागरण की प्रभाती के रूप में सामने आता है। भारत के विशाल परिवार से कटकर, जब हमारे पूर्वज इस घने जंगल में आए थे, तब दुख–दर्द तथा अपने भविष्य के प्रति भय की भावना के अतिरिक्त और कुछ साथ नहीं लाए थे। श्री राम जी के त्याग रूप का स्मरण करते हुए तथा अपनी कुंठाओं का दमन करते हुए अपनी संस्कृति को आभा बनाकर उसकी ज्योति में आगे बढ़ने का दृढ़ संकल्प, उनके लिए मात्र सहारा था।

संस्कृति ब्रह्म की भांति अवर्णनीय है। आधुनिक काल के प्रकांड विद्वान, उपन्यासकार एवं निबंधकार डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "लोकसंस्कृति" वह संस्कृति है, जो अनुभव व श्रुति परंपरा से चलती है। लोक संस्कृति का आशय लोक–जीवन की संस्कृति से है, जिसके आधार पर लोगों के रहन–सहन, रीति–रिवाज़, खान–पान, वेशभूषा, धर्म–कला आदि उभरकर प्रकट होते हैं।

मॉरीशस में बैठकाएँ स्थापित हो चुकी थीं, राम–लीला का प्रचार भी ज़ोरों से हो रहा था। राम–लीला में सभी भाग नहीं ले पाते थे। ऐसे में मात्र दर्शक बने रहने की बजाए छोटी–छोटी टोलियाँ बनकर तैयार हुई। झाल–ढोलक, मंजीरा जैसे पारंपरिक संगीत वाद्य–यंत्रों के साथ रामायण गान शुरू हुआ और चौताल भी गाए जाने लगे और हमारी संस्कृति ने गति ली। रामायण मंडलियों की शोभा में चार चाँद तब नज़र आने लगे, जब विशेष आयोजनों में गाँव–गाँव की मंडलियाँ पूरी तैयारियों के साथ अपनी पारंपरिक धोती–कुर्ता व पगड़ी धारण किये जोश के साथ रामायण–गान रात भर करती। यह परंपरा आज भी जारी है–

दोहा रामायण :

"मंगल भवन अमंगल हारी ...राम–लखन...जान...की..
द्रवहु, सुदसरथ अजिर बिहारी...जय बोलो हनुमान की...
(विद्या प्राप्ति के लिए)
'गुरु गृह गए, पढ़न रघुराई ।...राम–लखन...जान...की
अल्प काल, विद्या सब आई।।'... जय बोलो हनुमान की..."

मॉरीशस में रामायण से निःसृत लोकगीत बैठकाओं के बरामदों व कुटियों से निकलकर आज आधुनिक मंच पर पहुँच गया है। पूर्व में जहाँ पेड़ों की छाँव तले, गली–गलियारों में रामायण मंडलियाँ अपना गायन प्रस्तुत करती थीं, वही आज भव्य रूप से पूरे सम्मान, स्वाभिमान और सारी सुविधाओं के साथ तैयारियाँ होती हैं। आज देश के हरेक गाँव–शहर में लगभग एक दर्जन रामायण मंडलियाँ हैं। इन मंडलियों के उल्लास को देखते हुए संबद्ध संस्थाएँ रामायण गान प्रतियोगिताओं का आयोजन करने लगीं। इस तरह की गतिविधियों से हमारी भावी पीढ़ी, हमारी बहुमूल्य लोक संस्कृति से अवगत होकर, इसे अपने जीवन में स्वतः उतारती है। युग चाहे कितना भी आधुनिक क्यों न बन जाए, हमारे युवा होली के दिन चौताल गाना नहीं छोड़ेंगे, दीपावली में दीए प्रज्ज्वलित करना नहीं भूलेंगे, कोई भी दुल्हन पतलून–कमीज़ पहनकर मंडप में नहीं आएगी, रक्षा–बंधन के दिन बहनें भाई की कलाई में रक्षा–सूत्र बाँधना नहीं भूलेंगी, और तो और लोक संस्कृति के अंतर्गत आने वाले खान–पान में न खीर–पूरी, न ही दाल–चावल–चटनी का त्याग करेंगे, क्योंकि हमारी संस्कृति की नींव रामायण से जुड़ी है, जो स्वयं एक अमर ग्रन्थ है।

निस्संदेह रामायण मानव जीवन के हरेक पहलु को दर्शाता है, जन्म से लेकर अंतिम यात्रा तक रामायण के मूल्यों से लोक जीवन को दिशा प्राप्त होती है। इस मोह–माया के बंधन से मुक्त होकर जब मनुष्य अपनी काया को छोड़ अपनी अंतिम यात्रा की तरफ चल पड़ता है, तब भी – रामनाम सत्य दोहराते हुए चलते हैं।

अंतिम संस्कार के सन्दर्भ में लोकगीत :

"राम चले वन में, लखन चले वन के,
सीता चले वन के...
दशरथ चले धाम हो...
सर धुनी–धुनी रोवे ला, कोसिला हो माई ...
आज मोरे आंगन में पता झरे ला हो... डारवा टूटे ला हो ...
कोन दिसवा से आवे ला पवनवा ..."

रामायण मानव चेतना के निर्माण का अद्‌भुत रसायन है। लोक मंगल, मर्यादा व विवेक से रहने की कला रामायण से प्राप्त होती है, अर्थात् रामायण से निःसृत लोकगीतों की प्रासंगिकता आज भी है।

सत्य है कि आज की परिस्थिति राम युग से भिन्न नहीं है, आज भी रावण, शूर्पणखा जैसे असुरों के कारण अमर्यादा का साम्राज्य, धार्मिक व सामाजिक दुर्व्यवस्था की वजह से मानवता कराह रही है, ऐसे में रामायण के आदर्श पात्र हम साधारण मनुष्यों को राह दिखाने में सहायक है। राम जैसे आदर्श पुत्र, पति, पिता, भरत का अपने भाई के प्रति कर्त्तव्य, माता अहिल्या की पवित्रता, सीता माता की अग्नि परीक्षा, हनुमान जी की आस्था एवं माता शबरी की भक्ति वन्दनीय है। रामायण के ये पात्र मॉरीशस के लिए ही नहीं समस्त संसार के लोगों के लिए दिशानिर्देश हैं।

रामचरितमानस के लोकगीतों में हमारी संस्कृति के प्राण बसे हैं, ऐसा कहना सर्वोचित है। वर्तमान व भावी पीढ़ी को संस्कारवान और आदर्श नागरिक बनाने में 'रामायण' में विद्यमान उत्तम मानव मूल्यों का पिटारा और किसी भी ग्रन्थ में मिल पाना दुर्लभ है।

मॉरीशस छोटा–सा देश है, परन्तु जिस आयाम से रामायण के लोकगीतों का बृहत प्रचार यहाँ होता आ रहा है और जिस उत्साह के साथ युवा वर्ग रामायण चौताल, ललना गायन,

आदि गतिविधियों का आयोजन कर रहा है, इन्हें देखकर मन स्वाभाविक रूप से खिल उठता है। ध्यातव्य है कि मॉरीशस में 31 अगस्त, 1990 को आयोजित छठे रामायण सम्मेलन के सन्दर्भ में मॉरीशस के दो गाँवों के नाम बदले गए थे – उत्तर प्रान्त में 'हेर्मिताज़' गाँव का नाम 'पंचवटी' और 'अपर वाले दे प्रेत्र' का नामकरण हुआ था 'चित्रकूट'।

इन दोनों गाँवों के नाम 'रामायण' से पूरी तरह सम्बन्ध रखते हैं। श्री राम की संस्कृति ऐसे ही अविरल गति से बहती रहे और इसके शीतल जल से हरेक पिपासु की जिज्ञासा शांत होती रहे तथा चिरकाल तक हरेक को अजस्र ऊर्जा प्रदान करती रहे।

रामचरितमानस से निःसृत लोकगीत निःसंदेह एक ऐसा प्रकाश पुंज है, जिसके आलोक में हमारी संस्कृति सदैव पुष्पित व पल्लवित होती रहेगी। हमारी संस्कृति सूर्य की उगती किरणों की भांति चमकती रहेगी।

संदर्भ :

1. India Today Oct. 2013
2. MauritiusTimes 18.09.2015
3. Appravasi Ghaat Magazine Nov. 2017
4. Information from Old village people
5. Folk Songs from different groups from all over the Island (GEETHARINE)

narvadakhednah@gmail.com

भारतीय संस्कृति : जीवन विवेक की साहित्यिक परम्परा

– डॉ. आनन्द कुमार सिंह
भोपाल, भारत

भारतीय संस्कृति के निर्माण में जिन प्रमुख कारकों का योगदान है, उसमें सभी कलाएँ और विद्याएँ तो हैं ही, प्रमुख हिस्सेदारी साहित्य की है। वह सब जो लिखा गया किसी न किसी प्रकार का साहित्य है, वाङ्मय है। लेकिन जिसे हम साहित्य कहते हैं, उसका आशय उस विशेष तत्त्व से है, जिसे हम मनुष्यता के मूल्य कहते हैं और जिसके केंद्र में मनुष्य की भावनाएँ हैं, उसके सुख–दुख हैं और उसकी पीड़ा और छटपटाहट है, ऊपर उठने की लालसा है। वैदिक साहित्य हो या पौराणिक सभी में मनुष्य के दुख–दर्द की कहानी ज़रूर मौजूद है।

रामायण और महाभारत के विकास में मनुष्य की महत्त्वाकांक्षी वृत्तियाँ हैं, जो अपना स्वार्थ साधना चाहती हैं। उनसे उत्पन्न घात–प्रतिघात, हिंसा और युद्ध, लोभ–लालच–कृपणता–उदारता, प्रेम के दोनों पक्ष–संयोग और वियोग, हार–जीत, आशा–निराशा, करुणा और शोक आदि सभी वृत्तियाँ मिलकर मनुष्य को बनाती हैं।

इसलिए रामायण और महाभारत ये दोनों महाकाव्य हमारी भारतीय संस्कृति को रचते हैं। हम देखते हैं कि इन काव्यों में मनुष्य के संघर्ष पक्ष और सिद्धि पक्ष को किस तरह से वाल्मीकि और व्यास जी ने उठाया है और उनके भीतर से ही अपने चरित्रों की सृष्टि की है। रामायण के मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम हों अथवा महाभारत के योगेश्वर कृष्ण, ये दोनों ही जीवन की संघर्ष यात्रा को बहुत नज़दीक से देखते हैं और कुछ उदाहरण इस तरह प्रस्तुत करते हैं, जिनसे मानवीय विवेक की प्रतिष्ठा होती है।

मनुष्य निरा पशु वृत्तियों का आश्रय नहीं है। उसके भीतर एक उदारचेता महान चेतना भी छिपी हुई है, जो बड़ी मानवता को संरक्षण देती है। इन कहानियों में हमारे महान चरित नायकों ने त्यागमय जीवन और निष्काम कर्म का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है, जिससे हमारा सामान्य जीवन रोशनी से जगमगा उठता है। रामायण में वियोग के इर्द–गिर्द एक कहानी बुनी गई है, जिसकी शुरुआत ही क्रौंच पक्षी के वियोग से होती हुई, दशरथ और श्री राम के वियोग, कौशल्या और श्री राम तथा उर्मिला और लक्ष्मण के वियोग में शीघ्र ही बदल जाती है। थोड़ा ही आगे बढ़ने पर सबसे बड़ी वियोग गाथा सीता और राम के वियोग की है। मिलन और बिछोह, फिर मिलन, फिर बिछोह। अंत में सीता पृथ्वी में समा जाती हैं। यह चिरकालिक वियोग एक मानवीय धरातल पर अपनी उदात्त गरिमा के साथ प्रकट होता है। श्री राम की कहानी ऐसा विकल प्रभाव छोड़ती है और उनकी संघर्ष गाथा इतनी विकराल है कि हज़ारों वर्षों के बाद भी हमें उसी सघनता से प्रभावित करती है। क्या सीता की पवित्रता और राम के संघर्ष को छोड़कर भारत की संस्कृति का कोई अध्याय लिखा जा सकता है? नहीं। इसी तरह चरित्र सृष्टि में जैसा चरित्र भरत और हनुमान तथा रावण और मेघनाद का है, जिससे रामकथा ओजस्वी बनती चली गई है, उनके बिना भी हमारी संस्कृति नहीं बनती। स्वयं वाल्मीकि ने ही ऐसी आदर्श छवियाँ नायक–प्रतिनायक और खलनायकों की बनाई हैं कि वे सभी कहीं–न–कहीं हमारी मानवीय लालसाओं और अभीप्साओं के प्रतीक बनकर उभरते हैं। ऐसे महाप्रतीक ही शताब्दियों से हमारी संस्कृति को रचते आए हैं। रामलीला हमारी समावेशी संस्कृति का अंग है। आर्य–अनार्य के झगड़ों के मिट जाने के बाद भी एक सांस्कृतिक नैरंतर्य हम सबको लगातार प्रभावित करता है और हमारे भीतर इस युद्ध को दोबारा रचता है, जिससे हम आनंदित होते हैं।

महाभारत की गाथा हमारे जीवन की कटु प्रवृत्तियों के बहुत निकट लगती है। पांडवों और कौरवों का द्वन्द्व और भयानक युद्ध, सगे संबंधियों की सत्ता विषयक महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतीक है। यह दो प्रजातियों का संघर्ष नहीं है, बल्कि दो परिवारों की गाथाएँ

हैं, जो अपनी संघर्षमयता में समूचे भारतवर्ष को लपेट लेती हैं। हम चाहें या न चाहें, हमें कोई–न–कोई पक्ष चुनना ही पड़ जाता है। यह हमारे जीवन की समकालीन प्रवृत्तियों के बहुत क़रीब है। महाभारत की पीड़ा विश्वव्यापी युद्ध और शांति के द्वन्द्व को हमारे सामने खोलकर प्रस्तुत करती है, जिसमें हम अपने आप को पक्षधर मानने लगते हैं। उससे हमारा निस्तार नहीं होता। युद्ध का परिणाम अंत में जिस भयानक उदासी को हमारे सामने प्रस्तुत करता है, उससे हमारे समस्त मानवीय मूल्य ही काँप जाते हैं।

महाभारत के 'भीष्मपर्व' में प्रकट होने वाली 'श्रीमद्भगवद्गीता' हमारी संस्कृति का सिरमौर बनकर प्रकट होती है। आत्मा की अमरता और निष्काम कर्म की व्याख्या कर भगवान श्री कृष्ण जीवन का नया विज्ञान प्रस्तुत करते हैं, जो हमारे लिए स्वतंत्रता–संग्राम में भी अक्षय प्रेरणा स्रोत बना रहा। आगे चलकर कालिदास और भास, अश्वघोष और माघ, श्रीहर्ष और बाण भट्ट हमारी सांस्कृतिक पहचान को रूप देते हैं। अश्वघोष ने 'बुद्ध चरित' में करुणा को दिव्यता का स्पर्श देकर यह बताया है कि मनुष्यता का सबसे बड़ा मूल्य इस बात में छिपा हुआ है कि हम नृशंसता को कितनी दूर तक ठेलकर हटा पाते हैं। क्या हम प्रतिशोध की भावना से ऊपर उठकर मानवीय दुर्बलताओं को अतिक्रमित कर पाते हैं या हार जाते हैं? कालिदास ने अपने नाटकों में सौन्दर्य के माध्यम से शिवत्व की प्रतिष्ठा की है। शकुंतला के निष्पाप सौन्दर्य ने दुनिया भर के कवियों और विद्वानों को प्रभावित किया। 'रघुवंश' में राजा दिलीप की गोसेवा आज भी परोपकार और सेवा का मानक मूल्य है। 'कुमारसंभव' में देवी पार्वती की साधना और तपश्चर्या भारतीय संस्कृति की मधुर भावना को तपस्या के रंग में, लेकिन, लौकिक प्रेम में सिक्त कर प्रस्तुत करती है, जहाँ शिव पार्वती का युगल अनंतकालीन दाम्पत्य प्रेम और गहन साहचर्य का प्रतीक बन जाता है।

हमारे महाकवियों ने भारत के भूगोल का जो वर्णन किया है, वह हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, शिव और पार्वती के प्रतीक को एक साथ जोड़ देता है। हिमालय में शिव हैं, तो कन्याकुमारी में भगवती की तपस्या के चिह्न बिखरे हुए हैं। हिमालय की पुत्री शिव को प्राप्त करने के लिए कन्याकुमारी में आराधन कर भारत की सांस्कृतिक एकरूपता को दर्शा देती है। महाकवि अश्वघोष ने जिस करुणा को भगवान बुद्ध के जीवन में रचा है और मानव जीवन को विवेक और महाकरुणा के जो आधार दिए हैं, उसने युगों–युगों तक दुनिया को प्रभावित किया है। भारत की संस्कृति में ये तत्त्व इस प्रकार से हिल–मिल गए हैं कि इन्हें अलगाकर नहीं देखा जा सकता।

'उत्तर रामचरित' में भवभूति ने इसी करुणा को भगवान राम के जीवन में इस तरह सघनता से निरूपित किया है कि यह कहना पड़ा कि करुण रस ही एकमात्र रस है। सच बात यही है कि मानवीय करुणा और प्रेम को रचकर दिखाने की ताकत के कारण ही भारत की संस्कृति अन्य संस्कृतियों से अलग खड़ी नज़र आती है। सातवीं सदी में बाण भट्ट ने 'हर्षचरित' में महाराज श्रीहर्ष के जीवन पर प्रकाश डाला है, जिसमें इक्ष्वाकु वंशी महाराज रघु की तरह दानवत्सलता श्रीहर्ष का स्वभाव बनकर प्रकट होती है।

इसी तरह मध्यकाल में निर्गुण संतों ने जिनमें नामदेव और कबीर बहुत प्रसिद्ध हैं, उन्होंने एक आन्दोलन ही चलाया, जो मानवता की मुक्ति का प्रेरक आन्दोलन बन गया। यह हमारे देश का मध्यकालीन पुनर्जागरण था, जिसे इस दृष्टि से देखने की ज़रूरत है। यदि हम मध्यकालीन संतों में जागरण की तेज़ लहर को और पूरे देश में फैल जाने वाले भक्ति आंदोलन को देखते हैं, तो हमें लगता है कि भारतीय साहित्य का विवेक यूरोप से कतई पीछे नहीं है, बल्कि, कहीं आगे है। भक्ति के तल पर सारे जाति–पाँति के भेदों से अलग जाकर मनुष्यता की मुक्ति, जिनमें दलित और स्त्रियाँ प्रमुख हैं, इस आंदोलन को आधुनिक आंदोलन बनाता है।

आधुनिकता का प्रधान लक्षण है हाशिए के समाज का आगे आना, जिसमें वंचित और शोषित समाज का जागरण और स्त्रियों की मुक्ति का आग़ाज़ प्रमुख है। वह यूरोप से बहुत पहले हमें भारत के मध्यकालीन इतिहास में देखने को मिलता है। गोरख, कबीर, नानक, दादू, पीपा, रैदास, मीरा, सहजो, दयाबाई, बाबरी साहिबा, गुलाल साहब जैसे संत कवियों ने निर्गुण साधना और रहस्यवाद का अनुपम स्वर पैदा किया, जो इस्लाम के निर्गुण निराकार से अधिक रुचिकर और ममतामय था। मध्यकाल में इस्लाम के मारफत, एक भिन्न तरह के एकेश्वरवाद और निर्गुण को प्रतिष्ठित किया जा रहा था। इसे ठीक–ठीक चुनौती अंधे कवि सूरदास ने 'भ्रमरगीत' में यह पूछकर दी थी – निर्गुण कौन देस को बासी? और इस्लाम के निर्गुण और एकेश्वरवाद

को धूल चटा दी। फिर आते हैं महाकवि तुलसीदास, जिनका रामचरितमानस मानवीय मूल्यों की रचनात्मक मंजूषा ही बन गया। वह तो निर्गुण संतों से आगे बढ़कर इस संसार को अपने आराध्य की लीला भूमि को चुनते हैं और उनके जीवन को प्रेरक बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

अकबर के समय में उन्होंने विष्णु के खंभे पर बैठने वाले सम्राट को रचनात्मक रूप से उत्तर दे दिया कि विष्णु का वास्तविक अवतार कौन है? अकबर फ़तेहपुर सीकरी में उस सहस्रफण खंभे के ऊपर बैठता था, जिससे पता चले कि वही प्रतीक रूप से भगवान विष्णु का अवतार है। लेकिन महाकवि तुलसीदास ने वास्तविक लीलाचारी भगवान राम को कविता में अवतरित करके दिखा दिया।

उस समय रहीम और रसखान में प्रेम और विवेक की सुरीली तान फूटी थी, जिसका प्रभाव हम अब तक महसूस करते हैं। रीतिकाल के कवियों ने मानव मन की शृंगार भावना को अत्यंत सहज ढंग से प्रस्तुत किया, क्योंकि 'काम तत्त्व' भी एक पुरुषार्थ है, जिसके बिना जीवन को पूर्णता नहीं मिलती। कविवर बिहारीलाल ने राजस्थानी नागर मिज़ाज को उसी रसभाषा में जीवंत किया, जिससे हमारी परम्परा रस का आखेट करती रहती है। वह वैदिक कवियों के समान ही जीवन में मधु विद्या को प्रतिष्ठित करना चाहती थी, जिससे शृंगार हमारे जीवन को अनुरंजित कर सके। बिहारी और मतिराम इसी तरह के सुंदर कवि हैं। उर्दू के प्रमुख कवियों ने जिनमें मीर और ग़ालिब प्रमुख हैं, उन्होंने प्रेम और विरह के अवसाद को फ़ारसी रंगत में प्रस्तुत कर भारतीय कविता के मिज़ाज को बहुत संवेदनशील बना दिया। अंततः ये मानवीय चित्त की वृत्तियाँ ही तो हैं, जो शेरो–शायरी की हज़ारों मुद्राओं में आकार लेती हैं।

बंगाल के रवीन्द्रनाथ की कविता का स्वर कबीर की रहस्यात्मकता, ग़ालिब के प्रेमावसाद और कालिदास की भारतीयता को एक साथ प्रस्तुत करता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा रचित राष्ट्रगान के सभी पाँच छंद मिलकर उस नए भारत की नींव रखते हैं, जिसकी लय और जिसका संगीत चिन्मय भारत का अमरगीत बन गया है। तमिल के सुब्रह्मण्यम भारती हों, गुजराती के उमाशंकर जोशी, मराठी के कुसुमाग्रज हों या तेलुगू के शेषेंद्र शर्मा या पंजाबी की अमृता प्रीतम, उड़िया के गोपीनाथ महंती हों या छायावाद के प्रसाद–पंत–निराला–महादेवी हों, अज्ञेय, मुक्तिबोध, नरेश मेहता हों या निर्मल वर्मा, इनकी जड़ें संस्कृत साहित्य में गहरे धंसी हुई हैं। उन्होंने परम्परा को आत्मसात् कर भारतीय साहित्य का अमृत तत्त्व एकत्र किया है, जिसमें करुणा और प्रेम की ऊष्मा ही प्रधान ऊर्जा है, जो मनुष्यता को संभव बनाती है।

भारतीय साहित्य और भारतीय संस्कृति इस बिंदु पर एक हो जाते हैं। यदि भारत की संस्कृति की प्रमुख विशेषता अनेकता में एकता है, तो वह सबसे अधिक भारतवर्ष की भाषाओं के साहित्य में ही प्रकट हुआ है। भारत की संस्कृति में सर्वाधिक प्रतिष्ठा मानव के उस जीवन विवेक की हुई है, जिसमें प्रेयस्कर जीवन के ऊपर श्रेयस्कर चिंतन विराजता है। यह ठीक है कि हमें प्रिय लगने वाली जीवन सुविधाओं की तलाश रहती है, लेकिन, ईशोपनिषद में यह कहा गया है कि हमें संसार का उपभोग त्यागपूर्वक करना चाहिए। भारत की इस प्रधान जीवन–दृष्टि को अभिव्यक्त करने में हमारे देश की साहित्यिक मनीषा का विशिष्ट योगदान है। इस देश में जीवन विवेक की संहिता का निर्माण कवियों और मनीषियों ने किया है। यदि हम प्राचीन भारतीय साहित्य से लेकर मध्ययुगीन साहित्य और विभिन्न भाषाओं में प्रकट होने वाले आधुनिक भारतीय साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन विवेक की साहित्यिक परम्परा ने किस तरह भारत की जनता को उस लोकप्रवाही गुण से सम्पन्न किया है, जिससे भारत की संस्कृति का विशिष्ट निर्माण हुआ है।

सहायक संदर्भ :

1. India Unbound, Gurcharan Das, Penguin Books, New Delhi, 2002
2. Hinduism, Marcus Braybrooke, Jai o Publishing House, 2004
3. The Hindus, Wendy Doniger, Speaking Tiger Publishing, New Delhi, 2015
4. On Hinduism, Wendy Doniger, Aleph Book Company, New Delhi, 2013
5. India by Al Biruni, Ed. Qeyamuddin Ahmad, National Book Trust, 2015
6. India, a Civilisation of Difference, Alan Danielou, Inner Traditions, Rochester, Vermont, 2005
7. Indian Philosophy (Vol. 1 & 2), S Radhakrishnan, Oxford, 2013
8. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, पटना,1977

aanandksingh@gmail.com

देवनागरी एवं डोगरी

– श्री यशपाल निर्मल
जम्मू, कश्मीर

डोगरी जम्मू–कश्मीर राज्य के जम्मू प्रांत की प्रमुख भाषा है। जम्मू प्रांत की मुख्य भाषा डोगरी होने के कारण ही इस प्रांत को डुग्गर–प्रदेश की संज्ञा दी गयी है। डुग्गर–प्रदेश की डोगरी भाषा उतनी ही पुरानी है, जितनी अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ। डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन के मतानुसार – ''जिस दिन आदमी ने अपनी व्यक्त वाणी को सुरक्षित रखकर एवं दोनों आँखों के लिए देखने योग्य बनाकर आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित किया होगा, उसी दिन लिपि का जन्म हुआ होगा।'' प्रसिद्ध लिपि शास्त्री गुणाकर मूले के अनुसार – ''लगभग छः हज़ार वर्ष पूर्व ताम्र युग की शुरूआत हुई। नगरों की स्थापना होने लगी। राजाओं का केंद्रीय शासन शुरू हुआ। संचित संपत्ति का हिसाब रखने के लिए एवं राजाओं के आदेश आदि जारी करने हेतु लिपि की आवश्यकता पड़ी। इसलिए ताम्र युग में प्रथम बार बहुत–सी लिपियों ने जन्म लिया।''

डॉ. लक्ष्मी विलास डबरवाल पार्थसारथी नारद स्मृति का हवाला देते हुए लिखते हैं ''इस विराट संसार के लौकिक कल्याण हेतु ही ब्रह्मा ने लिपि बनाई।'' किंतु सिंधु घाटी से प्राप्त लेखों आदि से स्पष्ट हो जाता है कि लिपि का आविष्कार वैदिक युग से बहुत पहले हो चुका था। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त मोहरों पर जो लिपि अंकित है, उसे लिपि विशेषज्ञों ने पाँच हज़ार वर्ष पुराना बताया है। प्रो. देवेन्द्र नाथ शर्मा के अनुसार – ''इंसान की बुद्धि के सबसे महत्त्वपूर्ण दो कार्य हैं, पहला भारती ब्राह्मी लिपि और दूसरा वर्तमान शैली के अंकों की कल्पना'' प्रो. देवेन्द्र नाथ शर्मा लिपि के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं – ''लिपि ने भाषा को देश एवं काल के बंधनों से मुक्त कर दिया है और क्षण टिकाऊ से चिर टिकाऊ में बदल दिया है।''

डोगरी भाषा को लिखने के लिए डोगरी की अपनी लिपि भी है, जिसे 'डोगरी अक्षर' के नाम से जाना जाता है। डोगरी की विद्वान प्रो. चम्पा शर्मा के मतानुसार – ''यहाँ की भाषा को द्विगर्त भाषा एवं लिपि को द्विगर्त लिपि नाम दिया गया है। इस लिपि का प्रयोग भी उतना ही होता रहा, जितना प्रदेशानुसार अन्य लिपियों का।'' प्रो. चम्पा शर्मा के अनुसार – ''भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी से डोगरी लिपि का विकास हुआ है। महाराजा रणवीर सिंह ने इसको सुधारकर मानक एवं संपूर्ण बनाया। आज भी इस लिपि में कई आलेख उपलब्ध हैं। इस लिपि में सबसे पुराना आलेख विक्रमी संवत 1583 अर्थात् सन् 1526 ई. का एक छोटा–सा शिलालेख है, जो तहसील बसोहली के एक नगर महानपुर में निर्मित जगदम्बा के मंदिर में लगा हुआ है।'' सन् 1947 ई. में स्वतंत्रता के बाद सन् 1948 ई. में जम्मू–कश्मीर राज्य का गठन हुआ। डॉ. बाल कृष्ण शास्त्री के अनुसार – ''सन् 1953 ई. में एक समिति का गठन किया गया, जिसने यह निर्णय लिया था कि डोगरी भाषा के लिए फ़ारसी के मुकाबले देवनागरी अधिक वैज्ञानिक है एवं इस लिपि में डोगरी को अच्छी तरह लिखा जा सकता है।'' राज्य को चलाने के लिए नयी रणनीति तैयार करने के लिए अन्य समस्याओं की तरह डोगरी के लिए कौन–सी लिपि का प्रयोग किया जाए, यह भी एक समस्या थी, जिसके समाधान के लिए जम्मू–कश्मीर सरकार ने एक 12 सदस्यों की समिति बनाई। इस समिति के अध्यक्ष तत्कालीन वित्त मंत्री माननीय श्री गिरधारी लाल डोगरा थे। श्री पन्नालाल इसके सचिव थे, प्रो. रामनाथ शास्त्री इसके संयुक्त सचिव एवं सर्वश्री धर्मचंद प्रशांत, मोती लाल बैगड़ा, रामप्यारा सराफ़, सरदार कुलबीर सिंह, ब्रिगेडियर खुदाबक्श, सरदार अकरम खान, चूनी लाल कोतवाल, डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा और कृष्ण देव सेठी इस समिति के सदस्य थे। इस समिति ने फ़ैसला किया कि डोगरी के लिए देवनागरी एवं फ़ारसी लिपि को अपना लिया जाए।

डोगरी के बोध विकास को देखते हुए विद्वानों ने देवनागरी

को अपना लिया और कुछ विद्वान फ़ारसी लिपि में भी लिखते रहे। देवनागरी लिपि डोगरी, हिंदी के अलावा भारत की बहुत–सी अन्य भाषाओं के लिए भी प्रयुक्त होती है। यह लिपि सिर्फ़ भारतीय आर्य परिवार की भाषाओं के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य परिवारों की भाषाओं के लिए भी प्रयुक्त होती है, जैसे बोडो के लिए, जो कि आश्ट्रो–एशियाटिक भाषा परिवार की भाषा है। इसके अलावा यह लिपि मराठी, नेपाली, कोंकणी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं के लिए भी प्रयुक्त होती है।

देवनागरी को कुछ विद्वान अक्षरमूलक एवं रोमन को वर्णमूलक मानते हैं एवं अक्षरमूलक लिपि को अधिक ऊँचा दर्जा देते हैं। वर्तमान देवनागरी विकास के हिसाब से अंतिम उपलब्धि है। इतिहास के मुताबिक देवनागरी का विकास भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी से हुआ माना जाता है। इस ब्राह्मी लिपि से भारत की लगभग सभी लिपियाँ विकसित हुई हैं। अगर हम एक हज़ार वर्ष पीछे देखें, तो देवनागरी के वर्णों में काफ़ी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार देवनागरी के वर्णों का प्रबन्ध संसार की कई लिपियों से अच्छा है, जिसके परिणामस्वरूप ही भारत की कई भाषाएँ इसका प्रयोग करती हैं। फिर भी मौजूदा ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने इस लिपि में भी कई कमियाँ महसूस कीं एवं समय–समय पर सुधार भी किए। भारत सरकार ने 10, 11 एवं 12 अगस्त 1961 को दिल्ली में तीन दिवसीय सम्मेलन किया था। सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि सभी भाषाओं के लिए एक ही लिपि हो, जिसके लिए देवनागरी को सबसे श्रेष्ठ एवं वैज्ञानिक लिपि माना गया। उस समय असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, बांग्ला, पंजाबी, मलयालम, मराठी, संस्कृत एवं हिंदी भाषाओं को देवनागरी में लिखने हेतु भाषा की ध्वनियों के अनुसार कुछ नए चिह्न भी बनाए गये और सन् 1966 में 'परिवर्धित देवनागरी' नाम से केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से एक पुस्तक भी प्रकाशित की गई। उसके बाद देवनागरी का जो रूप सामने आया उसको 'परिवर्धित देवनागरी' कहा जाता है। यह रूप भारत की सभी भाषाओं के लिए एक सामान्य राष्ट्रलिपि है।

किसी भी लिपि में पाए जाने वाले वर्णों, उपवर्णों आदि के व्यवस्थित क्रम को उस लिपि की वर्णमाला कहा जाता है। डोगरी लेखन के लिए देवनागरी लिपि का ही प्रयोग हो रहा है। ज़्यादातर चिह्नों का हिंदी की तरह ही प्रयोग हो रहा है। वे चिह्न जो हिंदी से भिन्न हैं, उनका ब्योरा इस प्रकार है :

1. स्वर : आऽ, ईऽ, ऊऽ, एऽ, ऐऽ, ओऽ, ऑऽ एवं ऋ
2. व्यंजन : घ, ङ, झ, ञ, ध, ढ, ढ़, भ, य, व, ष, ह, क्ष, त्र एवं ज्ञ
3. चिह्न : ’

स्वर

1. (आऽ) – यह प्लुत, मध्य, अर्द्धगोल या चौड़ा एवं मध्य स्वर है। इसकी मात्रा 'ाऽ' है, जो व्यंजनों के साथ प्रयोग होती है। इसका प्रयोग शब्द की अंतिम स्थिति में ही होता है। जैसे – बधा?, सना?, चना? आदि।

2. (ईऽ) – यह प्लुत, अगला, चौड़ा एवं ऊँचा स्वर है। इसकी मात्रा 'ीऽ' है, जो व्यंजनों के साथ प्रयोग होती है। इसका प्रयोग शब्द की अंतिम स्थिति में होता है। जैसे – धीऽ, नीऽ, बीऽ आदि।

3. (एऽ) – यह प्लुत, अगला, चौड़ा, मध्य स्वर है। इसकी मात्रा 'ेऽ' है, जो व्यंजनों के साथ प्रयोग होती है। डोगरी में इसका प्रयोग अंतिम स्थिति में ही होता है। जैसे – रपेऽ, देऽ आदि।

4. (ऐऽ) – यह प्लुत, अगला, चौड़ा, नीचला–मध्य स्वर है। इसकी मात्रा 'ैऽ' है, जो व्यंजनों के साथ प्रयोग होती है। डोगरी में इसका प्रयोग अंतिम स्थिति में ही होता है। जैसे – बधैऽ, लैऽ आदि।

5. (ऊऽ) – यह प्लुत, पिछला, गोल एवं ऊँचा स्वर है। इसकी मात्रा 'ूऽ' है, जो व्यंजनों के साथ प्रयोग होती है। डोगरी में इसका प्रयोग अंतिम स्थिति में ही होता है। जैसे – कूंऽ, रूंऽ आदि।

6. (ओऽ) – यह प्लुत, पिछला, गोल एवं मध्य स्वर है। इसकी मात्रा 'ोऽ' है, जो व्यंजनों के साथ प्रयोग होती है। डोगरी में इसका प्रयोग अंतिम स्थिति में ही होता है। जैसे – भोऽ, घ्योऽ, प्योऽ, लोऽ आदि।

7. (ऑ) – यह प्लुत पिछला, गोल एवं ऊँचा स्वर है। इसकी मात्रा 'ॉ' है, जो व्यंजनों के साथ प्रयोग होती है। इसके बगैर भी

डोगरी लेखन में कोई अर्थ परिवर्तन या मुश्किल नहीं आती। जैसे – डॉक्टर, डाक्टर, डॉट, डाट आदि।

8. (ऋ) – यह ध्वनि अक्षरिक होने के कारण, इसे स्वरों की कोटि में रखा गया है। ृ इसकी मात्रा है, जो व्यंजन के नीचे लगती है। इसका प्रयोग आमतौर पर तत्सम शब्दों के लिए ही होता है। डोगरी में इसके स्थान पर 'रि' का प्रयोग होता है। जैसे – रिखी, रितु, रिण आदि।

व्यंजन प्रयोग

1. (ङ) – यह कण्ठीय, नासिक्य, अल्पप्राण और सघोष ध्वनि है। स्वर रहित होने पर इसके नीचे हलंत (ङ्) का प्रयोग होता है। डोगरी भाषा में इसका प्रयोग शुरू, मध्य एवं अंतिम तीनों स्थितियों में होता है। जैसे – ङारा (अंगारा), संङार (गेहूं आदि की बाली), जङ (टांग) आदि।

2. (ञ) – यह तालवी, नासिक्य, अल्पप्राण और सघोष ध्वनि है। स्वर रहित होने पर इसके नीचे हलंत (ञ्) का प्रयोग हाता है। डोगरी भाषा में इसका प्रयोग शुरू, मध्य एवं अंतिम तीनों स्थितियों में होता है। जैसे – ञ्याणा (बच्चा), संञाली (शाम का नाश्ता), संञ (शाम) आदि।

3. (य) – यह तालवी, अर्द्ध–व्यंजन, अल्पप्राण एवं सघोष ध्वनि है। स्वर रहित होने पर यह 'य्' की तरह प्रयोग होता है। डोगरी भाषा में इसका प्रयोग शुरू, मध्य एवं अंतिम तीनों स्थितियों में होता है। जैसे – यज्ञ, ञ्याणा, क्यास, लैय आदि।

4. (व) – यह दंत–होठी, अर्द्ध–व्यंजन, अल्पप्राण एवं सघोष ध्वनि है। स्वर रहित होने पर यह 'व्' की तरह प्रयोग होता है। डोगरी भाषा में इसका प्रयोग बहुत कम होता है। फिर भी यह शब्दों की शुरू, मध्य एवं अंतिम तीनों स्थितियों में प्रयोग होता है।

5. (ष) – डोगरी भाषा में यह ध्वनि सिर्फ़ तत्सम शब्दों में ही प्रयोग होती है। यह मूर्धन्य, संघर्षीय, अल्पप्राण एवं अघोष ध्वनि है। स्वर रहित होने पर यह 'ष्' की तरह प्रयोग होती है। डोगरी भाषा में इस ध्वनि का प्रयोग शब्द की मध्य स्थिति में ही होती है।

6. (ह) – इस वर्ण का प्रयोग डोगरी भाषा में दो प्रकार से होता है। 1. स्वरयंत्रमुखी, संघर्षीय, महाप्राण एवं सघोष ध्वनि के रूप में। यह प्रयोग कुछ गिने–चुने शब्दों जैसे – हा, ही, हे, हियां, पैहा, कैहा आदि में होता है। 2. डोगरी भाषा में 'ह' का ज़्यादातर प्रयोग सुर के लिए ही होता है। जब इसका प्रयोग स्वर सहित होता है, तो इसका उच्चारण स्वर की तरह एवं निम्नारोही सुर के तौर पर होता है। जैसे हार, होना, हाल, हत्थ आदि। परंतु जब इसका प्रयोग स्वर रहित होता है, तो इसके नीचे हलंत लगाया जाता है। यह स्वर की तरह उच्चावरोही सुर की तरह प्रयोग होता है। जैसे – बाह्, काह्, जाह् आदि।

7. (ढ़) – यह सुरात्मक मूर्धन्य, उत्क्षिप्त, अल्पप्राण एवं सघोष ध्वनि है। इस व्यंजन ध्वनि या वर्ण का प्रयोग मध्य एवं अंतिम स्थिति में होता है। जैसे – चढ़ना, पढ़ आदि।

8. (घ) – डोगरी भाषा में यह सुरात्मक एवं बहुध्वनि वर्ण है, जो भिन्न–भिन्न स्थितियों एवं स्वर संयोग के कारण अलग–अलग ढंग से उच्चरित होता है। देवनागरी लिपि में यह 'क' वर्ग का चौथा वर्ण है। शब्द की शुरूआती स्थिति में आने पर इसका उच्चारण हमेशा अपने वर्ग की पहली ध्वनि /क्/ निम्नारोही सुर में होता है। जैसे – घर, घाट, घराट आदि। मध्य एवं अंतिम स्थिति में इसका उच्चारण अपने वर्ग के तीसरे वर्ण /ग्/ उच्चावरोही सुर में होता है। जैसे – घघरा, खंघ आदि।

9. (झ) – डोगरी भाषा में यह सुरात्मक एवं बहुध्वनि वर्ण है, जो भिन्न–भिन्न स्थितियों एवं स्वर संयोग के कारण अलग–अलग ढंग से उच्चरित होता है। देवनागरी लिपि में यह 'च' वर्ग का चौथा वर्ण है। शब्द की शुरूआती स्थिति में आने पर इसका उच्चारण हमेशा अपने वर्ग की पहली ध्वनि /च्/ निम्नारोही सुर में होता है। जैसे – झारी, झंडा, झुंड आदि। मध्य एवं अंतिम स्थिति में इसका उच्चारण अपने वर्ग के तीसरे वर्ण /ज्/ उच्चावरोही सुर में होता है। जैसे – मझाटला, सांझ आदि।

10. (ढ) – डोगरी भाषा में यह सुरात्मक एवं बहुध्वनि वर्ण है, जो भिन्न–भिन्न स्थितियों एवं स्वर संयोग के कारण अलग–अलग ढंग से उच्चरित होता है। देवनागरी लिपि में यह 'ट' वर्ग का चौथा वर्ण है। शब्द की शुरूआती स्थिति में आने पर इसका उच्चारण हमेशा अपने वर्ग की पहली ध्वनि /ट्/ निम्नारोही सुर में होता है। जैसे – ढक्कन, ढोल, ढाबा आदि।

मध्य एवं अंतिम स्थिति में इसका उच्चारण अपने वर्ग के तीसरे वर्ण /ड्/ उच्चावरोही सुर में होता है। जैसे – कड्ढना, बड्ढ आदि।

11. (ध) – डोगरी भाषा में यह सुरात्मक एवं बहुध्वनि वर्ण है, जो भिन्न–भिन्न स्थितियों एवं स्वर संयोग के कारण अलग–अलग ढंग से उच्चरित होता है। देवनागरी लिपि में यह 'त' वर्ग का चौथा वर्ण है। शब्द की शुरूआती स्थिति में आने पर इसका उच्चारण हमेशा अपने वर्ग की पहली ध्वनि /त्/ निम्नारोही सुर में होता है। जैसे – धन, धंदा, धाम आदि। मध्य एवं अंतिम स्थिति में इसका उच्चारण अपने वर्ग के तीसरे वर्ण / द्/ उच्चावरोही सुर में होता है। जैसे – धांधली, बंध आदि।

12. (भ) – डोगरी भाषा में यह सुरात्मक एवं बहुध्वनि वर्ण है, जो भिन्न–भिन्न स्थितियों एवं स्वर संयोग के कारण अलग–अलग ढंग से उच्चरित होता है। देवनागरी लिपि में यह 'प' वर्ग का चौथा वर्ण है। शब्द की शुरूआती स्थिति में आने पर इसका उच्चारण हमेशा अपने वर्ग की पहली ध्वनि /प्/ निम्न. ारोही सुर में होता है। जैसे – भत्त, भांडा, भ्रा आदि। मध्य एवं अंतिम स्थिति में इसका उच्चारण अपने वर्ग के तीसरे वर्ण /ब्/ उच्चावरोही सुर में होता है। जैसे – सांभना, रंभ आदि।

13. (ज्ञ) – देवनागरी का यह संयुक्त व्यंजन ज्–ञ–अ के मेल से बना हुआ है। डोगरी में यह ग्–य्–अ के संयोजन के लिए प्रयुक्त होता है। डोगरी में यह ग्य एवं ज्ञ दोनों रूपों में प्रयोग होता है। जैसे–ज्ञान = ग्यान, आज्ञा = आग्या आदि।

14. (त्र) – यह संयुक्त व्यंजन त्–र्–अ का संयुक्त रूप है। डोगरी में इसका प्रयोग बहुत अधिक होता है। जैसे – त्रांबड़ी, त्रेल, त्रेह्, त्रामा, त्रक्कड़ी आदि।

15. (क्ष) – देवनागरी का यह संयुक्त व्यंजन क्–ष्–अ के मेल से बना हुआ है। इसका प्रयोग सिर्फ़ कुछ तत्सम शब्दों के लिए होता है। डोगरी में इसका प्रयोग क्–श्–अ के लिए होता है। इसके स्थान पर 'ख' या 'क्ख' का प्रयोग भी होता है। जैसे–रक्षा = रक्खेआ, भिक्षा = भिक्खेआ आदि।

16. (श्र) – देवनागरी का यह संयुक्त व्यंजन डोगरी में भी श्–र्–अ के मेल से बना हुआ है। इसका प्रयोग सिर्फ़ तत्सम शब्दों के लिए होता है। जैसे – श्री, श्रीमान, श्रीमती।

चिह्न

डोगरी भाषा में स्वर व्यंजनों के अलावा कुछ चिह्नों का भी प्रयोग होता है, जिनका प्रयोग निम्नलिखित परिवेश में होता है :

1- (') – यह अंग्रेज़ी का एपॉस्ट्रॉफ़ी कॉमा है। डोगरी भाषा में इसका प्रयोग निम्नारोही सुर को दर्शाने के लिए शिरोरेखा के बीच वर्णों के मध्य होता है, जैसे – कु'न, ब'रा आदि।

अंत में यह कहना गलत न होगा कि देवनागरी एक श्रेष्ठ लिपि है, जिसका प्रयोग भारत की बहुत–सी भाषाएँ कर रही हैं। यहाँ पर सिर्फ़ उन वर्णों की चर्चा की गयी है, जो डोगरी में हिंदी की तरह उच्चारित नहीं होते हैं। देवनागरी पूरी तरह वैज्ञानिक लिपि है। डोगरी भाषा के लिए यह उपयुक्त लिपि है। इसे अपनाकर डोगरी भाषा के विकास को एक नयी गति मिली है। इसका प्रचार एवं प्रसार क्षेत्रिय सीमाओं को तोड़कर देश के अन्य क्षेत्रों तक भी पहुँचा है ।

yash.dogri@gmail.com

हिंदी का ई-संसार और जन-माध्यम

8. रेडियो प्रसारण की भाषा - श्री अरुण कुमार पाण्डेय 'अभिनव अरुण'

9. ऑनलाइन शिक्षण : कोरोना संकट में आशा की एक किरण - श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'

10. ऑस्ट्रेलिया में हिंदी मीडिया - डॉ. जवाहर कर्नावट

11. कोरोना महामारी का दौर : ऑनलाइन हिंदी-शिक्षण की युक्तियाँ - श्रीमती ए. राधिका

12. हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में वेब मीडिया की भूमिका: हिंदी ब्लॉग्स के विशेष संदर्भ में - डॉ. मनीषा शर्मा

13. प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आगे बढ़ती हिंदी - श्री श्याम सुंदर कथूरिया

14. हिंदी के विस्तार में तकनीक और संचार की संस्कृति - डॉ. कुमार भास्कर

15. डिजिटल मीडिया में हिंदी और वैश्विक बाज़ार - डॉ. संजय सिंह बघेल

16. न्यू मीडिया की नज़र से हिंदी समाचार-पत्रों पर कोविड-19 का प्रभाव - डॉ. शैलेश शुक्ल

रेडियो प्रसारण की भाषा

– श्री अरुण कुमार पाण्डेय 'अभिनव अरुण'
वाराणसी, भारत

भारतीय चिन्तन परम्परा में जगत में जीव–जन्तुओं की उत्पत्ति के साथ–साथ उनकी अभिव्यक्ति क्षमता एवं माध्यम को दैवी कृपा माना गया है। वाणी द्वारा अभिव्यक्ति दो भागों में विभक्त मानी जाती है, 'परा वाक्' एवं 'अपरा वाक्'। हम जिस माध्यम का प्रयोग करते हैं, वह 'अपरा वाक्' है। हम जो भी देखते, सुनते, महसूस करते उसकी अभिव्यक्ति अथवा उसके सम्प्रेषण के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। मनुष्य ही नहीं समस्त जीवों की अपनी भाषा–बोली होती है। भाव–भंगिमाओं, संकेतों और भाषा के प्रयोग से सम्प्रेषण कालान्तर में सहज और सटीक होता गया है। आज भाषा सूचना, शिक्षा और मनोरंजन की ताकतवर माध्यम है।

सूचना क्रांति के विस्फोट के युग में लिखित माध्यम अथवा पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तकों ने ही नहीं वरन् रेडियो, टेलीविजन और अब अंतरजाल सुविधा युक्त मोबाइल ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन सब में रेडियो प्रसारण कई अर्थों में भिन्न है। एक ओर जहाँ टेलीविजन अथवा कोई भी दृश्य माध्यम चाहे वह मोबाइल ही क्यों न हो, वह आपका सम्पूर्ण ध्यान चाहता है, जबकि आप रेडियो प्रसारण से अपने अन्य उपक्रमों में रत रहते हुए भी इसका लाभ ले सकते हैं। इससे जुड़े रह सकते हैं। आज एफ़.एम. चैनल आ जाने से और इसकी मोबाइल पर उपलब्धता सुलभ होने के कारण रेडियो प्रसारण की उपयोगिता बढ़ी है। पारंपरिक प्रसारण पद्धति से इतर आज एफ़.एम. चैनल मनोरंजन के साथ–साथ 'टू–वे' संपर्क का ज़रिया बन गए हैं और इनके आने से दैनंदिन जीवन के कई काम आसान से हो गए लगते हैं।

आज भाषा को लेकर चर्चा ज़ोरों पर है। दरअसल एक होते हुए भी हर माध्यम की अपनी अलग अभिव्यक्ति प्रक्रिया होती है, उसके अलग मानक होते हैं। एक अहम् तथ्य यह है कि भाषा परिवर्तनशील है और उसके बदलाव व निर्माण की एक सतत प्रक्रिया है। तमाम प्रसारण अथवा जनसंपर्क के माध्यम समाज के अंग हैं। इनमें कार्य करने वाले यानी इनकी सामग्री परोसने वाले भी समाज से ही आते हैं, हाँ वे भाषा व्याकरण और चेतना के स्तर पर परिष्कृत एवं विशुद्ध हों ऐसी अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार किसी भी माध्यम की भाषा उस दौर की भाषा होती है। निःसंदेह सत्तर की जिस भाषा में प्रसारण अथवा रिपोर्टिंग होती थी, वह भाषा आज बहुत हद तक बदल गई है। साहित्य ने भी भारतेंदु, खत्री, प्रसाद, प्रेमचंद से लेकर आज के दौर के अपने परिवर्तन और अपनी स्थापना यात्रा पूरी की है।

रेडियो वाचिक परम्परा का माध्यम

रेडियो वाचिक परम्परा का साधन और माध्यम है। उच्चारण की भाषा और लेखन की भाषा में भिन्नता समझना आवश्यक है। बोलने में हम किसी भी शब्द को इस प्रकार उच्चरित करते हैं कि वह आकर्षक हो, मन मोह ले। गायक भी लिखे हुए गीत–ग़ज़ल ही गाता है, किन्तु वह लिखे हुए को पढ़ने से अधिक आनंददायक होता है। उद्घोषणा या आर.जे. का कार्य भी ठीक इसी प्रकार है। भाषा को लेकर जब चर्चा की जाती है, तो यह बात महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि रेडियो सुनने के लिए किसी विशेष योग्यता की यहाँ तक कि अक्षर–ज्ञान की भी आवश्यकता नहीं होती। आज सामाजिक परिवर्तन के दौर में रेडियो मास यानी एक बड़े समूह के सूचना – मनोरंजन का माध्यम है। इसलिए रेडियो प्रसारण की भाषा सहज ग्राह्य होनी चाहिए। यह समझने की बात है कि जो कुछ नहीं जानता हम उसे रेडियो के माध्यम से वह बात नहीं बता सकते और जो सब कुछ जानता है वह भला रेडियो सुनेगा ही क्यों? इस प्रकार रेडियो–प्रसारण इन दोनों वर्गों के बीच के श्रोता वर्ग के लिए होता है। एफ़.एम. चैनलों पर तो कम किन्तु आकाशवाणी के कई कार्यक्रम विशेष श्रोता वर्ग के लिए होते

हैं। जैसे महिलाओं के लिए, बच्चों के लिए, युवाओं–कामगारों–किसानों–ग्रामीणों के लिए अलग–अलग कार्यक्रम होते हैं। इस प्रकार भाषा का निर्धारण आसान हो जाता है। हम हिंदी के किसी साहित्यिक कार्यक्रम की भाषा में युवाओं और बच्चों के लिए कार्यक्रम नहीं प्रस्तुत कर सकते हैं। एक और बात महत्त्वपूर्ण है कि दृश्य श्रव्य माध्यम तात्कालिक रूप से विषय स्थापना में अधिक सशक्त सिद्ध होता है। यही बात पढ़े जाने के माध्यम में भी है। व्यक्ति समझने तक किसी अंश विशेष को बार–बार पढ़ सकता है। लेकिन रेडियो में एक बात एक बार ही बोली जाती है और बोले हुए वाक्य बस एक बार सुने जाते हैं। अतः यहाँ तदनुरूप भाषा का होना और प्रभावी सम्प्रेषण क्षमता का होना अनिवार्य हो जाता है। रेडियो की अपनी कमियाँ हैं, तो एक बड़ा लाभ भी है, वह है श्रोताओं में असीम कल्पना और सृजन–शक्ति के विकास और निर्माण का माध्यम बनता है रेडियो। एक ही प्रसारण का भिन्न–भिन्न स्तर पर प्रभाव और उसकी ग्राह्यता होती है। सुने जाने में कल्पना–क्षमता का उत्कृष्ट प्रयोग इसे अनूठा बनाता है।

आम फहम की भाषा

रेडियो की भाषा निःसंदेह जन भाषा होनी चाहिए किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि रेडियो प्रसारक भाषा और इसके व्याकरण के प्रति सजग न रहे। संचार माध्यम समय और समाज के भाषा संस्कार निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक पीढ़ी जो सुनती, पढ़ती और देखती है, वही उसकी खुद की बोली भाषा बनती जाती है। अशुद्ध उच्चारण, गलत व्याकरण और विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण या कुछ हिंग्लिश–सी खिचड़ी पका देने से हम तात्कालिक रूप से मनोरंजन के कारक बन सकते हैं। किन्तु इसे कदापि सही नहीं ठहराया जा सकता। आज इसी कूट–सी, अशुद्ध–सी भाषा के कारण लिखने, पढ़ने की प्रवृत्ति में ह्रास आया है। यदि हम ठीक–ठाक हिन्दुस्तानी ज़बान में भी बात करें अथवा लिखें, तो लोग आश्चर्य करते हैं और व्यक्ति को किताबी तक ठहरा देते हैं। नई हिंदी का चलन चल पड़ा है, किन्तु इसके पक्षधर वही लोग हैं, जो भाषा व्याकरण को लेकर संजीदा नहीं। तात्कालिक लाभ के लिए 'कुछ भी करने–शॉर्टकट' लेने के आदी हैं।

बोलने के लिए सुनना ज़रूरी

जिस प्रकार एक अच्छा लेखक बनने के लिए एक अच्छा पाठक होना चाहिए, उसी प्रकार एक अच्छा वक्ता बनने के लिए अच्छा श्रोता बनना अनिवार्य है। हमें अपने क्षेत्र विशेष के रहन– सहन, परम्परा से भिज्ञ होना चाहिए। हमारी बोली हमारे श्रोता वर्ग में पैठ बनाए इसके लिए अपनी विशिष्ट शैली यानी अंदाज़ पर ध्यान देना भी ज़रूरी है। हमारी भाषा के साथ–साथ हमारा सामान्य ज्ञान भी अद्यतन हो, इसके नियमित तौर पर पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन आवश्यक है। इससे परोक्ष भाषा संस्कार भी बनते जाते हैं। एक समय अमीन सायानी, मनोहर महाजन, किशन शर्मा, ब्रजभूषण, कमल शर्मा जैसे रेडियो उद्घोषकों की जगह हर दिल में थी। अमीन सायानी को सुनते हुए कितने खुद उन–सा बोलने का अभ्यास मात्र करते–करते अच्छे एनाउंसर बन गये। एक अंतर आया है और वह बड़ा है, आज हम सुनते नहीं। यह कहना अनुचित न होगा कि आज रेडियो में करियर को भी लोग आजीविका का साधन मात्र मानते हैं, जबकि यह परफोर्मिंग आर्ट है। विशुद्ध वैयक्तिक कला। विश्वविद्यालयों में या किसी प्रशिक्षण संस्थान में हम भाषा, व्याकरण, स्किल, टिप्स बता सकते हैं, मशीनों और सॉफ़्टवेयर का प्रयोग समझा सकते हैं, किन्तु माइक ऑन होने पर एनाउंसर या आर.जे. का निजी हुनर ही बोलेगा और काम आएगा। अभ्यास से इसे निखारा जा सकता है। आज विशेषकर एफ़.एम. पर मिमिक्री, बनावटीपन, हरियाणवी–पंजाबी– अंग्रेज़ी मिश्रित हिंदी का चलन बढ़ा है। यह विशुद्ध मनोरंजक है, लोकप्रियता भी इससे मिलती है, किन्तु इसमें स्थायित्व नहीं इसका हमें ख़याल रखना चाहिए। विशेषकर विश्वविद्यालयों में निर्मित हो रही पीढ़ी, जो संचार माध्यमों में अपना करियर बनाने को इच्छुक है, उसे इस व्यामोह के वातावरण में अपनी सांस्कृतिक–सामाजिक ज़िम्मेदारियों का भी एहसास होना चाहिए। किसी रेडियो शो को लोकप्रिय बनाने मात्र के उद्देश्य से हम किसी व्यक्ति विशेष को उद्वेलित करके उसे ही 'बकरा' नहीं बनाते, बल्कि हम आने वाले समय के साथ और खुद के साथ भी छल कर रहे होते हैं।

अपने श्रोता वर्ग को समझें

यदि बतौर प्रसारक हम अपने प्रसारण माध्यम, उद्देश्य,

विषयवस्तु और अपनी टारगेट ऑडीयेंस को समझते हैं, तो भाषा का निर्धारण सहज हो जाता है। वास्तव में, प्रसारक की भाषा उसके संस्कार और आचरण का हिस्सा होना चाहिए। सहजता ही ग्राह्यता की पहली सीढ़ी है और इसी में सम्प्रेषण की सफलता भी। हमें साहित्य कला पठन–पाठन में अभिरुचि जागृत करनी चाहिए। यदि हम ऐसा कर पाने में समर्थ हुए, तो हमें अलग से भाषा को लेकर सचेत होने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। हम स्वयमेव प्रभावी एवं आकर्षक भाषा और लहज़े के स्वामी होंगे और सफल प्रसारक भी। प्रसारण की भाषा निःसंदेह सामने वाले अथवा श्रोता पर अपना प्रभाव जमाने के लिए नहीं, अपनी विद्वता के प्रदर्शन के लिए भी नहीं बल्कि स्वयं को मित्रवत बनाने के अनुरूप होनी चाहिए। हमारी बोली, हमारे लहज़े में मिठास हो, अपनापन हो और यह तभी होगा जब भाषा का संस्कार मज़बूत होगा और हमारे भीतर आत्मविश्वास होगा। हमें किताबी अथवा बनावटी भाषा लहज़े से बचना चाहिए। ध्यातव्य है, हम मात्र प्रसारक नहीं होते, वरन समाज के भावी भाषा–संस्कार के माध्यम भी होते हैं। इस नाते हमारी ज़िम्मेदारी अधिक होती है। हमें फ़ीडबैक भी लेते रहना चाहिए कि अपने चैनल पर और अन्य चैनलों के उद्घोषकों के बीच हमारा स्थान श्रोताओं के दिलों में कितना है? हम अपनी आलोचनाओं से कितना सीख पाते हैं? प्रतियोगिता को स्वस्थ मन मानस से स्वीकारते हैं कि नहीं? यह बातें महत्त्वपूर्ण हैं। हमें दूसरों को सुनना चाहिए और अपने रिकॉर्डेड कार्यक्रम को भी। तभी हम अपने में निरंतरता से निखार लाने में समर्थ होंगे। कभी किसी की नकल न करें। भाषाई पकड़, मधुरता, अपनापन और प्रभावी वाचन के ज़रिये आप अपनी शैली विकसित करें। इस प्रकार यदि धीरे–धीरे भी आगे बढ़ते हैं, तो यह पहचान आपकी अपनी होगी और स्थायी भी। आपको अपनी आवाज़ से, अपने काम से प्यार होना चाहिए, जुनून की हद तक। एक मीडिया कर्मी की तरह एक उद्घोषक अथवा आर.जे. की नौकरी भी चौबीस घंटे की होती है। आपको हर घड़ी सचेत और अपने आसपास के घटनाक्रम के प्रति सजग और ग्राह्य होना चाहिए। किसी भी विषय पर बात करने के लिए सामान्य ज्ञान अपेक्षित है। यह पत्र–पत्रिकाओं के अधिकाधिक पठन–पाठन से संभव है। इस विधि से स्वयमेव भाषा का संस्कार विकसित होगा और आपका शब्द–भण्डार समृद्ध होगा।

क्षेत्रीय प्रभावों से मुक्ति अपेक्षित

यह सत्य है कि हर क्षेत्र की अपनी बोली होती है। यहाँ तक कि इसका खड़ी बोली में बोलने पर प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। आप पंजाब के व्यक्ति की हिंदी सुनें, बिहार के व्यक्ति की सुनें और बंगाल के व्यक्ति की सुनें, प्रत्येक में उस क्षेत्र की बोली का असर दिखाई पड़ता है। किन्तु एक अच्छे प्रसारक को स्वयं को इस दोष से मुक्त करना होता है। आपके बोलने का टोन पंजाबी, हरियाणवी, भोजपुरी अथवा बांग्ला भाषा आदि के क्षेत्रीय प्रभाव से मुक्त हो यह प्रयास करना चाहिए। कला साधना है, किन्तु यह साधना ही आपको तराशती है और समाज में आपका विशिष्ट स्थान बनता है।

खतरा भाषा पर नहीं शुद्धता पर

हिंदी बाज़ार और इसके अर्थशास्त्र की भाषा है। मूल चिंता इस पर खतरों की नहीं, बल्कि चिंता देवनागरी की है, उसके शुद्ध और व्याकरण सम्मत स्वरूप की है। हमें एफ़.एम. प्रसारण से कोई उज्र नहीं वरन् यह स्वीकारने में संकोच नहीं कि इस माध्यम से रेडियो को पुनर्जीवन मिला है, परन्तु साथ–ही–साथ हम जैसे भाषा के प्रति सु–आग्रह ग्रस्त प्रसारकों की चिंता भविष्य को लेकर है। अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बिना भाषा संस्कार बिगाड़े भी हम रेडियो की भाषा को रोचक, मनोरंजक और प्रभावपूर्ण बना सकते हैं और इस माध्यम का हित एवं स्थायित्व इसी में होगा।

प्रकाशन और प्रसारण की भाषा में भिन्नता

व्यावहारिकता के धरातल पर बात करें, तो प्रकाशन और प्रसारण की भाषा में अंतर होना चाहिए। बोलचाल में जिस प्रकार हम अनेक साहित्यिक तथा क्लिष्ट शब्दों एवं किताबी भाषा का प्रयोग नहीं करते, उसी प्रकार हमें रेडियो पर बोलते समय भी उन शब्दों और वाक्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिन्हें जानने–समझने के लिए समय देना पड़े या शब्दकोश का सन्दर्भ लेना पड़े। 'अन्योनाश्रित', 'प्रत्युत्पन्नमति', 'प्रतिद्वंद्वी', 'अन्वेषण', 'गवेषणात्मक', 'अन्तर्निहित', 'अवलोकनार्थ' आदि शब्द लिखे ही अच्छे लगते हैं। इसी प्रकार अनेक शब्दों के संक्षिप्त रूप समाज में प्रचलित होते हैं, जैसे 'यू.एस.ए.', 'डी.एल.डब्ल्यू.' और 'एस. बी.आई.' आदि, लेकिन जब हम बोलने के माध्यम में हैं, तो हमें

शब्द के पूरे रूप का प्रयोग करना चाहिए। यह इसलिए भी कि संभव है कुछ श्रोता डी.एल.डब्ल्यू. का अर्थ डीजल लोकोमोटिव वर्क्स यानी डीजल रेल कारखाना न जानते हों। हमें कई पारंपरिक प्रयोगों मसलन जैसा कि कहा गया है, 'ध्यातव्य है कि', 'उपरोक्त', 'क्रमशः', 'निम्नलिखित' एवं 'अनुस्मारक स्मृति–विस्मृति' जैसे शब्दों के प्रयोग से भी बचना चाहिए। 'द्वारा', 'यथा', 'तथा' व 'एवं' जैसे तमाम शब्दों का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए। 'सरकार द्वारा' के लिए 'सरकार ने', 'यथा' के लिए 'जैसे' और 'तथा', 'व' और 'एवं' के लिए मात्र 'और' का प्रयोग उद्घोषक अथवा वाचक या आर.जे. को करना चाहिए। जैसा कि पूर्व में लिखा गया है, रेडियो कोई किताब नहीं, न समाचार–पत्र है, जिसे बार–बार पढ़ा जा सके। न ही यह ऐसा माध्यम है, जिसमें रिकॉर्डिंग श्रोता के पास हो और वो इसे बार–बार सुन सके। इस माध्यम में श्रोता बात को एक बार ही सुनता और उसी एक बार में उसे समझ जाना होता है। इसलिए एक अच्छे प्रसारक के वाक्य छोटे और सरल होने के साथ उसकी आवाज़ की अदायगी रोचक और प्रभावी होनी चाहिए। भाषा को बोधगम्य और सरल होना चाहिए किन्तु स्वरूप एवं व्याकरण के निकष पर गलत कदापि नहीं। ध्यान रहे आपके श्रोता वर्ग में हर तबके और आयु वर्ग के लोग सम्मिलित होते हैं।

भाषा कार्यक्रम की प्रकृति के अनुरूप हो

रेडियो की भाषा में प्रचलन के उर्दू अथवा अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग से कोई गुरेज़ नहीं, किन्तु यह सर्वथा कार्यक्रम की प्रकृति के अनुरूप हो। जैसे भजनों के कार्यक्रम या आध्यात्मिक प्रस्तुतियों के लिए हम अंग्रेज़ी–उर्दू के शब्दों का प्रयोग न करें तो बेहतर। एक उदाहरण से इसे समझें – आपको 'उधो करमन की गति न्यारी' भजन प्रसारित करना है और आप कम्पीरिंग अथवा भूमिका में 'ऊपर वाले का इन्साफ़ अजूबा है हर शख्स अपने काम के मुताबिक ही उसका सिला पाता है' लिखते हैं, तो यह तार्किक रूप से भले न गलत हो, पर यह प्रस्तुति अनुकूल नहीं। इसके स्थान पर 'नियंता का न्याय अनुपम है, प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही प्रतिफल पाता है।' इसी प्रकार जब हम फ़िल्मों के गीत प्रसारित करें, तो हमें हलके–फुलके लहज़े में अपनी बात संक्षेप में कहनी चाहिए। बच्चों के लिए, महिलाओं के लिए, किसानों के लिए, विद्यार्थियों के लिए जब कार्यक्रम प्रस्तुत करें, तो हमें उनके स्तर पर आकर अपनी बात कहनी चाहिए। यह आपको अपने श्रोता से कनेक्ट करने में मददगार होता है।

उच्चारण की शुद्धता

एक अन्य बात महत्त्वपूर्ण है कि अंग्रेज़ी और उर्दू के कई शब्दों के उच्चारण हमारी हिंदी परम्परा से थोड़े अलग हैं। जैसे अंग्रेज़ी में 'फोन' नहीं 'फ़ोन' है, 'जेब्रा' नहीं 'ज़ेब्रा' है। उसी प्रकार उर्दू में 'गजल' नहीं 'ग़ज़ल' है, 'फायदा' नहीं 'फ़ायदा' है, 'जाया होना' और 'ज़ाया होना' में अर्थ का भेद है, यह अर्थ भेद 'जलील' और 'ज़लील' में भी है, 'शबाब' और 'सवाब' में भी। 'गम' अंग्रेज़ी में 'गोंद' को कहते हैं, जबकि यही 'ग़म' यानी 'ग' में नुक्ता लग जाने पर 'ग़म' = 'दुख' हो जाता है। हिंदी में कमर शरीर का अंग है, जबकि यही क में नुक्ता लग जाने पर 'क़मर' यानी 'चाँद' हो जाता है। 'शरीर' और 'सरीर' के अर्थ में भेद है। इस प्रकार अनेक शब्द हैं, जिनका अशुद्ध उच्चारण अर्थ का अनर्थ कर सकता है। इसलिए हम जब भी बोलचाल के इन लोकप्रिय अंग्रेज़ी–उर्दू शब्दों का प्रयोग करें, तो उसके शुद्ध वाचन को जान लें और उसका अभ्यास कर ही प्रयोग में लाएँ। ख़तरा सिर्फ़ अंग्रेज़ी और उर्दू के 'ज, ज़, फ, फ़, ग, ग़, क, क़, ख, ख़' को लेकर ही नहीं बल्कि हिंदी के 'स, श, ष' के उच्चारण को लेकर भी है। उच्चारण की शुद्धता रेडियो वाचन–प्रसारण में वांछित ही नहीं अनिवार्य है।

मानकों का ध्यान आवश्यक

भाषा में मानकों का ध्यान रखना ज़रूरी होता है। वर्तनी, लिपि व्याकरण एवं उच्चारण के मानकों का निर्धारण ही नहीं उनका अनुपालन नितांत आवश्यक है। हिंदी की विशिष्टता है, इसे जैसा लिखते हैं, वैसा ही बोलते हैं। इसलिए यदि हम शुद्ध लिखना जानते हैं, तो शुद्ध बोलने का कार्य आसान हो जाता है। अतः भाषा, वर्तनी, व्याकरण का ज्ञान ज़रूरी हो जाता है। शुद्ध प्रभावी बोलने से श्रोताओं के मन मानस में उद्घोषक कहा हुआ अंकित होता जाता है। रेडियो एक श्रव्य माध्यम है, इसमें कल्पना की असीम संभावना निहित होती है। अक्सर हमें रूपकात्मक, चित्रात्मक अभिव्यक्ति सिर्फ़ बोले जाने द्वारा करनी होती है। जब हम फ़ीचर अथवा रूपक, आँखों देखा हाल, कोई कविता

या कहानी का वाचन कर रहे होते हैं, तो उस भाव को अनुभव कर बोलना होता है। श्रोता अप्रत्यक्ष रूप से हमारे बोले गए शब्द के साथ हमारी अनुभूति का भी अनुपान करता है। सीधे तौर पर अपनी बात कहें, जैसे 'ज़िलाधिकारी वाराणसी' के स्थान पर 'वाराणसी के ज़िलाधिकारी' कहना समीचीन होगा। 2.38 लाख बोलना हो, तो 'दो दशमलव तीन आठ लाख' के स्थान पर 'दो लाख अड़तीस हज़ार' बोलना चाहिए। रेडियो में भी सूचना, विज्ञापन, स्पॉट, जिंगल, वार्ता, रूपक सबकी भाषा में थोड़ी–थोड़ी भिन्नता है। अतः हमें कंटेंट और उसके उद्देश्य के प्रति सजग रहते हुए भाषा का चयन करना चाहिए।

सत्य बोलें, प्रिय बोलें

प्रसारण में किसी जाति, वर्ग, धर्म, समूह को बुरा लगे ऐसा नहीं बोलना चाहिए। प्रचलित उक्ति है ''सत्यम् ब्रूयात, प्रियम् ब्रूयात, न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम''। यानी सत्य बोलें, प्रिय बोलें किन्तु अप्रिय सत्य न बोलें। किसी व्यावसायिक उत्पाद का प्रचार हो ऐसा भी नहीं बोलना चाहिए, यथा हमें 'साबुन से नहाना और हाथ धोना चाहिए' बोलना उचित है न कि 'हमें डेटौल से नहाना चाहिए'। हमें अपने राष्ट्र एवं शासन के अनुरूप ही नीतिगत बातों पर बोलना चाहिए। शत्रु–मित्र देशों का भान हमें हमेशा रखना चाहिए। अश्लील वीभत्स भाषा, अपुष्ट एवं अफ़वाह आधारित ख़बरों–सूचनाओं का समावेश वाचन में नहीं करना चाहिए। साथ ही साथ न्यायालय में चल रहे मामलों पर भी अपनी अलग से राय नहीं रखनी चाहिए। प्रसारक की भूमिका पक्षकार की नहीं बल्कि तटस्थ होनी चाहिए। आजकल अनेक टीवी चैनलों पर चिल्ला–चिल्ला कर बहस के संचालन की नई प्रवृत्ति विकसित हुई है, किन्तु इसका समर्थन कदापि नहीं किया जा सकता। उद्घोषक एवं आर.जे. अपनी शैली विकसित करें, किन्तु इन तमाम बातों का ध्यान रखें। अनुशासन के दायरे में रहकर ही दीर्घकालिक और स्थायी सफलता पाई जा सकती है।

arunkrpnd@gmail.com

ऑनलाइन शिक्षण : कोरोना संकट में आशा की एक किरण

– श्री रोहित कुमार 'हैप्पी'
न्यूज़ीलैंड

अर्थव्यवस्था और सामाजिक जीवन के अतिरिक्त कोरोना वायरस से शिक्षा–व्यवस्था सर्वाधिक प्रभावित हुई है। प्राथमिक पाठशाला से लेकर उच्च स्तरीय शैक्षणिक संस्थानों में और पठन–पाठन का भविष्य अनिश्चितता के दौर से गुज़र रहा है। जब से कोरोना की महामारी ने विश्व को अपनी चपेट में लिया है, विश्वव्यापी तालाबंदी का एक नया दौर चल रहा है। हमारा संपूर्ण सामाजिक ढांचा कोविड–19 (कोरोना) से बुरी तरह प्रभावित हुआ है।

पुरानी कहावत है – 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।' जब हर जगह तालाबंदी हो, तब भी मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो आवश्यक है। यूँ तो 'ऑनलाइन शॉपिंग' दशकों से चल रही है, लेकिन तालाबंदी के समय इसके उपयोग की गति को जैसे पंख लग गए। दैनिक जीवन की आपूर्ति के लिए अब और विकल्प था भी क्या? वर्तमान परिस्थितियों ने 'ऑनलाइन शॉपिंग' को नया बाज़ार दिया। जब लोग बाहर जाकर खरीदारी करने में असमर्थ थे, तो 'ऑनलाइन शॉपिंग' का विकल्प अपनाना स्वाभाविक था।

वैश्विक स्तर पर इस महामारी ने उपभोक्ताओं के व्यवहार और तरीके परिवर्तित कर दिए हैं। जीवन भर कभी ऑनलाइन खरीदारी न करने वाले लोगों को भी 'ऑनलाइन' खरीदारी करने पर विवश होना पड़ा। अनेक विकसित देशों में पूर्ण तालाबंदी के समय नागरिकों के पास 'ऑनलाइन' के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष न था। कुछ दिनों की बात हो तो अलग है, लेकिन यदि यह लंबे समय तक यों ही रहने वाला हो, तो दूरगामी योजनाएँ बनानी होंगी। नए विकल्प और मार्ग खोजने होंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन तो चेतावनी दे चुका है कि कोरोना वायरस शायद स्थायी हो। स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार, महामारी के शांत होने के बाद भी, कोरोनो के संक्रामक रोगों की सूची में सम्मिलित होने की संभावना है। हो सकता है, यह आने वाले दशकों तक बना रहे।

ओ.एम.आर.एफ़. (OMRF) के अध्यक्ष स्टीफ़न प्रेस्कॉट ने कहा "ऐसा लग रहा है कि कोविद–19 यहाँ लंबी दौड़ के लिए होगा"। ओक्लाहोमा मेडिकल रिसर्च फ़ाउंडेशन (ओ.एम.आर.एफ़.) एक स्वतंत्र, गैर–लाभकारी जैव चिकित्सा अनुसंधान संस्थान है। 1946 में स्थापित, ओ.एम.आर.एफ़. (OMRF) मानव रोग के लिए अधिक प्रभावी उपचार को समझने और विकसित करने के लिए समर्पित है। विश्व भर के स्वास्थ्य संगठनों द्वारा कोरोना के संदर्भ में गम्भीर वक्तव्य आने पर, पूरा विश्व इस महामारी के उपचार ढूँढने और साथ ही जीवन यापन के नए विकल्प खोजने में लग गया।

शिक्षा का क्षेत्र भी इस महामारी से बुरी तरह प्रभावित हुआ है। शैक्षणिक संस्थान बंद हैं, सामान्य कक्षाएँ संभव नहीं, परीक्षाएँ किस प्रकार हों – इस तरह की अनेक समस्याएँ आ रही हैं। विश्व भर में अधिकतर संस्थान ऑनलाइन शिक्षा पद्धति को अपना रहे हैं।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में विस्तृत रूप से ऑनलाइन शिक्षण एक नया प्रयोग है। भारत के लिए यह एक बड़ी चुनौती है। शिक्षण को क्रियाशील रखने के लिए 'ऑनलाइन शिक्षण पद्धति' से कोरोना संकट में एक आशा बंधती है।

भारत के शिक्षा मंत्री माननीय डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने इस वर्ष जुलाई में नई दिल्ली में ऑनलाइन माध्यम से डिजिटल शिक्षा पर 'प्रज्ञाता' (पी.आर.ए.जी.वाई.ए.टी.ए.) दिशा–निर्देश जारी किए। इस कार्यक्रम में शिक्षा राज्य मंत्री माननीय श्री संजय धोत्रे भी ऑनलाइन माध्यम से उपस्थित रहे।

माननीय शिक्षा मंत्री ने इस अवसर पर कहा कि कोविड–19

महामारी की वजह से सभी स्कूल बंद हैं और इससे देश भर के स्कूलों में नामांकित 240 मिलियन से अधिक बच्चे प्रभावित हो रहे हैं। स्कूलों के इस तरह आगे भी बंद रहने से बच्चों को सीखने के मौकों की हानि हो सकती है। शिक्षा पर महामारी के प्रभाव को कम करने के लिए स्कूलों को न केवल अब तक पढ़ाने और सिखाने के तरीके को बदलकर फिर से शिक्षा प्रदान करने के नए मॉडल तैयार करने होंगे, बल्कि घर पर स्कूली शिक्षा और स्कूल में स्कूली शिक्षा के एक स्वस्थ मिश्रण के माध्यम से बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की एक उपयुक्त विधि भी पेश करनी होगी।

इससे पहले अप्रैल में भी डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने देश में कोरोना वायरस 'कोविड–19' के प्रकोप से उपजे संकट को देखते हुए ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 'भारत पढ़े ऑनलाइन' कार्यक्रम के अंतर्गत लोगों से सुझाव माँगे थे। इस अभियान का उद्देश्य भारत में डिजिटल शिक्षा के लिए उपलब्ध प्लेटफ़ॉर्म को और बढ़ावा देना तथा देशभर के बुद्धिजीवियों से इसे और उत्कृष्ट बनाने एवं इसमें आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए सुझाव लेना था।

ऑनलाइन शिक्षा व डिजिटल तकनीकों का उपयोग करते समय विद्यार्थियों को अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता है। सरकार के दिशा–निर्देश छात्रों, शिक्षकों, अभिभावकों व शैक्षणिक संस्थानों को ऑनलाइन सुरक्षा विधियों को सीखने में हितकारी हो सकते हैं। कुछ सुझाव इस प्रकार हैं :

* शैक्षणिक मूल्यांकन की ज़रूरत
* ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा की योजना बनाते समय कक्षा के हिसाब से सत्र की अवधि, स्क्रीन समय, समावेशिता, संतुलित ऑनलाइन और ऑफ़लाइन गतिविधियों आदि से सरोकार
* हस्तक्षेप के तौर–तरीके जिनमें संसाधन अवधि, कक्षा के हिसाब से उसका वितरण आदि शामिल हैं
* डिजिटल शिक्षा के दौरान शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती
* साइबर सुरक्षा को बनाए रखने के लिए सावधानियों और उपायों सहित साइबर सुरक्षा और नैतिकता।
* विभिन्न पहलों के साथ सहयोग और सम्मिलन किया जाना।

लंबे समय तक डिजिटल उपकरणों के उपयोग के कारण बच्चों को अत्यधिक तनाव होने की संभावना रहती है। इसके अनेक दूरगामी नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं, जिनमें कमर दर्द, नेत्र रोग और अन्य शारीरिक समस्याएँ सम्मिलित हैं। साइबर सुरक्षा के संबंध में भी अधिक जानकारी उपलब्ध करवाने की आवश्यकता है कि हम ऑनलाइन किस प्रकार सुरक्षित रहें।

यूनेस्को के अनुसार, महामारी के प्रसार को रोकने के प्रयास में दुनिया भर की अधिकांश सरकारों ने अस्थायी रूप से शिक्षण संस्थानों को बंद कर दिया है।

ये देशव्यापी बंद दुनिया की 60% से अधिक विद्यार्थियों को प्रभावित कर रहे हैं। यूनेस्को स्कूल बंद होने के तात्कालिक प्रभाव को कम करने के लिए, विशेष रूप से अधिक कमज़ोर और वंचित समुदायों के लिए और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से सभी के लिए शिक्षा की निरंतरता को सुविधाजनक बनाने के अपने प्रयासों का समर्थन कर रहा है।

भारत में सिविल सेवा परीक्षा और आई.आई.टी., मेडिकल कॉलिजों के लिए तैयारी कराने वाले कोचिंग संस्थान भी 'ऑनलाइन शिक्षण के विकल्प' जुटाने में प्रयासरत हो चुके हैं। इसके पर्याप्त कारण भी हैं, क्योंकि यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता परिस्थितियाँ कब तक सामान्य होंगी? सामान्य होंगी भी, तो शारीरिक दूरी कितने समय तक आवश्यक रहेंगी? भारत के अनेक 'कोचिंग सेंटर' अपनी कक्षाओं में क्षमता से भी अधिक विद्यार्थियों को भर्ती करते रहे हैं। एक ही कक्षा में अनेक विद्यार्थी होते हैं। दिल्ली जैसे महानगरों में तो 'कोचिंग' लेने वाले युवाओं के निवास भी भरे रहते हैं। एक–एक कमरे में कई लोग रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि सावधानी न रखी गई, तो उसके बुरे परिणाम हो सकते हैं। तेज़ी से संक्रमण फैल सकता है। रहने के तौर–तरीकों में भी बदलाव की आवश्यकता होगी और नागरिकों को स्वास्थ्य व सामाजिक जीवन के प्रति अधिक सजग होना होगा।

इस महामारी के कारण भविष्य में शिक्षण संस्थानों के संचालन के तौर–तरीकों में मौलिक परिवर्तन आने की संभावना है। भारत की नई शिक्षा नीति 2020 में भी इसका प्रभाव स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

पिछले कुछ महीनों में जैसे–जैसे ऑनलाइन शिक्षा की गतिविधि आगे बढ़ी, कई नई चुनौतियाँ भी सामने आईं। बहुत से लोग ऑनलाइन उपकरणों का उपयोग करना सीख रहे हैं। शैक्षणिक संस्थाएँ, बुद्धिजीवी व साहित्यकार ई–संगोष्ठियाँ व वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग कर रहे हैं। उनके बीच ऑनलाइन का चलन बढ़ा है। ऑनलाइन 'कवि–सम्मेलन' का एक नया अध्याय आरंभ हुआ है। पुरानी पीढ़ी के साहित्यकार भी ऑनलाइन जुड़ रहे हैं। विश्व हिंदी सचिवालय और वैश्विक हिंदी परिवार हर सप्ताह संगोष्ठियाँ आयोजित कर रहा है। ज्ञानपीठ, वनमाली और विश्वरंग भी ऑनलाइन अपनी उपस्थिति दर्ज कर चुके हैं।

ऑनलाइन संगोष्ठियों के लिए 'गूगल मीट', 'जूम' व 'वेबेक्स' का उपयोग हो रहा है। अभी तक भारतीय उत्पाद नहीं होने से ये ई–संगोष्ठियाँ विदेशी मूल के ही सॉफ़्टवेयर उपयोग कर रही थीं, लेकिन अजय डाटा के नेतृत्व में अब भारत का अपना उत्पाद 'वीडियो मीट' भी उपलब्ध हो चुका है।

स्वास्थ्य संगठनों के अनुसार, अभी कोरोना लंबे समय तक हमारे बीच रहने वाला है। इस परिस्थिति में ऑनलाइन शिक्षा को लेकर एक गंभीर विमर्श की आवश्यकता है। एक समान शिक्षा की सर्व–सुलभता, बच्चों का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य, निजता का सम्मान, साइबर सुरक्षा जैसी अनेक चुनौतियों को समझने व इनका समाधान करने से ही ऑनलाइन शिक्षा का लाभ उठाना संभव हो पाएगा।

शिक्षण के क्षेत्र में भारत सरकार ने अनेक परियोजनाएँ चलाई हैं, जिनमें स्वयं (SWAYAM), ई–पाठशाला इत्यादि सम्मिलित हैं। शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने अनेक शब्दकोश व अन्य पुस्तकें ऑनलाइन उपलब्ध करवाई हैं।

स्वयं (SWAYAM) https://swayam.gov.in/ भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया एक कार्यक्रम है, जिसे शिक्षा नीति के तीन सिद्धांतों – पहुँच, इक्विटी और गुणवत्ता को प्राप्त करने के लिए बनाया गया है। इस प्रयास का उद्देश्य सबसे वंचित लोगों सहित, सभी को सर्वोत्तम शिक्षण व शिक्षण संसाधन उपलब्ध करवाना है।

ई–शिक्षण और शिक्षण प्रबंधन सॉफ़्टवेयर्स से जो मुख्य अपेक्षाएँ की जाती हैं, उनमें तत्काल सूचना (real-time) और व्यक्ति विशेष के अनुसार (customized) सॉफ़्टवेयर होना, सम्मिलित हैं। ऐसे ऑनलाइन उपकरणों व सॉफ़्टवेयर की आवश्यकता है, जो विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप हो। कक्षा में शिक्षक, छात्र और अभिभावकों के बीच एक सेतु का काम करें और संपर्क स्थापित करने में सक्षम हों।

इधर 'गूगल फ़ॉर इंडिया 2020' के अंतर्गत गूगल ने भारत में शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए नयी पहल की घोषणाएँ की हैं। कंपनी देश भर के अनेक विद्यालयों को डिजिटाइज़ करने के लिए सेंट्रल बोर्ड ऑफ़ सेकंडरी एजुकेशन (CBSE) के साथ साझेदारी कर रही है।

यह सी.बी.एस.ई. स्किल एजुकेशन और ट्रेनिंग के साथ भारत के 22,000 स्कूलों में एक मिलियन शिक्षकों तक इसे पहुँचाएगा। कंपनी एजुकेशन के लिए जी सुइट (G Suite), गूगल क्लासरूम, यूट्यूब इत्यादि उपलब्ध कराएगा। जी सुइट (G Suite) में गूगल के गूगल डॉक्स, शीट्स इत्यादि सम्मिलित हैं। इस पर शिक्षक अपने विद्यार्थियों को गृहकार्य दे सकते हैं और गूगल फ़ॉर्म्स का भी उपयोग कर सकते हैं। गूगल के सी.ई.ओ. श्री सुंदर पिचाई ने भारत में 75 हज़ार करोड़ के निवेश का भी ऐलान किया है। 'गूगल फ़ॉर इंडिया' के छठे 'एडिशन' में पिचाई ने 'गूगल फ़ॉर इंडिया डिजिटाइज़ेशन फ़ंड' का ऐलान किया, जिसमें गूगल भारत में अगले पाँच से सात वर्षों में 75 हज़ार करोड़ रुपए का निवेश करेगा। गूगल की यह परियोजना भारत के शिक्षा जगत में एक नई क्रांति लाने में सक्षम होगी।

हमारे नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों को कोई भी योजना क्रियान्वित करने से पहले उसके लाभ के साथ–साथ चुनौतियों और हानियों का आकलन भी अनिवार्य रूप से करना होगा।

हालाँकि भारत सरकार ने अनेक ऑनलाइन शिक्षण व दूरदर्शन कार्यक्रम चलाकर बच्चों को शिक्षित करने का प्रयास किया है। यह वास्तव में सराहनीय है। परंतु क्या जन–सामान्य इससे लाभान्वित हो रहा है, यह विचारणीय है। ऐसे विद्यार्थी जिनके पास कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट व टेलीविजन नहीं हैं, वे छात्र अधिक तनाव में हैं। प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी संसाधनों के अभाव में वे पिछड़े हुए महसूस कर सकते हैं। विकसित देशों में संसाधनों के अभाव वाले लोगों को सरकार संसाधन उपलब्ध करवाती है, ताकि वे अन्य विद्यार्थियों के समकक्ष रहें और उन्हें

समान अवसर मिले। इसी प्रकार का प्रयास भारत सरकार भी कर सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों और जहाँ इंटरनेट की गति कम है, उनके बारे में भी विकल्प खोजने और समाधान उपलब्ध करवाने होंगे।

शिक्षकों को भी ऑनलाइन शिक्षा देने के लिए प्रशिक्षित करना होगा। पारंपरिक शिक्षण और ऑनलाइन शिक्षण में अंतर है। उन्हें ऑनलाइन शिक्षण के तौर–तरीकों, साइबर सुरक्षा और ऑनलाइन टूल्स व सामग्री तैयार करने के उपकरणों का प्रशिक्षण देना होगा। अनेक ऑनलाइन उपलब्ध संसाधन जैसे टंकण, वॉय्स टाइप, शब्द कोश, ओ.सी.आर. – ऑपटिकल करेक्टर रिकोग्निशन (Optical Character Recognition), टेक्स्ट–टू–स्पीच (TTS) लेखन से वाणी, फ़ॉन्ट कन्वर्टर, स्क्रीन रीडर, यूट्यूब, माइक्रोसॉफ़्ट ऑफ़िस, गूगल शीट्स व गूगल डॉक्स, वीडियो–ऑडियो एडिटिंग, कॉन्फ्रेंसिंग की जानकारी लाभकारी रहेगी। ये संसाधन भविष्य में ऑनलाइन शिक्षण के लिए एक आवश्यकता कहे जा सकते हैं।

भारतीय शिक्षण परंपरा और ऑनलाइन शिक्षण

ऑनलाइन शिक्षण हमारी भारतीय शिक्षण परंपरा के लिए एक बड़ी चुनौती है। ऑनलाइन शिक्षण किस प्रकार भारतीय शिक्षण परंपरा के अनुरूप बने कि व्यक्ति एवं चरित्र निर्माण, समाज कल्याण और ज्ञान का उत्तरोत्तर विकास भी हो पाए? इस विषय पर भी मनन करना होगा। आज के बच्चे और युवा तो पहले से ही समाज से कटे–बँटे हुए हैं। भारत में फ़ेसबुक के उपभोक्ता विश्व में सर्वाधिक हैं। बच्चों और युवाओं के बदलते सामाजिक व्यवहार से अभिभावक पहले से परेशान हैं। वे घर में रहते हुए भी एकाकी ही थे। अब कोरोना के कारण बच्चे और युवा और अधिक ऑनलाइन रहते हैं, जिसके दूरगामी परिणाम अवांछनीय हो सकते हैं।

ऑनलाइन शिक्षण ज्ञान तो देता है, लेकिन आदर्श प्रस्तुत नहीं करता, जिससे आचरण और चरित्र निर्माण में कोई सहायता नहीं मिलती। पारंपरिक शिक्षण में शिक्षक का आचरण बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। हमारे यहाँ कहा जाता है :

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः?"

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही महेश यानि शिव है। गुरु ही साक्षात् परमब्रह्म है। ऐसे गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ, अर्थात् उनकी वंदना करता हूँ।

नई शिक्षा नीति 2020 में 'भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के संवर्द्धन' पर भी चर्चा है। प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए और ऑनलाइन शिक्षण को बढ़ावा देते हुए किस प्रकार भारतीय मूल्यों को भी सुरक्षित रखा जाए? इसपर गहन विचार–विमर्श की आवश्यकता है।

नयी शिक्षा नीति और चुनौतियाँ

34 साल से शिक्षा नीति में परिवर्तन नहीं हुआ था। सरकार ने शिक्षा नीति को लेकर 2 समितियाँ बनाई थीं। एक टी.एस.आर. सुब्रमण्यम् समिति और दूसरी डॉ. के. कस्तूरीरंगन समिति बनाई गई थी। भारत की शिक्षा व्यवस्था को अब नए सिरे से 21वीं सदी की ज़रूरत के अनुरूप बनाया गया है।

महामारी के इस संकट काल में सरकार को शिक्षा नीति में तय किए गए लक्ष्यों को पूरा करने के लिए युद्ध स्तर पर कार्य करना पड़ेगा। सरकार को एक बड़े स्तर पर नए अध्यापकों का चयन करना होगा। उन्हें नई नीति के अनुरूप प्रशिक्षित करना होगा। वर्तमान शिक्षकों को भी नई शिक्षा नीति के लिए तैयार करना होगा। एक सशक्त कार्ययोजना बनानी होगी, ताकि इस नीति के उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। छात्रों के लिए नए संसाधन विकसित करने होंगे। उन्हें संसाधन उपलब्ध करवाने होंगे ताकि संसाधनों के अभाव में विद्यार्थी शिक्षा से वंचित न रहें।

समाधान क्या हो?

ऑनलाइन शिक्षण के संदर्भ में भारत सरकार की नई शिक्षा नीति 2020 में प्रौद्योगिकी और ऑनलाइन शिक्षण को लेकर दो महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को सम्मिलित किया गया है :

* प्रौद्योगिकी का उपयोग एवं एकाकीकरण
* ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा

वैश्विक स्तर पर फैली 'कोरोना महामारी' के चलते प्रौद्योगिकी का उपयोग और ऑनलाइन शिक्षा बहुत महत्त्व रखते हैं। यदि इन दोनों बिन्दुओं पर सकारात्मक कार्य होता है, तो निःसंदेह शिक्षा जगत में इसके अच्छे परिणाम सामने आएँगे।

महामारी के शांत होने के पश्चात् भी सरकार, शिक्षकों, विद्यार्थियों और अभिभावकों को कड़ी परिश्रम करना होगा। इस समय की परिस्थितियों, उपलब्ध संसाधनों पर दृष्टिपात करें, तो निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है, लेकिन सामूहिक प्रयास और संकल्प से निःसंदेह यह संभव हो सकता है। 'जहाँ चाह, वहाँ राह।'

संदर्भः

1. Krishna, H. S. (2019). *High-tech internet start-ups in India.* Cambridge University Press.
2. Rawani, A. M., & Singh, A. K. (2020). *Revolution in Indian Higher Education with Covid-19.* Sankalp Publication.
3. OECD Publishing. (2020). *Economic Outlook for Southeast Asia, China and India 2020 – Update Meeting.*
4. Education: From disruption to recovery. (2020, June 15). Retrieved August 5, 2020, from https://en.unesco.org/covid19/educationresponse
5. Strauss, V. (2020, March 27). 1.5 billion children around globe affected by school closure. What countries are doing to keep kids learning during pandemic. Retrieved August 15, 2020, from https://www.washingtonpost.com/education/2020/03/26/nearly-14-billion-children-around-globe-are-out-school-heres-what-countries-are-doing-keep-kids-learning-during-pandemic/
6. Gibbs, S. (2017). Mobile web browsing overtakes desktop for the first time. [online] the Guardian. Available at: https://www.theguardian.com/technology/2016/nov/02/mobile-web-browsing-desktop-smartphones-tablets [Accessed 20 Jun. 2017].
7. Nic. *Ministry of Education.* Retrieved August 8, 2020, from https://www.mhrd.gov.in/.

editor@bharatdarshan.co.nz

www.bharatdarshan.co.nz

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी मीडिया

– डॉ. जवाहर कर्नावट
भोपाल, भारत

ऑस्ट्रेलिया नाम लैटिन के एक शब्द 'आस्ट्रेलिज' से लिया गया है, जिसका अर्थ 'दक्षिणी' से होता है। ऑस्ट्रेलिया एकमात्र ऐसी जगह है, जिसे एक ही साथ महाद्वीप, एक राष्ट्र और एक द्वीप माना जाता है। प्रौद्योगिकी और औद्योगिक रूप से उन्नत ऑस्ट्रेलिया एक समृद्ध बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जिसका विकास पिछले ढाई सौ वर्षों में हुआ है। 2020 के आंकड़ों के अनुसार ऑस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या लगभग 25 मिलियन है, जिसमें 1.9% भारतीय हैं। भारतीय जनसंख्या 2011 की जनगणना की तुलना में 95362 से बढ़कर अब 4,55,389 हो गई है। आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार प्रवासियों में चीन के बाद भारतीयों का नंबर आता है। नई जनगणना के परिणाम यह भी दिखाते हैं कि ऑस्ट्रेलिया में बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं में हिंदी भाषियों की संख्या सर्वाधिक है।

भारतीयों की बढ़ती जनसंख्या के साथ ही अपने देश की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने की मुहिम भी शुरू हो गई है। प्रमुख शहरों में भारतवंशियों की संस्थाओं का गठन शुरू हुआ और इसी के साथ सिलसिला शुरू हुआ हिंदी शिक्षण और हिंदी पत्रकारिता का। सन् 1990 के बाद इस दिशा में विशेष जागृति देखने को मिलती है। सिडनी, ऑस्ट्रेलिया का सबसे बड़ा शहर है और बहुत बड़ी संख्या में भारतीय यहाँ निवास करते हैं। यहाँ सन् 1991 में प्रो. चंद्रमोहन श्रीवास्तव के नेतृत्व में हिंदी समाज ने अपनी अन्य गतिविधियों के साथ ही हिंदी 'चेतना' के प्रकाशन का शुभारंभ डॉ. शैलजा चन्द्रा (चतुर्वेदी) के संपादन में प्रारम्भ किया। इस पत्रिका के माध्यम से सिडनी के आसपास के क्षेत्रों में हिंदी लेखकों एवं रचनाकारों को अभिव्यक्ति का एक मंच भी मिला। इस पत्रिका का प्रथम अंक 1993 में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ष सितम्बर मास में इसका अंक प्रकाशित होने लगा। इस पत्रिका का अधिकांश कार्य शैलजा जी स्वयं ही देखती थी। इस पत्रिका के बारे में वे स्वयं कहती हैं :

"हिंदी चेतना की प्रेरणा जीवन के अनेक अनुभवों व स्वप्नों की यात्रा है, जिसके विषय में कभी विचारा नहीं। सम्भवतः यह नदी का प्राकृतिक प्रवाह था, जो भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए मचल रहा था। कुल प्रकाशित अंक तो केवल दर्जन भर ही होंगे, क्योंकि इसका पूरा भार मुझ पर था और मेरा सीमित टाइपिंग ज्ञान से लेकर प्रकाशन तक स्वयं में एक चुनौती था।"

इस पत्रिका के पृष्ठों की संख्या 24 से 32 तक होती थी। पत्रिका में लेख, कविता, कहानी, रिपोर्ताज आदि का प्रकाशन होता था। श्री श्रीवास्तव के बाद शैलजा जी ही हिंदी समाज, सिडनी की अध्यक्ष बनीं। अतः उन्होंने दोहरे दायित्व का निर्वाह किया।

'चेतना' ने सिडनी के हिंदी समाज में वास्तव में चेतना जागृत की। भारत के प्रसिद्ध कलाकारों व हिंदी कवियों को हिंदी समाज ने ऑस्ट्रेलिया में आमंत्रित कर कार्यक्रम आयोजित किए। इनमें प्रमुख हैं : नाना पाटेकर, शबाना आज़मी, सिद्धार्थ काक, गीतकार नीरज, कवि सरोज कुमार आदि। इन सभी कार्यक्रमों की रिपोर्ट हिंदी चेतना के अंकों में प्रमुखता से प्रकाशित की गई। पत्रिका के तीसरे अंक (मई–जून 95 में नाना पाटेकर की यात्रा एवं कार्यक्रम को विस्तार से प्रकाशित किया गया है। इसी प्रकार चतुर्थ अंक (1996) में शबाना आज़मी के कार्यक्रम को विस्तार से कवर किया गया है। सितम्बर 1996 में पद्मश्री गोपालदास नीरज एवं श्री सरोज कुमार को हिंदी समाज द्वारा आमंत्रित किए जाने पर एक विशेष पुस्तिका का प्रकाशन भी किया गया था। चेतना पत्रिका का छठा अंक 1998 में 32 पृष्ठों का प्रकाशित हुआ। इस अंक में सिडनी व मेल्बर्न के रचनाकारों के साथ ही भारत से श्री गोपालदास नीरज का गीत भी प्रकाशित हुआ। इस अंक में श्रीमती शैलजा ने अपने संपादकीय में हिंदी समाज और चेतना

के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा है :

"भविष्य की पीढ़ियों को हम अंग्रेज़ी वाली हिंदी नहीं, भारतीय हिंदी की शिक्षा दें, जिससे उनके हृदय में स्वाभिमान व गर्व जागृत हो। हिंदी भाषा की गूढ़ता व क्षमता के आनंद से हमारी आगामी पीढ़ी वंचित न रह जाए, यही ध्येय है हिंदी समाज का। हिंदी भाषा हमारा यथार्थ है व इसकी सुदूर देश में समुचित प्रगति व शृंगार के लिए ही हिंदी समाज का अवतरण हुआ है।

पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया से एक और हिंदी पत्रिका विक्टोरिया से 'देवनागरी' की शुरुआत अक्टूबर 1992 में हिंदी निकेतन संस्था द्वारा की गई। हिंदी निकेतन की स्थापना 1991 में हिंदी भाषा के पठन–पाठन और हिंदी संस्कृति को प्रोत्साहित करने के लिए हुई। डॉ. राजकिशोर टंडन, डॉ. अरुणकुमार तथा डॉ. दिनेश श्रीवास्तव ने चर्चा में यह महसूस किया कि अनेक भारतीय भाषाओं की संस्थाएँ स्थापित हो चुकी हैं। किन्तु हिंदी की कोई संस्था नहीं है, अन्य साथियों के साथ चर्चा के बाद हिंदी निकेतन का गठन हुआ, जिसके अध्यक्ष डॉ. टंडन बनाए गए। इसी संस्था ने देवनागरी पत्रिका प्रारंभ करने का निर्णय लिया, जिसमें डॉ. दिनेश श्रीवास्तव के अलावा ला ट्रोब विश्वविद्यालय की हिंदी की व्याख्याता श्रीमती सुधा जोशी एवं सुश्री शशि कोछड़ की विशेष भूमिका रही। हिंदी के साथ ही इस पत्रिका में अंग्रेज़ी के कुछ पृष्ठ भी रखे गए।

देवनागरी के प्रथम अंक (अक्टूबर 1992) के संपादकीय में ये तीनों व्यक्ति लिखते हैं :

"अभी तक ऑस्ट्रेलिया में हिंदी में लिखी रचनाएँ प्रस्तुत करने का कोई माध्यम नहीं था। फलस्वरूप जो लोग कुछ लिखते थे, उनकी भी आदत हिंदी में लिखने की छूट गई। इनके अतिरिक्त, जो विद्यार्थी हिंदी सीखते थे, उनको भी अपनी रचनात्मक कला दिखाने का कोई अवसर नहीं मिला था।

हममें से कुछ तो हिंदी में कुछ भी पढ़ने के लिए तरस जाते, क्योंकि यहाँ हिंदी पत्र–पत्रिकाएँ आसानी से उपलब्ध नहीं। भाषा संस्कृति प्रसारण का माध्यम है, यही सोचकर हिंदी निकेतन के सदस्यों ने मिलकर यह पत्रिका निकाली है।

देवनागरी के प्रथम अंक की सामग्री विविधता लिए हुए थी, जिसमें ऑस्ट्रेलिया के साथ ही भारत के रचनाकारों की रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इसकी मुख्य विशेषता यह भी है कि भारतीय मूल के लेखकों के साथ ही आस्ट्रेलियन लेखकों ने भी हिंदी में कलम चलाई है, जैसे –

1) ऑस्ट्रेलिया में हिन्दुस्तानी संगीत और उनका इतिहास – एड्रियन मकनील
2) मिथक – रिचर्ड डिलेसी
3) प्रतिध्वनि – रिचर्ड बार्था

इस 32 पृष्ठीय अंक में सभी रुचि के पाठकों के लिए रचनाओं का समावेश रहा। पत्रिका के प्रथम पृष्ठ पर दीपावली के अवसर पर बनाई जानेवाली कुमाऊंनी चित्रकारी को भी स्थान दिया गया। 'देवनागरी' पत्रिका शीघ्र ऑस्ट्रेलिया के हिंदी भाषी समाज, विशेष रूप से विक्टोरिया और मेल्बर्न में लोकप्रिय हो गई। इस पत्रिका को लोकप्रिय बनाने में श्री दिनेश श्रीवास्तव का विशेष योगदान रहा। हिंदी निकेतन संस्था की गतिविधियों को भी इस पत्रिका के माध्यम से विशेष गति मिली।

इस पत्रिका का दूसरा अंक जून 1993 में प्रकाशित हुआ। इस अंक में ऑस्ट्रेलिया में तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री अकबर मिर्ज़ा खलीली का संदेश भी प्रसारित हुआ। डॉ. दिनेश श्रीवास्तव द्वारा लिखित हिंदी निकेतन के डेढ़ वर्षों के क्रिया– कलापों की रिपोर्ट भी विस्तार से प्रकाशित हुई है। इस अंक में 'प्रवासी भारतीयों के लिए बचत योजनाएँ' (श्री अरुणचंद्र, अनु–सचिव, वित्त विभाग, भारत सरकार), 'मेरी चीन यात्रा' (श्री दिलीप बांठिया) तथा 'शिवरात्रि पर्व' (डॉ. रमाशंकर पाण्डेय) विशेष उल्लेखनीय हैं। इस अंक के संपादकीय में भारत के सभी त्योहारों व विशेष अवसरों के बारे में लेख भी आमंत्रित किए गए हैं।

इस प्रकार देवनागरी के आगामी अंकों का प्रकाशन भी ऑस्ट्रेलिया और भारत के लेखकों की रचनाओं के साथ जारी रहा, किन्तु इस पत्रिका के वर्ष 1998 तक कुल छः अंक ही प्रकाशित हो पाए। देवनागरी पत्रिका ने ऑस्ट्रेलिया में हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रति जागरूकता पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

ऑस्ट्रेलिया से ही पंडित परसराम महाराज के संपादन में ऑस्ट्रेलिया का प्रथम मासिक समाचार–पत्र अप्रैल 1997 में 'हिंदी समाचार पत्रिका' के नाम से प्रारम्भ हुआ। इस 32 पृष्ठीय समाचार में भारत, ऑस्ट्रेलिया और फ़िजी के समाचार प्रकाशित होते थे।

इस पत्र का मुख्य उद्देश्य ऑस्ट्रेलिया में भारतीय संस्कृति और हिंदी को पुष्पित और पल्लवित करना था। इस पत्रिका के प्रथम अंक (अप्रैल 97) का विमोचन फ़िजी संसद के डेप्यूटी स्पीकर एवं श्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा फ़िजी के भूतपूर्व महामंत्री श्री दिवाकर प्रसाद ने किया। इस समाचार–पत्र के दूसरे अंक (मई 1997) में ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री श्री जॉन हावर्ड एवं सांसद जेकी केल्ली का संदेश भी प्रकाशित हुआ है।

विदेश की धरती से हिंदी में 32 पृष्ठ के मासिक समाचार–पत्र की शुरुआत एक ऐतिहासिक घटना कहा जाएगा। प्रारंभ में इस समाचार–पत्र की दस हज़ार प्रतियाँ प्रकाशित की गई थीं। समाचार–पत्र के प्रकाशन व संचालन का आधार विज्ञापन से प्राप्त आय ही थी। प्रारंभिक वर्षों में इस पत्र में ऑस्ट्रेलिया में भारतीय संस्कृति, त्योहारों, बॉलीवुड के समाचार, राशिफल प्रमुखता से प्रकाशित होते थे। इसके अलावा फ़िजी, ऑस्ट्रेलिया व भारत के समाचार भी प्रकाशित होते थे।

पत्र के दूसरे अंक (मई 19) में निम्नलिखित समाचारों/स्तम्भ को स्थान मिला है :

1. फ़िजी में विभिन्न राजनीतिक परिदृश्यों का मंत्रीमण्डल बनाने का प्रस्ताव
2. गुजराल भारत के प्रधानमंत्री बने
3. ऑस्ट्रेलिया में हिन्दू स्वयं सेवक संघ
4. अमेरिका को अपनी मानसिक बुद्धि की चिंता
5. विश्व शांति आश्रम ऑस्ट्रेलिया के सौजन्य से धर्म ज्ञान
6. क्या ऑस्ट्रेलिया में बनाने वाले प्रथम लोग भारतीय थे
7. कानून और आप (ऑस्ट्रेलिया के सन्दर्भ में)
8. गिरमिटिया की स्मृति में (14 मई 1987 को फ़िजी में हुआ कू)
9. स्वास्थ्य सलाह
10. आस्ट्रेलिया में धूमधाम से रामनवमी उत्सव मनाया
11. हम बीमार क्यों होते हैं (लेख)
12. मज़ा किया, यह भी खूब रही (चुटकुले)
13. हिंदी शिक्षण और प्रशिक्षण/हिंदी संस्कृति शिक्षा
14. मासिक भविष्यफल

इस प्रकार यह टेब्यूलाइट आकार में सम्पूर्ण समाचार–पत्र के रूप में लगभग 20 वर्षों तक ऑस्ट्रेलिया से प्रकाशित होता रहा। नवम्बर 99 का अंक दीपावली विशेषांक के रूप में 44 पृष्ठों का प्रकाशित हुआ और प्रकाशित प्रतियों की संख्या भी 10 हज़ार से बढ़कर 20 हज़ार हो गई।

कुछ ही वर्षों में 'हिंदी समाचार पत्रिका' ऑस्ट्रेलिया में लोकप्रिय हो गई। सितम्बर 2004 के अंक में मुद्रित संख्या 30 हज़ार दर्शायी गई। पत्रिका को पर्याप्त मात्रा में विज्ञापन प्राप्त होने से इसकी आर्थिक स्थिति भी मज़बूत रही। डाक से समाचार–पत्र प्राप्त करने हेतु इसका वार्षिक मूल्य 35 ऑस्ट्रेलियन डॉलर रखा गया। पत्र में अधिकांश विज्ञापन अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुए हैं। किन्तु कंटास (QANTAS) एअरवेज़ ने सिडनी, ब्रिसबन, मेल्बर्न, कानबेरा से भारत जाने हेतु अपना विज्ञापन हिंदी में प्रकाशित करवाया है। इस अंक में हिन्दू मंदिरों की सूची के साथ ही पंजाब से प्राप्त कुछ मुख्य समाचार भी विशेष रूप से प्रकाशित किए गए हैं। फ़िजी के विविध समाचार भी तीन पृष्ठों में प्रकाशित हुए हैं।

हिंदी समाचार पत्रिका में प्रकाशित समाचारों और प्रसार का क्षेत्र लगातार व्यापक होता गया। अपनी शुरुआत के 15 वर्ष पूरे होते–होते इसके संपादन में भी कसावट देखने को मिलती है। जनवरी–फ़रवरी 2011 के 'अंक' में संपादकीय के नियमित प्रकाशन के साथ ही आर्थिक समाचारों, एन.आर.आई. समाचारों और अंतरराष्ट्रीय समाचार के अंतर्गत विश्व के विविध देशों के समाचार भी प्रकाशित हुए। इस अंक में ऑस्ट्रेलिया सरकार का शिक्षा कर–वापसी विज्ञापन भी हिंदी में प्रकाशित हुआ है। अक्टूबर 2011 का दीपावली विशेषांक भी अत्यन्त मनोरम प्रस्तुति के साथ प्रकाशित हुआ है–

हिंदी समाचार पत्रिका के 16 वर्ष पूर्ण होने पर पत्र के अप्रैल 2013 अंक में इसके प्रथम पृष्ठ पर सम्पादकीय के माध्यम से पत्र प्रकाशन की 16 वर्षों की यात्रा के विविध पड़ावों को प्रस्तुत किया गया है। सम्पादक पं. परसराम महाराज लिखते हैं–

"16 वर्ष की इस यात्रा में हिंदी मासिक पत्रिका अपने मुख्य उद्देश्यों से कभी भी नहीं भटकी। इसने हमेशा भारतीय संस्कृति व हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार किया। हिंदी भाषा व भारतीय संस्कृति एक भारतीय की वेशभूषा है। यही इस पत्रिका की विचारधारा रही है। अभी तक पत्रिका को पाठकों व सहयोगियों व विज्ञापनदाताओं का काफ़ी योगदान मिलता रहा है, पर हाल ही में पत्रिका के कुछ अंक प्रकाशित नहीं हुए, जिसका प्रमुख कारण

हिंदी में लोगों की रुचि घटना है। आखिर क्या वजह है कि हम अपनी मातृभाषा को अपनाने से झिझकते हैं? जहाँ पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति की गूँज है। लोग इसे ज़्यादा से ज़्यादा जानना व अपनाना चाहते हैं। लोग भारत आकर, वहाँ रहकर इसकी संस्कृति को देखते व जानते हैं, वही हम हिंदी भाषा की उपेक्षा करते हैं।"

इस प्रकार 2013 के बाद इस समाचार को विज्ञापन आदि मिलना कम होते गए। परिणामस्वरूप पत्र की आर्थिक स्थिति कमज़ोर होती गई। अन्ततः जनवरी 2016 के बाद प्रबंधन टीम के लिए इसका प्रकाशन करना असम्भव हो गया। लगभग 20 वर्षों तक सम्पूर्ण मासिक पत्र के रूप में इस पत्र का प्रकाशन वैश्विक हिंदी पत्रिका के इतिहास में हमेशा दर्ज रहेगा।

ऑस्ट्रेलिया के ही विक्टोरिया प्रांत से प्रकाशित मासिक अंग्रेज़ी अखबार 'साउथ एशिया टाइम्स' के साथ ही दो पृष्ठों में 'हिंदी पुष्प' प्रकाशित होता है। 'हिंदी पुष्प' के प्रकाशन की शुरुआत 2003 में 'साउथ एशिया टाइम्स' के परिशिष्ट के रूप में हुई थी। 'हिंदी पुष्प' के प्रकाशन का श्रेय ऑस्ट्रेलिया में हिंदी के पुरोधा डॉ. दिनेश श्रीवास्तव को जाता है, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन हिंदी को प्रचार–प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। हिंदी पुष्प के लिए 'साउथ एशिया टाइम्स' में भले ही दो पृष्ठ निर्धारित थे, किन्तु इन दो पृष्ठों में ही सामग्री का वैविध्य देखने को मिलता है। कविता, कहानी, लेख आदि के साथ ही महीने में पड़ने वाले तीज–त्योहारों, महापुरुषों के जन्मदिन आदि भी दिए जाते थे और चुटकुले भी। श्री दिनेश श्रीवास्तव ने अपनी लगन और मेहनत से 'हिंदी पुष्प' को ऑस्ट्रेलिया के हिंदी समाज में लोकप्रिय बना दिया। श्री दिनेश श्रीवास्तव के साथ सहयोगी के रूप में सुधा जोशी और मृदुल कक्कड़ ने भी 'हिंदी पुष्प' को समृद्ध बनाया। श्री दिनेश श्रीवास्तव के निधन के बाद पिछले ढाई वर्षों से 'हिंदी पुष्प' के संपादन का कार्य मृदुला कक्कड़ सम्भाल रही है। विगत 17 वर्षों से 'हिंदी पुष्प' के प्रकाशन की निरन्तरता बनी हुई है।

इसी प्रकार सिडनी से प्रकाशित द्विमासिक अंग्रेज़ी अखबार 'द इंडियन डॉउन अंडर' के 62 पृष्ठों में एक–दो पृष्ठ हिंदी में प्रकाशित होते हैं। इस अंग्रेज़ी अखबार के सम्पादक श्री विजय बधवार एवं सहायक सम्पादक नीना बधवार हैं। इस द्विमासिक अखबार में भारत–ऑस्ट्रेलिया संबंधों पर समाचारों की अधिकता होती है। मुझे जनवरी–फ़रवरी–2012 के अंक देखने को मिला, जिसमें श्री संतराम बजाज का लेख 'हाय रे बीमारियाँ' प्रकाशित हुआ है। यह समाचार–पत्र पिछले 29 वर्षों से प्रकाशित हो रहा है। हिंदी पृष्ठ पर नियमित रूप से श्री संतराम बजाज का लेख प्रकाशित होता है। यह समाचार–पत्र पठन हेतु ऑनलाइन भी उपलब्ध है।

ऑस्ट्रेलिया से ही 'संदेश न्यूज़लेटर' का प्रकाशन पिछले 20 वर्षों से हो रहा है। यह न्यूज़लेटर ऑस्ट्रेलियन हिंदी इंडियन एसोसिएशन की ओर से प्रकाशित होता है और इसके संपादक श्री संतराम बजाज हैं। प्रति माह प्रकाशित 16 पृष्ठों के इस बुलेटिन में 5–6 पृष्ठ हिंदी के भी होते हैं। हस्तलिखित रचनाएँ भी शामिल होती हैं।

ऑस्ट्रेलिया से ही हिंदी–अंग्रेज़ी द्विभाषिक समाचार–पत्र 'हिंदी एक्सप्रेस' की शुरुआत इंडियन मीडिया ग्रुप द्वारा की गई, जो पहले से 'पंजाब एक्सप्रेस' का प्रकाशन कर रहा था। इस 40 पृष्ठीय अखबार में 24 पृष्ठ की सामग्री हिंदी में प्रकाशित की गई है, जिसमें 'हलचल' 'राष्ट्रीय', 'बातें रंग बिरंगी', 'विश्व दर्शन' कॉलम के माध्यम से भारत तथा विश्व की राजनैतिक व चटपटी खबरें प्रकाशित हुई हैं। इसके अलावा अमरनाथ यात्रा, ताजमहल, मुम्बई ब्लास्ट आदि विषयों पर लेख प्रकाशित किए गए हैं। श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के चर्चित उपन्यास 'आनंदमठ' को शृंखलाबद्ध प्रकाशित करने की शुरुआत भी इस अंक में हुई है। 'समाज' स्तम्भ के अंतर्गत हरियाणा की खाप पंचायतों की दादागिरी पर लेख प्रकाशित हुआ है। 'काव्य क्यारी' स्तम्भ में कविताएँ प्रकाशित हुई हैं, तो 'कलाश्री', 'व्यंग्य', 'खेलकूद', 'फ़िल्मी हलचल', 'नारी जगत', 'बालमेकर' स्तम्भ भी इस समाचार–पत्र में शामिल किए गए। इस प्रकार एक सम्पूर्ण हिंदी समाचार–पत्र के रूप में 'हिंदी एक्सप्रेस' की शुरूआत हुई। प्रूफ़ की त्रुटियाँ और अशुद्ध भाषा का प्रयोग भी इस समाचार–पत्र में दिखाई दिया। इसका कारण यह भी हो सकता है कि 'पंजाब एक्सप्रेस' के प्रकाशन हेतु हिंदी भाषा के प्रवीण व्यक्ति उपलब्ध न हो। 'हिंदी एक्सप्रेस' के प्रथम अंक के पश्चात् के अंकों के प्रकाशन का कोई रिकॉर्ड नहीं मिल सका, जब कि इस प्रकाशन समूह द्वारा प्रकाशित 'पंजाब एक्सप्रेस' का प्रकाशन जारी है।

ऑस्ट्रेलिया से ही एक और हिंदी का अखबार 'हिंदी गौरव' के मुद्रित संस्करण की शुरूआत 2 अक्टूबर, 2010 को सिडनी में आयोजित एक समारोह में हुई थी। हालाँकि यह समाचार–पत्र ऑनलाइन रूप में पूर्व से प्रसारित हो रहा था। अंक में इस पत्र के मुद्रित संस्करण के लोकार्पण की खबर विस्तार से पढ़ने को मिली। हिंदी गौरव के मुख्य संपादक श्री अनुज कुलश्रेष्ठ और तकनीकी प्रमुख श्री हेमेन्द्र नेगी हैं। उन्होंने बताया कि 'हिंदी गौरव' का मुद्रित संस्करण 2014 तक जारी हुआ और उसके बाद केवल ऑनलाइन संस्करण ही निकाला जा रहा है। 'हिंदी गौरव' के ऑनलाइन संस्करण में भारतीय समाचार, ऑस्ट्रेलियाई समाचार, विश्व समाचार, साहित्य, मनोरंजन, खेल, फोटो गैलरी आदि विषयक सामग्री का समावेश हो रहा है। यह समाचार–पत्र ऑस्ट्रेलिया में हिंदी के अनेक कार्यक्रम भी आयोजित करता है, जिसके कारण इस हिंदी समाचार–पत्र की लोकप्रियता भी बढ़ी है।

पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया (पर्थ) का हिंदी समाज 'भारत–भारती' पत्रिका का प्रकाशन सन् 1996 से कर रहा है। यह वार्षिक पत्रिका प्रति वर्ष जुलाई माह में प्रकाशित होती है। इस पत्रिका में हिंदी समाज द्वारा हिंदी भाषा एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार हेतु आयोजित गतिविधियों के विवरण के साथ ही ऑस्ट्रेलिया–भारत एवं कुछ अन्य देशों के रचनाकारों का प्रकाशन भी होता है। वर्तमान में इस पत्रिका की सम्पादक सुश्री रीता कौशल है। सुश्री रीता वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया की लोकल गवर्नमेंट की एक कौंसिल में वित्त अधिकारी हैं। लेखन में गहरी रुचि होने के कारण वे इस पत्रिका का सम्पादन अत्यन्त मनोयोग व कुशलता से करती हैं! 60 पृष्ठीय पत्रिका की साज–सज्जा, प्रस्तुति व सामग्री भी स्तरीय होती है। इस पत्रिका की मुद्रित प्रतियाँ हिंदी समाज ऑफ़ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया के सदस्यों को निःशुल्क प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त सॉफ़्ट प्रति को यथासंभव ई–मेल से देश–विदेश में भेजा जाता है। हिंदी समाज की बेवसाइट पर भी यह पत्रिका उपलब्ध है। पत्रिका का सन् 2020 का अंक जारी हो चुका है। सन् 2021 में पत्रिका का रजत जयंती विशेषांक प्रकाशित किया जाएगा।

हिंदी रेडियो एवं टी.वी.

ऑस्ट्रेलिया में अनेक रेडियो कम्यूनिटी चैनल्स हैं, जो हिंदी के अलावा विश्व की अनेक भाषाओं में प्रसारण करते हैं। इच्छुक समूह/व्यक्ति इन रेडियो चैनल्स से प्रसारण के अधिकार निर्धारित समय के लिए खरीद लेते हैं और विज्ञापन व अन्य साधनों से अपने व्यय की पूर्ति करते हैं। इन चैनलों को सरकार से अनुदान भी प्राप्त होता है। एस.बी.एस. टी.वी. और रेडियो चैनल यहाँ का राष्ट्रीय चैनल है, जो हिंदी सहित विश्व की 68 भाषाओं में अपना प्रसारण करता है। इसका मुख्यालय सिडनी में है, जो प्रतिदिन एक घंटे का कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित करता है। यह ऑस्ट्रेलिया का मुख्य रेडियो एवं टी.वी. चैनल है, जो समाचार, ज्ञान–विज्ञान, इतिहास एवं संस्कृति के बारे में समाज को जागरूक करता रहता है। एस.बी.एस. रेडियो चैनल की शुरुआत 9 जून, 1975 को हुई थी। उस समय यह सिडनी और मेल्बर्न से एथनिक (Ethnic) ऑस्ट्रेलिया चैनल के नाम से जाना जाता था। अब यह चैनल ऑस्ट्रेलिया में बहुसांस्कृतिक समाज की भाषिक आवश्यकताओं को पूरा करता है।

इस मीडिया चैनल के टी.वी. कार्यक्रम भी अनेक भाषाओं में प्रसारित होते हैं और हिंदी समाचार एन.डी.टी.वी. के सौजन्य से प्रसारित किए जाते हैं। मेल्बर्न से कम्युनिटी टी.वी. चैनल भी संचालित होता है। निजी क्षेत्र में टी.वी. स्थापना के प्रयास भी हुए, किन्तु सफलता नहीं मिली। इस प्रकार ऑस्ट्रेलिया में हिंदी की मुद्रित पत्रकारिता के साथ ही हिंदी रेडियो और टी.वी. भी पर्याप्त मात्रा में है और इसका लगातार विस्तार भी हो रहा है।

jkarnavat@gmail.com

कोरोना महामारी का दौर : ऑनलाइन हिंदी-शिक्षण की युक्तियाँ

– श्रीमती ए. राधिका
पुदुच्चेरी, भारत

कोरोना महामरी से समूची दुनिया प्रभावित हुई है। सभी देशों पर इस महामरी ने धावा बोल दिया है। महामारियों का संकट दुनिया पहली बार नहीं झेल रहा है। मगर हमारे दौर में, 21वीं सदी में यह ऐसी महामारी है, जिससे लगभग हर देश व हर क्षेत्र प्रभावित हुआ है। आपदाओं के दौर में हर कोई अपने प्राणों को बचाने की चिंता ही करते हैं। कोविड–19 के दौरान जनता के प्राणों की रक्षा ही सरकारों की वरीयता बनी हुई है। ऐसे में विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों को तालाबंदी में रहना पड़ गया है। शैक्षिक वर्ष के अंत में जबकि छात्र परीक्षाओं की तैयारियों में लगे हुए थे, इस महामारी ने अपने पंख फैलाना शुरू कर दिए। कोरोना विषाणु से लगभग हर कोई प्रभावित हुई।

कोरोना विषाणु पर नियंत्रण के लिए कई उपाय और व्यूह रचनाएँ

कोविड–19 पर नियंत्रण के तमाम उपायों के बावजूद भारत में दिनों–दिन इसका प्रकोप बढ़ता ही जा रहा है। 25 मार्च से लगभग सौ दिन तक पूर्णबंदी के बावजूद धीरे–धीरे कई जगह इसके प्रकोप बढ़ने से शिक्षा जगत काफ़ी प्रभावित हुआ। इससे मुक्ति के उपाय प्रभावकारी टीके की खोज होने तक इस विषाणु की उपस्थिति में विषाणु से सहजीवन के अलावा कोई चारा ही नहीं है। इस विषाणु के संक्रमण से बचने के लिए तमाम उपायों की चेतना समूची दुनिया में फैल चुकी है, मगर अभी पूरी तरह इससे मुक्ति के आसार नज़र नहीं आए। रूस ने स्पुतनिक–5 के नाम से पहले टीके की खोज की घोषणा की है, मगर यह सभी के उपयोगार्थ उपलब्ध होने में और समय लग सकता है।

कोरोना के प्रति शिक्षा जगत की प्रतिक्रिया

शासक, जनप्रतिनिधि, स्वास्थ्य कर्मी हर कोई जनता को इस महामारी के प्रभाव से बचाने में अपने–अपने स्तर पर उचित नीतियों, उपायों, कार्यों से चौबीस घंटे लगे हुए हैं। शिक्षक भी अपनी ज़िम्मेदारी निभाने में पीछे नहीं हटे। महामारी के दौर में शिक्षा जगत ने तमाम उपायों को अपनाकर शिक्षण की गतिविधियों को जारी रखने का जो प्रयास किया, वह अभिनंदनीय है। विकसित सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए ऑनलाइन शिक्षण, विभिन्न संचार–साधनों का प्रयोग करते हुए शिक्षण की गतिविधियाँ सुनिश्चित की जा रही हैं। ऐसे दौर में हिंदी भाषा एवं साहित्य–शिक्षण–कार्य में जो चुनौतियाँ हैं, उनका विश्लेषण करना और समाधान पर चिंतन इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है। शिक्षण जगत की चिंताओं के अनुरूप मदद के लिए दुनिया के सॉफ़्टवेयर निर्माताओं ने बड़ी उदारता के साथ ऑनलाइन अनुप्रयोगों की सुविधाओं के निःशुल्क प्रयोग की सुविधा दी है। ऑनलाइन शिक्षण की सुविधाएँ लगभग दो दशकों से उपलब्ध हैं, इनका विभिन्न रूपों में यदा–कदा प्रयोग होता रहा है, मगर समूची दुनिया के समक्ष उपस्थित आपदा के इस दौर में शिक्षा जगत के समक्ष ऑनलाइन शिक्षण ही एक मात्र उपाय के रूप में नज़र आया। जिन देशों में इस महामारी का प्रकोप कम है, वहाँ भी तमाम रक्षात्मक उपायों को अपनाकर, भौतिक दूरियाँ सुनिश्चित करते हुए शिक्षण संस्थान सक्रिय हो गए हैं। भारत में अभी 31 अगस्त तक तमाम शिक्षण संस्थानों को बंद रखने के आदेशों के बीच शिक्षण संस्थाएँ ऑनलाइन शिक्षण के लिए तमाम शिक्षकों को निर्देश दे चुकी हैं। कई कार्यक्षेत्रों में ऑनलाइन के ज़रिए घर से काम कर रहे हैं।

शिक्षा क्षेत्र पर कोरोना महामारी ने गहरा असर ही डाला है। बच्चे आनंदमय सामाजिक जीवन से वंचित रह गए हैं। घर पर जो खुशियाँ मिलती हैं उनकी एक सीमा है। मूलतः किशोरावस्था के बच्चे, यहाँ तक स्कूली बच्चे अपने दोस्तों–सहेलियों की

अनुपस्थिति को महसूस करते हुए भी तनाव की स्थिति में रहते हैं। महामारी के आँकड़े, चारों तरफ़ नियंत्रण का माहौल, कहीं अपनों को खोने की खबरें आदि बच्चों में तनाव के जितने प्रभावशाली कारक बन रहे हैं, उनसे ज़्यादा प्रभावशाली कारक शिक्षण गतिविधियों, शिक्षालयों में अपने साथियों से बिताने के आनंद से वंचित रह जाना आदि दूसरे ज़बर्दस्त तनाव के कारण बन गए हैं। कई जगह छात्र परीक्षा तक न दे पाए। कक्षा में बैठने से, अध्यापकों के सामने बैठकर कक्षा में पढ़ने से, मित्रों से मिलने से और खेलकूद जैसी सारी खुशियों से वंचित रह गए। इन सब समस्याओं को एक साथ सुलझाना असंभव है। मगर ऑनलाइन अनुप्रयोग के लिए विकसित एप्प के सहारे, वेब ब्राउज़रों के सहारे पठन–पाठन की समस्याओं के लिए मार्ग खोजा गया है। वास्तव में आधुनिक शिक्षा तकनीकों में ऑनलाइन शिक्षण भी एक प्रमुख शाखा व अंग है। काफ़ी समय पहले ही यह सुविधा विकसित हो चुकी थी। इस महामारी के चपेट में दुनिया आने से पहले ही संचार साधनों का प्रयोग करते हुए शिक्षण के कई उपाय अपनाए जाते रहे हैं। रेडियो, टी.वी., वीडियो, वेबसाइट, ऑनलाइन उपलब्ध कई सुविधाएँ यथा यूट्यूब, शिक्षण सामग्री के माध्यम से शिक्षण के प्रयास पहले से होते रहे हैं। शिक्षण को और रुचिकर और अनुभवात्मक बनाने की दृष्टि से इन साधनों की ओर आकर्षण और अनुकूल शिक्षण नीतियाँ भी बनती गयी हैं। ज्ञानात्मक विधियों में प्रोत्साहित करने के लिए कंप्यूटर व स्मार्ट फोन आधारित कई सुविधाएँ निरंतर विकसित होती रही हैं। ऑनलाइन शिक्षण को कल तक शिक्षण में सहायक तकनीकी के रूप में ही देखा जा रहा था, लेकिन आज इस महामारी के दौर में ऑनलाइन में पढ़ना अनिवार्य हो गया है। जो शिक्षक आधुनिक शिक्षण तकनीकों, शिक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग से विमुख थे या इनमें अकुशल थे, वे आज ऑनलाइन शिक्षण में सक्रिय हो गए हैं।

शिक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग के प्रति हिंदी–शिक्षण व छात्रों की अनुकूल अभिवृत्ति

इस दिशा में समय–समय पर जो अनुसंधान कार्य होते रहे हैं, उनके परिणामों से यह स्पष्ट आसार पहले ही नज़र आ चुके थे। शिक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग में हिंदी शिक्षण काफ़ी हद तक पिछड़ा ही था। भाषा–शिक्षण के लिए आई.सी.टी. को एक गैर–ज़रूरी साधन के रूप में मानने वाले और भाषा–शिक्षण में कंप्यूटर साधनों को अनावश्यक बोझ के रूप में देखने की मानसिकता वालों की कमी नहीं है। हिंदी शिक्षण–अधिगम कार्यों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग के प्रति शिक्षकों और छात्रों की अभिवृत्तियों पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के बृहत अनुसंधान परियोजना के तहत किए गए अनुसंधान के परिणाम स्पष्ट कर चुके हैं कि हिंदी भाषा एवं साहित्य के पठन–पाठन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि निर्मित हो चुकी है। आज हम देख रहे हैं कि हिंदी शिक्षक भी अन्य विषय के शिक्षकों के बराबर तकनीकी साधनों का प्रयोग करते हुए शिक्षण में सक्रियता दर्शा रहे हैं। जिन्होंने आज तक ऑनलाइन साधनों का प्रयोग करने से डरकर किसी बहाने कंप्यूटर को मात्र सजावट की सामग्री के रूप में संजोकर रख लिया था, वे भी आज इन साधनों के उपयोग के बारे में अच्छा खासा भाषण देने लग गए हैं, अर्थात् इन साधनों का प्रयोग सब लोग करने लगे हैं। 3 साल के बच्चे से लेकर 90 साल के बूढ़े तक सब इन साधनों से परिचित हो रहे हैं। हिंदी शैक्षिक बिरादरी के संबंध में अनुसंधाताओं के परिणाम सही साबित हो रहे हैं।

विगत दो–तीन दशकों से सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपस्थिति के बावजूद मुट्ठी में स्मार्टफ़ोन की उपस्थिति वाली दुनिया को बड़ा श्रेय दिया जा सकता है, जिसने निरक्षर को भी डिजिटल साक्षर बना दिया है। तभी तो एकाध दिन में ही हर कोई ऑनलाइन शिक्षण–अधिगम में रुचि लेने लगा।

प्रभावकारी शिक्षण विधियों का प्रयोग

प्रत्येक अध्यापक की यह इच्छा होती है कि उसका शिक्षण अधिक–से–अधिक प्रभावकारी हो। जो विषय उसके द्वारा पढ़ाया जाता है, उसको छात्र अपने मन और मस्तिष्क में स्थापित कर सके। इस हेतु अध्यापक कई साधनों का प्रयोग करता है। इन साधनों या उपकरणों की सहायता से वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं। इन साधनों के प्रयोग की दृष्टि परंपरागत दृष्टिकोण और तकनीकी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

परंपरागत दृष्टिकोण में श्रव्य साधन, जैसे टेप रिकॉर्डर, रेडियो, फ़ोनोग्राफ़िक रिकॉर्ड आदि। दृश्य साधन, जैसे मूक

चलचित्र, फ़ोटोग्राफ़ बुलेटिन बोर्ड, मानचित्र, मैजिक लान्टर्न, प्रोजेक्टर्स आदि। दृश्य–श्रव्य साधनों के अंतर्गत दूरदर्शन, चलचित्र, ऑडियो और वीडियो रिकॉर्डिंग आदि।

क्रियात्मक साधनों में सभी क्रियात्मक गतिविधियाँ, जैसे गीतालापन, नाटकीकरण, एकपात्राभिनय (मोनोप्ले), क्षेत्र पर्यटन, प्रत्यक्ष अनुभवों का वर्णन आदि को माना जाता है।

इसके बाद दूसरे प्रकार के साधनों को तकनीकी दृष्टिकोण के आधार पर तीन प्रकार वर्गीकृत किया जाता है :

- स्मार्ट शिक्षण के शुरूआती तकनीकी साधन, जैसे स्लाइड प्रोजेक्टर, फ़िल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर, माजिक लैन्टर्न, ओवरहेड प्रोजेक्टर आदि।
- दूरदराज़ तक की बड़ी जनसंख्या के बीच शिक्षक के साधन, जैसे रेडियो, टेलीविजन, कंप्यूटर, शिक्षण मशीन आदि।
- मनोरंजनपूर्ण शिक्षण साधन, जैसे फ़िल्म स्ट्रिप, मुद्रित सामग्री, कार्टून, पोस्टर, ग्राफ़िक साधन आदि।

इन सब साधनों का उपयोग इधर–उधर कभी–न–कभी करते आ रहे हैं। इन सब के प्रयोग में इंटरनेट की कोई ज़रूरत नहीं होती है। लेकिन अभी जिस ऑनलाइन शिक्षण विधि की हम बात कर रहे हैं, उसका मूलाधार इंटरनेट सुविधा है। इंटरनेट के ज़रिए ही ऑनलाइन कक्षाएँ आयोजित की जा सकती हैं। एक कालिक (सिंक्रोनस) शिक्षण के लिए यह अनिवार्य है। भिन्नकालिक (एसिंक्रोनस) शिक्षण के लिए भी अन्य उपाय भी हैं। इन दोनों में प्रधान अंतर है संवाद, चर्चा–परिचर्चा के साथ वैयक्तिक हाज़िरी, यानि जैसे कक्षा में आमने–सामने रहकर चर्चा, संभाषण तथा संदेह निवारण किया जाता है, ठीक उसी तरह यहाँ भी किया जा सकता है। इसके साथ–साथ ऑनलाइन चित्रों, वीडियो, ऑडियो, चार्ट आदि को साझा भी किया जा सकता है। पूरे डॉक्यूमेंट, नोट्स या किसी अन्य विषय सामग्री को सभी छात्रों को कुछ ही क्षणों में बिना किसी कष्ट के, मुफ़्त में भेजा जा सकता है। पाठ की रिकॉर्डिंग भी की जा सकती है। अगर किसी छात्र को विषय एक बार सुनने पर समझ में नहीं आता है, तो बार–बार सुनने की भी सुविधा हो जाती है, यदि वीडियो या ऑडियो ऑनलाइन उपलब्ध करा दें या सी.डी./डी.वी.डी./पेनड्राइव के माध्यम से उपलब्ध करवाया जा सकता है। छात्र जब कभी संभव हो, एककालिक कक्षा में संदेहों का समाधान भी कर सकते हैं। इसके लिए विकल्प के रूप में वाट्सएप्प, मोबाइल, टेलीफ़ोन आदि उपलब्ध हैं। वाट्सएप्प भिन्नकालिक संपर्क के लिए भी उपयोगी है।

शैक्षिक टेलीविजन चैनलों की ऐसी महामारियों के दौर में भी महती भूमिका है। मगर इनमें आमतौर पर उन्हीं पाठ्यक्रमों का शिक्षण संभव है, जहाँ एक समान पाठ्यक्रम हो। इस से क्षेत्रीय विविधताओं की उपेक्षा होती है। इसके लिए भी क्षेत्रीय चैनल एक उपाय है। ऑनलाइन में जो पारस्परिक संवादात्मकता है, उसकी कमी की पूर्ति छात्र दूरभाषा या मोबाइल से सवाल करने के रूप में एक हद तक समाधान है।

ऑनलाइन शिक्षण व सामग्री के आदान–प्रदान, परीक्षण के लिए कई उपाय

ऑनलाइन कई एप्प हैं, जिनका प्रयोग ऑनलाइन शिक्षण, शैक्षिक सामग्री साझा करने, परीक्षण–मूल्यांकन हेतु भी किया जा सकता है। गूगल मीट, जूम, वेबेक्स, माइक्रोसॉफ़्ट टीम्स आदि में ऑनलाइन लाइव कक्षाएँ हो सकती हैं। इसमें छात्र सक्रिय शिक्षण पा सकते हैं। इनके अलावा फ़ेसबुक और यूट्यूब के ज़रिए भी एककालिक व भिन्नकालिक कक्षाएँ आयोजित की जा सकती हैं। छात्रों के लिए नोट्स देने के लिए सुविधाएँ उपलब्ध हैं। ई–मेल, वेब पोस्टिंग, वाट्सएप्प समूह आदि के माध्यम से शैक्षिक सामग्री तीव्र गति से साझा की जा सकती है। छात्रों की परीक्षा लेने हेतु गूगल फ़ॉर्म, परस्पर सहयोग के साथ काम करने के लिए गूगल डॉक्स आदि का प्रयोग किया जा सकता है। ऑनलाइन कक्षाओं के प्रबंधन संबंधी भी कई सुविधाएँ हैं, जिनमें गूगल क्लास, एडमोडो, मूडल आदि कई अधिगम प्रबंधन प्रणालियाँ (लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम्स) उपलब्ध हैं, जिनके माध्यम से छात्रों को विभिन्न अभ्यास कार्य, सत्रीय प्रदत्त कार्य, उनका मूल्यांकन, छात्रों की प्रगति के अभिलेखों का रख–रखाव आदि की सुविधाएँ हैं। छात्रों को स्वमूल्यांकन के लिए भी अभ्यास सामग्री, परीक्षा सामग्री आदि उपलब्ध करायी जा सकती है। ऑनलाइन शैक्षिक गतिविधियों के अंतर्गत बच्चों को विभिन्न कार्यों की प्रेरणा, उनमें गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए समय को नियंत्रित करना और पेज को लॉक करना आदि उपाय किए जा रहे हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ऑनलाइन

शिक्षण के लिए कई दृष्टियों से कारगर प्रणालियाँ विकसित हुई हैं। इस प्रकार की सामग्री के निर्माण के लिए हिंदी फ़ॉन्ट की जो समस्या रहती थी, वह विगत दो दशकों से समाप्त हो चुकी है। ऑनलाइन व ऑफ़लाइन कार्य के लिए, शब्दसंसाधकों में, प्रस्तुतियों में तथा मोबाइल एप्प में प्रयोग के लिए यूनिकोड मानक वरदान साबित हुए हैं।

विभिन्न शिक्षण विधियों व साधनों के लिए व्यवहार्य सिद्धांतों के पालन की अपेक्षा

विभिन्न शिक्षण विधियों का पूरा लाभ तभी उठाया जाता है, जब शिक्षक इन शिक्षण साधनों के प्रयोग हेतु कुछ सिद्धांतों का पालन करें जैसे :

- सहायक सामग्री या साधन की प्रकृति तथा उसके प्रयोग से संबंधित ज्ञान।
- निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु सामग्री का प्रयोग योजनाबद्ध ढंग से करना।
- निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के क्रम में अगर कोई विवाद या समस्या पैदा होती है, तो उसे कैसे सुलझाया जा सकता है आदि विषयों का ज्ञान होना।
- सामग्री का पूर्ण निरीक्षण करना तथा उस सहायक साधन के प्रयोग से संबंधित व्यवहार–संस्कृत की पूर्ण जानकारी रखना और छात्रों के आगे खड़े होकर कभी उन सब चीज़ों से न उलझना पड़े।
- छात्रों को उन साधनों के बारे में पूर्व ज्ञान देने, शिक्षण–अधिगम क्रियाओं में उन साधनों के प्रयोग से लाभ आदि के बारे में स्पष्ट विश्लेषण करना।
- अध्यापक की अनुपस्थिति में इन साधनों का प्रयोग करने हेतु किस प्रकार सावधान रहना चाहिए आदि।
- अत्यंत आवश्यक सिद्धांत मूल्यांकन से संबंधित है। शिक्षक के द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति की इस ढंग से जाँच करना चाहिए कि शैक्षिक लक्ष्यों की पूर्ति हो।

ऑनलाइन शिक्षण के अंतर्गत ध्यान देने योग्य विषयवस्तु से संबंधित कुछ और सिद्धांत हैं। जैसे :

- विषयवस्तु को सार्थक इकाइयों में विभाजित कर लेना चाहिए।
- विभाजित इन इकाइयों को योजनाबद्ध क्रम में प्रत्येक विद्यार्थी की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत करना चाहिए।
- शिक्षण के बीच में किसी एक छात्र से विषय की किसी इकाई से प्रश्न करते हुए छात्र विषय को कहाँ तक समझ पा रहा है और वह ध्यान से सुन पा रहा है या नहीं आदि विषयों की जानकारी पा सकते हैं।
- विषयवस्तु की प्रस्तुति बच्चों के सामने लंबे–लंबे भाषणों के रूप में न होकर, छात्रों को ज़्यादा समय अधिगम क्रियाओं में भाग लेने का अवसर प्रदान करना चाहिए।
- छात्रों को स्व–मूल्यांकन करने हेतु कुछ सोपानों के साथ एक निर्णय तालिका बनाना चाहिए, जिसकी मदद से छात्र अपने विषय की समझ का मूल्यांकन स्वयं करके पुनश्चरण करने या आगे बढ़ने का निर्णय ले सकते हैं।
- इस प्रकार योजनाबद्ध प्रणाली के द्वारा शिक्षक ऑनलाइन शिक्षण के द्वारा अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं।

आवश्यकतानुसार बदलती परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बेहतरीन विधियों को अपनाकर शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। फ़िलहाल महामारी के इस दौर में प्रत्येक कक्षा का शिक्षण संभव न हो पाने के कारण शिक्षा अधिगम को पूरा करने तथा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु सरकार ने अपनी तरफ़ से कई प्रयास किए हैं, जैसे टी.वी. चैनलों के माध्यम से शिक्षण कार्यक्रमों को प्रसारित करके बच्चों को शिक्षित करने का प्रयास किया है। उच्च शिक्षा के छात्रों के लिए स्वयं पोर्टल द्वारा मुक्त व मुफ़्त ऑनलाइन पाठ्यक्रमों की सुविधा के अलावा, ऑनलाइन शैक्षिक सामग्री के कई स्रोतों का विकास किया गया है, जिसमें मुद्रित पाठों, ऑडियो, वीडियो आदि ऑनलाइन उपलब्ध कराए गए हैं। स्वयंप्रभा, व्यास चैनलों, यंत्र, ई–लैब आदि के माध्यम से विज्ञान व प्रौद्योगिकी विषयों के पाठ्यविषयों की पढ़ाई की भी सुविधा है। एनपीटेल में देश की प्रतिष्ठित प्रौद्योगिकीय शिक्षण संस्थानों के प्राध्यापकों द्वारा निर्मित वीडियो व पाठ्य–सामग्री हमेशा के लिए उपलब्ध है। नियमित रूप से ऑनलाइन कोर्स पूरा कर प्रमाण–पत्र हासिल करने की सुविधा भी 2016 से उपलब्ध है, इसके लिए अपेक्षित कानूनी प्रावधानों सहित इस महामारी

के दौर में ही सरकार ने यह निर्णय लिया है कि 12वीं कक्षा तक के छात्रों के लिए प्रत्येक कक्षा के लिए एक अलग चैनल विकसित हो। इस योजना को साकार बनाने की ज़िम्मेदारी केंद्रिय माध्यमिक शिक्षा परिषद् को सौंपी गई है।

इन सब सुविधाओं और लाभों के बावजूद भारत जैसे विकासशील देश में ऑनलाइन शिक्षा से संबंधित कई सारी समस्याएँ भी हैं, जिन पर ध्यान नहीं देना यथार्थ से मुँह मोड़ने के बराबर है।

- भारत एक विकासशील देश है। यहाँ की जनता में लगभग एक चौथाई आज भी गरीबी, बेरोज़गारी, रोटी, कपड़ा, मकान की मूलभूत समस्याओं में फँसी हुई है। विभिन्न सरकारी योजनाओं का लाभ दिए जाने के बावजूद ऐसी महामारी का दौर उनके लिए कई मामलों में नरकतुल्य साबित होना चिंता का विषय है। दो वक्त पेट भरने की जिनके पास समस्या है, उनसे स्मार्ट फ़ोन की अपेक्षा नहीं रखी जा सकती है।
- बच्चे जब सबके समान शिक्षण गतिविधियों में भाग नहीं ले सकते, तो लक्ष्यों की प्राप्ति अधूरी ही रह जाती है।
- मोबाइल न रहने की वजह से बच्चे शिक्षण गतिविधियों में भाग नहीं ले सकते हैं। एक घर में यदि दो–चार बच्चे हैं, तो एक ही मोबाइल से काम नहीं चलता। इससे बच्चों में मानसिक तनाव बढ़ जाता है।
- ऑनलाइन कक्षाओं में शामिल होने के लिए मात्र स्मार्टफ़ोन काफ़ी नहीं होता, बल्कि इंटरनेट की सुविधा भी होना ज़रूरी है। इस पर फिर से आर्थिक स्थिति का असर रहता है। वैसे भारत ही वह देश है, जहाँ इंटरनेट डाटा अत्यंत सस्ता है।
- आज भी ऐसे गाँव हैं, जहाँ बिजली की सुविधा नहीं है, उन इलाकों के बच्चे ऐसे में शिक्षण गतिविधियों से दूर रह जाते हैं।
- कई इलाके नेटवर्क की पहुँच से बाहर भी हैं। कहीं नेटवर्क होने के बावजूद ऑनलाइन शिक्षण के अनुप्रयोगों के लायक गति भी नहीं है।
- हिंदी भाषा की जब बात आती है, तब भाषा शिक्षण के प्रमुख पक्ष, जैसे उच्चारण संबंधी अशुद्धियों को सुधारने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- बच्चे नोट में लिखना कम कर देते हैं, सॉफ़्टकॉपी तक सीमित रह जाते हैं।
- इसके अलावा बच्चों को दृष्टि संबंधी कई समस्याएँ आती हैं।
- बच्चे अवांछित कार्यक्रमों से आकर्षित न हो, इसके लिए माता–पिता को उनके साथ ही रहना पड़ता है।
- शैक्षिक सुविधाओं का समान बँटवारा हमारी शिक्षा नीति का प्रधान उद्देश्य है। इस उद्देश्य के अब कुंठित रह जाने की संभावना है।

किसी भी कार्य को अगर शुरू किया जाता है, तो उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को हमें मानना पड़ता है। नकारात्मक पक्षों पर जहाँ तक हो सके काम करके उन खाइयों को भरने का काम करना है। भारत की नई शिक्षा नीति 2020 भी ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा का समर्थन करती है। इस संदर्भ में यह भी सुनिश्चित करने की योजना है कि समानता के सरोकारों को बनाए रखा जाए। साथ–ही–साथ इन तमाम नई शिक्षण विधियों, नवाचारों, नवीन प्रयोगों में तकनीकी कुशलता हेतु आवश्यक अधिसंरचना का विकास तथा यथाशीघ्र शिक्षकों का प्रशिक्षण सुनिश्चित किया जाए। इस शिक्षा नीति में गुणवत्ता पर ज़ोर दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि ऑनलाइन शिक्षण से लोग निस्संदेह लाभांवित हो सकते हैं। ऑनलाइन शिक्षण विधियों को सतर्कता के साथ अपनाने से इस महामारी के संकट में भी शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाते हुए विश्व में आगे बढ़ना संभव है।

शिक्षण प्रक्रिया को त्रिध्रुवी प्रक्रिया कहा जा सकता है। शिक्षक, छात्र और पाठ्यप्रणाली, इन तीनों के योजनाबद्ध कार्यान्वयन से ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। इनमें से किसी एक में कमी हो, तो भी शिक्षण लक्ष्यों को पाने में कमी रह जाती है। इस प्रक्रिया में छात्र को केंद्र बिंदु कहा जा सकता है, क्योंकि शिक्षण प्रक्रिया पूरी तरह छात्र पर आधारित होती है। छात्र के द्वारा शिक्षा के लक्ष्यों की पूर्ति में शिक्षण और शिक्षक दोनों साधन के रूप में काम करते हैं। शिक्षण पद्धति जो भी हो, शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल करना शिक्षार्थियों के हितों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए प्रयुक्त साधन और पद्धतियाँ समय–समय पर बदलती रही हैं। सक्षम विधियों का प्रयोग और आवश्यकतानुसार सुधार हमारी परंपरा रही है।

ऑनलाइन हिंदी शिक्षण में कुछ समस्याएँ रहते हुए भी भलाई को ध्यान में रखकर महामारी के इस संकट को पार करने के लिए सही साधनों, उपायों व युक्तियों को अपनाया जा सकता है। सारे साधन हिंदी के अनुकूल बनना, संचार साधनों की पहुँच का बढ़ना, ऑनलाइन ही ज्ञान व शिक्षण के भंडारों के विकास आदि की वजह से हिंदी शिक्षण सुगम बन रहा है। हाँ, जहाँ कमियाँ रह गई हैं, उनके निराकरण के लिए शिक्षक बिरादरी को सक्रिय होना पड़ेगा, कल के नागरिकों को (बच्चों को) भी प्रेरित करते हुए उनकी भागीदारी से शिक्षा संबंधी पावन उद्देश्य की पूर्ति में सदा आगे बढ़ते रहें। महामारी संकट ही पैदा कर सकती है, चुनौतियों को स्वीकारने की स्फूर्ति, चेतना से हम आगे बढ़ें तो हर समस्या के लिए हमारे पास असंख्य समाधान स्वयमेव उपस्थित हो जाते हैं। इस कठिन क्षण में सर्वजन सुखिनो भवंतु की मंगलकामना के साथ सर्वजन हिताय हमें हितकर कार्य करने के लिए एक कदम की जगह चार कदम आगे बढ़ना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नई शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
2. एस. के. मंगल, उमा मंगल, शिक्षा तकनीकी, पी.एच. आई. प्राइवेट लिमिटड, दिल्ली, 2009
3. मूरे एम. और डबल्यू.जी. एंडरसन हैंडबुक ऑफ़ डिस्टन्स एडुकेषन, महवाल न्यूजेर्सी, लारेंस एर्लबाऑम एसोसिएट्स, 2003
4. सी. जय शंकर बाबु, हिंदी के विकास के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकीः हिंदी भाषा एवं साहित्य शिक्षण और अधिगम में आई.सी.टी. के प्रयोग का समग्र अध्ययन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली, 2015

radhika.yugmanas@gmail.com

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में वेब मीडिया की भूमिका : हिंदी ब्लॉग्स के विशेष संदर्भ में

– डॉ. मनीषा शर्मा
मध्य प्रदेश, भारत

भाषा मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ आविष्कार है। यह मनुष्य के मध्य संवाद का माध्यम भर नहीं है, बल्कि इसमें उसके संस्कार, उसकी अस्मिता और उसका पीढ़ियों से संचित गौरव अंतर्निहित है। भूमंडलीकरण के युग में हिंदी की भूमिका सम्पर्क, सम्प्रेषण और सान्निध्य की है, जिसका वह बखूबी निर्वहन कर रही है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिंदी की विश्व पटल पर बहुआयामी प्रासंगिकता है। आज विश्व पटल पर निरंतर विस्तार पाते वेब आधारित मीडिया की अनन्य भूमिका दिखाई दे रही है। जनसंचार के नए माध्यम विशेष तौर पर नित नूतन आयामों के साथ गतिशील वेब मीडिया अपनी प्रविधि और प्रकृति में ही परंपरागत माध्यमों से भिन्न नहीं है। उसका चरित्र और पहुँच भी अलग है। यह युग हिंदी मीडिया का युग है। मीडिया के द्वारा ही हिंदी आगे बढ़ी है। मोबाइल व इंटरनेट के कारण इसकी पहुँच वैश्विक हुई है। हिंदी की प्रमुख ताकत इसकी संप्रेषणीयता है। हिंदी के यूनिकोड होने से ब्लॉगरों की संख्या बढ़ी है। वर्तमान में ब्लॉग लेखन को एक समानांतर मीडिया का दर्जा–सा मिल गया है। न केवल हिंदी भाषा और साहित्य बल्कि विज्ञान, तकनीकी, स्वास्थ्य, यात्रा, राजनीति, फ़ैशन जैसे विषयों पर भी कई ब्लॉग सफलतापूर्वक चल रहे हैं। हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में इन ब्लॉगों की महती भूमिका है। किसी ने कहा है कि आज का ब्लॉग कल की पुस्तक है।

विचारों का आदान–प्रदान या वाणी द्वारा अभिव्यक्ति ही भाषा है। भाषा का प्रारंभिक रूप बोली है। भाषा सामाजिक सम्पत्ति है, जो अनुकरण के द्वारा प्राप्त की जाती है। यह सम्प्रेषण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। वरिष्ठ साहित्यकार अज्ञेय के अनुसार "भाषा कल्प वृक्ष के समान है। यदि भाषा को ठीक तरह से साधा जाए, तो वह हमें सब कुछ दे सकती है।"

भाषा केवल शब्दों का संकलन मात्र नहीं है, बल्कि इसका दायित्व समाज को विचारशील और बोधगम्य बनाना है। एक ओर जहाँ भाषा मनुष्य की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और ज्ञान–विज्ञान की विरासत को अक्षुण्ण रखती है, वहीं आधुनिक संदर्भों में विकास के प्रतीकों को राष्ट्र के गौरव के रूप में सहेजने का कार्य भी करती है।

भाषा व्यक्तित्व का अंग होती है और वह व्यक्ति की अस्मिता का प्रतिनिधित्व भी करती है। जैसे राष्ट्रीय या जातीय स्वाभिमान होता है, वैसे ही भाषिक स्वाभिमान भी होता है। इसी कारण भाषा से जुड़े विभिन्न विवाद भी होते हैं। इन विवादों के मध्य वही भाषा उभरकर सामने आती है और अपना वर्चस्व बना पाती है, जिसमें विपुल शब्द संपदा और अपार अर्थवहनीयता हो, जो अभिव्यक्ति के विभिन्न आयामों को स्पर्श कर सकती हो, जिसमें विपुल सम्प्रेषणीयता हो, जिसके साहित्य में लोकरंजन ही नहीं लोक कल्याण का भाव भी निहित हो। हिंदी ऐसी ही भाषा है।

आज वैश्विक स्तर पर यह सिद्ध हो चुका है कि हिंदी भाषा अपनी लिपि और ध्वन्यात्मकता (उच्चारण) की दृष्टि से सबसे शुद्ध और विज्ञान सम्मत भाषा है। इसमें ग्रहणशीलता का गुण है, क्योंकि वही भाषा विकसित होती है, जिसमें अन्य भाषाओं के शब्दों को पहचानने का गुण हो। अंग्रेज़ी भाषा के मूल शब्द दस हज़ार हैं, जबकि हिंदी के मूल शब्द ढाई लाख से ज़्यादा है। इसका साहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है। हिंदी राजभाषा और सम्पर्क भाषा दोनों रूपों में भारत तथा आसपास के देशों में व्यवहृत होती रही है। आज़ादी के पश्चात् संविधान में इसे भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया गया। सम्पूर्ण विश्व में इसे सीखने की ललक बढ़ी है। भूमंडलीकरण के युग में हिंदी की भूमिका सम्पर्क, सम्प्रेषण और सान्निध्य की है, जिसका वह बखूबी

निर्वहन कर रही है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिंदी की विश्व पटल पर बहुआयामी प्रासंगिकता है। यह मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, टोबेगो आदि में समझी व बोली जाती है। विश्व में अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीडन, बुल्गारिया सहित साठ से अधिक देशों व करीब एक सौ साठ से अधिक विश्वविद्यालयों में इसका विधिवत पठन–पाठन कराया जा रहा है।

वैश्विक मंच पर हिंदी का बढ़ता महत्त्व :

किसी भी भाषा के प्रचार–प्रसार में संचार माध्यमों का विशिष्ट योगदान होता है। समाचार–पत्र, पत्रिकाओं, रेडियो, टीवी के पश्चात् वेब मीडिया के उपयोग में हिंदी ने धीरे–धीरे अपनी जगह बना ली है। इससे एक ओर इन माध्यमों से हिंदी का प्रसार हो रहा है, तो दूसरी तरफ़ हिंदी क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों का बाज़ार भी अपनी स्थिति मज़बूत कर रहा है।

वस्तुतः अपनी पहुँच और विस्तार में जनसंचार माध्यमों ने आज अपनी खास जगह बना ली है। जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में इनकी पैठ किसी से छिपी नहीं है। "अन्तर्वैयक्तिक से लेकर समूह संचार और उससे आगे जाकर जनसंचार और अब वेब मीडिया तक की सीढ़ी को तय करने में मानव सभ्यता ने एक लंबी यात्रा की है। आज विश्व पटल पर निरंतर विस्तार पाते वेब आधारित मीडिया की अनन्य भूमिका दिखाई दे रही है। जनसंचार के नए माध्यम विशेष तौर पर नित नूतन आयामों के साथ गतिशील वेब मीडिया अपनी प्रविधि और प्रकृति में परंपरागत माध्यमों से भिन्न नहीं है। उसका चरित्र और पहुँच भी अलग है। इस वैशिष्ट्य का एक बड़ा कारण है, उसका गैर व्यक्तिवादी रुझान, जिसके रहते जीवन से जुड़े हर क्षेत्र में जन–जन की सक्रिय भागीदारी के मौके बढ़ रहे हैं।"[1]

व्यापार बढ़ाने हेतु सबसे ज़रूरी माध्यम है भाषा, जिसके ज़रिए उत्पादक अपनी वस्तु को खरीददार तक पहुँचा सकते हैं, उसे बेच सकते हैं। भारत में हिंदी को अपनाना विदेशी कंपनियों की आवश्यकता है। हिंदी की लोकप्रियता के कारण ही गूगल असिस्टेंट ने अपने इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों को हिंदी में समझने लायक बना दिया है। अब गूगल असिस्टेंट हिंदी भाषा में भी वॉइस कमांड समझ, उसके अनुसार काम कर सकता है। अमेज़ॉन का प्रोडक्ट एलेक्सा असिस्टेंट अभी तक अंग्रेज़ी में ही कमांड लेता था, मगर कंपनी उसे भी हिंदी के साथ ही अन्य क्षेत्रीय बोली, जैसे बंगाली, मराठी में समझने की दिशा में सशक्त काम कर रही है। विदेशी कंपनियों के प्रयास बता रहे हैं कि वैश्विक बाज़ार में भी हिंदी का वजूद मज़बूत हो रहा है।

इंटरनेट पर हिंदी दिन–प्रतिदिन अपना वर्चस्व बढ़ाती जा रही है। आज अंग्रेज़ी के बाद जिस भाषा का वर्चस्व है, वह हिंदी ही है। गूगल के मुख्य अधिकारी एरिक स्मिट के अनुसार भविष्य में इंटरनेट की प्रमुख भाषा अंग्रेज़ी के साथ हिंदी व चीनी होगी। यूनिकोड, मंगल जैसे यूनिवर्सल फ़ॉन्टों ने देवनागरी लिपि को कंप्यूटर तथा इंटरनेट में लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

माइक्रोसॉफ़्ट के संस्थापक बिल गेट्स के अनुसार "जब बोलकर लिखने की तकनीक उन्नत हो जाएगी, हिंदी अपनी लिपि की श्रेष्ठता के कारण सर्वाधिक सफल होगी।" सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफ़ॉर्म जैसे फ़ेसबुक, ट्विटर, ऑर्कुट आदि के माध्यम से हिंदी का प्रचार–प्रसार हो रहा है। मोबाइल प्रयोगकर्ताओं की संख्या भारत में तेज़ी से बढ़ती जा रही है, जो हिंदी के लिए उपयोगी सिद्ध हो रही है। सोशल मीडिया में अध्यापक, डॉक्टर, अभिनेता, सामाजिक कार्यकर्ता, खिलाड़ी आदि हिंदी का प्रयोग अपनी पोस्टों में कर रहे हैं, जो हिंदी के हित में है। यूट्यूब पर भी हिंदी भाषा में साहित्यिक, शैक्षिक, सामाजिक–आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में संबंधित वीडियो बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं।

यह युग हिंदी मीडिया का युग है। मीडिया के द्वारा ही हिंदी आगे बढ़ी है। मोबाइल व इंटरनेट के कारण इसकी पहुँच वैश्विक हुई है। हिंदी की प्रमुख ताकत इसकी संप्रेषणीयता है। हिंदी के यूनिकोड होने से ब्लॉगरों की संख्या बढ़ी। वर्तमान में गूगल का मोबाइल और वेब विज्ञापन नेटवर्क ऐडसेंस हिंदी को सपोर्ट कर रहा है। इंटरनेट पर पन्द्रह से ज़्यादा हिंदी सर्च इंजन उपलब्ध हैं। सोशल मीडिया पर हिंदी छाई हुई है। हिंदी वैश्विक भाषा बनने की ओर तेज़ी से बढ़ रही है। डिजिटल दुनिया में हिंदी की माँग अंग्रेज़ी की तुलना में पाँच गुना तेज़ है।

वेबसाइट – वर्तमान में इंटरनेट पर हिंदी भाषा की अनेक वेबसाइट हैं, जिनमें भाषा, पत्रकारिता, साहित्य आदि से संबंधित साहित्यिक तो कुछ साहित्येतर हैं। 'अनुभूति', 'रचनाकार', 'हिंदी समय', 'संवाद', 'लघुकथा', 'अभिव्यक्ति' प्रमुख साहित्यिक वेबसाइट हैं। विश्व की पहली यूनिकोडित, सर्वाधिक प्रसारित

और लोकप्रिय ई–पत्रिका 'रचनाकार' है, जिसके संपादक श्री रवि रतलामी हैं। श्री रवि रतलामी लोकप्रिय ब्लॉगर हैं। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की 'हिंदी समय' वेबसाइट पर हम रचनाओं को पढ़ सकते हैं। सभी प्रमुख एवं लोकप्रिय समाचार–पत्र भी इंटरनेट पर उपलब्ध हैं, जिनमें 'दैनिक भास्कर', 'नवभारत टाइम्स', 'अमर–उजाला', 'जनसत्ता', दैनिक जागरण आदि।

ब्लॉग एवं ब्लॉगिंग – सूचना और प्रौद्योगिकी ने आज पूरी दुनिया का परिदृश्य बदल दिया है। तकनीक के बढ़ते चरण ने मनुष्य को अभिव्यक्ति के अनेक अवसर उपलब्ध कराए हैं, उन्हीं में से एक है ब्लॉग–लेखन। ब्लॉग अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है, जहाँ आप अपने विचार रखने और दूसरों के विचारों को जानने के लिए स्वतंत्र हैं। ब्लॉग, लेखन का ही एक परिवर्तित रूप है, जिसे हम इंटरनेट और कंप्यूटर के माध्यम से अंजाम देते हैं। ब्लॉग या वेबलॉग एक प्रकार की वेबसाइट है, जिसे लोग डायरी की तरह उपयोग करते हैं। वे इस पर अपना अनुभव, विचार, सूचनाएँ, टेक्स्ट, वीडियो, चित्र आदि लोगों से साझा करते हैं।

ब्लॉग के संदर्भ में लॉरेल ने क्या खूब लिखा है – 'Your blog is your unedited version of yourself'। हम न जाने क्यों उसे यह या वह बना देने पर आमादा हैं।

सिमोन ड्यूमेंको के अनुसार – 'Blogging is just writing – writing using a particularly efficient type of publishing technology'। यह तो एक माध्यम है, विविधतापूर्ण माध्यम, जिसका जो चाहे, जिस उद्देश्य के लिए इस्तेमाल कर सकता है।

विकिपीडिया के अनुसार "चिट्ठा (ब्लॉग) – बहुवचन चिट्ठे (ब्लॉग्स), एक प्रकार के व्यक्तिगत जाल पृष्ठ (वेबसाइट) होते हैं, जिन्हें दैनंदिनी (डायरी) की तरह लिखा जाता है।" ब्लॉग वेबसाइट पर लेख प्रकाशित करने की क्रिया ब्लॉगिंग कहलाती है। एक ब्लॉग किसी एक व्यक्ति या एक टीम के द्वारा चलाया जाता है। ब्लॉग के विषयवस्तु (कंटेंट) को ब्लॉग पोस्ट कहते हैं। एक ब्लॉग में ढेर सारे ब्लॉग पोस्ट हो सकते हैं। ब्लॉग पोस्ट को अपडेट करने की तिथि के अनुसार एक क्रम में दिखाया जाता है। इसमें नए पोस्ट पहले और पुराने पोस्ट बाद में दिखाए जाते हैं। ब्लॉग पोस्ट को विभिन्न सोशल साइट्स, जैसे फ़ेसबुक, ट्विटर, गूगल प्लस पर शेयर किया जाता है, ताकि ज़्यादा से ज़्यादा लोग ब्लॉग पर भ्रमण (विज़िट) कर सकें। ब्लॉग में हर पोस्ट के नीचे एक टिप्पणी (कमेंट) सेक्शन होता है, जिसमें आगंतुक (विज़िटर) उस पोस्ट के विषय में अपनी राय दे सकता है।

"ब्लॉगर, वर्ड प्रेस, मायस्पेस और माय वेबदुनिया जैसी कई प्रमुख साइटों पर आप न केवल हिंदी में ब्लॉगिंग कर सकते हैं, बल्कि इन पर सारे टूल्स भी हिंदी में उपलब्ध है, जो एक बेहतरीन ब्लॉग बनाने में आपकी मदद करते हैं, भले ही आप कंप्यूटर के अधिक जानकार न हो"।[2]

आज कई प्रसिद्ध हस्तियाँ ब्लॉग पर सक्रिय हैं। लोग उनके ब्लॉग को बड़े चाव से पढ़ते हैं, उन पर टिप्पणी भेजते हैं। ब्लॉग पर राजनीतिक विचार, उत्पादों के विज्ञापन, शोध व शिक्षा का आदान–प्रदान भी किया जाता है। ब्लॉग लेखक को एक निजी किस्म की स्वतंत्रता प्रदान करता है। लेखक उस स्पेस का प्रयोग अपने तरीके से निर्बाध होकर कर सकता है। ब्लॉगिंग की दुनिया दूरी और समय के समान विस्तृत और व्यापक है, साथ ही स्वतंत्र व मनमौजी प्रकृति की है। यह एक ऐसा स्थान या मंच है, जहाँ आपको स्पेस (जगह) की कोई समस्या नहीं है। यहाँ न कोई संपादक है न कोई प्रकाशक। यहाँ आपको अभिव्यक्ति की जैसी स्वतंत्रता मिलती है, वैसी मुख्यधारा की पत्रकारिता में संभव नहीं है। यहाँ आप ही लेखक, संपादक व प्रकाशक होते हैं। इसलिए लिखने की मर्यादा पर भी सवाल उठाए जाने लगे हैं। वर्तमान में ब्लॉग–लेखन को एक समानांतर मीडिया का दर्जा–सा मिल गया है। न केवल हिंदी भाषा और साहित्य बल्कि विज्ञान, तकनीकी, स्वास्थ्य, यात्रा, राजनीति, फ़ैशन जैसे विषयों पर भी कई ब्लॉग सफलतापूर्वक चल रहे हैं।

ब्लॉग का इतिहास – दुनिया का प्रथम ब्लॉग लिन्क्सनेट जस्टिन हॉल नाम के एक अमेरिकन छात्र ने सन् 1994 में बनाया, जिस पर वह अपनी निजी ज़िंदगी की बातें लिखा करता था। वह इसका प्रयोग एक डायरी की तरह किया करता था। सन् 1997 में प्रथम बार वे ब्लॉग शब्द का प्रयोग जॉन बार्गर ने किया, जो रोबोट व्हिज़्डम नाम के ब्लॉग के एडिटर थे। सन् 1998 में ब्रूस एबलसन, जो एक कंप्यूटर प्रोग्रामर व वेबसाइट डेवलपर थे, ने ओपन डायरी बनाई जिस पर यूज़र लिख सकता था। इस पर

प्राइवेसी सेटिंग के साथ पहला कमेंट सिस्टम भी जोड़ा गया था। सन् 1999 में पीटर मेरहाल्ज़ ने वेब्लॉग शब्द को छोटा कर ब्लॉग कर दिया और इसी से ब्लॉग की शुरुआत हुई। इसी वर्ष लैब्स ने प्रथम ब्लॉग प्लेटफ़ोर्म ब्लॉगर बनाया, जिस पर लोग बिना कोडिंग के ब्लॉग लिख सकते थे। सन् 2003 में गूगल ने ब्लॉगर और ऐडसेंस को खरीदा, इसी वर्ष मैट मुलेनवेग ने वर्ड प्रेस को लॉन्च किया। इसके पश्चात् सन् 2007 में टंबलर लॉन्च हुआ, जिसने माइक्रोब्लॉगिंग के नए स्वरूप को जन्म दिया। इससे लोग सिर्फ़ टेक्स्ट ही नहीं, बल्कि चित्र, वीडियो, जी.आई. एफ़. आदि भी साझा कर सकते थे। यह विश्व की सबसे तेज़ गति वाली सोशल साइट थी, जिसे 2013 में याहू ने 1.1 बिलियन डॉलर में खरीद लिया। 2007 से अभी तक ब्लॉगिंग का दायरा काफ़ी बढ़ गया है। यह हर बिज़नेस का ज़रूरी हिस्सा बन गया है। आज फ़ेसबुक, व्हाट्सएप्प, इंस्टाग्राम, ट्वीटर जैसे सोशल मंच हैं, जिन्हें ब्लॉग से जोड़कर ज़्यादा से ज़्यादा व्यक्तियों तक पहुँचाया जा सकता है। रवीन्द्र प्रभात के शब्दों में "हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्वरूप देने में हर उस चिट्ठाकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जो बेहतर प्रस्तुतीकरण, गंभीर चिंतन, समसामयिक विषयों पर सूक्ष्म दृष्टि, सृजनात्मकता, समाज की कुरीतियों पर प्रहार और साहित्यिक–सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से अपनी बात रखने में सफल हो रहे हैं। चिट्ठा–लेखन और वाचन के लिए सबसे सुखद पहलू तो यह है कि हिंदी में बहतर चिट्ठा लेखन की शुरुआत हो चुकी है, जो हिंदी समाज के लिए शुभ संकेत है।"

"सन् 2009 तक ब्लॉग्स आमतौर पर एक ही व्यक्ति का काम होता था। कभी–कभार इसे एक समूह वाले, एक ही विषय पर वार्तालाप करने के लिए उपयोग में लेते थे। अभी हाल ही में बहुत से बहुलेखक ब्लॉग (मल्टी ऑथर ब्लॉग) विकसित हुए हैं, जिनमें बहुत से लेखकों द्वारा पोस्ट लिखी जाती है तथा पेशेवरों द्वारा संपादित की जाती है। समाचार–पत्रों के पेशेवर, अन्य मीडिया के आउटलेट्स, विश्वविद्यालयों के विचारक समूह, वकीलों के समूह इत्यादि की उपस्थिति तथा योगदान की वजह से ब्लॉग ट्रैफ़िक लगातार बढ़ रहा है। ट्विटर एवं अन्य माइक्रोब्लॉगिंग सिस्टम ब्लॉग्स को संगठित कर नई धारणाओं में एकीकृत करने में मदद करते हैं।"[3]

ब्लॉगिंग की सफलता के पीछे मुख्य रूप से दो कारण हैं, प्रथम यह कि ब्लॉग के प्रारंभ से पहले आम व्यक्ति इंटरनेट पर केवल एक दर्शक था। ब्लॉगिंग ने उसे लेखक बन अपनी बात दुनिया भर में पहुँचाने का अवसर दिया। दूसरा मुख्य कारण है, इस पर हम अपनी भाषा में अभिव्यक्ति कर सकते हैं। इससे ब्लॉगिंग में वे लोग भी रुचि लेने लगे, जिनकी पूर्व में इंटरनेट में रुचि नहीं थी। आज लोग हर उस विषय पर ब्लॉगिंग कर रहे हैं, जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं। प्रारंभ में तो यह केवल लिखने का शौक रखने वाले लोगों के बीच लोकप्रिय थी, लेकिन बाद में जैसे–जैसे इसकी खूबियों का लोगों को पता चला, इसके उपयोगकर्ता बढ़ते गए। विगत कुछ ही सालों में हज़ारों लोग हिंदी ब्लॉगिंग से जुड़े हैं और इनके विज़िटर की संख्या तो लाखों तक पहुँच गई है। ब्लॉग पर अभिव्यक्ति की वास्तविक और तेज़, कम खर्च में स्वतंत्रता उपलब्ध है, यह किसी अन्य माध्यम में नहीं। इसलिए अनेक युवाओं ने इसे अपनी जीविकोपार्जन का साधन बनाया और इससे बेहतर कमाई कर भी रहे हैं। कई ब्लॉगर अपने ब्लॉग की लोकप्रियता के अनुसार हर महीने लाखों रुपए कमा रहे हैं। कई कंपनियाँ प्रचार हेतु इन ब्लॉगरों की मदद लेती हैं और विज्ञापन भी पोस्ट करने हेतु देती है। इन ब्लॉग्स ने हिंदी भाषा को अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कराने का अवसर दिया और हिंदी ने कामयाबी के साथ वह कर भी दिखाया। आलोक कुमार हिंदी भाषा के प्रथम ब्लॉगर माने जाते हैं। इनका चिट्ठा "नौ दो ग्यारह" हिंदी का अब तक का प्रथम ज्ञात हिंदी ब्लॉग है। आलोक कुमार के 'नौ दो ग्यारह' नामक चिट्ठे से सन् 2003 में हिंदी में ब्लॉगिंग की दुनिया में अपनी यात्रा प्रारंभ की थी। वर्ष 2004 में 'चिट्ठा' शब्द को मेरियम–वेबस्टर में आधिकारिक तौर पर सम्मिलित किया गया था।

सन् 2007 से हिंदी चिट्ठों की संख्या अप्रत्याशित रूप से बढ़ी, इसका कारण विविध ब्लॉगिंग सेवाओं में इंडियन यूनिकोड का समर्थन आना, हिंदी टाइपिंग टूल्स का आना तथा विविध मीडिया माध्यमों द्वारा हिंदी चिट्ठाकारी का प्रचार भी रहा। श्री रवींद्र प्रभात ने अपनी पुस्तक 'हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास' में बताया है कि आवश्यकता, उपयोगिता, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय दुनिया से चंद सेकेंड में अपनी बात के ज़रिए जोड़ने वालों की बढ़ती संख्या को देखते हुए, आज ब्लॉगिंग जैसे द्रुतगामी संचार

माध्यम को पांचवाँ स्तंभ माना जाने लगा है। कोई इसे वैकल्पिक मीडिया, तो कोई न्यू मीडिया की संज्ञा से नवाज़ने लगा है। हिंदी में ब्लॉग के इतिहास–लेखन से संबंधित यह पहली पुस्तक है। "समीर लाल का चिट्ठा 'उड़नतश्तरी', ज्ञान दत्त पांडेय का 'मानसिक हलचल', अनूप शुक्ल का चिट्ठा 'फुरसतिया', प्रमोद सिंह का चिट्ठा 'अजदक' और अविनाश वाचस्पति का चिट्ठा 'नुक्कड़', विमल वर्मा का 'ठुमरी', प्रवीण त्रिवेदी का 'प्राइमरी का मास्टर', अरविंद मिश्र का 'साईं ब्लॉग', संजय बेगानी का 'जोग लिखी', महेंद्र मिश्र का 'समय चक्र', शाहनवाज़ का चिट्ठा 'प्रेमरस.कॉम', ज़ाकिर अली रजनीश का चिट्ठा 'तस्लीम', 'मेरी दुनिया मेरे सपने', रश्मि प्रभा का चिट्ठा 'मेरी भावनाएँ', 'वटवृक्ष', 'निर्मला', कपिला का 'बीर बहुरि', आकांक्षा सतीश सक्सेना का चिट्ठा 'मेरे गीत' आदि प्रसिद्ध ब्लॉग हैं।"[4]

यदि सरसरी निगाह भी डाली जाए, तो 'सबद', 'कबाड़खाना', 'अनुनाद', 'अजदक', 'प्रत्यक्षा' ब्लॉग ऐसे हैं, जहाँ पठनीय साहित्य पढ़ने को मिलेगा। इसी तरह का एक ब्लॉग है रवि रतलामी का 'रचनाकार'।

सामुदायिक ब्लॉगों में प्रमुख हैं 'मोहल्ला', 'चिट्ठा चर्चा', 'भड़ास ब्लॉग', 'कबाड़खाना'। कुछ प्रमुख ब्लॉगर, जो पूरी दृढ़ता के साथ मुद्दों की बात करते हैं, वह या तो पत्रकार हैं या संपादक या फिर स्वतंत्र लेखक आदि। ये ब्लॉगर अपने–अपने क्षेत्र में नामी–गिरामी हस्तियाँ हैं, फिर भी हिंदी ब्लॉगिंग के क्षेत्र में इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। इनमें प्रमुख हैं रवीश कुमार का 'कस्बा', पुण्य प्रसून बाजपेई, आलोक पुराणिक का 'अगड़म बगड़म', 'समाजवादी जन परिषद्', डॉक्टर महेश परिमल का 'संवेदनाओं के पंख' आदि।

वर्तमान में टॉप 5 हिंदी ब्लॉग में क्रमशः हैं – 'हिंदी में', 'माय बिग गाइड', 'कंप्यूटर हिंदी नोट्स', 'टिचयुक्ति' तथा 'माय हिंदी' (स्रोत : भारत में 25 टॉप हिंदी ब्लॉगर)

इसी के साथ 'गज़ब हिंदी', 'आसान है.नेट', 'शूट मी हिंदी', 'हिंदी की दुनिया', 'माय बिग गाइड' क्रमशः सर्वाधिक प्रसिद्ध ब्लॉग हैं, जिनकी अलेक्सा रैंकिंग काफ़ी बेहतर हैं। बेस्ट मोटिवेशनल हिंदी ब्लॉग में 'ज्ञानी पंडित', 'अच्छी खबर', 'हिंदी सोच', 'हैप्पी हिंदी', 'अच्छी सोच' क्रमशः टॉप 5 हिंदी ब्लॉग हैं।

इसी के साथ कुछ प्रसिद्ध हिंदी समाचार ब्लॉग हैं, क्रमशः 'न्यूज़ ट्रेड', 'खबर.एनडीटीवी.काम', 'जागरण.काम', 'आजतक.इनटुडे.इन', 'भास्कर.काम' बेहतरीन हिंदी ब्लॉग तक लोगों को पहुँचाने हेतु एक हिंदी ब्लॉग निर्देशिका है, इसे एक एंड्रॉइड एप्लीकेशन के रूप में तैयार किया गया है, इसे सीधे अपने फ़ोन पर हिंदी ब्लॉग का अपडेट पा उन्हें पढ़ सकते हैं। वर्तमान में करीब 40 करोड़ लोग इंटरनेट का प्रयोग कर रहे हैं, जिनमें से 33 करोड़ लोग स्मार्टफ़ोन द्वारा सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं। सोशल मीडिया पर हिंदी का प्रयोग तेज़ी से बढ़ रहा है। इसी के साथ हिंदी ब्लॉगर की संख्या भी बढ़ती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार हिंदी के लगभग 10,000 ब्लॉगर प्रसिद्ध व सक्रिय हैं और इन ब्लॉग पर आने वाले विज़िटर की संख्या लाखों में है। यह ब्लॉग नए–नए विषयों पर ज्ञान का प्रसार करने के साथ प्राचीन पुस्तकों की पी.डी.एफ़. भी उपलब्ध करा रहे हैं। इस प्रकार भी यह हिंदी के प्रचार–प्रसार में सहयोग प्रदान कर रहे हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक इंटरनेट पर सबसे ज़्यादा हिंदी भाषा में सामग्री उपलब्ध होगी।

'हिंदी ब्लॉगिंग ने न सिर्फ़ इंटरनेट, बल्कि जनसंचार के माध्यमों तथा रचनाकर्म के बीच भी अलग पहचान और जगह बनाई है। हिंदी रचनाकर्म के क्षेत्र में ठहराव और शीतलता के बीच ब्लॉगिंग, जो कि वास्तव में एक तकनीकी परघटना तथा माध्यम मात्र है, ने वह हलचल और ऊष्मा पैदा की है, जिसकी अनुपस्थिति हिंदी साहित्य, पत्रकारिता और भाषा प्रेमियों को व्यथित करने लगी थी।'[5]

हिंदी ब्लॉगिंग ने सूचना संसार प्रौद्योगिकी में अपना स्वतंत्र मंच बनाया है और आम आदमी को भी अपने विचार कहने, सुनने, बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता दी है, लेकिन यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यह स्वतंत्रता कहीं स्वच्छंदता में न बदल जाए। साथ ही, ब्लॉग पर प्रकाशित सामग्री पर विश्वसनीयता का संकट बहुत बड़ा है।

डॉ. उदय प्रकाश, हिंदी कथाकार एवं ब्लॉगर के अनुसार "निजी स्वतंत्रता के आधुनिक विचार के लिए भी ब्लॉग की दुनिया में जगह है। ब्लॉग के माध्यम से कितने सार्थक कार्य और बहसें हो रही हैं, यह एक अलग मुद्दा है, लेकिन ब्लॉग लेखक को एक निजी किस्म की स्वतंत्रता देता है। उस स्पेस का इस्तेमाल लेखक अपने तरीके से निर्बाध होकर कर सकता है।" हिंदी भाषा

के प्रचार–प्रसार में इन ब्लॉगों की महती भूमिका है। किसी ने कहा है कि आज का ब्लॉग कल की पुस्तक है। अर्थात् अब यदि आप कागज़–कलम की बजाए अपने विचारों को नेट के ज़रिए, ब्लॉग के ज़रिए लोगों तक पहुँचाते हैं, तो आपके विचारों की ब्लॉग के रूप में इलेक्ट्रॉनिक पांडुलिपि बन जाती है। इन ब्लॉग्स ने भाषा के साथ ही भारतीय संस्कृति को भी विश्व में पहुँचाने का काम किया है। ज्ञान, विज्ञान व तकनीकी के कई कठिन समझे जाने वाले विषयों पर हिंदी में ब्लॉग के ज़रिए ज्ञान को लोगों तक पहुँचाया गया।

भूमंडलीकरण के युग में हिंदी की भूमिका संपर्क, संप्रेषण और सान्निध्य की है, जिसका वह बखूबी निर्वहन कर रही है। हिंदी ने अपनी पहुँच और विस्तार से वेब मीडिया के क्षेत्र में अपनी खास जगह बना ली है। कहा जा सकता है कि हिंदी के प्रचार–प्रसार को हिंदी ब्लॉग जगत ने एक नई दिशा दी और उसे विस्तृत व व्यापक उड़ान दी। इसने ज्ञान व साहित्य के साथ–साथ हिंदी भाषा को भी वैश्विक प्रासंगिकता प्रदान की। इससे जहाँ एक ओर ब्लॉग–लेखन को समानांतर मीडिया का दर्जा मिला, वहीं दूसरी ओर हिंदी भाषा को अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कराने का अवसर मिला। आज हिंदी पूरी कामयाबी के साथ वेब मंच पर अपनी सार्थक उपस्थिति का परचम लहरा रही है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा शैलेन्द्र कुमार, वेब मीडिया के विस्तार में विश्व भाषा हिंदी की भूमिका (लेख)। सं– शर्मा मनीषा, विश्व पटल पर हिंदी, रंग प्रकाशन इन्दौर, प्रथम सं. 2015, पृ. 37
2. जायसवाल जितेन्द्र, हिंदी ब्लॉगिंग : आपका अपना चिट्ठा, @m.hindi.webdunia.com
3. प्रभात रविन्द्र/हिंदी ब्लॉगिंग यानी सफर जोश का खुशी जीत की, सित. 9, 2011/http://readersblog.navbharattimes.indiatimes.com
4. माली राजकुमार, भारत के लोकप्रिय हिंदी ब्लॉग्स, मार्च 2016/ http://gajabkhabar.com
5. दाधीच शर्मा बालेन्दु, ब्लॉगिंग को साहित्य कहलाने की अनावश्यक बेताबी, www.balendu.com

manishasharma86076@gmail.com

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आगे बढ़ती हिंदी

– श्री श्याम सुंदर कथूरिया
नई दिल्ली, भारत

भाषा बंधन मुक्त होती है। इसके प्रवाह को कोई नहीं रोक सकता। यह सहज ही चहुँदिश प्रसारित होती रहती है, परंतु आज के युग में जनसंचार माध्यमों ने जिस तीव्र गति से भाषाओं, विशेष रूप से हिंदी को वैश्विक फलक पर जो पहचान दिलाई है, वह अतुलनीय है।

कम्प्यूटर, इटरनेट, ई–मेल, सोशल मीडिया आदि के आविष्कार ने विश्व की सभी भाषाओं के साथ–साथ हिंदी के प्रौद्योगिकीय पक्ष के विकास की आवश्यकता पर बल दिया। परिणामस्वरूप कम्प्यूटरों/इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों पर हिंदी टंकण के लिए यूनिकोड के प्रयोग की शुरुआत हुई। इससे हिंदी टंकण सुविधाजनक हो गया। जो लोग पहले सोशल मीडिया पर अपने हिंदी संदेश रोमन लिपि में लिखने के लिए विवश थे, अब वे यूनिकोड की सहायता से हिंदी संदेश देवनागरी लिपि में चार तरीके से सरलतापूर्वक लिखने में सक्षम हो गए। इसी प्रकार विपत्र (ई–मेल) भी हिंदी में लिखे जाने लगे।

यूनिकोड की सफलता के फलस्वरूप ही मीडिया में हिंदी प्रयोग का नया अध्याय प्रारंभ हुआ। इसके अतिरिक्त इस दिशा में एक कदम और आगे बढ़ाते हुए सूचना प्रौद्योगिकी आधारित हिंदी में काम करने संबंधी अनेक टूल्स/सॉफ़्टवेयर विकसित हो चुके हैं। आम–जन को इनके बारे में अधिक जानकारी नहीं है। हिंदी प्रयोग बढ़ रहा है, परंतु बिना अद्यतन प्रौद्योगिकी के। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पुराने और लंबे मार्ग का प्रयोग किया जा रहा है, जबकि लघुतम मार्ग भी सुलभ है।

अब आवश्यकता महसूस की जा रही है कि हिंदी संबंधी नवीनतम उपकरणों/सॉफ़्टवेयरों का प्रचार–प्रसार किया जाए, जिससे लोग इनका अधिकाधिक प्रयोग शुरू कर सकें और समय की बचत करके आसानी से हिंदी में कार्य किया जा सके। ऐसे ही कुछ हिंदी सॉफ़्टवेयरों/टूल्स के बारे में कुछ जानकारी दी जा रही है। इससे आपको ज्ञात होगा कि सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में हिंदी किसी भी दृष्टि से अंग्रेज़ी से पीछे नहीं है। इन्हें सजाल वितानस्थली (website) या सी.डी. आदि से डाउनलोड/इन्स्टॉल किया जा सकता है।

विंडोज़ और एम.एस. ऑफ़िस हिंदी में भी

विदित है कि जब हम कंप्यूटर चालू करते हैं, तो सामान्यतः विंडोज़ और एम.एस. ऑफ़िस में काम करते हैं। इनके इंटरफ़ेस हमें अंग्रेज़ी में दिखते हैं, जबकि इन्हें हिंदी में परिवर्तित किया जा सकता है।

विंडोज़ की भाषा बदलने के लिए Settings > Language > Add Preferred Language > Hindi > Window Display Language > Hindi

और MS Office की भाषा बदलने के लिए Open Document > File > Options > Language > Choose Display Language > Hindi कर सकते हैं।

हिंदी टाइपिंग टूल

आधुनिक युग में हिंदी के प्रयोग के लिए आवश्यक है कि हमें हिंदी टाइपिंग आती हो। यूनिकोड के आने से यह कार्य आसान हो गया है। जिन्हें हिंदी टाइपिंग आती है, वे अपने कम्प्यूटर के कंट्रोल पैनल से इनबिल्ट देवनागरी स्क्रिप्ट कीबोर्ड लेआउट सक्रिय कर सकते हैं। हिंदी रेमिंग्टन की–बोर्ड ले–आउट के लिए https://www-microsoft.com/en-in/bhashaindia/ से Hindi Indic input 1/2/3 इन्स्टॉल कर सकते हैं। जिन्हें हिंदी टाइपिंग नहीं आती वे इनबिल्ट फ़ोनेटिक/लिप्यंतरण/रोमन टाइपिंग को सक्रिय करके (केवल विंडोज़ 10 के लिए) या https://www.microsoft.com/en-in/bhashaindia/ से Microsoft Indic Language Input Tool इन्स्टॉल करके या

http://www.google.com/inputtools से Google Transliteration Tool से हिंदी शब्दों को रोमन लिपि में टाइप करके आउटपुट देवनागरी में प्राप्त कर सकते हैं। विंडोज़ 10 के लिए हिंदी टंकण की अन्य विधाओं में – Taskbar के search में OSK टाइप करके On Screen Keyboard प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार Taskbar में right click करके show touch keyboard button पर Tick करके touch keyboard प्राप्त किया जा सकता है।

ऑनलाइन हिंदी शब्दकोश

हिंदी अनुवाद के क्षेत्र से जुड़े लोगों तथा सामान्य जन को भी किसी शब्द का अर्थ या दूसरी भाषा में पर्याय देखने के लिए शब्दकोश चाहिए होता है। ऐसे में अपने पास बड़े–बड़े शब्दकोश रखने की अब आवश्यकता नहीं है। अब हम विभिन्न प्रकार के अंग्रेज़ी–हिंदी शब्दकोश अपने कम्प्यूटर या मोबाइल पर ऑनलाइन/ऑफ़लाइन प्रयोग कर सकते हैं, जैसे –

www.tdil.dc.in पर शाब्दिका शब्दकोश
www.dict.hinkhoj.com पर हिन्खोज
www.cstt.nic.in पर प्रशासनिक शब्दावली
http://e-mahashabdkosh.rb.aai.in पर ई महाशब्दकोश
www.shabdkosh.com पर शब्दकोश

इसके अतिरिक्त www.dangisoft.com पर शब्द ज्ञान (यूनिकोड आधारित हिंदी–अंग्रेज़ी–हिंदी डिक्शनरी), शब्दकोश (हिंदी–अंग्रेज़ी–हिंदी), वर्धा हिंदी शब्दकोश (हिंदी–हिंदी शब्दकोश) प्राप्त किए जा सकते हैं। किसी भी प्रकार के शब्दकोश, जैसे विधि, वाणिज्य, रक्षा, मानविकी आदि के लिए https://hi-wiktionary.org पर अनेक शब्दकोशों का ऑनलाइन संग्रह प्राप्त किया जा सकता है। www.rajbhasha.gov.in पर 'ई–सरल हिंदी वाक्य कोश' में अनेक मंत्रालयों में प्रयुक्त होने वाले अंग्रेज़ी वाक्यों के सरल हिंदी अनुवाद का मंत्रालयवार संग्रह उपलब्ध है।

मशीनी हिंदी अनुवाद

हिंदी में कार्य करते समय कभी–कभी अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। अब सरल अंग्रेज़ी वाक्यों का हिंदी अनुवाद ऑनलाइन संभव है। यह सॉफ़्टवेयर एक हिंदी अनुवादक की भांति कार्य करता है, परंतु इससे जटिल वाक्यों का अनुवाद सहज नहीं हो पाता। चूँकि भाषा व्यक्ति की भावना से जुड़ी होती है, इसलिए कोई भी सॉफ़्टवेयर भावनाओं का अनुवाद नहीं कर सकता। यह अंग्रेज़ी वाक्य के शब्दों के हिंदी पर्यायों को वाक्य संरचना में बाँधकर अनुवाद के रूप में प्रस्तुत कर देता है, अतः यह अनुवाद 100% शुद्ध नहीं होता। इसमें प्रायः संशोधन अपेक्षित होता है। इसके लिए निम्नलिखित साइट उपयोगी हैं :

www.rajbhasha.gov.in पर मंत्र राजभाषा
http://translate.google.co.in पर गूगल ट्रांस्लेट
www.bing.com/translator पर बिंग ट्रांस्लेटर
www.tdil-dc.in पर मशीन ट्रांस्लेशन
http://kanthasth-rajbhasha.gov.in पर स्मृति आधारित अनुवाद

माइक्रोसॉफ़्ट ऑफ़िस के नए संस्करण, यानी कि ऑफ़िस 2016, ऑफ़िस 2019 या ऑफ़िस 365 में Review टैब के भीतर भाषाओं से जुड़ी कई सुविधाएँ दी गई हैं, जिनमें से एक है मशीन अनुवाद।

इसके अतिरिक्त Windows 10 में Virtual Assistant – Cortana की सहायता से भी अनुवाद कार्य किया जा सकता है।

इसी प्रकार मोबाइल फ़ोन में भी गूगल ट्रांस्लेट मोबाइल एप्प इन्स्टॉल करके त्वरित/सचित्र/स्कैन/इमेज टैक्स्ट अनुवाद, बोलकर, लिखकर, टाइप करके अनुवाद या द्विभाषी वार्तालाप कर सकते हैं। अंग्रेज़ी–हिंदी शब्दानुवादक (ग्लोबल वर्ड ट्रान्सलेटर) का लिंक www.dangisoft.com से प्राप्त किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त http://ctb.rajbhasha.gov.in/?1153?21 पर केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो द्वारा विकसित 'अनुवाद ई लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म' पर अनुवाद प्रशिक्षण वीडियो और अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्य सामग्री उपलब्ध हैं।

लीला (Learn Indian Languages through Artificial Intelligence)

यह एक ऑनलाइन स्वयं हिंदी शिक्षण पैकेज है। भारत सरकार के निर्देश हैं कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारी/अधिकारी

के लिए हिंदी जानना अनिवार्य है। हिंदीतर भाषी कार्मिकों को हिंदी सिखाने के प्रयोजन से राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्व ारा यह सॉफ़्टवेयर विकसित किया गया है। इसमें भारत सरकार की हिंदी शिक्षण योजना के अनुसार प्रबोध (प्राथमिक स्तर तक का हिंदी ज्ञान), प्रवीण (मिडिल स्तर तक का हिंदी ज्ञान) और प्राज्ञ (दसवीं स्तर तक का हिंदी ज्ञान) पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। 'www.rajbh.sha.gov.in आई.टी. टूल्स' पर जाकर कोई भी हिंदीतर भाषी लीला सॉफ़्टवेयर में अपना नाम पंजीकृत कर अपनी मातृभाषा (कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगू, बंगला, असमिया, उड़िया, मणिपुरी, मराठी, पंजाबी, नेपाली, कश्मीरी, गुजराती व अंग्रेज़ी) के माध्यम से हिंदी सीख सकता है। इसमें प्रत्येक पाठ्यक्रम पूर्ण करने पर ऑनलाइन परीक्षा की भी व्यवस्था है।

लीला हिंदी प्रवाह

www.rajbhasha.gov.in उनके लिए, जिनका हिंदी में अभ्यास कम है। इसमें अलग–अलग विधाओं के 20 पाठ हैं, जो 14 भाषाओं में डेस्कटॉप और मोबाइल वर्शियन पर शब्द उच्चारण सहित रिकॉर्ड–कम्पेयर सुविधा है।

श्रुतलेखन राजभाषा (Independent Speech recognition System)

यह एक ऐसा सॉफ़्टवेयर है, जिसमें माइक्रोफ़ोन की सहायता से बोले गए हिंदी पाठ को कम्प्यूटर पर टंकित रूप में प्राप्त किया जा सकता है। यह बोली गई भाषा को डिजीटाइज़ करके इनपुट के रूप में लेकर आउटपुट एक स्ट्रीम ऑफ़ टैक्स्ट के रूप में प्रस्तुत करता है। पहले यह सॉफ़्टवेयर निर्धारित मूल्य अदा करके राजभाषा विभाग या सी–डैक पुणे से खरीदा जा सकता था, परंतु अब यह 'www.rajbhasha.gov.in आई.टी. टूल्स' पर निःशुल्क उपलब्ध है। जो हिंदी में टाइप नहीं कर पाते हैं, वे इसका लाभ हिंदी आशुलिपिक के रूप में उठा सकते हैं। इसमें वक्ता का उच्चारण जितना शुद्ध होगा परिणाम भी उतना शुद्ध होगा। इससे प्राप्त अशुद्ध टंकित सामग्री को पुनः बोलकर अथवा टंकित कर संशोधित किया जा सकता है। अब इसमें पहले से रिकॉर्ड की गई स्पीच को भी टंकित रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

ऐसी सुविधा गूगल वॉयस टाइपिंग – वाक् से पाठ (Speech to Text) से भी प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए गूगल अकाउंट होना आवश्यक है। इसमें टाइप करके सेव किए हुए दस्तावेज़ एक्स्पोर्ट या शेयर भी किए जा सकते हैं। इसे मोबाइल फ़ोन पर गूगल डॉक्स के रूप में इन्स्टॉल करके भी प्रयोग किया जा सकता है।

प्रवाचक

यह एक ऐसा सॉफ़्टवेयर है, जो कम्प्यूटर पर टंकित हिंदी सामग्री को पढ़कर स्पीकर की सहायता से बोलता है। विशाल टंकित हिंदी सामग्री को यदि पढ़ने का समय न हो, तो उसे सुनकर समझा जा सकता है। यह निरक्षरों के साथ–साथ दृष्टिहीन व्यक्तियों के लिए तो वरदान है, जो पढ़ तो नहीं सकते, परंतु सुन सकते हैं। यह सॉफ़्टवेयर भी 'www.rajbhasha.gov.in आई.टी. टूल्स' पर निःशुल्क उपलब्ध है। इसे अपने कम्प्यूटर पर डाउनलोड करके दिए गए स्थान पर पाठ को टंकित करके या किसी पाठ को पेस्ट करके सुना जा सकता है। इसमें बोलने की गति को धीमा या तीव्र भी किया जा सकता है।

माइक्रोसॉफ़्ट वर्ड के भीतर भी पाठ से वाक् की सुविधा का लाभ उठाया जा सकता है, बशर्ते आपके पास माइक्रोसॉफ़्ट ऑफ़िस के नए संस्करण हों, यानी कि ऑफ़िस 2016, ऑफ़िस 2019 या ऑफ़िस 365। ऑफ़िस के इन संस्करणों में Review टैब के भीतर Speech में जाकर Read Aloud को क्लिक करके इसका प्रयोग करते हुए आप अपने हिंदी दस्तावेज़ को पाठ से वाक् में सुन सकते हैं।

इसके अतिरिक्त केंद्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन ने दृष्टिबाधितों और निरक्षरों के लिए मुद्रित दस्तावेज़ पढ़ने वाला उपकरण 'दिव्यनयन' बनाया है। यह बिना इंटरनेट चलता है। यह दस्तावेज़ को स्कैन करके सुनाता है। इसका मोबाइल एप्प प्ले स्टोर पर उपलब्ध है। यह पी.डी.एफ़. को एडिटेबल फ़ॉर्मेट में बदलकर फिर पढ़कर सुनाता है।

वर्तनी परीक्षक (Spell Checker)

कंप्यूटर पर हिंदी में टंकण करते समय प्रायः यह महसूस किया जाता है कि हमें अंग्रेज़ी की भांति वर्तनी परीक्षक की सुविधा नहीं मिलती। वर्तनी में त्रुटियाँ हो जाने के भय के कारण कुछ लोग हिंदी में कार्य नहीं कर पाते। इस समस्या से निपटने के लिए माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं

संचार विश्वविद्यालय ने 'माला शब्द संशोधक' (माखनलाल चतुर्वेदी हिंदी शब्द संशोधक) विकसित किया है। विश्वविद्यालय की वेबसाइट www.mcu.ac.in पर यह सॉफ़्टवेयर ओपनसोर्स के अंतर्गत उपलब्ध है। इसे निःशुल्क डाउनलोड करके इंस्टॉल किया जा सकता है। यह एक नया बहुविकल्पीय और वस्तुतः बहुआयामी प्रायोगिक हिंदी वर्तनी परीक्षक–सह–लेखक सॉफ़्टवेयर है। इसके विशाल शब्द भंडार में आम प्रचलित दो लाख शब्द हैं। इसमें गलत वर्तनी वाले शब्द का तत्काल पता लग जाता है और उस शब्द को क्लिक करने पर सही वर्तनी वाले शब्दों के विकल्प वहीं पर उपलब्ध हो जाते हैं। ऐसी सुविधा orangoo.com/spellcheck/# पर भी है। सक्षम (हिंदी वर्तनी परीक्षक) प्रथम हिंदी वर्तनी परीक्षक (लिम्का बुक ऑफ़ रिकॉर्ड्स–2015) का लिंक www.dangisoft.com से प्राप्त किया जा सकता है।

अब माइक्रोसॉफ़्ट वर्ड के भीतर ही आप वर्तनी परीक्षक और Auto Correct की सुविधा का लाभ उठा सकते हैं। यह माइक्रोसॉफ़्ट ऑफ़िस के 2010 संस्करण सहित ऑफ़िस 2016, ऑफ़िस 2019 या ऑफ़िस 365 के Review Tab > Language > Language Preferences > Choose Editing Language > Hindi Add > OK /Restart Computer द्वारा सक्रिय की जा सकती है।

मोबाइल तथा टैबलेट पर हिंदी टंकण

आजकल मोबाइल फ़ोन पर हिंदी में लघु संदेश सेवा (एस.एम.एस.) का चलन बढ़ता जा रहा है। कुछ कंपनियाँ अपने मोबाइल फ़ोन में हिंदी टंकण की सुविधा दे रही हैं, परंतु आवश्यकतानुसार इसे निःशुल्क डाउनलोड भी किया जा सकता है। एन्ड्रॉइड आधारित फ़ोन में फ़ोनेटिक तथा अन्य हिंदी टंकण सुविधाएँ सक्रिय करने के लिए प्ले स्टोर में जाकर 'गूगल हिंदी इनपुट टूल' को अपने फ़ोन में संस्थापित कर सकते हैं। इसके बाद Settings > Language and Input में जाकर Default Google Input Hindi सैट करें। संदेश तैयार करते समय आपको स्क्रीन पर एक नए प्रकार का कुंजीपटल मिलेगा। इससे आप चार प्रकार से हिंदी टंकण कर — (क) हिंदी वर्णमाला कुंजीपटल से (ख) रोमन (अंग्रेज़ी वर्णमाला) कुंजीपटल से फ़ॉनेटिक या ट्रांस्लिटरेशन (क्वर्टी ले–आउट पर) टंकण (ग) फ़ोन के स्पीकर पर हिंदी में बोलकर (घ) फोन की स्क्रीन पर पेंसिल आइकन/स्टिक से हिंदी में लिखकर। इसके अतिरिक्त हिंदी का ही पाणिनी की–पैड जावा/सिम्बियन और एन्ड्रॉइड आधारित फ़ोन पर प्रयोग किया जा सकता है। आईफ़ोन पर आई ट्यून स्टोर से यह सुविधा प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार हिंदी के संदेशों को रोमन लिपि में भेजने की बजाय देवनागरी में ही भेजना आसान हो गया है।

जीमेल में सीधे हिंदी टंकण करने के लिए Settings > General Tab > Show all language options > Enable Input Tools > All Input Tools > भाषा सहित Key Board चुनें > Save changes on Settings page, अब G Mail पर Input Language Icon दिखाई देगा। यहाँ से इच्छित भाषा का Input Tool चुनें।

इसी प्रकार Google Chrome में हिंदी टंकण हेतु Google Chrome में Google.com पर Chrome Web Store Google Input Tools टाइप कर search करें। Screen पर Add to Chrome पर Click करें। अब Google Input Tool Extension Install हो चुका है। अगली बार Omnibox में एक Icon दिखाई देगा। इस Icon पर Click करने पर Crop Down में चयनित भाषाओं में से इच्छित भाषा का कहीं भी प्रयोग किया जा सकता है।

अब हिंदी में भी बात करता है गूगल

अब हिंदी भाषा बोलने वालों के लिए एंड्रॉइड फ़ोन पर अपने असिस्टेंट से बात करना और आसान हो जाएगा। नए अपडेट के साथ अब गूगल असिस्टेंट हिंदी भाषा को भी सपोर्ट करेगा। यानी यूज़र्स अगर गूगल वॉय्स असिस्टेंट से हिंदी में सवाल पूछते हैं, तो असिस्टेंट उसे समझकर हिंदी में ही सवालों के जवाब देगा। और हिंदी भाषा को सपोर्ट करने वाला गूगल पहला और अकेला वॉय्स असिस्टेंट बन गया है। मगर बता दें कि फ़िलहाल ये सुविधा सिर्फ़ उन प्रयोक्ताओं को मिली है, जिन्होंने अपने एंड्रॉइड फ़ोन में लेंग्वेज प्रिफ़ेरेंस में अंग्रेज़ी को सिलेक्ट किया है और जो स्मार्टफ़ोन एंड्रॉइड 5.0 मार्शमैलो या उसके ऊपर के वर्शियन पर चल रहे हैं।

प्रकाशित संप्रतीक अभिज्ञान या ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकग्निशन (ओ.सी.आर.) सॉफ़्टवेयर

कभी–कभी पहले से मुद्रित हिंदी सामग्री (हार्ड कॉपी) में संशोधन आदि हेतु उसकी सॉफ़्ट प्रति की आवश्यकता पड़ती है। सॉफ़्ट प्रति उपलब्ध न होने पर उसे नए सिरे से टंकित करना पड़ता है। इस श्रमसाध्य कार्य से बचने के लिए अब हिंदी ओ.सी.आर. सॉफ़्टवेयर सुलभ हो गए हैं। इससे स्कैन्ड हिंदी फ़ाइलों को टेक्स्ट फ़ॉर्मेट में बदला जा सकता है। इसमें प्रूफ़ पठन या संपादन की आवश्यकता भी रहती है। इस सॉफ़्टवेयर को निम्नलिखित वेबसाइट से लिया जा सकता है :

www.chitrankan.software.informer.com पर चित्रांकन

www.i2ocr.com पर Free Croation OCR

www.tdil-dc.in पर tdil.ocr

www.indsenz.com पर Hindi OCR

यही सुविधा Hindi OCR Google पर भी ऑनलाइन उपलब्ध है।

फ़ॉन्ट परिवर्तक

कई बार ऐसा होता है कि कोई फ़ाइल हमारे पास गैर यूनिकोड हिंदी फ़ॉन्ट में है और हम उसे पढ़ नहीं पाते, क्योंकि हमारे पास वह फ़ॉन्ट नहीं है, जिसमें इसे टंकित किया गया है। अतः इसे यूनिकोड में परिवर्तित कर पढ़ा जा सकता है। इसके लिए http://www.ildc.in पर परिवर्तन सॉफ़्टवेयर, http://bhashaindia.com पर TBIL Converter 3.0. सॉफ़्टवेयर तथा कृतिदेव 010 से यूनिकोड में परिवर्तित करने के लिए 'http:#rajbhasha.net > फ़ॉन्ट परिवर्तन' पर जाकर परिवर्तक का प्रयोग किया जा सकता है। 'kavitakosh.org' पर कृतिदेव, चाणक्य, शुषा, डेवलिस फ़ॉन्ट को यूनिकोड में बदला जा सकता है। उल्लेखनीय है कि ये परिवर्तक यूनिकोड से गैर यूनिकोड हिंदी फ़ॉन्ट में भी परिवर्तन का कार्य करते हैं। प्रखर देवनागरी फ़ॉन्ट परिवर्तक (अस्की/ इस्की फ़ॉन्ट से यूनिकोड फ़ॉन्ट में परिवर्तन) या यूनिदेव (यूनिकोड फ़ॉन्ट से अस्की/इस्की फ़ॉन्ट में परिवर्तन) का लिंक www.dangisoft.com से प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय लिपियों को आपस में बदलना (Indic Script Conversion)

कई बार ऐसा होता है कि कोई हिंदी–भाषी व्यक्ति किसी हिंदीतर भाषा के पाठ का उच्चारण करना चाहता है, वह भी उस भाषा को सीखे बिना। तब उस भाषा को देवनागरी लिपि में परिवर्तित कर भी पढ़ा जा सकता है। यह सुविधा निःशुल्क https://sites.google.com/site/technicalhindi/home > लिपि परिवर्तक > Asian Scripts Interchanger_V04:, http://www.hindietools.com/2017/03/indian-language-script-converter.html, https://www.ashtangayoga.info/sanskrit/transliteration/transliteration-tool, www.indiatyping.com आदि सॉफ़्टवेयर पर उपलब्ध हैं। इसमें कुल 9 भारतीय भाषाओं अर्थात् देवनागरी, बंगाली, ओड़िया, तमिल, तेलुगू, गुरुमुखी, कन्नड़, गुजराती और मलयालम में पाठ को आपस में बदलने की सुविधा उपलब्ध है।

देवनागरी हिंदी चैट स्टिकर्स

सोशल मीडिया में हिंदी में बने–बनाए स्टिकर्स प्राप्त करने के लिए Hikestickers.com पर हिंदी स्टिकर्स और Google play store से हिमोजी इंस्टॉल किया जा सकता है। कैलीग्राफ़ी ने हिमोजी को और भी खूबसूरत एवं दमदार बना दिया है। StickoText-com पर हम स्वयं स्टिकर बना सकते हैं।

ओपन टाइप यूनिकोड फ़ॉन्ट्स

कम्प्यूटर में यूनिकोड सक्रिय हो जाने पर हिंदी टंकण के लिए मंगल फ़ॉन्ट स्वतः ही मिल जाता है। इसके अतिरिक्त एरियल यूनिकोड, उत्साह, कोकिला, अपराजिता आदि फ़ॉन्ट भी मिल जाते हैं। मंगल फ़ॉन्ट देखने में आकर्षक नहीं है तथा यह स्थान भी अधिक घेरता है। अनेक नए, सुंदर और आकर्षक फ़ॉन्ट डाउनलोड करने के लिए www.ildc.in साइट पर जाया जा सकता है। ये फ़ॉन्ट मंगल की तरह प्रयोक्ता अनुकूल हैं। इसके साथ–साथ गूगल आदि से भी इसे प्राप्त किया जा सकता है।

यूनिकोड फ़ॉन्ट में पत्रिका/पुस्तक मुद्रण

हिंदी में पत्रिका मुद्रण करने हेतु मुद्रक प्रायः गैर यूनिकोड फ़ॉन्ट में ही सामग्री की माँग करते हैं। इसका कारण यह है

कि ये लोग पुराने Page Making Applications – Adobe (PageMaker), Corel, Quark पर ही अपना कार्य करते हैं। ये एप्लिकेशन यूनिकोड में टाइप किए हुए पाठ का समर्थन नहीं करते। जबकि अब नए Page Making Applications– Microsoft Publisher, Adobe (InDesign), Corel Draw, Quark XPress आदि आ चुके हैं। इनके माध्यम से यूनिकोड में ही पत्रिका तैयार कर सकते हैं।

भारतीय ओपन ऑफ़िस (बी.ओ.ओ.)

यह ओपन ऑफ़िस का स्थानीय रूप है। यह निःशुल्क प्रयोग के लिए है। इसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ (फ़ीचर्स) हैं, जो अन्य ऑफ़िस स्युट में खरीदनी पड़ती हैं। यह ओपन सोर्स है। इसमें वर्तनी संशोधक आदि की सुविधा भी है। इसका हिंदी भाषा संस्करण www.ildc.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

ILDC की साइट के माध्यम से TDIL (Technology Development for Indian Languages) पर पंजीकृत करके सी–डैक (Centre for Development of advanced Computing) द्वारा तैयार तथा संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रमोचित एक सी.डी. उपलब्ध है। इससे अनेक सॉफ़्टवेयर अपने कम्प्यूटर में निःशुल्क इंस्टॉल किए जा सकते हैं। इसमें (1) डेस्कटॉप संबंधी उपयोग के लिए हिंदी टूल्स जैसे यूनिकोड अनुकूल कीबोर्ड ड्राइवर, ओपन टाइप फ़ॉन्ट्स, लिब्र ऑफ़िस (ऑफ़िस सॉफ़्टवेयर) का हिंदी संस्करण (2) इंटरनेट उपयोग के लिए टूल्स, जैसे – फ़ायरफ़ॉक्स (वेब ब्राउज़र) का हिंदी संस्करण, लाइटनिंग प्लगइन के साथ थंडरवर्ड (ईमेल क्लाइंट) का हिंदी संस्करण, पिडगिन (सार्वभौमिक चैट क्लाइंट) का हिंदी संस्करण (3) चार सॉफ़्टवेयर का एक सेट अर्थात् लेखांकन प्रणाली – GNU Cash, ग्राफ़िक्स डिज़ाइन सॉफ़्टवेयर–इंकस्केप, बच्चों के लिए ड्राइंग सॉफ़्टवेयर–टक्स पेंट और सामग्री प्रबंधन–Joomla सॉफ़्टवेयर हिंदी में उपलब्ध हैं।

इसी प्रकार सी–डैक द्वारा तैयार तथा संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रमोचित हिंदी सॉफ़्टवेयर उपकरणों की एक सी.डी. राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई है। इसमें (1) हिंदी भाषा के ट्रू टाइप फ़ॉन्ट्स एवं कीबोर्ड ड्राइवर, (2) ट्रू टाइप फ़ॉन्ट्स के लिए हिंदी भाषा मल्टीफ़ॉन्ट कीबोर्ड इन्जिन, (3) हिंदी भाषा के यूनिकोड आधारित ओपन टाइप फ़ॉन्ट्स, (4) हिंदी भाषा के यूनिकोड आधारित की–बोर्ड ड्राइवर, (5) हिंदी के लिए सभी प्रकार के फ़ॉन्ट्स कोड एवं स्टोरेज कोड का परिवर्तक, (6) भारतीय ओपन ऑफ़िस (ओपन सोर्स) का हिंदी भाषा संस्करण, (7) हिंदी में फ़ायरफ़ॉक्स ब्राउज़र, (8) हिंदी में जी.ए.आई.एम. मल्टी प्रोटोकॉल संदेशवाहक, (9) हिंदी में कोलम्बा ईमेल क्लाइंट एवं लाइम वायर, (10) हिंदी ओ.सी.आर., (11) हिंदी एवं अंग्रेज़ी के लिए आसान टाइपिंग अनुशिक्षक, (12) हिंदी के लिए एकीकृत शब्द संसाधक, (13) अंग्रेज़ी–हिंदी शब्दकोश, (14) हिंदी भाषा के शब्द–वर्तनी जांचकर्ता, (15) हिंदी भाषा का शब्दानुवाद टूल, (16) हिंदी के लिए टेक्स्ट–टू–स्पीच प्रणाली सॉफ़्टवेयर टूल्स उपलब्ध हैं। इन्हें अपने कम्प्यूटर में संस्थापित किया जा सकता है।

आजकल हिंदी ई–बुक्स, ई–न्यूज़ पेपर, ई–मैग्ज़ीन आदि सुलभ हो गए हैं। ये सुविधाएँ शुल्क सहित तथा निःशुल्क भी हैं। इन्हें हम http://ebookweb.in / http://tamilcube.com आदि वेबसाइट से आसानी से डाउनलोड कर सकते हैं। इसमें विविध हिंदी विषयों, विधाओं आदि से संबंधित कृतियाँ देखी जा सकती हैं।

भारत डोमेन

अभी तक हम इंटरनेट पर जितनी भी वेबसाइट देखते थे, उनका पता अंग्रेज़ी (रोमन लिपि) में होता था, परंतु अब भारत में बढ़ते इंटरनेट के प्रयोग को देखते हुए सरकार ने अगस्त, 2014 से भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए वेबसाइट का पता हिंदी तथा 7 अन्य भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी में संभव कर दिया है। इसमें 'www.रजिस्ट्री.भारत' जैसे रूप में लिखा जा सकता है। बाद में इसे भारत की अन्य भाषाओं हेतु भी शुरू किया जाएगा। इस प्रकार अब हम अपनी वेबसाइट का पता अपनी भाषा में बना सकते हैं। सरकारी वेबसाइट के लिए यह 'www.I: सरकार.भारत' होगा। अन्यथा http://सिनेमा.भारत/भी देखा जा सकता है।

हिंदी में ई–मेल पता

विश्व में पहली बार अब ई–मेल पता हमारी अपनी भारतीय भाषाओं – हिंदी, गुजरती, मराठी, तमिल, तेलुगू, बंगाली, कन्नड़, मलयालम, ओड़िया, पंजाबी और उर्दू के साथ–साथ अंग्रेज़ी, चीनी, अरबी, रूसी, सिंहली, थाई में भी बनाना संभव हो गया है। यह सुविधा Google Play Store में Data Mail पर डाटामेल. भारत BharatSync Technologies (P) Ltd. से ली जा सकती है। यह Android या IOS मोबाइल पर (दिनांक 28/11/16 से) डाउनलोड की जा सकती है। Computer browser http://mail.datamail.in पर (दिनांक 24/12/16 से) भी यह उपलब्ध है। यही सुविधा आउटलुक पर भी उपलब्ध है।

हिंदी ब्लॉग

आज अंग्रेज़ी से अधिक हिंदी ब्लॉग का चलन दिखाई पड़ता है। यह एक प्रकार का चिट्ठा है जिसे कोई भी बनाकर अपने विचार या अनुभव डाल सकता है। यह अपने विचारों की अभिव्यक्ति का इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है। इनमें बढ़ती स्पर्द्धा को देखते हुए सर्वश्रेष्ठ ब्लॉग को पुरस्कृत भी किया जा रहा है। इसे देखने के लिए सर्च इंजन में ब्लॉग एड्रेस टाइप करके देखा जा सकता है। अब विभिन्न उपयोगी हिंदी टूल्स से संबंधित ब्लॉग भी उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आज हिंदी के विकास के लिए सरकार ने अनेक सॉफ़्टवेयर विकसित कर लिए हैं, परंतु अधिकांश लोगों को इनके बारे में जानकारी नहीं है। आप यदि इन्हें एक बार प्रयोग करेंगे, तो ज्ञात हो जाएगा कि सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में हिंदी बहुत आगे पहुँच चुकी है। उल्लेखनीय है कि यहाँ प्रत्येक मद में एक या दो प्रमुख स्रोतों (सॉफ़्टवेयर/टूल) के बारे में बताया गया है। वस्तुतः आज एक ही विषय पर अनेक विकल्प (सॉफ़्टवेयर/टूल) उपलब्ध हैं।

जानकारी के बाद प्रयोग अत्यावश्यक होता है। संदर्भगत उपकरणों का हम जितना अधिक प्रयोग करेंगे हिंदी में काम करना उतना ही आसान लगेगा तथा इनका यथापेक्षित प्रचार–प्रसार भी होगा। ये सभी उपकरण प्रयोग में न केवल सरल हैं, अपितु निःशुल्क भी हैं। खरीदकर प्रयोग किए जाने वाले हिंदी सॉफ़्टवेयरों की सूची अलग से है।

आने वाले समय में सरकारी और निजी प्रयत्नों से ऐसे–ऐसे नए हिंदी सॉफ़्टवेयर सामने आएँगे, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अभिप्राय यह है कि आगामी सूचना प्रौद्योगिकी के युग में हिंदी किसी भी अन्य भाषा से पीछे रहने वाली नहीं है, आवश्यकता केवल प्रयोक्ताओं की है।

संदर्भ सूची :

1. www.rajbhasha.gov.in
2. https://www.microsoft.com/en-in/bhashai.ndia/
3. http://www.google.com/in-inputtools
4. www.tdil.dc.in
5. www.dict.hinkhoj.com
6. www.cstt.nic.in
7. http//e-mahashabdkosh.rb.aai.in
8. www.shabdkosh.com
9. www.dangisoft.com
10. https://hi.wiktionary.org
11. http://translate.google.co.in
12. www.bing.com/translator
13. http://kanthasth-rajbhasha.gov.in
14. www.mcu.ac.in
15. orangoo.com/spellcheck/#
16. www.chitrankan.software.informer.com
17. www.i2ocr.com
18. www.indsenz.com
19. http://rajbhasha.net
20. https://www.ashtangayoga.info/sanskrit/transliteration/transliteration-tool
21. www.indiatyping.com
22. StickoText.com
23. http://ebookweb.in
24. http://tamilcube.com
25. http://mail.datamail.in

sskathuria70@gmail.com

हिंदी के विस्तार में तकनीक और संचार की संस्कृति

– डॉ. कुमार भास्कर
दिल्ली, भारत

भाषा संस्कृति की संवाहिका कही जाती है। संस्कृति समयानुसार अपने भीतर बदलाव करती रहती है, उसी प्रकार भाषा भी। संस्कृति का कोई एक केंद्र नहीं होता, अपितु वह विभिन्न केंद्रों से मिलकर बनी होती है। जिसके कई उपकेंद्र होते हैं। संस्कृति द्वंद्वात्मकता का समुच्चय है, जो अंतर्विरोध के साथ होती है। सच्चिदानंद सिन्हा के अनुसार 'कहीं–कहीं जब एक क्षेत्र में एक से अधिक मानव समूहों के लोग आकर साथ–साथ रहने लगते हैं और किसी मिली–जुली संस्कृति का निर्माण करते हैं, तो राष्ट्रीय बोध कबिलाई बोध से आगे बढ़कर पूरे क्षेत्र में व्याप्त सांस्कृतिक बोझ बन जाता है।'[1]

संस्कृति अपनी प्रकृति में गतिशील होती है। उसमें ठहराव नहीं होता है। आदिम संस्कृति से आज तक की भूमंडलीय संस्कृति तक, संस्कृति का रूप बदलता रहा है। संस्कृति मानव समाज से जुड़े व्यवहारों, धर्म–विधियों, पहनावे, खानपान, दर्शन, रीति–रिवाज़ों, मूल्य, भौतिक और आध्यात्मिक निर्मिती से मिलकर बनी होती है। ऐसे में संस्कृति अपनी परिस्थिति के मुताबिक कुछ बुनियादी अवधारणा को लेकर चलती है। जैसे हिंदुस्तानी संस्कृति में भावना और आस्था को अधिक महत्त्व मिला है। इसका मतलब यह नहीं कि यहाँ भौतिक संस्कृति की मौजूदगी नहीं रही है, लेकिन महत्त्व उसे ज़्यादा मिला है। परंपरा, संस्कृति को विकसित करती हुई आगे जोड़ती है। भाषा संस्कृति को विस्तार देती है। भूमंडलीकरण के बाद व्यापार के माध्यम से सूचना और तकनीक का आदान–प्रदान हुआ। जिसकी वजह से संस्कृतियों का भी आदान–प्रदान हुआ। इन्हीं कारणों से भूमंडलीकृत भारत में एक नई बीसवीं सदी की संस्कृति को हम देखते हैं। पूंजीवादी बाज़ार में संचार माध्यमों के सहयोग से संस्कृति का बाज़ारीकरण किया गया। केनेथ थॉम्सन के अनुसार 'उत्तर–आधुनिक अर्थव्यवस्था की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसने संस्कृति की पण्य वस्तु को अंतर्निहित भाग बना लिया है। पूंजीवाद की पहली अवस्थाओं में ऐसा नहीं था। तब संस्कृति अलग थी और आर्थिक व्यवस्था अलग।'[2]

इसी सोच के साथ भूमंडलीकृत भारत में तकनीक की बदौलत संचार क्रांति का ज़बरदस्त विस्तार हुआ है। इसका विस्तार अनियंत्रित था। इस विस्तार को केबल टीवी, इंटरनेट के बाद मोबाइल ने सबसे ज़्यादा प्रभावी बनाया। नव–उपनिवेशवाद के इस दौर में अपने अस्तित्व को बनाए रखने की जंग थी, जिसमें व्यापार और तकनीकी उपलब्धियों के अलावा सूचना सबसे मूल्यवान वस्तु बन गई। फ्रेंच विद्वान ज्यां बोड्रिलॉर्ड ने कहा कि 'इस समाज का प्रभावी मुहावरा ही संचार की दुनिया है। संचार और संकेत दोनों मिलकर इस समाज को उपभोग समाज बनाते हैं।'[3]

उपभोक्तावादी समाज के निर्माण में संस्कृति और सूचना, दोनों के गठजोड़ का इस्तेमाल बाज़ार ने किया है। सूचना ही है, जिसने संस्कृति की गति को सबसे तेज़ी से बदला और आज भी निरंतर बदल रही है। जिसमें भाषा की भूमिका काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। 'भाषा जो प्रतीकों का समुच्चय होती है, संस्कृतियों के संकलन और संप्रेषण का सबसे सबल माध्यम होती है।'[4]

90 के दशक में भूमंडलीकरण के बाद एक सबसे महत्त्वपूर्ण फ़ैसला, जिसने हिंदी के तकनीकी भविष्य को उड़ान दी थी। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने फ़रवरी 1995 में यह घोषणा की थी कि एयरवेब एक सार्वजनिक संपत्ति है और इसे एक सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा नियंत्रित और विनियमित किया जाना चाहिए। इस निर्णय की वजह से निजी कंपनियों के लिए प्रसारण का रास्ता खुल जाता है। जहाँ से रेडियो में एफ़.एम. चैनल और टीवी चैनलों की स्वायत्त संस्था के रूप में शुरुआत होती है। इसका फ़ायदा हिंदी भाषा को अंग्रेज़ी के सूचना संसार

से मुकाबला करने का बड़ा प्लेटफ़ॉर्म मिलता है। जिस तरह से दुनिया की संस्कृति से हमारा सरोकार हो रहा था, ऐसे में यह ज़रूरी था कि दुनिया भी आधुनिक दौर के भारत की संस्कृति को जाने और समझे। इस मायने में भाषा और संस्कृति का संबंध और भी महत्त्वपूर्ण साबित होता है। तकनीक के आविष्कार के बाद सारी शक्ति सूचना पर केंद्रित हो जाती है। इस बात को आज हम भली–भांति समझ सकते हैं। भूमंडलीकरण के बाद हिंदी का स्वरूप पहले से अलग होने लगता है। दूरदर्शन और आकाशवाणी की भाषा हिंदी के व्यावहारिक और साहित्यिक रूपों से प्रस्तुत होती थी। वहीं एफ़.एम. चैनलों और न्यूज़ चैनलों की अधिकता की वजह से भाषा का एक नया रूप 'हिंग्लिश' का आगमन होता है। हिंग्लिश की उपयोगिता हिंदी के लिए कितनी सही है और कितनी गलत, यह बहस का अलग विषय है। महत्त्वपूर्ण बात यह है की हिंग्लिश की वजह से हिंदी ने अपने आपको बाज़ार की संस्कृति के अनुकूल ढाल लिया। बाज़ार को भी हिंग्लिश भाने लगी थी। हिंदी भाषा अपने आप में कई भाषाओं और बोलियों के मिश्रण से बनी है। इसी मिश्रण का नया पड़ाव हिंग्लिश बनती है। हिंग्लिश का अलिखित शब्दकोश, अब हिंदी की भूमंडलीय उपज थी। हिंदी भाषा के नए रूप को उभारने में ऑरकुट, फ़ेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, वाट्सएप्प, टेलीग्राम इत्यादि का योगदान रहा है। सर्वसुलभ तरीके से हिंदी का प्रयोग हिंग्लिश में किया गया। निःसंदेह हिंग्लिश को हिंदी भाषा के मानक स्वरूप से आगे नहीं रखा जा सकता है। वरना इससे भाषा की समझ और शब्द भंडार के विकास में दिक्कत होगी। जो कहीं–न–कहीं हमारी भाषा के व्यवहार को कमज़ोर करेगा। लेकिन बाज़ार से भाषा के अनुशासन को संचालित करना मुश्किल है। बाज़ार का व्याकरण व्यापार होता है। इसलिए भाषा भी उसके लिए एक माध्यम भर है। सवाल यह है कि बाज़ारीकरण में हिंदी, तकनीक के साथ किस तरह सामंजस्य बिठाकर टिकी रहती है। वरना अंग्रेज़ी तो लगातार अपने साम्राज्यवादी विस्तार की तरह ही विभिन्न भाषाओं को निगल जाएगी।

हमने शुरू में कहा था कि संस्कृति कई उप–केंद्रों से मिलकर बनी होती है। इसी रूप में हिंग्लिश, हिंदी भाषा का एक उपकेंद्र है, तो दूसरे उपकेंद्र के रूप में हिंदी ब्लॉग, हिंदी शब्दकोश/व्याकरण और हिंदी पत्रकारिता का डिजिटल रूप हिंदी के शैक्षणिक रूप में व्यापक हुआ। हिंदी नवजागरण को दो संस्कृतियों की टकराहट की उपज माना जाता है। कुछ इसी तरह भूमंडलीकरण के नव–उपनिवेशवादी दौर में कुछ उसी तरह की सांस्कृतिक टकराव की समानता देखने को मिलती है। जहाँ हिंदी और अंग्रेज़ी एक दूसरे के सामने खड़ी होती है और इसी टकराहट से हिंग्लिश की निर्मिति होती है। हिंग्लिश, हिंदी का काउंटर अटैक बन कर सामने आती है। ऐसा नहीं है कि हिंग्लिश का प्रयोग पहली बार हो रहा था। इससे पहले भी साहित्य में होता रहा है। प्रगतिवादी और नई कविता में ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते हैं जैसे 'इधर आओ, चाँदनी को स्कार्फ़ की तरह, तुम्हारे चेहरे पर बाँध दूँ। (सर्वेश्वर)

ब्रिटिश काउंसिल के पोर्टल पर अपने लेख में स्टीवन बेकर ने लिखा है 'हालाँकि हिंग्लिश के उदाहरण 19वीं सदी के हैं, हिंदी और अंग्रेज़ी के मिश्रण में लिखे गए उस दौर की कविता और पद्य के साक्ष्य के साथ, यह बहुत बाद तक व्यापक लोकप्रियता हासिल नहीं कर पाया। लेखक शोभा डे, जिन्हें 'जैकी कॉलिन्स ऑफ़ इंडिया' कहा जाता है, ने 1960 के दशक में अपने लेखन में हिंग्लिश का उपयोग करना शुरू किया था। यह 1990 के दशक के अंत तक नहीं था, हालाँकि, एम.टी.वी. और भारत के अपने चैनल वी. जैसे संगीत चैनलों के आगमन के साथ, हिंदी और अंग्रेज़ी का ऐसा संयोजन वास्तव में विस्फोट हो गया।'[5]

विभिन्न विषयों के अनुशासन और साहित्य में शब्द का चुनाव अर्थगाम्भीर्य बनाने के उद्देश्य से होता है। लेकिन हिंग्लिश सुविधा और व्यापार के हिसाब से उत्पन्न होती है। लेकिन कई बार हिंग्लिश शब्द भी अर्थगाम्भीर्य को समयानुसार अभिव्यक्त करते हैं, जैसे 'लेकिन मैं देखता हूँ, आज के ज़माने में, आदमी से ज़्यादा लोग पोस्टरों को पहचानते हैं, वे आदमी से भी बड़े सत्य हैं।' (सर्वेश्वर) यहाँ 'पोस्टर' शब्द का कोई विकल्प नहीं हो सकता।

भारत में विभिन्न भाषाओं और बोलियों को मिलाकर हिंदी की प्रकृति बनती है, जो हिंदी भाषा की सांस्कृतिक उपलब्धि है। बगैर किसी भी विवाद के आपसी संपर्क सूत्र भाषाई एकता का प्रतीक है, जिसको लेकर कई विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा 'आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल कमल के समान है, जिसका एक–एक दल,

एक–एक प्रांतीय भाषा और उसकी संस्कृति है। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ, जिनमें सुंदर साहित्य सृजित हुआ है, अपने–अपने घर में (प्रांत में) रानी बनकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि हिंदी भारत–भारती होकर विराजती रहे।'[6]

हिंदी भाषा को बहुउपयोगी और सर्वसुलभ बनाने में गूगल की बहुत बड़ी भूमिका रही है। कंप्यूटर में नॉन यूनिकोड हिंदी फ़ॉन्ट जैसे कृतिदेव, चाणक्य आदि का प्रयोग होता रहा है। लेकिन इन फ़ॉन्ट्स का इस्तेमाल अंग्रेज़ी टाइपिंग के हिसाब से थोड़ा कठिन था। माइक्रोसॉफ़्ट और गूगल ने हिंदी सॉफ़्टवेयर के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनका योगदान सिर्फ़ हिंदी के लिए नहीं, अपितु भारतीय भाषाओं के साथ–साथ दुनिया के तमाम अन्य भाषाओं के संदर्भ में भी विकसित हुआ। सिर्फ़ हिंदी की बात करें, तो इसके संदर्भ में कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ कुछ इस प्रकार से रही हैं :

- 1991 : यूनिकोड का आविर्भाव। अक्टूबर 1991 में यूनिकोड का पहला संस्करण 1.0.0 जारी जिसमें नौ भारतीय लिपियाँ देवनागरी, बंगाली, गुजराती, गुरुमुखी, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम तथा ओड़िया शामिल की गयी।
- 29 अप्रैल 2002 : सी–डैक द्वारा हिंदी ओ.सी.आर. सॉफ़्टवेयर चित्रांकन का विमोचन किया गया।
- मार्च 2007 : माइक्रोसॉफ़्ट ऑफ़िस 2007 का हिंदी संस्करण जारी।
- जुलाई 2007 : हिंदी का श्रुतलेखन सॉफ़्टवेयर (स्पीच टू टेक्स्ट) सी–डैक द्वारा विमोचित।
- अप्रैल 2015 : गूगल ने Google Handwriting Input नामक ऍप्लिकेशन जारी की, जिसके द्वारा स्क्रीन पर हैंडराइटिंग द्वारा हिंदी में टंकण सुविधा मिली।[7]

ऐसी कई सारी सफलताओं ने हिंदी का रास्ता सुगम बनाया।

बीसवीं सदी में तकनीक ने स्मार्ट और एंड्रॉइड फ़ोन को और विकसित करने में काफ़ी सफलता हासिल की। जिसकी वजह से बाज़ार में प्रतिस्पर्धा बढ़ी और इस प्रतिस्पर्धा में हिंदी भाषा को एक नया मुकाम दिया। अब सोशल मीडिया के इस्तेमाल के लिए किसी को कंप्यूटर या साइबर कैफ़े की आवश्यकता नहीं रह गई थी। वहीं सस्ते हुए मोबाइल फ़ोन और डेटा टेरिफ़ प्लान की वजह से स्मार्टफ़ोन की उपलब्धता आम हो गई। इसका नतीजा यह हुआ कि हिंदी के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं की पहुँच आम लोगों तक पहुँची। इकोनॉमिक टाइम्स के अनुसार 'देश में 20 फ़ीसदी से कम लोग अंग्रेज़ी बोलते हैं। इंटरनेट के इस्तेमाल में भारतीय भाषाओं में बन रहे वीडियो ने जान फूँक दी है। आज सभी ऑनलाइन वीडियो में 95 फ़ीसदी भारतीय भाषाओं में देखे जाते हैं। टियर–2 और टियर–3 शहरों में ग्रोथ शानदार है। क्षेत्रीय भाषाओं में कंटेंट तेज़ी से बढ़ रहा है।'[8]

हिंदुस्तान का बाज़ार अंग्रेज़ी का नहीं है। अंग्रेज़ी बोलने वाले लोगों की संख्या यहाँ बहुत कम है। वर्ष 2011 की जनगणना में भारतीय भाषाओं के आंकड़ों के हिसाब से 43.63 फ़ीसदी लोगों की मातृभाषा हिंदी है। वहीं देश की 96.71 फ़ीसदी आबादी ने 22 अनुसूचित भाषाओं में से एक को अपनी मातृभाषा के रूप में चुना है। इस आंकड़े के अनुसार बाज़ार तो भारतीय भाषाओं का ही है। जिसमें हिंदी सबसे बड़ी है। इसलिए बाज़ार भी माँग के फ़ॉर्मूले के हिसाब से उत्पादन की रणनीति अपनाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय लोगों के योगदान से भारतीय भाषाओं के सॉफ़्टवेयर विकसित किए गए। इसी बाज़ार की वजह से आज बहुत सारे एप्प उपलब्ध हैं, जो हिंदी में होने वाले कामों को पहले से बेहतर और सरल बना रहे हैं। जिनमें गूगल डॉक्स, स्पीच टू टेक्स्ट, टेक्स्ट टू स्पीच, गूगल ट्रांसलेशन इत्यादि की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इनके अतिरिक्त यूट्यूब, टिक टॉक, विगो, लाइक जैसे एप्प से अपनी भाषा में अभिव्यक्ति के सार्वजनिक प्लेटफ़ॉर्म मिल गए। इस वजह से जो भी लोकप्रिय वीडियो हिंदी भाषा में बन रही है, उसकी प्रसिद्धि दूर तक जा रही है। इसने भी भाषा को विस्तार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इन सब की भूमिका से पहले हिंदी सिनेमा का योगदान हिंदी के विकास में काफ़ी महत्त्वपूर्ण रहा है। सिनेमा, तकनीक और संचार का सबसे ज़्यादा आकर्षित करने वाला प्रभावी माध्यम है। हिंदी सिनेमा के माध्यम से हिंदी भाषा को विस्तार और सम्मान फ़िल्म 'मदर इंडिया' से मिलना शुरू हो जाता है। यह फ़िल्म ऑस्कर के लिए बेस्ट फ़ॉरेन लेंग्वेज फ़िल्म के लिए, टॉप फ़ाइव में चुनी गई थी। राज कपूर की फ़िल्मों ने रसिया में एक विशेष

मुकाम पाया था, जिसे वहाँ के काफ़ी लोग पसंद करते थे। लेकिन 21वीं सदी के भारतीय हिंदी सिनेमा को ऊँचाई पर ले जाने में भूमंडलीकरण का काफ़ी बड़ा योगदान रहा है। इसके अलावा बॉलीवुड सिनेमा की अपनी कोशिशों ने भी इसको वह मुकाम दिया है। सन् 2000 से आईफ़ा आवर्ड की शुरुआत लंदन में हुई, जिसके बाद लगभग 17 देशों में इसका आयोजन किया जा चुका है। भले ही यह प्रसार हिंदी फ़िल्मों के व्यापार और दर्शकों को आकर्षित करने के लिए किया गया हो, लेकिन इसका फ़ायदा हिंदी को भी मिला। जैसे–जैसे लोगों में हिंदी सिनेमा के साथ–साथ, गीत–संगीत में रुचि बढ़ रही है, उतनी ही हिंदी भाषा के प्रति रुचि बढ़ रही है। हमारे हिंदी सिनेमा में आज बहुत सारे विदेशी कलाकार भी हिंदी सीखते हुए काम कर रहे हैं। इतना तो तय है कि संचार क्रांति में व्यापार उसका मूल भाव है। जिस प्रकार व्यापार प्राचीन और मध्ययुगीन काल में भाषाओं के बनने का कारण बनी थी। वही आज एक नए स्वरूप में उसी व्यापारिक गति के परिणाम को दोहरा रही है। जिसमें संचार माध्यमों के सशक्त रूप में हिंदी सिनेमा ने विदेशों में अपने दर्शकों की संख्या और अपनी कमाई काफ़ी हद तक बढ़ाई है। यही वजह है कि हिंदी फ़िल्मों के नायकों के ज़बरदस्त प्रशंसक देखने को मिलते हैं।

'भारतीय फ़िल्मों की बढ़ती लोकप्रियता, बॉलीवुड के साथ–साथ क्षेत्रीय सिनेमा ने भारतीय सिनेमा के लिए एक नई राजस्व धारा की शरुआत की है। हाल ही में के.पी.एम.जी. की एक रिपोर्ट के अनुसार समग्र फ़िल्म उद्योग के विदेश से हुए आय के हिस्से के रूप में 2012 से 760 करोड़ रुपये से बढ़कर 2016 में लगभग 1,100 करोड़ रुपये हो गई है। उस वर्ष भारतीय फ़िल्म उद्योग 14,230 करोड़ रुपये का था। चीन और यूनाइटेड किंग्डम में आमिर खान, संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी में शाहरुख खान और खाड़ी देशों में सलमान खान – बॉलीवुड के इन बादशाहों के लिए सबसे गर्म बाज़ार हैं। हालाँकि उनकी लोकप्रियता अन्य देशों तक भी फैली हुई है, कनाडा और जापान से मलेशिया और तुर्की तक।'[9]

वहीं दूसरी ओर हिंदी डबिंग और हिंदी सबटाइटल की तकनीक विकसित होने से हॉलीवुड की फ़िल्मों ने भी भारत में बहुत बड़ी कामयाबी हासिल की। डेलीहंट के अनुसार 2019 में आई फ़िल्म 'द अवेंजर्स एंडगेम' ने भारतीय बाज़ार से लगभग 446 करोड़ का ग्रॉस इनकम किया था। जो कमाई के मामले में उस समय की सबसे प्रसिद्ध हिंदी फ़िल्म 'दंगल' के काफ़ी करीब पहुँच गई थी। 'अवेंजर्स' भारतीय भाषाओं में रिलीज़ हुई – हिंदी, तेलुगू, तमिल और मलयालम में।

हॉलीवुड की साइंस फ़िक्शन फ़िल्में काफ़ी जटिल होती है। इसलिए जब अपनी भाषा में फ़िल्म उपलब्ध हुई, तो निःसंदेह देशी भाषाओं में डबिंग ने उसकी कमाई के बहुत बड़े आँकड़े को छूने में मदद की। भारतीय बाज़ार को देखते हुए टीवी और सिनेमा में डबिंग और हिंदी सबटाइटल अब सामान्यतः देखने को मिल रहे हैं। सबटाइटल और डबिंग ने भी दूसरे देशों की सांस्कृतिक समझ को जानने में सहायता की है।

भौतिक उपादानों के सहयोग से तकनीक और संचार की संस्कृति ने हिंदी को मज़बूत स्थान दिया। यह स्थान साहित्य की उपलब्धियों के अलावा आधुनिक संचार माध्यमों की वजह से एक नए रूप में स्थापित होता है, जिसके परिणामस्वरूप आज ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी में 650 से ज़्यादा नए शब्द हिंदी के आ चुके हैं। शब्दों के चुनाव को लेकर ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी व्यावहारिक और पॉपुलर शब्दों को देखता है। हम देखें तो चुने गए शब्दों में काफ़ी शब्द ऐसे हैं, जो सामान्य तौर पर इस्तेमाल किए जाते हैं और सोशल मीडिया के संदर्भ में भी इनका प्रयोग बहुत होता है। जैसे 'जुगाड़', 'नारी शक्ति', 'आधार', 'दादागिरी', 'चमचा', 'फ़ंडा', 'बच्चा' इत्यादि। द गार्डियन के ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के वरिष्ठ सहायक संपादक जोनाथन डेंट ने बताया कि –

'हम ऑनलाइन डेटाबेस का विश्लेषण, साथ–ही–साथ जनता द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों में पढ़े जाने वाले नए शब्दों को भी देखते हैं। हमेशा नए शब्दों पर नज़र रखते हैं, जो भाषा में आते हैं और व्यापक रूप से उठाए जाने लगते हैं।'[10]

सरलीकृत हिंदी की संस्कृति जनसंचार माध्यमों की देन है, जो इस बाज़ार में हिंदी को बनाये रखने के लिए ज़रूरी है। आज सरल हिंदी को लेकर जो उदारता आई है, उसका एक रूप पहले से अखबार की हिंदी, पुस्तकों की हिंदी आदि में देख सकते हैं। लेकिन उदारता का दूसरा रूप बाज़ार और संचार की देन है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक प्रोफ़ेसर अवनीश कुमार ने

कहा 'सरकार शब्दकोश में शामिल नए शब्दों का रिकॉर्ड नहीं रखती है, पर उन्होंने बताया कि आम बोलचाल और सरकारी कामकाज में इस्तेमाल शब्द–भंडार पिछले 20 वर्षों में 7.5 गुना बढ़ा है। शब्दों की संख्या 20,000 से बढ़ कर 1.5 लाख पहुँच चुकी है।'[11]

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी की तरह बिना शोर–शराबा किए शब्दों को शामिल करता है। लेकिन इसकी जानकारी हम लोगों तक उतनी पॉपुलर तरीके से पहुँच नहीं पाती, जिस तरह से ऑक्सफ़ोर्ड की मिलती है। उसका कारण है, दुनिया की संपर्क भाषा है अंग्रेज़ी।

हिंदी के वैश्विक प्रचार–प्रसार में हिंदी के विभिन्न डिजिटल ब्लॉग, पत्र–पत्रिकाओं के अलावा सन् 2003 में विकीपीडिया का हिंदी संस्करण आया, जो दुनिया में भारतीय ज्ञान भंडार को हिंदी में उपलब्ध करा कर बहुत अहम और रचनात्मक भूमिका आज भी निभा रहा है।

संचार की संस्कृति में हिंदी ने अपनी संभावनाओं को निर्मित कर लिया है। लेकिन इसके आगे के सवाल और भी ज़रूरी हैं, जहाँ इस व्यापारिक संस्कृति की मार, भारत की अन्य भाषाओं को मिटा रही है, जिसके खतरे से हमें आगे की नीतियों पर सुगठित रूप से विचार करना होगा। हिंदी अपनी जनसंख्या और वैश्विक पहुँच की वजह से अपने आप को स्थापित कर लिया है। लेकिन हिंदी के अलावा कई छोटी–छोटी क्षेत्रीय भाषाएँ हैं, जो इस भूमंडलीकरण के दौर में अपने आप को बचा ने में सक्षम नहीं है। कोई एक भाषा किसी देश की राष्ट्रभाषा हो सकती है, लेकिन देश की अपनी सांस्कृतिक पहचान में कई भाषाओं का योगदान होता है। हमारे देश के भीतर विभिन्न भाषा–भाषियों के बीच हिंदी संपर्क भाषा है। हिंदी के सम्मान में, उसको राष्ट्रभाषा बनाने के लिए, गैर हिंदी समाज के कई प्रमुख लोग, जिनमें सुभाष चंद्र बोस, गुरुवर रवींद्रनाथ टैगोर, राजगोपालाचारी, महात्मा गांधी इत्यादि ने कोशिश की थी। इसलिए हिंदी की भी यह ज़िम्मेदारी है कि भारत की सांस्कृतिक पहचान वाली विविधताओं से भरी भाषाओं की मदद करे। भारत में हुए एक भाषा सर्वेक्षण से इस विषय की संजीदगी को हम समझ सकते हैं –

'अगले 50 वर्षों में दुनिया की 4,000 भाषाओं के विलुप्त होने का खतरा है। इनमें से दस प्रतिशत यानी 400 भाषाएँ भारत की होंगी। भारतीय लोक भाषा सर्वेक्षण (पी.एल.एस.आई.) के अध्यक्ष और भाषाविद गणेश एन. देवी ने यह दावा किया है कि यह धारणा गलत है कि अंग्रेज़ी हिंदी, बांग्ला, तेलुगू, मराठी, कन्नड़, मलयालम, गुजराती और पंजाबी जैसी अहम भाषाओं को तबाह कर सकती है। ये भाषाएँ दुनिया की पहली 30 भाषाओं में शामिल हैं। ये 30 भाषाएँ वे हैं, जो कम–से–कम एक हज़ार वर्ष पुरानी हैं और करीब दो करोड़ लोग इन्हें बोलते हैं। इन भाषाओं को फ़िल्म उद्योग, अच्छी संगीत परंपरा, शिक्षा की उपलब्धता और फलते–फूलते मीडिया का समर्थन हासिल है।'

समाचार एजेंसी भाषा के अनुसार 'गणेश देवी ने कहा कि सबसे ज़्यादा विलुप्त होने का खतरा देश के तटीय इलाकों में बोली जाने वाली भाषाओं को है। कई भाषाएँ लुप्त होने की कगार पर हैं और इनमें से ज़्यादातर तटीय भाषाएँ हैं।'

उन्होंने कहा "इसका कारण यह है कि तटीय इलाकों में आजीविका सुरक्षित नहीं रही। कॉर्पोरेट जगत गहरे समुद्र में मछली पकड़ने लगा है। दूसरी ओर पारंपरिक मछुआरा समुदायों को तट से दूर अंदर की ओर जाना पड़ा है, जिससे उनकी भाषाएँ छूट गई हैं।"[12]

यह रिपोर्ट 2019 में आई थी। जबकि सर्वे 2010 में शुरू हुआ था और जिसके समाप्त होने की संभावना 2022 तक है। इस सर्वे से दो बातें साफ़–साफ़ निकल कर आईं, एक मीडिया और दूसरा व्यापार, यही मूल मंत्र भूमंडलीकरण का भी है। संचार और व्यापार की संस्कृति में जो अपने आप को बनाए रखेगा, वही बचेगा, वरना वह समाप्त हो जाएगा। सिर्फ़ व्यापार केंद्रित संचार की उपयोगितावादी फ़ार्मूले से हिंदी को समृद्ध बनाना जोखिम भरा होगा। इन मुश्किलों का सामना करने में सरकारी संस्थाओं की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। जहाँ एक ओर, ज़्यादातर रोज़गार की भाषा अंग्रेज़ी बनी हुई है, इसके लिए ठोस निर्णय की आवश्यकता है। जापान और चीन के तर्ज पर यहाँ भी मातृभाषा में तकनीक और रोज़गार को सुविधाजनक बनाया जाना चाहिए। अपनी भाषा की शक्ति पर भरोसा करके आगे बढ़ाना होगा। स्व–भाषा के आग्रह से स्व–संस्कृति के निर्माण और अस्तित्व की भूमिका बनी रहेगी। तमिल के सुप्रसिद्ध कवि सुब्रमण्यम भारती ने तमिल भाषा की स्थिति को देख कर कहा था –

'अब तमिल धीरे–धीरे मर जाएगी, पश्चिम की बातें तमिल में नहीं है। ऐसा एक वादी ने कहा।' इससे दुखी होकर भारती ने आगे कहा "आठों दिशाओं में जाओ, सब प्रकार की कला–संपत्ति (ज्ञान–विज्ञान की बातें) ले आओ।" उनका तात्पर्य था जो–जो अच्छी और ज्ञान–विज्ञान की बातें हैं, उन्हें ले आकर तमिल साहित्य में भर दो।'[13]

एक भाषा के तौर पर इनकी चिंता स्वाभाविक है। इसी नज़रिए से हिंदी भाषा में ज्ञान–विज्ञान को सरलीकृत करके, इतना उपलब्ध करा दिया जाए कि हिंदी भी अंग्रेज़ी की तरह विभिन्न संदर्भों में सहज लगने लगे। ई–अंग्रेज़ी के बाद विश्व के पटल पर भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति ज़्यादातर हिंदी भाषा में होती है और इसी भाषा में हिंदुस्तान के विभिन्न संस्कृतियों का परिचय भी दुनिया के दूसरे देशों के लोगों को मिलता है। विदेशों में हिंदी की 25 से ज़्यादा पत्र–पत्रिकाएँ निकलती हैं। लगभग 176 विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। दूसरे देशों में आयोजित हिंदी संगोष्ठियों ने अपने कार्यों से विदेशियों को प्रभावित किया है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में गैर–सरकारी संस्थाओं ने हिंदी को एक नया जीवन दिया है। साथ ही साथ भारत सरकार की कोशिशों की वजह से भाषा को विस्तार देने में काफ़ी योगदान मिला है। विशेष तौर पर विश्व हिंदी सम्मेलन की भूमिका हिंदी भाषा के व्यवस्थित रूप का वैश्विक आधार स्तंभ है। इनके सम्मेलनों में हिंदी को यू.एन. की भाषा बनाना, विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठ की स्थापना, हिंदी प्रचार के लिए सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना, हिंदी–शिक्षण पर ज़ोर देना इत्यादि पर लगातार काम करके उसको अग्रसारित कर रहे हैं।

यू.एन. में हिंदी के अलावा कई दूसरे देशों की भाषा भी है, जिनको यह स्थान नहीं मिल पा रहा है। वहाँ की राजनीति अलग है। इसके लिए हिंदुस्तान अपनी कोशिशें कर रहा है। लेकिन उसके बगैर भी हिंदी अपनी ताकत साबित कर चुकी है –

'वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम द्वारा तैयार पावर लेंग्वेज इंडेक्स के अनुसार वर्ष 2050 तक हिंदी दुनिया की ताकतवर भाषाओं में से एक होगी।'[14]

सांस्कृतिक आदान–प्रदान के रूप में हिंदी भाषा ने अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई है, जिस कारण से आज भारत में दुनिया भर के विद्यार्थी हिंदी भाषा में शिक्षा–दीक्षा लेने आ रहे हैं। उनकी लगातार बढ़ती हुई संख्या हिंदी का उत्साहवर्धन करती है। वर्ष 2014 के आंकड़े के अनुसार –

'दिल्ली विश्वविद्यालय में विदेशी छात्रों के लिए 1500 सीट आरक्षित हैं। इस बार करीबन 1300 छात्रों ने केवल हिंदी भाषा के लिए आवेदन किया है। दक्षिण कोरिया, फ़्रांस, चीन, जापान और अफ़्रीका आदि देशों से छात्रों ने आवेदन किए हैं। तिब्बत और नेपाल के छात्रों के आवेदन की संख्या भी बड़ी है।'[15]

हिंदी ने बाज़ार से घुलमिलकर उसके साथ जीना सीख लिया है। उसकी संभावना किसी एक सिस्टम पर निर्भर नहीं है। हिंदी की निर्भरता अपने युग के हिसाब से विकेंद्रित है। संचार की सहायता से वैश्विक संस्कृति से घुली–मिली हिंदी की संस्कृति अपना अलग अस्तित्व और मायने रखती है। इसमें कोई संदेह नहीं संस्कृति और संचार की भूमिका में आज व्यापार और राजनीतिक इच्छा–शक्ति का बहुत महत्त्व है। जितना हम आर्थिक शक्ति के रूप में उभरेंगे, तकनीक और व्यापार में जितना हम आत्मनिर्भर होंगे, उतनी ही उन्नति होगी, तो उस उन्नति का लाभ हिंदी को भी मिलेगा। अगर इस उन्नति में भाषा का माध्यम हिंदी बनती है, तो ऐसी स्थिति में हिंदी और एक नए मुकाम पर पहुँचेगी।

संदर्भ सूची :

1/4. भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, सच्चिदानंद सिन्हा
2/3. आधुनिकता, उत्तर–आधुनिकता एवं नव–समाजशास्त्रीय सिद्धांत, एस. एल.दोषी
5. ब्रिटिश कौंसिल, 30.10.2015, स्टीवन बेकर (ऑनलाइन वेब)
6/13. भाषा विमर्श, हिंदी अकादमी, दिल्ली
7. विकिपीडिया (ऑनलाइन वेब)
8/9. इकोनॉमिक टाइम्स (हिंदी), 10.04.19, पंकज डोभाल (अंग्रेज़ी) 20.07.19, शैलेश मेनन (ऑनलाइन वेब)
10. द गार्डियन, 13.08.19, चित्रा रामास्वामी (ऑनलाइन वेब)
11. दि प्रिंट, 13.08.19, कृतिका शर्मा (ऑनलाइन वेब)
12. द वायर,18.02.19 (ऑनलाइन वेब)
14. जनसत्ता, 13.09.19 (ऑनलाइन वेब)
15. लाइव हिंदुस्तान.कॉम, 21.06.14 (ऑनलाइन वेब)

kumarbhaskar2008@gmail.com

डिजिटल मीडिया में हिंदी और वैश्विक बाज़ार

– डॉ. संजय सिंह बघेल
दिल्ली, भारत

एक तरफ़ जहाँ पूरी दुनिया में औद्योगिक क्रांति 4.0 की चर्चा हो रही है[2], वहीं दूसरी तरफ़ कुछ महीने पहले राँची के एक छोटे से स्कूल से पढ़ाई करने वाले और बी.आई.टी. मेसरा से इलेक्ट्रॉनिक एंड कम्यूनिकेशन में इंजीनियरिंग पास श्री रोहित प्रसाद ने अमाज़ोन में आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस बेस्ड वर्चुअल असिस्टेंट बेस्ड मशीन अलेक्सा के लिए प्लास्टिक और लोहे से बने एक छोटे से डिब्बे में हिंदी जुबान डालकर पूरी दुनिया में तहलका मचा दिया।[3] यह डिब्बानुमा मशीन अंग्रेज़ी को तो बखूबी समझती थी, लेकिन पूरी दुनिया में सबसे तेज़ी से उभर रही बाज़ार की भाषा हिंदी से अब तक अछूती थी। लेकिन श्री रोहित प्रसाद ने जैसे ही यह करिश्मा किया, रातोंरात उनकी पहचान दुनिया के 20 सबसे योग्य सॉफ़्टवेयर इंजीनियरों में होने लगी। मज़ेदार बात यह नहीं है कि अलेक्सा अब हिंदी को समझ सकता है, बल्कि महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह अंग्रेज़ी युक्त हिंदी अर्थात् 'हिंग्लिश' को भी अच्छी तरह समझ सकता है, जो दुनिया की दूसरी सबसे प्रमुख बाज़ार की भाषा बनी हुई है।

अलेक्सा के माध्यम से हिंदी के विकास और इसके वैश्विक स्वरूप को गति प्रदान करने की दिशा में यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। इसके माध्यम से श्री रोहित प्रसाद ने एक तीर से कई निशाने साधे हैं। यह उपलब्धि अमाज़ोन भारतीय संस्कृति, सभ्यता, भाषा और पॉप्यूलर कल्चर के वे सभी दरवाज़े भी खोल देगा, जो आज तक गूगल सर्च इंजन भी नहीं कर पाया। हमारे बॉलीवुड के गानों को सुनने की कोशिश जब अमेरिका में बैठा एक अमेरिकन करेगा, तब इससे न सिर्फ़ हमारी जुबान उन तक पहुँचेगी, बल्कि इसके साथ ही वह संस्कृति और सभ्यता भी जाएगी, जिसकी जड़ें दुनिया में सबसे पुरानी हैं। इतिहास गवाह रहा है कि सबसे अधिक वही सभ्यता और संस्कृति विस्तार पाती रही है, जिसमें वैविध्यता हो, जो पुरानी हो, सर्वग्राह्य हो और लचीली हो। भारत से अधिक विविधता, सांस्कृतिक विस्तार, खान–पान के विकल्प और बहुभाषायी विभिन्नताएँ शायद ही दुनिया में और कहीं देखने को मिले। ये ही विशेषताएँ हिंदी और इसके वैश्विक स्वरूप को बाज़ारोन्मुख बनाती हैं, जिनके आलोक में डिजिटल होती हिंदी और इसके वैश्विक स्वरूप को समझने की ज़रूरत है।

एक भाषा की निर्मिति के पीछे या तो आपस में संचार रहा है अथवा वह बाज़ार, जिसकी कुछ खास वजहों के तहत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जुड़ा[4]। गाँव के हाट से ज़िले की मंडी तक, ज़िला मंडी से राष्ट्रीय बाज़ार तक और राष्ट्रीय बाज़ार से अंतरराष्ट्रीय बाज़ार तक संचार के जो साधन बने, यह इन्हीं भाषाओं का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप था, जिसे बाज़ार की भाषा कहते हैं। बाज़ार का एक स्थान से दूसरे स्थान तक आवागमन न सिर्फ़ भाषा को विस्तार देता है, अपितु भाषा के साथ संस्कृति और सभ्यता की जड़ें भी चलती हैं[5], जो किसी देश के बहुआयामी विस्तार के कारण हैं। प्राचीन समय में हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता के विस्तार में जो कार्य पालि, प्राकृत और संस्कृत भाषाओं ने किया, वही काम आधुनिक काल में हिंदी अथवा अंग्रेज़ी मिश्रित हिंदी कर रही है, जिसको आज हम 'हिंग्लिश' के नाम से जानते हैं।

"पिछले दो दशकों में पूँजी के असीम विस्तार और संचार साधनों के अभूतपूर्व विकास ने विश्व बाज़ार और आर्थिक भूमंडलीकरण की जो भूमिका रची है, उसमें मुनाफ़ा आधारित उत्पादन प्रणाली को दुनिया के नये बाज़ारों की ज़रूरत पड़ी। परिणामतः बंद दरवाज़े खुल गए। अंतरराष्ट्रीय व्यापार की सभी सीमाएँ टूट–चिटक गईं और कई तरह के प्रतिबंध भी समाप्त हुए।"[6]

इसके साथ ही सूचना–प्रौद्योगिकी का जो विस्तार हुआ और प्रतिभा–पलायन का जो दौर कंप्यूटर सॉफ़्टवेयर के क्षेत्र में भारत से हुआ, उसने पूरे विश्व में भारत के सॉफ़्टवेयर इंजीनियरों की धाक जमा दी। दुनिया के किसी भी कोने में काम कर रहा एक भारतीय सॉफ़्टवेयर इंजीनियर अपने मित्रों और परिवार वालों से जुड़े रहने के लिए या तो उसने अपनी मातृभाषा का प्रयोग किया अथवा संपर्क भाषा के रूप में हिंदी को अपना माध्यम बनाया। सात समंदर पार बैठे एक भारतीय ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए जिस डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म को चुना, फिर चाहे वह फ़ेसबुक हो, ट्विटर, व्हाट्सएप्प, इंस्टाग्राम हो अथवा यूट्यूब हो, इन सबमें हिंदी की बूम आ गई। अचानक हिंदी के गानों से लेकर तमिल और तेलुगू गानों की पहुँच भारत के बाहर के देशों में पहुँची। लोग उन गानों, यूट्यूब वीडियो और टिक–टॉक के जिंगल के इशारों पर नाचने लगे। परिणाम यह हुआ कि 'अमेरिका गॉट टैलेंट' जैसे कार्यक्रम के एक तिहाई से अधिक प्रदर्शन और डांस में भी बॉलीवुड की फ़िल्मों के गीत बजने लगे। इस तरह हिंदी के विकास का उत्सव काल शुरू हुआ, जिसके विकास को अब अवरुद्ध करना असंभव जान पड़ता है। इस डिजिटल क्रांति ने देशों के बीच भौगोलिक दूरियों और राष्ट्रीय सीमाओं को अप्रासंगिक बना दिया। इससे एक नई बाज़ार संस्कृति और आर्थिक भूमंडलीकरण का दौर प्रारंभ हुआ और इन सब की संवाहक बनी 'हिंदी'।

आर्थिक भूमंडलीकरण की सांस्कृतिक प्रक्रिया का सबसे प्रमुख लक्षण यह दिखाई देता है कि उपभोग सामग्री के रूप में विश्व संस्कृति के प्रतीक सारे संसार पर हावी हो रहे हैं। "ग्लोबल–संस्कृति में ऐसी किसी जातीय स्मृति की अपील नहीं होती है। स्थानीय संस्कृति अपने भूगोल और समय से बंधी होती है, जबकि ग्लोबल–कल्चर पर ऐसे कोई दबाव नहीं होते हैं। यह एक विशृंखलित, समयहीन, विजड़ित संस्कृति है, जो किसी भी भौगोलिक संदर्भ के बाहर खड़ी है। माइकल जैकसन या माडोना का कोई संदर्भ संसार नहीं है, कोका कोला या मैकडॉनल्ड को बेचने वाले चरित्रों की देश–काल पर आधारित छवि नहीं है।"[7] इसी तरह गूगल के सुंदर पिचाई या माइक्रोसॉफ़्ट के सत्या नंडेला का व्यावसायिक स्वरूप भले ही वैश्विक हो, लेकिन उनकी जड़ें देशीय और स्थानीय ही होगी, जो विजड़ित संस्कृति की संवाहक होते हुए भी स्मृति से स्थानीयता को तरजीह देगी। यही स्थानीयता अपनी भाषा और संस्कृति के विकास की संपूर्ण संरचना का प्रवेश द्वार है।

डिजिटल मीडिया में हिंदी और उसका वर्तमान स्वरूप

13 मार्च, 2019 में फ्री प्रेस जर्नल में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार देश में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़ने के साथ ही डिजिटल मीडिया 2019 में फ़िल्म–मनोरंजन और 2021 में प्रिंट मीडिया उद्योग को पछाड़ देगा। डिजिटल मीडिया का उपयोग 2021 में बढ़कर 5.1 अरब डॉलर (35,700 करोड़ रुपये) पर पहुँच जाएगा। फिक्की–ईवाई ने अपनी रिपोर्ट में यह बात साफ़ ढंग से कही है कि फ़िल्म क्षेत्र का आकार 2018 में 2.5 अरब डॉलर (2,500,000,000 करोड़ रुपये) था, जो 2019 में बढ़कर इसके 2.8 अरब डॉलर (2,800,000,000 करोड़ रुपये) होने का अनुमान है। वहीं, प्रिंट मीडिया का आकार 2018 में 4.4 अरब डॉलर (4,400,000,000 करोड़ रुपए) रहा और इसके 2019 में बढ़कर 4.8 अरब डॉलर (4,800,000,000 करोड़ रुपए रहने का अनुमान है[8]।

रिपोर्ट में आगे लिखा गया है कि डिजिटल मीडिया 2018 में 42 प्रतिशत बढ़कर 2.4 अरब डॉलर (2,400,000,000 करोड़ रुपए) पर पहुँच गया, जिसको 2019 के अंत तक डिजिटल मीडिया में बढ़कर 3.2 अरब डॉलर (3,200,000,000 करोड़ रुपए) हो जाने का अनुमान है।

डिजिटल मीडिया में भारत की उपस्थिति

भारत में चीन के बाद सबसे ज़्यादा इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या हैं। यहाँ करीब 57 करोड़ लोग इंटरनेट का इस्तेमाल कर रहे हैं, जो वर्षवार 13 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। देश में 2018 में 32.5 करोड़ ऑनलाइन वीडियो देखने वाले लोग थे और 15 करोड़ ऑडियो स्ट्रीमिंग उपयोगकर्ताओं की संख्या थी। टिक–टॉक, यूट्यूब आदि में जिस तेज़ी से हिंदी वीडियो की संख्या और इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की रफ़्तार बनी हुई है, उससे अनुमान लगाया जा रहा है कि अगले पाँच साल में भारत चीन को पीछे छोड़ देगा। इसी तरह मीडिया, मनोरंजन में 2021 तक 2.35 लाख करोड़ रुपए होने का अनुमान है। इसमें अकेले भारतीय मीडिया एवं मनोरंजन क्षेत्र कुल मिलाकर 2017 से 13.4 प्रतिशत बढ़कर 23.9 अरब डॉलर (2,39,00,000,000

करोड़ रुपए) पर पहुँच गया था, जिसके 2021 तक बढ़कर 33.6 अरब डॉलर (3,3600,000,000 करोड़ रुपए) तक पहुँच जाने का अनुमान है[9]।

धीरे–धीरे कई अखबारों के ऑनलाइन संस्करण आने के बाद भी भारतीय मार्केट में हिंदी के अखबारों और उनके प्रकाशन समूहों ने कुल विज्ञापन का जो हिस्सा बनाया, उसमें हिंदी का हिस्सा 37% था, जबकि अंग्रेज़ी प्रकाशनों की हिस्सेदारी 25% थी[10]। गूगल के उत्पाद प्रबंधन के उपाध्यक्ष सीज़र सेनगुप्ता का कहना है "जैसे ही उपयोगकर्ताओं की पहली लहर ऑनलाइन पर आती है, तो वे अंग्रेज़ी में ऑनलाइन नहीं होते। उन नए इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में से लाखों लोग हिंदी भाषी होते हैं। हम गूगल पर आने वाले सभी उपयोगकर्ताओं के अनुभव को ध्यान में रखते हैं। सॉफ़्टवेयर यू.आई. अच्छी तरह से हिंदी में काम कर सके और लोगों को स्मार्टफ़ोन की–बोर्ड पर आसानी से हिंदी स्क्रिप्ट इनपुट करने में मदद कर सके, इसका हम विशेष ध्यान रखते हैं। विश्वास करते हैं कि हिंदी निर्माता और डेवलपर्स हमारे प्लेटफ़ॉर्म जैसे यूट्यूब और गूगल प्ले का उपयोग पूरी दुनिया को बेहतरीन हिंदी सामग्री और एप्लिकेशन प्रदान करने के लिए कर रहे हैं[11]।"

डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी के भविष्य और इसके उपभोक्ताओं पर बात करते हुए उन्होंने आगे कहा कि "कोई संदेश हो या मार्केटिंग अभियान, जिसे आप भारत, नेपाल या दुनिया के किसी अन्य स्थान पर प्रचारित करना चाहते हैं, जहाँ हिंदी भाषी लोग रहते हैं, वहाँ एक हिंदी वेबसाइट अप्रयुक्त बाज़ारों के लिए एक ऐसा दरवाज़ा खोल देगी, जिसकी संख्या 500 मिलियन (500,000,000 करोड़) है"[12]।

थिंक विथ गूगल की ही एक और अन्य रिपोर्ट के अनुसार पाँच साल पहले दैनिक भास्कर कॉर्पोरेशन ने जो रोडमैप तैयार किया था उसमें भारतीय उपभोक्ताओं में हिंदी का उपयोग करने वाले लोगों की संख्या 400 मिलियन (400,000,000 करोड़) थी, जबकि अंग्रेज़ी का उपयोग करने वाले लोग मात्र 70 मिलियन (अर्थात् 7,00,00,000 करोड़) ही पहुँच पा रही थी। कहने की ज़रूरत नहीं है कि हमें हिंदी के डिजिटल प्रयोग को लेकर चिंतित होने की ज़रूरत नहीं है। दैनिक भास्कर समूह के सी. ई.ओ. श्री ज्ञान गुप्त भी कहते हैं "आज, भास्कर.कॉम डी.बी. डिजिटल द्वारा संचालित भारत का सबसे बड़ा हिंदी समाचार प्लेटफ़ॉर्म है, जो कि देश का तीसरा सबसे बड़ा मीडिया साइट है"[13]।

हिंदी की वर्तमान वैश्विक स्थिति

हिंदी के भविष्य को लेकर सबसे अधिक शंका हिंदी के लोगों द्वारा ही हिंदी पट्टी में की जाती है, लेकिन जो हिंदी के बाज़ार को समझते हैं, वे जानते हैं कि हिंदी की वैश्विक स्थिति में निरंतर सुधार होता जा रहा है और उसका कारण है हिंदी का डिजिटलाइज़ेशन। 2017 की के.पी.एम.जी. और गूगल रिपोर्ट का मानना है कि अभी भारत की 44 फ़ीसदी आबादी हिंदी बोलती है। हिंदी बोलने–लिखने वाले लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। साथ ही, टेक्नोलॉजी में भी इसका इस्तेमाल बढ़ रहा है[14]। के.पी.एम.जी. की इस रिपोर्ट के अनुसार 2011 से 2016 के बीच इंटरनेट पर 41 फ़ीसदी की दर से भारतीय भाषाओं का इस्तेमाल बढ़ा। 2016 के आखिर में इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं का इस्तेमाल करने वालों की संख्या बढ़कर 234 मिलियन यानी करीब 23,00,00,000 करोड़ हो गई है।

डिजिटल माध्यमों में भारतीय भाषाओं में सबसे ज़्यादा हिंदी का इस्तेमाल होता है। इंटरनेट पर हिंदी वाले अंग्रेज़ी को भी पीछे छोड़ने वाले हैं। के.पी.एम.जी. की इसी रिपोर्ट के अनुसार 2021 तक भारत में इंटरनेट पर हिंदी का प्रयोग करने वाले, अंग्रेज़ी भाषा वालों को पीछे छोड़ देंगे अर्थात् हिंदी का उपयोग करने वाले लोगों की संख्या अंग्रेज़ी वालों से भी अधिक हो जाएगी।

इसी तरह स्मार्टफ़ोन में हिंदी के प्रयोग करने वाले लोगों पर के.पी.एम.जी. और गूगल के संयुक्त तत्त्वावधान में कराए गए 7000 लोगों के सर्वेक्षण से पता चला कि भारत में 78 प्रतिशत लोग स्मार्टफ़ोन का प्रयोग करते हैं, जिनमें से 99 प्रतिशत उपभोक्ताओं की भाषा अंग्रेज़ी न होकर अन्य भारतीय भाषाएँ हैं, जिनमें से सबसे अधिक प्रयोग होने वाली भाषा हिंदी है।[15] 2020 तक डिजिटल मीडिया के किसी भी प्रारूप में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का उपयोग करने वाले उपभोक्ताओं की संख्या 500 मिलियन (500,000,000 करोड़) के पार हो जाएगी। जबकि इसी दौरान अंग्रेज़ी की पहुँच मात्र 199 (अर्थात् 1,99,000,000 करोड़) उपभोक्ताओं तक ही होगी।[16]

यदि हम मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय की पुस्तक 'हिंदी का वैश्विक सन्दर्भ' का सन्दर्भ ग्रहण करें, तो इस समय दुनिया में सबसे अधिक जिस भाषा का उपयोग आम बोलचाल में किया जा रहा है, उसमें हिंदी पहले स्थान पर है। उनके इस शोध के अनुसार दुनिया के 206 देशों में लगभग 1,30,00,00,000 (एक अरब तीस करोड़) लोग हिंदी बोल रहे हैं[17]।

हिंदी का वैश्विक बाज़ार

यह स्पष्ट है कि वैश्विक स्तर पर बाज़ार की दुनिया बहुत तेज़ी से बदल रही है। व्यापार के नये–नये माध्यम उभर रहे हैं, जिनमें से डिजिटल माध्यम सबसे अधिक प्रभावी जान पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों में अमाज़ोन, फ़्लिपकार्ट, स्नैपडील आदि कंपनियों ने अपना विस्तार किया है। उसमें भाषा और संचार की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण हो जाती है। एच.टी., मीडिया ग्रुप के ग्रुप डायरेक्टर (टेक्नोलॉजी) डॉ. जयमेनन का कहना है कि "यदि आप तीन सी *(C)* यानी 'कंटेंट','कम्युनिकेशन' और 'कॉमर्स' को देखें, तो टेलीकॉम अथवा मीडिया इंडस्ट्री में तीन 'सी' एक साथ काफ़ी बड़े पैमाने पर चल रहे हैं। इन सभी को एक और सी यानी कॉन्टेक्स्ट *(context)* की ज़रूरत होती है। ये चारों सी मिलकर ही डिजिटल ट्रांस्फ़ॉर्मेशन को चला रहे हैं। इस कंटेंट में भाषा के जानकार का कहना है कि इसके लिए सबसे ज़रूरी चीज़ है भाषा की प्रभावशीलता और प्रशिक्षण।"[18]

इस बात में कोई संदेह नहीं कि आज का बाज़ार स्थानीय अथवा राज्यीय न होकर, इसका स्वरूप अंतरराष्ट्रीय है। इसीलिए अधिकांश वैश्विक कंपनियों ने इन संभावनाओं पर विचार करते हुए अपने उत्पादों को विभिन्न भाषाओं के माध्यम से पूरी दुनिया में उतारने की कोशिश की। इसके लिए उन्होंने अपने कर्मचारियों के साथ बेहतर संवाद करने के लिए ऑनलाइन प्रशिक्षण का भी स्थानीकरण किया। ग्राहक सहायता के लिए उपयोगकर्ता गाइड और उत्पाद मैनुअल का अनुवाद कराया और नए ग्राहकों को लुभाने के लिए तथा दुनिया भर के आगंतुकों को आकर्षित करने के लिए अपनी अलग–अलग भाषाओं में वेबसाइट बनवाई।

लिस्बन स्थित ग्लोबलाइज़ेशन ट्रांसलेशन एवं लोकलाइज़ेशन के लिए काम करने वाली कंपनी येम्प्लेकशर के कंटेंट मैनेजर इनेस पिमेंटल ने वैश्विक बाज़ार और इसमें सबसे अधिक उपयोग होने वाली भाषाओं पर शोध करते हुए लिखा कि जिन 10 भाषाओं में सबसे अधिक व्यापार की संभावनाएँ हैं, उनमें से हिंदी एक है।[19]

उनका इस संदर्भ में कहना है कि बाज़ार की रणनीति यह कहती है कि वैश्विक बाज़ार में अपनी जगह बनाए रखने के लिए एक ऐसी प्रतिस्पर्द्धा भाषा की ज़रूरत पड़ती है, जो वैश्विक संपर्क को निरंतर बनाए रखने में सक्षम हो। इसके लिए जिन 10 भाषाओं का चयन किया गया है, उनमें हिंदी एक थी।

अंग्रेज़ी

अंग्रेज़ी व्यापार और शिक्षा की भाषा है। यह 33 देशों में 339 मिलियन लोगों द्वारा बोली जाती है और 20 सबसे अधिक प्रासंगिक अंतरराष्ट्रीय संगठनों की आधिकारिक भाषा है, जो इसे बहुत व्यापक भाषा बनाती है। अंग्रेज़ी भाषा 949 मिलियन उपयोगकर्ताओं के साथ इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के बीच सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली भाषा के रूप में नंबर एक स्थान पर बनी हुई है।

चीनी

चीनी भाषा चीन–तिब्बती भाषाओं का एक समूह है, जिसके मूल उपयोगकर्ताओं की संख्या 955 मिलियन से अधिक है, मसलन पूरी दुनिया की आबादी का 14.4% है। यह दुनिया भर में 1 बिलियन बोलने वालों की संख्या के साथ दुनिया में अब तक सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है।

इसके अलावा, चीनी अर्थव्यवस्था ने पिछले कुछ दशकों में आश्चर्यजनक वृद्धि का अनुभव किया है। ब्लूमबर्ग ने भविष्यवाणी की है कि यह 2026 तक दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने के लिए अमेरिका से आगे निकल सकता है और फ़ोर्ब्स का अनुमान है कि 2018 तक ही यह हासिल किया जा सकता है।[20]

हिंदी

अपने व्यावसायिक अनुवाद और स्थानीकरण की रणनीति के तहत बाज़ार की तीसरी सबसे बड़ी भाषा, संख्या के आधार पर हिंदी है। लगभग 500 मिलियन उपयोगकर्ताओं के साथ हिंदी दुनिया की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा और समझने के आधार पर शायद पहली सबसे बड़ी भाषा है। चीन

के बाज़ार के बाद सबसे तेज़ी से बढ़ती प्रमुख अर्थव्यवस्था देश भी भारत ही है।

हिंदी के बाद जो भाषाएँ बाज़ार में सबसे अधिक आधिपत्य जमाए हुए हैं, उनमें स्पेनी, अरबी, जर्मन, पुर्तगाली, रूसी, फ्रेंच, जापानी आदि प्रमुख हैं।

इस तरह हम देखें, तो जैसे–जैसे मोबाइल और इंटरनेट का उपयोग बढ़ेगा हिंदी का प्रयोग भी बढ़ेगा। साथ ही उभरती हुई अर्थव्यवस्था के कारण इसका व्यापक विस्तार भी होगा।

हिंदी का भविष्य और संभावनाएँ

सच्चाई यही है कि हम हिंदी के भविष्य को लेकर राष्ट्रीय स्तर और विश्वविद्यालयी स्तर पर भले शोकाकुल रहें, लेकिन उभरती हुई भारतीय अर्थव्यवस्था ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को जिस तरह से भारत में निवेश करने के लिए लालायित किया है, उसी का परिणाम है कि आज हमारा पड़ोसी देश और बाज़ारवादी व्यवस्था में सबसे बड़ा प्रतिस्पर्धी चीन भी हिंदी पढ़ने के लिए मजबूर हो रहा है। दुनियाभर में हिंदी सीखने की होड़ जिन देशों में लगी है, उनमें चीन सबसे आगे है। आज चीन के 20 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इसके अलावा फ़िजी, मॉरीशस, नेपाल, केन्या, ऑस्ट्रेलिया, बहरीन, ओमान, यू.ए.ई., गयाना, जर्मनी, कनाडा आदि देशों में भी हिंदी बोलने वालों की एक बड़ी संख्या है।

एक शोध के अनुसार दुनिया में हिंदी के बढ़ते वैश्विक स्वरूप के पीछे डिजिटल मीडिया की प्रमुख्य भूमिका रही है। दूसरा हिंदी सिनेमा का इलेक्ट्रॉनिक संस्करण, जो अमाज़ोन प्राइम और नेटफ़्लिक्स आदि के माध्यम से दुनिया के लोगों तक पहुँच रहा है; वह भी लोगों को खूब दीवाना बना रहा है।

विश्व बाज़ार की इस सांस्कृतिक पीठिका को सामने रखकर हमारे अपने देश के संदर्भ में हिंदी भाषा से उसके बनते हुए संबंधों को देखा जाना चाहिए। विश्व बाज़ार के सांस्कृतिक पहलुओं को भारतीय समाज की अंदरूनी तहों में प्रवेश कराने में हिंदी की एक बहुत विशिष्ट भूमिका बन गयी है। हमारे यहाँ लगभग 130 करोड़ की आबादी में 66 प्रतिशत लोग हिंदी को अपनी प्रारंभिक भाषा मानते हैं। संख्या के हिसाब से यह विश्व में तीसरे स्थान पर मानी जाती है। लेकिन बोलने और समझने की दृष्टि से दूसरे और पहले स्थान पर है।

पिछले एक दशक के दौरान जब विदेशी कंपनियाँ व्यापार के लिए हमारे यहाँ आयीं, तब उनका हमारी देशी भाषाओं के साथ एक खास स्तर पर सम्मिलन होने लगा, हिंदी के साथ विशेष तौर पर। बाहरी सांस्कृतिक संदेश चोला बदलकर हमारे समाज की अंदरूनी तहों में उतरने लगे। 90 के दशक में हॉलीवुड के एक बड़े फ़िल्म निर्माता स्टीवन स्पिलबर्ग ने जब अपनी बहुचर्चित फ़िल्म 'जुरासिक पार्क' को हिंदी में डब किया, तो उन्हें अप्रतिम सफलता मिली। लेकिन इससे मिले परिणाम ने हॉलीवुड की फ़िल्मों के लिए एक नया रास्ता खोल दिया, जिससे हॉलीवुड की फ़िल्मों के हिंदी 'डब' संस्करणों की तो मानो बाढ़ आ गई।

वैश्विक बाज़ार में हिंदी के लगातार आगे बढ़ने के पीछे जो कारक सहायक रहे हैं, वे इस प्रकार हैं :

- ✡ भारतीय अर्थव्यस्था का वैश्विक स्वरूप तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का तेज़ी से उभरना।
- ✡ डिजिटल तकनीक के क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानिकों का कब्ज़ा।
- ✡ कंप्यूटर संबंधित सॉफ़्टवेयर की भारतीय इंजीनियरों को अच्छी जानकारी।
- ✡ पूरी दुनिया में फैले भारतीय इंजीनियरों का अपनी भाषा और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का उपयोग करना।
- ✡ बॉलीवुड की फ़िल्मों का डिजिटलाइज़ेशन होना और ऐसी फ़िल्मों का नेटफ़्लिक्स और अमाज़ोन प्राइम जैसे ऑनलाइन चैनलों में अपने कार्यक्रम का हिस्सा बनाना।

संदर्भ :

1. मार्य, बर्नार्ड "व्हाई एवरीवन मस्ट गेट रेडी फार द फोर्थ इंडस्ट्रियल रेवोलुशन", फोर्ब्स, 14 फरवरी, 2018
2. हरमन, पेंटेक, ओटो, 2016 : डिज़ाइन प्रिंसीपल फार इंडस्ट्री 4.0 सीनारियो, 4 मई, 2016
3. https://hindi.news18.com/news/tech/ranchi-rohit-prasad-who-made-alexa-learn-hindi-language-2440180.html.
4. लिबरमैन, फिलिप मैकार्थी, रॉबर्ट सी, स्ट्रेट डेविड (मई, 2006) द रीसेंट ओरिजिन आफ ह्युमन स्पीच, 119(5), 3441–3441,

June 2010

5. विजय कुमार http://www.abhivyakti-hindi.org/snibandh/drishtikone/2011/vishwabazar_aur_hindi.htm 12 सितम्बर, 2011
6. विजय कुमार http://www.abhivyakti-hindi.org /snibandh/drishtikone/2011/vishwabazar_aur_hindi.htm 12 सितम्बर, 2011
7. विजय कुमार http://www.abhivyakti-hindi.org /snibandh/drishtikone/2011/vishwabazar_aur_hindi.htm 12 सितम्बर, 2011
8. द फ्री प्रेस जर्नल, 13 मार्च, 2019
9 द फ्री प्रेस जर्नल, 13 मार्च, 2019, फिक्की–ईवाई रिपोर्ट, 2019
10. द लाइव मिंट, 13 मार्च, 2019
11. https://www.thinkwithgoogle.com/intl/en-apac/trends-and-insights/hindi-matters - डिजिटल युग/
12. https://www.thinkwithgoogle.com/intl/en-apac/trends-and-insights/hindi-matters - डिजिटल युग/
13. https://www.thinkwithgoogle.com/intl/en-apac/trends-and-insights/hindi-matters - डिजिटल युग/
14. के.पी.एम.जी. – गूगल रिपोर्ट, 2017
15. के.पी.एम.जी. – गूगल रिपोर्ट, 2018
16. thinkwithgoogle.com
17. डॉ. करुणा शंकर उपाध्याय, हिंदी का वैश्विक संदर्भ, अभिव्यक्ति. हिंदी.ओ.आर.जी.
18. https://www.samachar4media.com/interviews-news/content-communication-commerce-context-are-driving-digital-transformationdr-jai-menon-ht-media-39415.html.
19. इनेस पिमेंटल, कंटेंट मैनेजर, येम्प्लेकषर, लिस्बन, 20 नवंबर, 2019
20. इनेस पिमेंटल, कंटेंट मैनेजर, येम्प्लेकषर, लिस्बन, 20 नवंबर, 2019

sanjaysinghdu@gmail.com

न्यू मीडिया की नज़र से हिंदी समाचार-पत्रों पर कोविड-19 का प्रभाव

– डॉ. शैलेश शुक्ल
कर्नाटक, भारत

दिसंबर 2019 में शुरू हुए कोरोना वायरस के बढ़ते संक्रमण को देखते हुए मानव इतिहास में पहली बार लॉकडाउन जैसे कठोर कदम उठाए गए। कोरोना वायरस से लड़ने और उसके प्रति जागरूकता लाने में समाचार–पत्र सशक्त माध्यम बना। इसके बावजूद समाचार–पत्रों पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। औद्योगिक इकाइयों के बंद होने से उत्पादन, निर्माण एवं सेवा क्षेत्र प्रभावित होने के कारण समाचार–पत्र, पत्रिकाओं से विज्ञापनदाता दूर हो गए और धीरे–धीरे अखबार जगत की आर्थिक स्थिति चरमरा गई। संयुक्त राष्ट्र संघ की ईकाई यूनेस्को ने कहा कि अविश्वसनीय और गलत सूचनाएँ पूरे विश्व में इस हद तक फैल रही हैं कि कुछ समालोचक कोविड–19 वैश्विक महामारी से जुड़ी गलत सूचनाओं के इस नए अंबार को 'सूचनाओं की महामारी' कह रहे हैं। समाचार मीडिया द्वारा दी जाने वाली सूचना का विकल्प नहीं है। लॉकडाउन के कारण भी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, जिनसे अखबारों के प्रसार का चक्र टूट गया और प्रतियाँ तेज़ी से घटीं।

भारत में हिंदी समाचार–पत्र का उदय एवं मौजूदा स्थिति

हिंदी भाषा में 'उदन्त मार्तण्ड' नाम से पहला समाचार–पत्र 30 मई 1826 में प्रकाशित हुआ था। पेशे से वकील पंडित जुगल किशोर शुक्ल के संपादकीय नेतृत्व में कलकत्ता (अब कोलकाता) के बड़ा बाज़ार इलाके में अमर तल्ला लेन, कोलूटोला से साप्ताहिक 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन शुरू हुआ था। यह साप्ताहिक अखबार हर हफ़्ते मंगलवार को पाठकों तक पहुँचता था। इसके बाद से लगातार हिंदी भाषा के समाचार–पत्र के नए सोपान में विकसित होते चले गए। पत्रकारिता के उद्भव एवं विकास में हिंदी पत्रकारिता ने 30 मई, 2020 को 194 साल पूरे कर लिए हैं।

देश में पंजीकृत प्रकाशनों की सबसे अधिक संख्या हिंदी में है। इसके बाद दूसरा नंबर अंग्रेज़ी भाषा का आता है। आर. एन.आई. (रजिस्ट्रार ऑफ़ न्यूज़पेपर्स फ़ॉर इंडिया) की नवीनतम वार्षिक रिपोर्ट (2017–18) के मुताबिक, पंजीकृत प्रकाशनों की संख्या 1,18,239 है। किसी भी भारतीय भाषा में पंजीकृत समाचार–पत्र, पत्रिकाओं की सबसे अधिक संख्या हिंदी भाषा में है और यह संख्या 47,989 है, जबकि दूसरे नंबर पर आने वाली अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशनों की संख्या 14,626 है। वर्ष 2017–18 में समाचार–पत्र, पत्रिकाओं का प्रसार 43 करोड़ था, जिसमें हिंदी की भागीदारी 19.56 करोड़ थी।[1]

कोरोना काल में अफ़वाहों से अखबार हुए प्रभावित

कोरोना वायरस को लेकर सोशल मीडिया पर ऐसी खबरें प्रसारित हो रही हैं कि दूध की थैली, अखबार अथवा नोटों से वायरस का संक्रमण फैल रहा है।[2] इस अफ़वाह का परिणाम हुआ कि लोगों ने समाचार–पत्रों को लेना बंद कर दिया। तमिलनाडु के टी. गणेश कुमार ने मद्रास हाईकोर्ट में समाचार–पत्रों के प्रकाशन और वितरण पर रोक लगाने की याचिका दायर की। याचिका में दावा किया था कि यदि समाचार–पत्र प्रकाशित होते हैं और कोई संक्रमित समाचार–पत्र वितरक इसे लोगों के घरों तक पहुँचाता है, तो इससे और व्यक्ति संक्रमित हो सकते हैं। अपने दावे को सिद्ध करने के लिए याचिकाकर्ता ने 'द न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ़ मेडिसिन' में प्रकाशित 'SARS-CoV-1 की तुलना में SARS-CoV-2 की एरोसोल और सरफ़ेस स्टेबिलिटी' नामक एक अध्ययन का उद्धरण किया, जिसमें यह दावा किया गया है कि वायरस अखबार पर 4–5 दिनों के लिए जीवित रह सकता है।[3] हालाँकि हाईकोर्ट ने शोध को प्रमाणिक नहीं मानते

हुए, इस तथ्य को अस्वीकार करते हुए याचिका को खारिज कर दिया। इस तरह के अध्ययन को लेकर विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म जैसे फ़ेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, हेलो पर डर का माहौल पैदा हो गया, जिसकी वजह से लोगों ने समाचार–पत्रों से दूरी बना ली और इससे समाचार–पत्रों की प्रसार संख्या में तेज़ी से गिरावट आई।

'विश्व स्वास्थ्य संगठन' (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने भी अपने दिशा–निर्देशों में इस बात की पुष्टि की है कि समाचार–पत्र छूना पूरी तरह से सुरक्षित है। इन सब दावों और अपील के बावजूद लोगों ने समाचार–पत्रों से दूरी बनाई, जिसके कारण प्रसार संख्या में गिरावट दर्ज हुई। 24 मार्च, 2020 को केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री माननीय प्रकाश जावड़ेकर ने अपने ट्विटर हैंडल से ट्वीट कर कहा कि समाचार–पत्रों से कोरोना वायरस का संक्रमण नहीं होता है।[4] लोगों ने भय से समाचार–पत्रों के वितरक को समाचार–पत्र डालने पर रोक लगा दी।

27 मार्च, 2020 को प्रकाशित द प्रिंट की रिपोर्ट के मुताबिक, कोरोना संक्रमण के कारण समाचार–पत्रों के वितरकों को भी काफ़ी नुकसान उठाना पड़ रहा है। नोएडा में अखबार देने वाले विक्रेता माधव पाण्डेय ने बताया कि जहाँ पहले प्रतिदिन 18,000 से 20,000 समाचार–पत्रों की कॉपियाँ बेचते थे, वह आंकड़ा घटकर 3,000 से 4,000 रह गया है। नोएडा के 70 प्रतिशत लोगों ने समाचार–पत्र खरीदना बंद कर दिया है।[6] कोलकाता के एक अख़बार वितरक अमित गोस्वामी ने 27 मार्च को समाचार एजेंसी ए.एन.आई. से कहा है "हमारी बिक्री 80 फ़ीसदी कम हो गई है।"[5]

समाचार–पत्रों से कोरोना वायरस संक्रमण फैलने की अफ़वाह पर पहली बार सभी बड़े अखबार समूह एक साथ आए और कहा कि उनका अखबार पूरी तरह सुरक्षित है। अखबार छपने के बाद से लेकर हॉकर के ज़रिए पाठकों तक पहुँचाने में कई बार सैनिटाइज़ किया जाता है। पहली बार समाचार–पत्रों ने अपनी बातें रखने के लिए न्यूज़ चैनल और मनोरंजन चैनल पर विज्ञापन का सहारा लिया। विज्ञापन में समाचार–पत्र छपने की पूरी प्रक्रिया दिखाई गई और पाठकों को विश्वास दिलाने की कोशिश की गई है, उनका अखबार सुरक्षित है और सत्य एवं तथ्य जानने के लिए हर सुबह अखबार खरीदें।

लॉकडाउन से हुए अखबार प्रभावित

कोरोना वायरस के बढ़ते संक्रमण को देखते हुए राष्ट्र के नाम संबोधन में प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी ने 24 मार्च, 2020 से देश में 21 दिन के लिए लॉकडाउन की घोषणा की। केंद्रीय गृह मंत्रालय के दिशानिर्देश में जिन सेवाओं को लॉकडाउन से राहत दी गई है, उनमें मीडिया को भी शामिल किया गया, लेकिन अख़बार का वितरण मीडियाकर्मी नहीं करते, बल्कि ये एक पूरे वितरण जाल (डिस्ट्रीब्यूशन नेटवर्क) पर आधारित होता है, जिसमें प्रिंटिग प्रेस से छपे बंडलों को वितरकों, फिर विक्रेता तक पहुँचाने का काम भी शामिल हैं। इसमें एक शहर से दूसरे शहर तक भी जाना होता है। सबसे अंत में है हॉकर्स, जो घर–घर जाकर अख़बार डालते हैं। पुलिस–प्रशासन को इस मामले में साफ़ निर्देशों की कमी और रेलगाड़ियों के रद्द होने, टैक्सियों–लॉरियों–मिनी ट्रकों की गतिविधियों पर लगी रोक और खुद वितरकों में उपजे ख़ौफ ने संकट पैदा कर दिया।

27 मार्च, 2020 को प्रकाशित बीबीसी की रिपोर्ट के अनुसार, दीनानाथ सिंह राय पश्चिम बंगाल के नॉर्थ 24 परगना के सोदपुर में अख़बार के बड़े वितरक हैं। वे कहते हैं, पहले हम ट्रेन से बंडल ले जाते थे, वो बंद है, मैटाडोर या टैक्सी का किराया बहुत अधिक है और हॉकर्स अपने डर और कई दफ़ा पुलिस के कारण अख़बार उठाने नहीं आ पा रहे हैं। नुक्कड़ों और शहर के चौराहों पर जो बिक्री दिन भर में हुआ करती थी, वो बंदी की वजह से बिल्कुल ख़त्म हो गई है।[7]

समाचार–पत्रों को हुआ आर्थिक नुकसान

समाचार–पत्रों के प्रसार संख्या कम होने और लॉकडाउन के कारण उद्योगों के बंद होने और सेवा क्षेत्र का काम प्रभावित होने के कारण अखबारों में विज्ञापन की भारी कटौती हुई। 'विज्ञापन राजस्व में कमी और न्यूज़ प्रिंट पर सीमा शुल्क के कारण समाचार–पत्रों के सामने आर्थिक संकट आ गया। इंडियन न्यूज़पेपर सोसायटी (आई.एन.एस.) ने अनुमान लगाया है कि प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री में विज्ञापनों की कमी की वजह से मार्च और अप्रैल में लगभग 4,500 करोड़ रुपए की राजस्व हानि हुई है। अगले सात महीनों में करीब 15,000 करोड़ रुपए की हानि होने की संभावना है। आई.एन.एस. के अध्यक्ष शैलेश गुप्त

ने कहा कि हानि की वजह से समाचार–पत्र की मूल कंपनियाँ अपने कर्मचारियों (पत्रकार) और वितरकों को वेतन का भुगतान करने में असमर्थ हैं।'[8]

प्रमुख हिंदी समाचार–पत्र 'दैनिक भास्कर' की मुख्य कंपनी डीबी कॉर्प ने बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (बी.एस.ई.) में जमा किए वार्षिक विवरण में बताया कि कोविड–19 की वजह से विज्ञापन से होने वाली आय बहुत प्रभावित हुई है। अप्रैल महीने में नाममात्र के विज्ञापन मिले हैं।[9]

आर्थिक नुकसान के कारण समाचार–पत्र, पत्रिकाओं के संस्करण हुए बंद

लॉकडाउन की वजह से आर्थिक गतिविधियाँ ठप्प रहीं। प्रिंट मीडिया को भी आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ा। विज्ञापन नहीं मिलने से छोटे अखबारों की कमर टूट गई और धीरे–धीरे करके बंद हो गए। बड़े अखबार समूहों ने भी अपनी लागत कम करने और काम जारी रखने के उद्देश्य से पहले अखबारों के पेज घटाए। फिर दो से चार संस्करणों को समायोजित कर दिया। जब इनसे भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ, तो कई संस्करण बंद कर दिए गए। सभी अखबारों ने पृष्ठ घटा दिए। मार्च के तीसरे सप्ताह तक यह सभी अखबार 18–24 पृष्ठ के आते थे, लेकिन लॉकडाउन लागू होने के बाद अप्रैल के पहले सप्ताह से अखबारों ने पृष्ठ संख्या घटा दी। 26 जून तक प्रकाशित दैनिक जागरण 16 पृष्ठ, दैनिक भास्कर 12 पृष्ठ, अमर उजाला 8 पृष्ठ, दैनिक सवेरा 10 पृष्ठ और पंजाब केसरी 12 पृष्ठ प्रकाशित हुए।

प्रेस एसोसिएशन, इंडियन जर्नलिस्ट्स यूनियन और वर्किंग न्यूज़ कैमरामेन एसोसिएशन ने प्रिंट मीडिया के मौजूदा संकट पर एक प्रेस नोट जारी कर बताया कि लॉकडाउन के तीसरे हफ़्ते में ही इंडियन एक्सप्रेस और बिज़नेस स्टैंडर्ड अखबार ने पत्रकारों की सैलेरी में कटौती की। टाइम्स ऑफ़ इंडिया अख़बार ने संडे मैग्ज़ीन की पूरी टीम को निकाल दिया है। हिन्दुस्तान टाइम्स मराठी ने 30 अप्रैल से प्रकाशन बंद कर संपादक समेत पूरी टीम को घर बैठने के लिए कह दिया। आउटलुक मैग्ज़ीन का प्रकाशन बंद हो गया। साथ ही उर्दू का अखबार नई दुनिया और स्टार ऑफ़ मैसूर अखबार बंद हो रहा है।[10]

मध्य प्रदेश के 300 से अधिक छोटे और मझोले अखबार के मालिकों ने अपने–अपने अखबार अस्थायी रूप से प्रकाशित करने बंद कर दिए। मध्य प्रदेश जनसंपर्क विभाग के अनुसार, देशव्यापी लॉकडाउन के कारण यातायात की असुविधा के साथ विज्ञापनों में आई भारी कमी ही इसकी मुख्य वजह है। लॉकडाउन में स्थिति इतनी खराब हो गई है कि मध्य प्रदेश के 52 ज़िलों में से 95 फ़ीसदी ज़िलों में छोटे अखबार बंद हो गए।[11] टाइम्स ग्रुप के नाम से प्रसिद्ध बेनेट कोलेमन एंड कंपनी लिमिटड ने इकनॉमिक टाइम्स हिंदी और सांध्य टाइम्स अखबार बंद कर दिए। दैनिक जागरण ने हरियाणा के पानीपत, यूपी के मुरादाबाद और अलीगढ़ संस्करण बंद कर दिए। मुरादाबाद का ज़्यादातर स्टाफ़ बरेली यूनिट में भेज दिया गया है।[12] इसी तरह अन्य अखबारों ने भी कदम उठाए।

आर्थिक हानि से गई पत्रकारों की नौकरी

समाचार–पत्रों की आर्थिक हानि का असर वहाँ कार्यरत पत्रकारों पर हुआ। शिमला से प्रकाशित दिव्य हिमाचल अखबार के कर्मियों के वेतन में 15 प्रतिशत कटौती की गई।[13] पूर्वी भारत के प्रमुख अखबार प्रभात खबर ने लागत कम करने के लिए पृष्ठों की संख्या घटा दी और कई संस्करणों को समायोजित कर दिया। इसके बाद अखबार ने ब्यूरो के स्ट्रिंगरों को नौकरी बचाए रखने के लिए 25 हज़ार रुपये का विज्ञापन लाने को कहा, जिससे उनकी नौकरी बच सके।[14] राजस्थान पत्रिका ने मार्च महीने में सभी पत्रकारों व कर्मचारियों के वेतन में भारी कटौती कर दी। सभी कर्मचारियों को सिर्फ़ 15 हज़ार रुपए दिए गए। चाहे उनका वेतन 60–70 हज़ार रुपये क्यों न था।[15] राजस्थान पत्रिका ग्रुप की कंपनी 'पोर्टफ़ोलियो' में नियुक्त कई मीडियाकर्मियों को नौकरी से निकाल दिया गया। छह राज्यों और दो केंद्र शासित प्रदेशों से प्रकाशित होने वाले अमर उजाला के 21 संस्करणों में वरिष्ठ उपसंपादक से वरिष्ठ सभी पदों के वेतन में 50 फ़ीसदी की कटौती की गई।[16] मध्य प्रदेश, हरियाणा और छत्तीसगढ़ से प्रकाशित 'हरिभूमि' अखबार के मीडियाकर्मियों का 10 से लेकर 30 प्रतिशत तक वेतन काट दिया गया।[17] इसी तरह हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों माध्यमों के पत्रकारों के वेतन में कटौती कर दी गई।

विश्व के दूसरे देशों के समाचार–पत्रों पर भी दिखा असर

दुनिया के अन्य राष्ट्रों में भी समाचार–पत्र, पत्रिकाओं पर असर दिखा। दक्षिण अफ़्रीका में कई मीडिया संगठनों ने एक–एक कर अपनी पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद कर दिया। मीडिया संगठन एसोसिएटड मीडिया पब्लिशिंग ने लॉकडाउन की वजह से आर्थिक तंगी का हवाला देते हुए प्रकाशन बंद कर दिया। कॉक्सटन एंड सीटीपी पब्लिशर्स एंड प्रिंटर्स लिमिटड ने भी अपनी 10 पत्रिकाओं का प्रकाशन रोक दिया। इनमें कंट्री लाइफ़, एस्सेनशिअल, फूड एंड होम, गार्डन एंड होम, रूई रोज़ और बोना आदि शामिल हैं।[18] इसी तरह रूपर्ट मर्डोक के ऑस्ट्रेलियाई मीडिया समूह 'न्यूज़ कॉर्प' ने कहा कि कोविड–19 के कारण विज्ञापनों में काफ़ी गिरावट आई है। ऐसे में वह करीब 60 प्रादेशिक समाचार–पत्र प्रकाशित नहीं करेगा। 'द गार्डियन' की रिपोर्ट के अनुसार, कोरोना वायरस की वजह से ब्रिटेन में सरकार द्वारा किए गए लॉकडाउन के कारण समाचार–पत्रों की बिक्री में 30 प्रतिशत तक की कमी हुई है। तमाम पाठक भी सेल्फ़ आइसोलेटिंग कर रहे हैं, ऐसे में ब्रिटिश न्यूज़ इंडस्ट्री के राजस्व का एक प्रमुख स्रोत काफ़ी प्रभावित हुआ है।[19]

भारतीय समाचार–पत्रों ने किए यह बदलाव

लॉकडाउन में जब लोग अपने घर में कैद हो गए, उस समय टीवी और इंटरनेट पर ट्रैफ़िक बढ़ गई। इकोनॉमिक्स टाइम्स में छपी गौरव लघाटे ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि लोगों ने सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए डिजिटल मीडिया का सहारा लिया। मार्च 2020 में ब्रॉडकास्टिंग ऑडियंस रिसर्च काउंसिल (बार्क) द्वारा जारी रिपोर्ट के मुताबिक, लॉकडाउन के बाद टीवी देखने वालों में आठ प्रतिशत, मोबाइल पर सूचना प्राप्त करने वालों में 6.2 फ़ीसदी की बढ़ोतरी हुई है। जब लॉकडाउन के दौरान अखबार का वितरण प्रभावित था, तो ऑनलाइन माध्यम से सूचना प्राप्त करने वालों में 57 फ़ीसदी की बढ़ोतरी हुई।[20] इन सबको देखते हुए समाचार–पत्रों ने कुछ बदलाव किए।

अखबारों ने प्रकाशन बंद होने के बावजूद समाचार संकलन की प्रक्रिया जारी रखा और उसे डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म के ज़रिए लोगों तक पहुँचाने की कोशिश की। लोगों को ई–पेपर और ई–मैग्ज़ीन उपलब्ध कराए गए। अखबारों ने अपनी आर्थिक स्थिति ठीक करने के लिए मुफ़्त में मिलने वाले ई–पेपर के लिए पे–वॉल लगा दिया। पे–वॉल एक तकनीकी व्यवस्था है, जिसके तहत अखबार पढ़ने से पहले मासिक या वार्षिक सदस्यता लेना अनिवार्य है। इसके लिए एक निश्चित शुल्क चुकाना होता है। दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, हरिभूमि, नवभारत टाइम्स और कई अन्य अखबारों ने अपने संस्करण का खास वाट्सएप्प वर्शियन शुरू किया है, जिसे सीधे पाठकों के नंबर पर भेजा जाता है।

कोविड–19 की वजह से भारत के प्रिंट मीडिया पर संकट आ गया है। समाचार–पत्र का व्यापार बुरी तरह मंदी की चपेट में है। लॉकडाउन की वजह से समाचार–पत्रों का वितरण भी प्रभावित हुआ है। विज्ञापन एवं अखबारों की प्रति बेचकर प्राप्त होने वाली आय प्रभावित हुई है, जिसकी वजह से पत्रकारों एवं समाचार–पत्रों के अन्य विभागों में कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए कोविड–19 एक संकट लेकर आया है। सैकड़ों पत्रकारों की नौकरियाँ चली गई। बहुत सारे कार्यरत पत्रकारों के वेतन में कटौती की गई। कई समाचार–पत्र और पत्रिकाओं ने लागत और आमदनी को देखते हुए अस्थायी तौर पर प्रकाशन बंद कर दिया है। प्रिंट मीडिया की खराब स्थिति को देखते हुए सरकारी मदद की ज़रूरत है। कई पत्रकार संघ, संपादक समूह, मीडिया मालिकों ने सरकार से प्रिंट मीडिया के लिए आर्थिक पैकेज देने की गुहार लगाई है, जिससे इस स्थिति से निकला जा सके। यदि कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया, तो आने वाले वक्त में प्रिंट मीडिया की स्थिति और खराब होगी। प्रिंट मीडिया का भविष्य कोरोना संक्रमण की स्थिति एवं देश की अन्य आर्थिक गतिविधियों की स्थिति पर निर्भर करेगी।

संदर्भ

1. http://rni.nic.in/all_page/press_india.aspx
2. https://www.livehindustan.com/health/story-do-not-panic-with-covid-19-corona-is-not-caused-by-touching-the-newspaper-3097951.html, 31 Mar 2020 10:40 AM
3. https://www.samachar4media.com/print-media-news/madras-hc-dismisses-plea-against-exemption-granted-to-the-print-media-53226.html, 11 April, 2020
4. https://twitter.com/PrakashJavdekar/status/

1242430933526962178, 24 Mar 2020, 6:19 PM
5. https://theprint.in/india/covid-19-hits-print-media-hard-ads-and-circulation-dip-editions-see-major-digital-push/388514/, 27 March, 2020 10:22 am IST
6. https://twitter.com/ANI/status/1243009839304806400, 27 March, 2020 10:22 am IST
7. https://www.bbc.com/hindi/india-52054618, 27 मार्च 2020
8. https://www.exchange4media.com/media-print-news/print-media-has-suffered-nearly-rs-4500-crore-loss-in-march-april-ins-104364.html, May 1, 2020 11:30 AM
9. https://bestmediainfo.com/2020/06/db-corp-reports-56-drop-in-net-profit-in-q4fy20/, June 24, 2020
10. https://www.bbc.com/hindi/india-52298917, 16 अप्रैल 2020
11. https://www.samachar4media.com/print-media-news/coronavirus-outbreak-and-lockdown-has-severely-affected-the-print-media-in-mp-53149.html, 02 April, 2020
12. https://bit.ly/3i8fxuZ
13. https://www.bhadas4media.com/divya-himachal-newspaper-salary-cut/, April 17, 2020
14. https://www.bhadas4media.com/prabhat-khabar-ka-lockdown-mei-farman/, April 19, 2020
15. https://www.bhadas4media.com/patrika-karmiyo-ko-salary-ka-intzar/, April 25, 2020
16. https://www.bhadas4media.com/amar-ujala-salary-cut/, April 7, 2020
17. https://www.bhadas4media.com/haribhoomi-bhopal-salary-deduction/, April 25, 2020
18. https://www.moneyweb.co.za/news/companies-and-deals/caxton-withdraws-from-magazine-publishing/#:~:text=kThe%20Board%20of%20Directors%20of,magazine%20publishing%20and%20associated%20businesses. 5 May 2020
19. https://www.samachar4media.com/print-media-news/60-australian-regional-newspapers-stop-their-printing-amid-corona-outbreak-53153.html, 03 April, 2020
20. https://economictimes.indiatimes.com/industry/media/entertainment/media/covid-19-impact-tv-mobile-consumption-witness-major-spike/articleshow/74848508.cms?from=kmdr, Mar 28, 2020, 11.42 AM IST

PoetShailesh@gmail.com

हिंदी-शिक्षण

17. हिंदी-शिक्षण के नए आयाम - श्री अशोक ओझा

18. अमेरिका में हिंदी अध्ययन-अध्यापन : दशा एवं दिशा - डॉ. प्रेम सिंह

19. विश्व पटल पर हिंदी : अध्ययन और अध्यापन - डॉ. राम प्रकाश यादव

20. अमेरिका में हिंदी शिक्षण व प्रशिक्षण की दशा - डॉ. कुसुम नैपसिक

21. मॉरीशस की प्राथमिक पाठशालाओं में हिंदी की पढ़ाई - सुश्री आरती हेमराज

हिंदी-शिक्षण के नए आयाम

– श्री अशोक ओझा
न्यू जर्सी, यू.एस.ए.

इक्कीसवीं सदी में भारत के बाहर जन्मे और बड़े हो रहे बच्चों को हिंदी की प्रभावी शिक्षा कैसे दी जाए? यह प्रश्न हिंदी शिक्षकों के लिए एक बड़ी चुनौती बनकर खड़ा है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 21वीं सदी में पैदा हुए शिक्षार्थियों की ज़रूरतें बदल गई हैं। भाषा–शिक्षण का एक उद्देश्य यह है कि उन्हें ज़िम्मेदार विश्व नागरिक बनाया जाए। उनकी भाषा प्रवीणता का सम्बन्ध वर्तमान युग की चुनौतियों से होना चाहिए। भाषा–शिक्षण के ज़रिए शिक्षार्थियों को अन्य विधाओं की जानकारी भी दी जा सकती है। भारत में हिंदी सीखने वाले विद्यार्थियों में अन्य भाषा–भाषी लोगों की बड़ी संख्या है। जिनकी मातृभाषा हिंदी है, ऐसे शिक्षार्थियों को हिंदी सिखाने का तरीका अलग होगा। लेकिन हमारा विषय भारत के बाहर हिंदी शिक्षा पर केंद्रित है। भारत के बाहर हिंदी सीखने वालों का वर्ग विविधताओं से भरा है। भारतीय मूल के लोग मॉरीशस, फ़िजी, सुरीनाम, गयाना, त्रिनिदाद–टोबेगो आदि देशों में फैले हुए हैं। इन गिरमिटिया देशों में बसे भारतीय मूल के अनेक लोग मानते हैं कि हिंदी उनकी भाषा है। उनके लिए हिंदी भारत से आयातित की गयी भाषा नहीं है। ऐसे अनेक परिवार दैनिक बोलचाल में हिंदी का प्रयोग करते हैं, अपने बच्चों को हिंदी पढ़ाते हैं। मॉरीशस में हिंदी की मौलिक शिक्षा–पद्धति विकसित भी हुई है, अतः वहाँ हिंदी की प्रभावी शिक्षा पर विचार, वहाँ के शिक्षाविद् और भाषाविद् ही कर सकते हैं, साथ ही अमेरिका में अपनायी जा रही अनेक प्रभावी शिक्षण शैली के उपयोगी अंश को अपनी शैली में स्थान भी दे सकते हैं। इस प्रकार के आदान–प्रदान का सही समय यही है।

हिंदी शिक्षा को आज के शिक्षार्थियों की ज़रूरतों के अनुरूप कैसे बनाया जाए, इस मुद्दे पर हो रहे शोध कार्यों के निष्कर्षों को अपनाकर भाषा–शिक्षण शैली को प्रभावी किया जा सकता है। भाषाविद् इस बात पर सहमत हैं कि भारतीय मूल के परिवारों से आने वाले शिक्षार्थियों और गैर भारतीय मूल के घरों से आने वाले शिक्षार्थियों के लिए एक जैसी शिक्षण शैली नहीं अपनाई जा सकती। अमेरिका में हिंदी को कई श्रेणियों में रखा गया है। इसे गैर–अंग्रेज़ी भाषाओं के साथ जोड़कर देखा जा सकता है। हिंदी एक 'विश्व भाषा' है, उसे अन्य विश्व भाषाओं की तरह पढ़ाया जाना चाहिए।

वर्तमान संदर्भों में हिंदी–शिक्षण को कैसे प्रभावी बनाया जाए इस पर चर्चा करते समय हिंदी शिक्षार्थियों के प्रोफ़ाइल पर नज़र डालना आवश्यक है। भारतीय मूल के शिक्षार्थियों को हेरिटेज और गैर भारतीय मूल के शिक्षार्थियों को नॉन–हेरिटेज की श्रेणी में रखा गया है, ताकि उनकी विविधता को ध्यान में रखकर उन्हें भाषा ज्ञान कराया जा सके। अमेरिका में हिंदी को वाणिज्य–व्यापार और राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से अहम दर्जा दिया गया है। इस कारण इसे पढ़ाने के लिए औपचारिक तरीके इस्तेमाल किए जाने लगे हैं, जैसे कि अन्य गैर–अंग्रेज़ी भाषाओं को पढ़ाने के लिए प्रयुक्त होता है। गैर–अंग्रेज़ी भाषाओं में एक उपश्रेणी है 'कम सामान्य तौर पर पढ़ाई जाने वाली भाषाएँ (लेस कॉमन्ली टॉट लेंग्वेज), जिनमें हिंदी, अरबी, चीनी–मैंडरिन आदि शामिल हैं, क्योंकि बहुत कम स्कूलों के पाठ्यक्रमों में उन्हें शामिल किया गया है। लेकिन स्पेनी, फ्रांसीसी और जर्मन जैसी कई यूरोपीय भाषाएँ अलग रखी गई हैं, क्योंकि उन्हें सामान्यतया स्कूलों के पाठ्यक्रम में 'विश्वभाषा' के रूप में शामिल किया गया है।

इक्कीसवीं सदी की वे कौन–सी ज़रूरतें हैं, जिनको भाषा–शिक्षण के ज़रिए पूरा करना चाहिए? सबसे पहले तो यह देखना आवश्यक है कि शिक्षार्थियों का प्रवीणता स्तर क्या है? इसके लिए 'अमेरिकन कौंसिल ऑन टीचिंग फॉरेन लेंग्वेज' ने जो मापदंड बनाए हैं, उनपर शिक्षार्थियों का आकलन करना चाहिए।

शिक्षा कार्यक्रम के प्रारम्भ और अंत में किए गए इन आकलनों से यह पता चलता है कि उनकी भाषा प्रवीणता कार्यक्रम शुरू होने से पहले क्या थी और पढ़ाई के बाद कितनी बढ़ी? इस आकलन का लाभ यह है कि शिक्षक यह जान पाता है कि कक्षा में बच्चे ने जो सीखा उसके आधार पर वह बाहरी दुनिया में अनजाने लोगों से संवाद स्थापित कर सकता है या नहीं? यह संवाद भी सार्थक होना चाहिए। यह सिर्फ़ परिचयात्मक न होकर कहाँ, क्या, क्यों, कैसे, कब जैसे संवाद सूत्र से जुड़ सके।

भाषा शिक्षा के दौरान इस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है कि शिक्षक को उस विषय की पूरी जानकारी हो, जिसके बारे में वह पढ़ने जा रहा/रही है। उदाहरण के लिए दिल्ली से मसूरी के लिए एक ट्रेन है – मसूरी एक्सप्रेस। लेकिन यह ट्रेन देहरादून तक ही जाती है। यदि शिक्षक ने पढ़ाया कि दिल्ली से मसूरी ट्रेन से जा सकते हैं, तो गलत होगा। सही जानकारी यह है कि मसूरी एक्सप्रेस से देहरादून तक ट्रेन से जा सकते हैं, जिसके बाद सड़क मार्ग से मसूरी जा सकते हैं। भारत सम्बन्धी विषयों की शिक्षा देते समय ऐसी अनेक बातें हैं, जिनकी जानकारी शिक्षकों को अपने विषय की पाठ–योजना बनाते समय प्राप्त करनी चाहिए।

दिन भर में हम जो भी पढ़ा रहे हैं उसके क्या लक्ष्य हैं? यानी आप क्या पढ़ा रहे हैं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण यह है कि आपके शिक्षार्थी क्या सीख रहे हैं। शिक्षकों को चाहिए कि अपने पाठ का लक्ष्य–यानी 'आज हम क्या सीखेंगे?' उसकी सूची तैयार करे और कक्षा में ऐसे स्थान पर टांग दे, जिसे बच्चे किसी भी कोने से देख सकें। मान लीजिए आज का विषय है : 'मसूरी–एक पर्वतीय स्थल की सैर' – इस विषय से संबंधित जानकारी देने के बाद हमारा लक्ष्य हो सकता है कि शिक्षार्थी यह सब कर सकता है :

1. मैं यह कह सकता हूँ कि मसूरी की यात्रा कैसे की जा सकती है।
2. मैं मसूरी के मेरे मन पसंद दर्शनीय स्थल का वर्णन कुछ वाक्यों में बोलकर कर सकता हूँ।
3. मैं मसूरी के मेरे मन पसंद दर्शनीय स्थल का वर्णन कुछ वाक्यों में लिख सकता हूँ।
4. मैं अपने दोस्त से पूछ सकता हूँ कि उसे मसूरी में क्या अच्छा लगा और क्या अच्छा नहीं लगा।

उक्त चारों उद्देश्यों का निर्धारण कार्यक्रम शुरू होने के काफ़ी पहले हो जाना चाहिए। यदि आपने पाठ्यक्रम में 'यह कर सकता हूँ' की सूची निर्धारित कर ली, तो यह भी तय कर सकते हैं कि कक्षा में पाठ सम्बन्धी गतिविधियों को क्रमानुसार वर्णित करें, ताकि उसे बच्चे न सिर्फ़ करें, बल्कि उसे करते समय उन मुख्य शब्दों का प्रयोग भी करें, जिन्हें शिक्षक ने प्रारंभिक दौर में सिखाया है।

मसूरी से सम्बंधित पाठ के प्रारंभिक चरण में शिक्षक को ऐसी सामग्री ढूँढनी होगी, जो बच्चों को रोचक लगे। निश्चय रूप से घूमना–फिरना उन्हें अच्छा लगता है। प्रारंभिक से लेकर माध्यमिक स्कूलों के बच्चे घुड़सवारी करना, बढ़िया खाना–पीना, झरने के पानी में तैरना जैसी गतिविधियाँ मज़े लेकर करते हैं। यात्रा सम्बन्धी आपकी पाठ्य–सामग्री में सुन्दर तस्वीरों से युक्त सामग्री न हो, तो उन्हें क्या मज़ा आएगा? घोड़े की पीठ पर बैठकर, या रस्सी मार्ग से उन्हें मसूरी के एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की गतिविधि करायी जाए, साथ ही किसी स्थानीय रेस्तोराँ में ले जाएँ, तो यह सब उन्हें रुचिकर लगेगा।

जुलाई 2019 के दौरान पेन्सिलवेनिया प्रदेश के नॉर्थ वेल्स नगर में सम्पन्न हुए युवा हिंदी संस्थान स्टारटॉक कार्यक्रम के दौरान हमने 'मसूरी की सैर' पढ़ाते हुए बच्चों को कामेल बैक रोड के दृश्य दिखाए, फिर उनसे कहा कि आपस में बातचीत करें, कामेल बैक रोड पर क्या देखा, उस सड़क का नाम कामेल यानी ऊँट से क्यों जोड़ा गया। बच्चे खुशी–खुशी यह सब करने को तैयार हुए। यही नहीं, उन्होंने कंप्यूटर पर मल्टीमीडिया दृश्य और वाक्यों में उनका वर्णन भी किया। केम्पटी फ़ॉल भी गए और वहाँ झरने में स्नान भी किया। विषय की विविधता से जुड़े पोस्टर बनाये, जिनका विषय पसंद और नापसंद से जुड़ा था। उन्होंने जोड़ी बनाकर आपस में चर्चा भी की, किसे क्या पसंद है, क्या नापसंद, अपनी–अपनी पसंद के स्थानों और खाने–पीने की सामग्री के बारे में इसका सर्वे भी किया। दिन पूरा होते–होते, ये बच्चे मसूरी का टूर गाइड बनने की योग्यता प्राप्त कर चुके थे। इसी विषय पर पढ़ाई कर रहे दूसरी कक्षा के छात्र–छात्राओं के साथ प्रतियोगिता भी करने को उतावले थे। शिक्षक द्वारा शिक्षा प्रदान करने के दायरे से आगे जाकर बच्चे अपना भाषा–ज्ञान बढ़ा रहे थे।

आधुनिक शिक्षा–पद्धति में बच्चों के सशक्तीकरण की बड़ी भूमिका है। यदि आपने उन्हें दिन भर पढ़ने के बाद क्या कर सकेंगे और उसकी सूची बनाकर दी है, तो यह भी कीजिए कि पाठ पूरा होने पर, यानी तीनों मदों–व्याख्यात्मक (इंटरप्रेटिव), परस्पर संवाद (इंटरपर्सनल) और प्रस्तुति (प्रेसेंटेशनल) – सम्बंधी गतिविधियों को पूरा करने के बाद उनसे यह भी पूछ लें कि 'आज उन्होंने क्या सीखा?' क्या वे वह सब कर पाएँगे, जिनका लक्ष्य शिक्षक ने कक्षा प्रारम्भ होने के पूर्व रखा था? सभी शिक्षार्थियों के उत्तर एक जैसे नहीं होंगे। उनके उत्तरों की समीक्षा कीजिए ताकि अगले दिन शिक्षार्थियों से पाठ दुहराते हुए कल वाली गतिविधियाँ फिर से कराई जाएँ। हर पाठ में शिक्षार्थी अपनी गतिविधियाँ पूर्व निर्धारित तरीके से कर रहे हैं या नहीं, यह जानना शिक्षक की ज़िम्मेदारी है।

यदि आपने मसूरी के बारे में सामान्य पर्यटक की नज़र से प्रारंभिक और माध्यमिक कक्षाओं के बच्चों को जानकारी दी, हाई स्कूल से आए नौवीं और उससे आगे बच्चों को वही जानकारी न दें, उन्हें उससे आगे ले जाएँ। उदाहरण के तौर पर पर्वतीय स्थलों की जानकारी देते हुए उनका ध्यान उन मुद्दों की तरफ़ ले जाना आवश्यक है, जिनका सम्बन्ध आज के पर्यावरण सम्बंधी विश्वव्यापी मुद्दों से है। जैसे : क्या ट्रैकिंग पर जाने वाले पर्यटकों को पहाड़ी स्थल पर कचरा फेंकना चाहिए? क्या पर्वतीय स्थलों पर निर्माण कार्य नियंत्रित होने चाहिए?

ऐसे विषयों पर वाद–विवाद आयोजित किए जाएँ। वाद–विवाद के लिए शिक्षक पूर्व भूमिका,आवश्यक शब्दावली, सहायक शिक्षक से मॉडलिंग आदि पूर्व नियोजित तैयारी करा सकते हैं। इस तरह की गतिविधियाँ अल्पवयस्क बच्चों को समाज के व्यापक दायरे में ले जाएँगी और उनके विचारों को नया आयाम प्रदान करेंगी।

विगत दस वर्षों से मैं ग्रीष्मकालीन हिंदी–शिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करता चला आ रहा हूँ। अमेरिकी सरकार के सहयोग से चलाये जा रहे इन कार्यक्रमों को 'स्टारटॉक' के नाम से जाना जाता है। प्रति वर्ष हमारे कार्यक्रमों में चालीस से पचास स्कूली छात्र–छात्राएँ हिंदी बोलना, लिखना और पढ़ना सीखते आ रहे हैं। कार्यक्रम तीन सप्ताह तक चलता है, जिसके दौरान हर दिन अलग–अलग विषयों पर बोलने, लिखने और पढ़ने सम्बन्धी गतिविधियाँ चलाई जाती हैं। इन कार्यक्रमों को युवा हिंदी संस्थान द्वारा पेन्सिलवेनिया और हिंदी संगम फ़ाउंडेशन के तत्त्वावधान में न्यू जर्सी में चलाया जाता है।

दोनों कार्यक्रमों के विषय भारत की सांस्कृतिक विरासत से जुड़े होते हैं – भारत की कहानी, वहाँ के लोगों की सफलता की कहानियाँ–भारतीय मूल के बच्चों को इस तरह पढ़ाई जाती हैं, जैसे वे उन सबकी कहानी हैं। बच्चे इन प्रेरणाप्रद कहानियों से बहुत कुछ सीखते हैं। ये कहानियाँ न केवल उन्हें भाषा और संस्कृति सिखाती हैं, वरन उन्हें योग्य विश्व नागरिक बनने के लिए प्रेरित भी करती हैं। अब तक हम भारतीय मूल के शिक्षार्थियों को हिंदी सिखाते रहे हैं। अब समय आ गया है कि गैर भारतीय मूल के शिक्षार्थी भी हमारे कार्यक्रम में शामिल हों।

aojha2008@gmail.com

अमेरिका में हिंदी अध्ययन-अध्यापन : दशा एवं दिशा

– डॉ. प्रेमसिंह
जोधपुर, भारत

वैश्विक परिदृश्य पर जैसे–जैसे भारत अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवा रहा है, वह विदेशों में हिंदी पठन–पाठन को भी प्रभावित कर रहा है और उसे नई दिशा भी प्रदान कर रहा है। आज अमेरिका, लंदन, हंगरी, मॉस्को, स्विटज़रलैंड, प्राग (चेक गणराज्य), पोलैंड, जापान, चीन, ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर आदि अनेक देशों में हिंदी में पठन–पाठन एवं शोध का कार्य ज़ोरों से चल रहा है। मैं अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों, कॉलिजों और स्कूलों में चल रहे हिंदी भाषा और साहित्य संबंधी कार्यक्रमों से ए.आई.आई.एस. अर्थात् (American Institute of Indian Studies) के माध्यम से जुड़ा रहा, इसलिए उसी अनुभव पर आधारित अध्ययन को प्रस्तुत किया जा रहा है।

ए.आई.आई.एस. अमेरिका के करीब 60 विश्वविद्यालयों का एक संगठन है, जो भारत में अमेरिकी कॉलिज छात्रों के लिए भाषा कार्यक्रम चलाता है। वर्तमान में अमेरिका में टेक्सास, शिकागो, कोलम्बिया, येल, प्रिन्सटन, बर्कली, न्यूयॉर्क, हार्वर्ड, पेन्सिल्वेनिया, मेडिसन जैसे बड़े विश्वविद्यालयों के अलावा कई छोटे–छोटे कॉलिजों में हिंदी–शिक्षण कार्यक्रम चल रहे हैं। इसके साथ स्कूलों में ऑफ़्टर स्कूल कार्यक्रम के माध्यम से हिंदी का शिक्षण चल रहा है। अमेरिका में हिंदी की पढ़ाई तो लगभग 1960 के दशक में ही शुरू हो गई थी, लेकिन हिंदी पढ़ने वालों की संख्या पिछले 20 वर्षों में विशेष रूप से बढ़ी है। इसके लिए अमेरिकी सरकार के नये सी.एल.एस. (Critical Language Scholarship) कार्यक्रम और विश्वविद्यालयों को मिल रहे दूसरे सरकारी अनुदानों, जैसे 'Title-VI' में वृद्धि आदि कारणों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[1] छात्रों की संख्या में वृद्धि के साथ हिंदी पठन–पाठन के उद्देश्य भी बदलने लगे हैं। पहले हिंदी जैसी भारतीय भाषा को सीखकर छात्र मुख्यतः भारत की संस्कृति, इतिहास, धर्म आदि की अपनी समझ विकसित करते थे, लेकिन अब छात्र भारत में व्यवसाय, विदेश–संबंध, स्वयंसेवी संगठनों में काम करने की अपनी ज़रूरतों के लिए हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। यह निश्चित रूप से हिंदी अध्यापन को प्रभावित कर रहा है।

विदेशों में हिंदी अध्यापन जो मुख्यतः व्याकरण और हिंदी शब्दावली पर आधारित था, जिसे हम अमेरिकी विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली पाठ्यपुस्तकों में देख सकते हैं[2], वह अब बहुत कुछ संवाद या संपर्क आधारित हो गया है, जिसे कम्यूनिकेटिव लेंग्वेज टीचिंग कहा जाता है। यह अध्ययन पद्धति केवल हिंदी ही नहीं अमेरिका में पढ़ाई जाने वाली अन्य भाषाओं को सिखाने के लिये भी निरन्तर स्वीकृत होती जा रही है। इसे स्टूडेंट सेंटर्ड या पर्सोनालाइज़्ड लेंग्वेज लर्निंग भी कहा जाता है। कम्यूनिकेटिव लेंग्वेज टीचिंग को भाषा–शिक्षण के प्रसिद्ध विद्वान जैक रिचर्ड इस तरह परिभाषित करते हैं :

"Communicative Language Teaching can be understood as a set of principles about the goals of language teaching, how learners learn a language, the kind of classroom activities that best facilitate learning and the roles of teachers and learners in the classroom."[3]

कम्यूनिकेटिव लेंग्वेज टीचिंग को अगर हम हिंदी पर लागू करें, तो इसे ऐसे समझा जा सकता है कि इसके माध्यम से व्याकरण और शब्दावली को उन परिदृश्यों में ढाल कर सिखाया जाता है, जिनमें कोई व्यक्ति भारत में किसी समुदाय या व्यक्ति से अपनी ज़रूरत के माध्यम से बात कर रहा होता है। मतलब यह कि अगर कोई छात्र भारत में किसी एन.जी.ओ. (स्वयंसेवी संगठन) में काम करना चाहता है, तो उसे अपनी रुचि के अनुसार भाषा पढ़ाई जाए, जिसमें व्याकरण और शब्दावली भी आ जाए। इससे छात्र हिंदी पढ़ने हेतु प्रेरित भी होते हैं और उसे वे अपने व्यवसाय से जोड़ भी सकते हैं। इस तरह की शिक्षण पद्धति को

अपनाने की चुनौती यह है कि इसमें शिक्षक को हर छात्र के हिंदी पढ़ने के उद्देश्य को पहले समझना पड़ता है और उस तरह का पाठ्यक्रम बनाना पड़ता है। इस तरह की शिक्षण पद्धति से वे विषय भी पढ़ाए जा सकते हैं, जो समग्रता में एक कक्षा को भाषा की मुख्य संरचना सिखा सके, साथ ही साथ व्यक्तिगत शिक्षण के उद्देश्य का भी ख्याल रखे। दूसरी चुनौती इस तरह की शिक्षण पद्धति पर आधारित कोई सर्वमान्य पाठ्यपुस्तक का न होना है। इसलिए शिक्षक को निरन्तर अपनी शिक्षण सामग्री को सजगता से स्वयं बनाना होता है और समय–समय पर उसे नवीनीकृत भी करना पड़ता है।

अमेरिका के स्टेट डिपार्टमेंट, मतलब सरकारी अनुदान और उससे मिलने वाले सहयोग से टैक्सास विश्वविद्यालय, ऑस्टिन में संचालित 'हिंदी–उर्दू फ़्लैगशिप प्रोग्राम' को भाषा– शिक्षण के संबंध में एक अनूठी और महत्त्वपूर्ण पहल कहा जा सकता है।[4] इस प्रोग्राम में छात्रों को चार वर्षों तक हिंदी–उर्दू का अध्ययन करना होता है, जिससे उनका भाषा कौशल अच्छी तरह से विकसित हो सके। इस कार्यक्रम ने अपना बहुत ही अच्छा पाठ्यक्रम तैयार किया है, जिसके अन्तर्गत थीम पर आधारित शब्दावली, ऑडियो विजुअल सामग्री, हिंदी सिनेमा और साहित्य, उच्चारण, बातचीत आदि को शामिल किया गया है। साथ ही इनकी वेबसाइट पर भी पठन–पाठन की सामग्री उपलब्ध है।[5] ज़रूरत इस बात की है कि इसे और विस्तारित किया जाए, अन्य विश्वविद्यालयों के साथ इसे साझा किया जाए और छात्रों को प्रोत्साहित किया जाए, लेकिन समस्या यह देखी गई है कि भाषा अध्ययन के लिए 4 वर्ष लगाना छात्रों को शायद कम आकर्षित करता है। साथ ही इस प्रोग्राम में प्रवेश लेने वाले ज़्यादातर छात्र भारतीय मूल के अमेरिकी होते हैं, जिनमें हिंदी–उर्दू का संस्कार परिवार के माध्यम से पहले से ही मौजूद होता है, विदेशी छात्रों की संख्या उनके अनुपात में कम होती है। ज़रूरत है उन्हें और अधिक प्रोत्साहित करने की।

विश्वविद्यालयों में इस तरह के शिक्षण के विकास की पृष्ठभूमि में एक बड़ा बदलाव हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की अपनी पृष्ठभूमि रही है। पिछले दो दशकों में अमेरिका में जिस नई प्रक्रिया का विकास हुआ है, उसमें ऐसे छात्र हिंदी ज़्यादा पढ़ने लगे हैं, जो भारतवंशी हैं। उनके माता–पिता या परिवार के सदस्य भारत से सम्बन्ध रखते हैं और जो छात्र पैदा तो अमेरिका में हुए हैं, लेकिन अपनी संस्कृति, अपनी जड़ों की ओर और हिंदी भाषा के माध्यम से लौटना चाहते हैं। ऐसे छात्रों को हेरिटेज लर्नर्स या विरासती छात्र कहा जाता है।

विरासती छात्र और सामग्री–निर्माण

अमेरिका में पिछले 20 वर्षों में सबसे ज़्यादा उन छात्र समुदायों की वृद्धि देखी गई है, जिनके माता–पिता अपने नए वीज़ा नियमों के चलते यहाँ अमेरिका में आकर बस गए हैं, जिनमें ज़्यादातर आई.टी. क्षेत्र में काम करने वाले लोग हैं। इन भारतीय माता–पिता के बच्चे जन्म से ही अमेरिका में ही पले बढ़े होते हैं और जो हाई स्कूल या कॉलिज में पढ़ते हैं। ऐसे छात्रों का हिंदी पढ़ने के प्रति झुकाव बढ़ रहा है, स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक इन छात्रों में हिंदी पढ़ने के प्रति रुचि जगी है, जिन्हें विरासती छात्र कहा जाता है। इस प्रक्रिया और हिंदी के हेरिटेज लर्नर्स या विरासती छात्र–वर्ग को परिभाषित करते हुए पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय की विदुषी विजय गंभीर लिखती हैं:

"During the last three decades, there has been a paradigm shift in the learner population of Hindi in the second language classrooms of American Universities. Until the 1980s, there were only traditional learners of Hindi with little or no prior exposure to Hindi or Indian culture. A typical Hindi learner used to be a graduate student who learned Hindi for research purposes. Today, however, the majority of Hindi learners are undergraduates who come from Indian family with a prior exposure to Hindi or another Indian language. Their reasons for learning Hindi, which are very different for the traditional learners, includes language requirement, travel to India, Hindi films, family, business, and gaining literacy skills."[6]

जैसा कि विजय गंभीर लिखती हैं कि विरासती छात्र–वर्ग के हिंदी पढ़ने के व्यक्तिगत कारण तो हैं ही, जैसे भारत में बसे अपने परिवारों से जुड़ना और अपनी संस्कृति को समझना, लेकिन इसके कई केरियर (व्यवसाय) संबंधी कारण भी हैं, जो भारत की आर्थिक उन्नति के साथ जुड़े हुए हैं। यह छात्र समुदाय जो

अलग–अलग पृष्ठभूमि से आता है, जिनका हिंदी ज्ञान भी कई स्तरों का होता है, उनको साथ–साथ कक्षागत शिक्षण करवाना भी चुनौतीपूर्ण कार्य है। ये छात्र व्याकरण से परे जाकर संस्कृति, इतिहास, सामाजिक मेलजोल, अकादमिक और बाज़ार से जुड़ी भाषा सीखना चाहते हैं। इनके लिए हमें शिक्षण के माध्यमों जैसे अखबार, हिंदी साहित्य, ऑडियो विजुअल सामग्री और सटीक पाठ्यपुस्तकों के बारे में सजग रहना पड़ता है। इनके लिए अब तक कोई पाठ्यपुस्तक तैयार न हो सकी है, जिसकी महती आवश्यकता है। यद्यपि शिक्षण–सामग्री का अभाव तो नहीं है, तथापि छात्रों के स्तर के अनुरूप उनका चयन करना और उन्हें पाठ्यक्रम में ढालना निस्संदेह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

अमेरिका में विद्यार्थियों के हिंदी अध्ययन–अध्यापन हेतु पूर्व में जो सामग्री बनी हुई है वह ज़्यादातर उन छात्रों को ध्यान में रखकर बनाई गई है, जिन्हें हिंदी बिल्कुल नहीं आती है, जो हिंदी के अध्ययन को लिपि से शुरू कर रहे हैं, जिनका शब्द भंडार बिल्कुल नहीं होता, वाक्य–विन्यास का ज्ञान नहीं होता है। शुरुआत करने वाले ऐसे शिक्षार्थियों से विरासती छात्रों को अलगाने की आवश्यकता है तथा इनके हेतु नई अध्ययन सामग्री बनाने की आवश्यकता है। विजय गम्भीर[7] का कहना है कि, अमेरिका में हिंदी पढ़ने वाले विरासती छात्रों (हेरिटेज लर्नर) को दो भागों में बाँटा जा सकता है, पहले एनसेस्टर हैं, जिनके पूर्वज और माता–पिता हिंदी भाषा–भाषी हैं और दूसरे एसोसिएट हैं। एसोसिएट को वे पुनः दो भागों में विभक्त करती हैं, पहले कॉगनेट और दूसरे नॉन–कॉगनेट। कॉगनेट में वे भाषा–भाषी लोग आते हैं, जिनका जुड़ाव हिंदी से है, जैसे गुजराती की लिपि हिंदी से मिलती है और हिंदी से उसका जुड़ाव भी है। नॉन–कॉगनेट ऐसे छात्रों को कहा है, जो सांस्कृतिक रूप से भारतीय हैं, लेकिन उनकी भाषा का जुड़ाव हिंदी भाषा से नहीं होता है, जैसे दक्षिण एवं पूर्वोत्तर की भाषाएँ।

इस तरह विरासती छात्रों का ज़बरदस्त उभार अमेरिका में देखा जा सकता है। इनके लिए सामग्री का निर्माण भी हो रहा है। उनके लिए अखबारों के लेख, साहित्यिक पत्रिकाओं से आलेख, कुछ कविताएँ, कहानियाँ तथा हिंदी फिल्मों को लेकर सामग्री का निर्माण किया जाना चाहिए ।

हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में बोलने और पढ़ने वालों के स्तर

किसी भी विदेशी अथवा दूसरी भाषा जैसे हिंदी को सिखाने से पहले और पाठ्यक्रम सामग्री निर्माण करने से पहले शिक्षकों को यह तय करना पड़ता है कि वे किस स्तर के छात्रों को हिंदी पढ़ाने हेतु सामग्री का निर्माण कर रहे हैं। विश्व में शोध के आधार पर विद्यार्थियों के कुछ स्तर निर्मित हुए हैं।

विदेशी भाषा को बोलने तथा पढ़ने वालों के मुख्य रूप से पाँच स्तर[8] होते हैं, जिनके आधार पर ही सामग्री का निर्माण करना चाहिए।

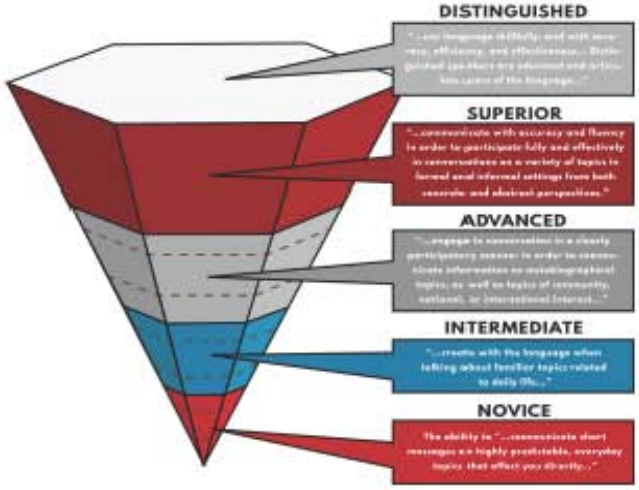

सबसे पहला जो शुरुआती छात्र होता है, उसे नोविस लेवल वाला विद्यार्थी कहते हैं। इसे पहले वर्ष वाला शुरुआती स्तर का छात्र भी कहते हैं। ऐसे छात्रों के अध्ययन–अध्यापन हेतु पाठ्यक्रम में उसके व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी हुई चीजें, उसकी पसंद–नापसंद, मौसम के बारे में जानकारी आदि से जुड़ी सामग्री का चयन करना चाहिए। इन छात्रों को लिपि से शुरू करके छोटे–छोटे शब्द और फिर छोटे–छोटे वाक्य में बातचीत करना और लिखाना सिखाना चाहिए, विशेष तौर पर वर्तमान काल और भविष्यकाल में वाक्य संरचना होनी चाहिए, साथ ही भूतकाल का भी परिचय मात्र करवा देना चाहिए, क्योंकि नोविस स्तर का विद्यार्थी सारी बातों को स्वयं से जोड़ता है।

दूसरे वर्ष का पाठ्यक्रम माध्यमिक (इन्टरमीडिएट) स्तर का

होता है। उसमें विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन से जुड़ी बातें करना सीखता है। इस हेतु विद्यार्थी को तीनों ही काल (भूत, वर्तमान, भविष्य) में प्रशिक्षित किया जाता है। पाठ्य–सामग्री के लिए अखबार की हेडलाइन, छोटी–छोटी लोककथाएँ, हिंदी फ़िल्मों के कुछ हिस्से, हिंदी गाने आदि को शामिल कर सकते हैं।

इनसे ऊपर के स्तर को एडवांस लेवल कहते हैं। यह एक तरह से तीसरे वर्ष का पाठ्यक्रम होता है। इसमें विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन से ऊपर उठकर समाज से जुड़ता है। यहाँ पर विद्यार्थी बड़े–बड़े वाक्य और पैराग्राफ़ में बोलना शुरू करता है और तीनों ही कालों में उस की वाक्य रचना होती है। वह अखबार के लेख पढ़ता है, सामाजिक मुद्दों पर बातें करता है, सांस्कृतिक मूल्यों को भाषा के माध्यम से समझने लगता है और अपनी राय भी व्यक्त करने लगता है।

एडवांस से आगे वाला चौथा स्तर सुपीरियर लेवल कहलाता है। यहाँ आने के बाद छात्र हिंदी की अनेक बोलियों से परिचित होता है। ब्रज और अवधी की कविताएँ और मुख्यधारा के हिंदी साहित्य की सभी विधाओं की लेखन सामग्री को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है।

सबसे ऊपर वाला पाँचवाँ स्तर डिस्टिंग्विश्ड लेवल होता है। ऐसे छात्र एक तरह से भारत में पले–बढ़े और हिंदी में शिक्षित–प्रशिक्षित छात्र के स्तर की योग्यता रखते हैं। ऐसे विद्यार्थी सभी मुद्दों पर, सभी स्तरों पर बात कर सकते हैं।

भाषा सीखने के वैश्विक मानक

भाषा सीखने के वैश्विक मानकों पर भी वर्तमान में शोध हुआ है। इस शोध के आधार पर अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है कि किस तरह एक दूसरी भाषा (सेकण्ड लेंग्वेज) के रूप में कोई विद्यार्थी किसी विदेशी भाषा को सीखता है। जैसे विदेशों में हिंदी को सीखने तथा पठन–पाठन करने वाले शिक्षार्थी एक तरह से हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ रहे हैं। विदेशी भाषा सीखने के वैश्विक स्तर पर जो मानक बने हुए हैं, उनके अनुसार अगर पाठ्यक्रम बनाया जाए, तो भाषा सीखने को सम्प्रेषण से जोड़ा जा सकता है, ज्ञान के अन्य अनुशासनों से जोड़ा जा सकता है। उसे न केवल व्याकरण तक सीमित रखा जा सकता है वरन् उसके प्रयोग को व्यावहारिक हिंदी के रूप में ढाला जा सकता है। विश्व स्तर पर भाषा सीखने के पाँच मानक 'अमेरिकन काउंसिल ऑव टीचिंग फ़ॉरेन लेंग्वेज' (ACTFL) ने निर्धारित किए हैं।[9] इनमें पहला संवाद है, जिसको कम्युनिकेशन कहते हैं, दूसरा संस्कृति है, जिसको कल्चर कहते हैं, तीसरा संबंध है, जिसको कनेक्शन कहते हैं, चौथा तुलना है, जिसे कम्पारिज़न कहते हैं और पाँचवाँ समुदाय है, जिसे कम्युनिटी कहते हैं।

- ☐ संवाद/संप्रेषण (Communication)
- ☐ संस्कृति (Cultures)
- ☐ सम्बन्ध (Connections)
- ☐ तुलना (Comparisons)
- ☐ समुदाय (Communities)

एक–एक मानक पर बात की जाए तो संवाद और संप्रेषण के अन्तर्गत भाषा का महत्त्व उसके सार्थक एवं प्रभावशाली सम्प्रेषण में होता है, अतः संवाद–युक्त तथा सम्प्रेषणीय भाषा को सिखाना चाहिए, जिसमें छात्रों के बीच में वार्तालाप एवं बातचीत के माध्यम से सूचनाओं का आदान–प्रदान हो सके।

दूसरा तत्त्व है संस्कृति। संस्कृति से यहाँ तात्पर्य है कि छात्र केवल भाषाएँ ही नहीं सीखते, वरन् दूसरी संस्कृति भी सीखते हैं। भाषा अपनी संस्कृति में उपस्थित होती है, इसलिए भाषा को अपनी सांस्कृतिक भूमिका से काटा नहीं जा सकता है। अतः भाषा को उसकी सांस्कृतिक विरासत के साथ अनुस्यूत करके पढ़ना या जानना चाहिए।

तीसरा है संबंध। संबंध अर्थात् भाषा को सीखना केवल एक शौक ही नहीं होना चाहिए बल्की विद्यार्थी उसे अपने रोज़गार से जोड़ सके या विद्यार्थी के जीवन, उसके अध्ययन आदि में उसका कोई व्यावहारिक अर्थ होना चाहिए। कोई अन्य भाषा सीखने का मतलब यह भी होता है कि छात्र में आलोचनात्मक क्षमता का विकास होता है, ताकि वह लक्ष्य भाषा में समस्याओं का समाधान कर सके और आगे उसे अपने रोज़गार से जोड़ सके।

तुलना का मतलब यह है कि विद्यार्थी भाषा पढ़ने के माध्यम से ऐसी अंतर्दृष्टि विकसित करता है, जिससे वह अपनी स्वयं की संस्कृति, जिसमें वो स्थित होता है और लक्ष्य भाषा (टारगेट लेंग्वेज) जैसे हिंदी भाषा की संस्कृति, जिसमें हिंदी का विकास हुआ है, जिसके माध्यम से हिंदी बोली जाती है, उसको समझ सके और उन दोनों की अलोचनात्मक ढंग से तुलना कर सके।

अन्तिम मानक है समुदाय अर्थात् विद्यार्थी को केवल कक्षा

में अपने सहपाठियों के साथ ही हिंदी बोलने हेतु प्रशिक्षित नहीं किया जाना चाहिए, वरन् वह वैश्विक समुदायों में, अपने घर से बाहर अलग–अलग स्तर के समुदायों के साथ सम्प्रेषण की स्थिति में होना चाहिए। इस तरह से भाषा–शिक्षण किया जाना चाहिए। इस प्रकार भाषा सीखने के ये पाँच मानक हैं। हिंदी को एक दूसरी भाषा या सेकंड लेंग्वेज अथवा विदेशी भाषा के रूप में पठन–पाठन के क्या पैमाने हों उस पर विचार करती हुई चंद्रिका माथुर[10] अपने लेख 'टीचिंग एण्ड लर्निंग हिंदी आज़ अ सेकण्ड लेंग्वेज एक्सप्लोरिंग अ न्यू टेरिन' में लिखती हैं कि विदेशों में हिंदी भाषा पढ़ने की जो संस्कृति बढ़ी है, उसमें हमें फ़र्क करना सीखना होगा। एक तो यह कि विदेशों में हिंदी पढ़ने वाले लोग वयस्क होते हैं, छोटे बच्चे नहीं होते हैं। ये लोग हिंदी को इसलिए पढ़ना चाहते हैं, ताकि हिंदी पढ़कर उन्हें वहाँ बेहतर नौकरियाँ मिल सकें या अपने शोध में उन्हें सहायता मिल सके। इसलिए महाविद्यालयी स्तर के वयस्क छात्रों को ध्यान में रखते हुए प्रभावी पाठ्यक्रम का निर्माण कैसे किया जा सके इस बात पर ध्यान रखने की आवश्यकता है।

अमेरिका में हिंदी की डिजिटल शिक्षा पर बहुत काम हुआ है। सिराक्यूज़ यूनिवर्सिटी में पढ़ाने वाले तेज भाटिया[11] अपने लेख 'कंप्यूटर बेस्ट हिंदी पेडागॉजी' में उनके विश्वविद्यालय द्वारा विकसित किए गए कार्यक्रम ट्यूटर की बात करते हैं। उसमें हिंदी के व्याकरण संबंधी कार्यक्रम विकसित किए गए हैं, जिसमें छात्रों के सामने प्रश्न आते हैं उनके जवाब विद्यार्थी स्वयं रिकॉर्ड कर सकते हैं और वह प्रोग्राम उनकी जाँच करता है।

भाषा अध्ययन के विस्तृत क्षेत्र को बताते हुए विजय गंभीर[12] का मानना है कि विदेशों में दूसरी भाषाओं अथवा हिंदी को सीखने का जो क्षेत्र है, वह केवल भाषा–विज्ञान से जुड़ा हुआ नहीं है, अपितु बहुत तेज़ गति से आगे बढ़ रहा है। पिछले दो–तीन दशकों में अन्तर–अनुशासनिक क्षेत्र, जिसमें भाषा–विज्ञान, मनोविज्ञान, नृतत्वविज्ञान, समाजविज्ञान, मस्तिष्क विज्ञान आदि क्षेत्र भाषा सीखने से जुड़ गए हैं। अतः भाषा–शिक्षण को ज्ञान के अन्य अनेक अनुशासनों से जुड़ा हुआ मानना चाहिए।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि विदेश खासकर अमेरिका में हिंदी–शिक्षण का क्षेत्र निरन्तर विकसित हो रहा है और छात्रों की ज़रूरतों के अनुसार अपना स्वरूप भी बदल रहा है। अमेरिकी सरकार की सहायता और विश्वविद्यालयों द्वारा भाषा–शिक्षण को गम्भीरता से लेना इसके प्रमुख कारण हैं। हिंदी के शिक्षकों को नवीनीकृत शिक्षण पद्धतियों से परिचित होने और उन्हें हिंदी के पाठ्यक्रमों में अपनाने के क्षेत्र में और कार्य करने की ज़रूरत है। भारतीय प्रवासी समुदाय और दूतावासों को हिंदी–शिक्षण में सहयोग के लिए और आगे आने की आवश्यकता है, जिससे हम विदेशों में हिंदी भाषा कार्यक्रमों को व्यापक स्तर पर चला सकते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. https://clscholarship.org/apply
2. व्याकरण पर आधारित हिंदी–शिक्षण को लेकर विकसित की गई पुस्तकें निम्न हैं :
   - Introduction To Hindi Grammar, Usha R. Jain, Center for South Asia Studies Unuversity of california at Berkeley, Library of Congress Cataloging in Publication data, 1995.
   –Advanced Hindi Grammar, Usha R. Jain, Center for South Asia Studies University of california at Berkeley, Library of Congress Cataloging in Publication data, 2007.
3. Communicative Language Teaching Today, Jack C. Richards, New York: Cambridge University Press, 2006. p.2
4. http://hindiurduflagship.org/curriculum/
5. http://hindiurduflagship.org/
6. The Rich Tapestry of Heritage Learners of Hindi, Vijay Gambhir, South Asia Language Pedagogy and Technology, Vol. 1, 2008. P.1
7. South Asia Language Pedagogy and Technology, Vol. 1 (2008), http//satpat.uchicago.edu. Article – The Rich Tapestry of Heritage Learners of Hindi.
8. http://languages.wisc.edu/proficiency/
9. http://knilt.arcc.albany.edu/index.php/title3/4File:ACTFL_Learning_Standards.png
10. Journal of Krishnamurti School. (Teaching and Learning Hindi as a Second Language: Eploring a new Terrain. Article by – Chandrika Mathur)
11. Computers and the Humanities. Vol. 14, No. 3 (Nov. 1980) Computer-Based Hindi Pedagogy. ArticleByTej K. Bhatia, Page No. 181
12. The Teaching and Acquisition of South Asian Languages – Vijay Gambhir, University Pennsylvania Press Philadelphia, 1995. Page - 11

dpsrajpurohit@gmail.com

विश्व पटल पर हिंदी : अध्ययन और अध्यापन

— डॉ. राम प्रकाश यादव
वर्धा, भारत

हिंदी 8.2% भागीदारी के साथ विश्व की तीसरी सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा है।[1] वैश्विक पटल पर भारत की बढ़ती भूमिका एवं भारतीय मेधा की दुनिया भर में प्रवास ने हिंदी के महत्त्व को स्थापित करने में बड़ा योगदान दिया है। दुनिया भर में वर्चस्व और भाषा की जो राजनीति चल रही है, उसके चलते एक राष्ट्र के रूप में भारत और उसकी भाषा के रूप में हिंदी के महत्त्व को जान–बूझकर नकारा जा रहा है। दुनिया भर में जनसंख्या के एक बड़े हिस्से द्वारा किसी–न–किसी रूप में हिंदी का व्यवहार किया जा रहा है। अमेरिका में चिकित्सकों पर हुए एक विशेष प्रकार के और अपनी तरह के पहले सर्वेक्षण में यह बात निकलकर सामने आई कि चिकित्सकों द्वारा गैर अंग्रेज़ी भाषा के रूप में स्पेनी के बाद हिंदी दूसरे नंबर पर बोली जाती है और 13.8% चिकित्सकों द्वारा इसका व्यवहार किया जाता है।[2] यह शोध चिकित्सकों और रोगियों के मध्य भाषाई अन्तराल को मापने हेतु किया गया था। प्रेस ट्रस्ट ऑव इंडिया के हवाले से 'द वीक' अंग्रेज़ी समाचार–पत्र में प्रकाशित 17 जनवरी, 2020 की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में 9 लाख से अधिक लोग हिंदी का व्यवहार करते हैं।[3] यह तो केवल बानगी है, वस्तुतः वैश्वीकरण के इस दौर में हिंदी को छोड़कर कोई बात की ही नहीं जा सकती।

ऑल इंडिया रेडियो पर 18 फ़रवरी, 2020 को विश्व भाषा डेटाबेस एथनोलॉग के 22वें संस्करण के हवाले से प्रसारित रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2019 में 615 मिलियन बोलने वालों के साथ हिंदी विश्व की तीसरी सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा थी।[4] फ़िजी की राजभाषा के रूप में हिंदी को दर्जा प्राप्त है। संयुक्त अरब अमीरात में हिंदी भाषियों तक न्याय की पहुँच सुलभ करने के लिए वहाँ एक बड़ा निर्णय लेते हुए न्यायिक प्रयोग हेतु हिंदी को तीसरी राजभाषा का दर्जा दिया गया है।[5] यहाँ तीन मिलियन जनसंख्या के साथ भारतीय प्रवासियों के सबसे बड़े समूह के रूप में हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा प्रकाशित एक दस्तावेज़ के अनुसार हिंदी विश्व के लगभग 165 विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाई जा रही है।[6]

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली वैश्विक स्तर पर हिंदी को प्रतिष्ठित, प्रचारित एवं प्रसारित करने की एक प्रमुख संस्था है। 70 के दशक में परिषद् ने विश्व के विभिन्न देशों में हिंदी पीठ स्थापित करना प्रारंभ किया। इन पीठों की स्थापना का उद्देश्य विदेशी विद्यार्थियों में भारत के प्रति रुचि जागृत करना था। इन पीठों ने वैश्विक समुदाय में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति तथा प्रकारांतर से भारत एवं उसकी विरासत के बारे में वृहत्तर समझ का विकास किया। हिंदी पीठ ने हिंदी अध्यापन के साथ ही हिंदी के माध्यम से भारत मित्र बनाए। विद्यार्थी जब भाषा का अध्ययन करते हैं, तो इनके माध्यम से वे देश का बहु प्रकार से परिचय भी प्राप्त करते हैं। यहाँ की अर्थव्यवस्था, राजनीति एवं समाज तथा संस्कृति के बारे में एक समझ का उनके भीतर विकास होता है। इस प्रकार से यह कदम एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी उपाय के रूप में प्रतिष्ठापित होता है। आज विश्व के 65 देशों में 69 पीठ इस योजना के तहत स्थापित की गई हैं।[7] इसके साथ ही परिषद् वैश्विक स्तर पर हिंदी संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं के आयोजन हेतु आर्थिक सहयोग प्रदान करती है। इतना ही नहीं यह विदेशी विद्यार्थियों के प्रतिनिधि–मंडल हेतु भारत भ्रमण एवं यहाँ के शैक्षणिक संस्थानों में उनके लिए परिचय सत्र आयोजित कराती है। हिंदी अध्ययन हेतु परिषद् के सहयोग से विदेशी विद्यार्थी महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा एवं केन्द्रीय हिंदी संस्थान आगरा में नियमित रूप से अध्ययन करने आ रहे हैं।

इसी क्रम में यूरोप के दक्षिण में स्थित देश स्पेन में हिंदी के अध्ययन एवं अध्यापन का सूत्रपात भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के प्रयासों के द्वारा वर्ष 2004 में हुआ।[8] मैड्रिड से लगभग 200 किलोमीटर उत्तर में दोलिद घाटी के एक सुंदर शहर वायादोल्लिद में हिंदी पीठ की स्थापना हुई। यहाँ के 800 वर्ष पुराने एवं प्रतिष्ठित वायादोल्लिद विश्वविद्यालय के वाणिज्य संकाय परिसर में दक्षिण एशियाई अध्ययन केंद्र के अंतर्गत इस

पीठ को स्थापित किया गया। यहाँ दुनिया भर से विद्यार्थी अध्ययन करने आते हैं। परिषद् ने इसी स्थान को क्यों चुना यह बहुत ही महत्त्व का विषय है। लगभग सवा तीन लाख की जनसंख्या वाला यह छोटा शहर सांस्कृतिक रूप से बहुत ही समृद्ध है। यही वह शहर है, जहाँ कास्तिया नामक साम्राज्य था और उसकी राजधानी होने का गौरव इस शहर को प्राप्त था। एक समय यहाँ के शासकों का नियंत्रण दुनिया के सबसे बड़े भूभाग पर था। यहाँ बोली जाने वाली स्पेनी भाषा 'कास्तेयानो' मानक मानी जाती है। कैथोलिक साम्राज्य का विस्तार रानी इसाबेल के शासन में यहीं से हुआ। इसी साम्राज्य ने कोलम्बस की उस महत्वाकांक्षी परियोजना का वित्तपोषण किया, जिसके तहत वह भारत की खोज करना चाहता था। वायादोल्लिद से ही कोलम्बस ने भारत की खोज के लिए प्रस्थान किया और यहीं पर उसने अंतिम साँस ली। भारत की आर्थिक और सांस्कृतिक समृद्धि से यूरोपीय देश भली–भाँति परिचित थे और यहाँ तक पहुँचने के समुद्री मार्ग की तलाश में थे। कहना न होगा कि औपनिवेशिक युग का सूत्रपात यहीं से हुआ। लेखक मिगुएल और कवि सोर्रिया की यह कर्मस्थली है। भारत को लेकर आज भी यहाँ के निवासियों में रोमांच है।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति को लेकर भी यहाँ के लोगों में एक विशेष अनुराग है। भारत के प्राचीन ज्ञान–विज्ञान के प्रति यहाँ के लोगों में गज़ब का उत्साह है। छोटे–से–छोटे शहर में भी योग के कई केंद्र सहजता से आपको मिल जाएँगे। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि योग से स्पेन का प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। कई स्थानीय सामुदायिक केंद्र नागरिकों हेतु मुफ़्त योग प्रशिक्षण कार्यक्रम समय–समय पर चलाते रहते हैं। हिंदी के प्रति आकर्षण का एक कारण यह भी है कि उन्हें यह ज्ञात है कि हिंदी सीखने में सरल है और इसके माध्यम से वे भारत के बारे में अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। संस्कृत के क्लासिकल भाषा होने के कारण वे इसकी सीखने की कठिनाई से अवगत हैं और हिंदी के माध्यम से वे संस्कृत साहित्य व उसकी ज्ञान–सामग्री से भी परिचित होना चाहते हैं।

भारत में पर्यटन एक प्रमुख पहलू है, जो उन्हें हिंदी सीखने को प्रेरित करता है। वे पर्यटन के दौरान यहाँ के निवासियों से हिंदी में संवाद करना चाहते हैं। वे भारतीय बाज़ार और एक उभर रही अर्थव्यवस्था के रूप में भारत की स्थिति से भी परिचित हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के द्वारा भारत में जो रोज़गार अवसर पैदा हो रहे हैं, उसका वह लाभ उठाना चाहते हैं। यहाँ के विद्यार्थी भारत में वाणिज्य एवं व्यवसाय के लिए इच्छुक हैं। वे एशिया क्षेत्र में नए संबंध बनाना चाहते हैं। यही कारण है कि यहाँ के कई शहरों में हिंदी सीखने हेतु गैर संस्थागत स्तर पर शिक्षण केंद्र भी उपलब्ध हैं।

वायादोल्लिद विश्वविद्यालय की हिंदी पीठ विद्यार्थियों को एक औपचारिक पाठ्यक्रम के द्वारा हिंदी सीखने का अवसर उपलब्ध कराती है। प्रत्येक 3 वर्ष में परिषद् और यह विश्वविद्यालय नवीन समझौता–पत्र पर हस्ताक्षर करते हैं। इसके शर्तों के अनुरूप यहाँ हिंदी पीठ पर प्रोफ़ेसर नियुक्त होते हैं। यहाँ पर स्तर एक से स्तर बारह तक हिंदी अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है, परंतु स्तर एक से स्तर 5 तक ही विद्यार्थी प्रवेश लेते हैं। विद्यार्थियों में विभिन्न आयु वर्ग और शैक्षणिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थी आते हैं। हिंदी के विद्यार्थियों में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के अलावा प्राध्यापक, वायादोल्लिद में व्यवसाय करने वाले एवं सेवानिवृत्त व्यक्ति भी शामिल हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र में रोज़गार पाने के इच्छुक युवा भी हिंदी सीखने आते हैं। स्पेन के दूर–दराज़ के प्रदेशों से युवा भी हिंदी सीखने के इच्छुक हैं। इनके साथ समस्या यह है कि ये या तो नौकरी कर रहे हैं या पारिवारिक उत्तरदायित्व के कारण दूर शिक्षा पद्धति से हिंदी सीखना चाहते हैं, परन्तु विश्वविद्यालय में इस हेतु आवश्यक संसाधनों के अभाव के कारण ये वंचित रह जाते हैं। वायादोल्लिद विश्वविद्यालय की एक विशेष बात यह है कि यहाँ पाठ्यक्रम दो पालियों में संचालित होते हैं। हिंदी कक्षाएँ दोपहर 2 बजे से रात्रि 10 बजे के मध्य आयोजित की जाती हैं। सरकारी कामकाज का समय प्रातः 8 बजे से दोपहर 2 बजे तक होता है। इससे लाभ यह होता है कि इच्छुक व्यक्ति अपने अवकाश समय में अध्ययन का लाभ उठा सकते हैं।

एक रोचक बात यह है कि यहाँ अंग्रेज़ी भाषा का चलन नहीं है। विज़िटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में नियुक्त होने वाले प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह यथाशीघ्र अपने आगमन पश्चात् स्पेनी भाषा का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर ले। आम तौर पर A-2 स्तर तक दक्षता की अपेक्षा होती है, जिससे कि आप सहजता से विद्यार्थियों से संवाद कर सकें। हिंदी पीठ पर अपने कार्यकाल के दौरान स्पेनी भाषा के B-1 स्तर के अध्ययन का

सुपरिणाम यह हुआ कि उनसे संवाद और मैत्री सहज हो गई। वस्तुतः जब तक आप उनकी भाषा, रहन–सहन एवं खान–पान के प्रति सम्मान एवं उसे सीखने के प्रति तत्पर नहीं होते, तब तक एक दूरी बनी रहती है। जब आप उनकी भाषा में हिंदी को सिखाते हैं और बातचीत करते हैं, तो न केवल वे रुचि से सीखते हैं, बल्कि एक आत्मीयता का भाव भी स्थापित हो जाता है। यह अत्यंत आवश्यक है कि चयन की सूचना पाते ही अध्यापक संबंधित देश की भाषा सीखे, जिससे कि वहाँ पहुँचने पर उसे असुविधा का सामना न करना पड़े। मैंने स्पेनी भाषा सीखी और वहाँ इसका सुपरिणाम मुझे मिला, इसका मुझे विश्वास है।

यह अत्यंत उत्साहजनक रहा कि हिंदी पीठ के प्रयासों से वर्ष 2019–20 में वायादोल्लिद विश्वविद्यालय के वाणिज्य संकाय ने अपने 'अंतरराष्ट्रीय संबंध एवं एशिया अध्ययन में परास्नातक' (MASTER EN RELACIONES INTERNACIONALES Y ESTUDIOS ASIATICOS) पाठ्यक्रम में हिंदी को लागू कर दिया है। एक वैकल्पिक प्रश्नपत्र के रूप में इस पाठ्यक्रम के विद्यार्थी अब नियमित रूप से हिंदी का अध्ययन करेंगे।

वर्ष 2018 में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने अपने द्वारा स्थापित पीठों में पाठ्यक्रम की एकरूपता को स्थापित करने का निर्णय लिया। इसके लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा वर्ष 2011 में विकसित देश–विदेश में विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्यक्रमों का मॉडल 'मानक हिंदी पाठ्यक्रम' लिया गया, जो समझौता–पत्र के ज़रिए समस्त पीठों में लागू किया जा रहा है। इस एकरूपता के चलते हिंदी की पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले छात्र अवसर मिलने पर किसी अन्य संस्था से अपनी पढ़ाई जारी रख सकते हैं। समान पाठ्यक्रम के चलते यह आसानी से संभव होगा। परिषद् की तत्परता से वर्ष 2019–20 से यही पाठ्यक्रम सभी पीठों में लागू करवाया गया है। पाठ्यक्रम में विद्यार्थी के लेखन, वाचन एवं श्रवण कौशल को विकसित करने का पूरा ध्यान रखा गया है। पाठ्यक्रम की विशेषता इस बात में है कि विद्यार्थी किसी भी स्तर पर इसे छोड़ सकता है। उसे उस स्तर के अनुरूप प्रमाण–पत्र दिया जाता है। यदि वह निरंतर अध्ययनरत रहे तो सर्टिफ़िकेट, डिप्लोमा, डिग्री एवं स्नातकोत्तर स्तर तक अध्ययन कर सकता है। हिंदी को लेकर परिषद् की दृष्टि अत्यंत गंभीर है और अपनी सॉफ़्ट डिप्लोमेसी के अंतर्गत वह अन्य प्रयासों के साथ–साथ पूरे विश्व में हिंदी के माध्यम से अधिकाधिक भारत मित्र बनाने का लक्ष्य रखता है। पाठ्यक्रम में न केवल भाषा सीखने के अंगों–उपांगों का सम्मिलन है, अपितु हिंदी साहित्य व भारत की सभ्यता व संस्कृति से परिचित करने का उपक्रम भी है। इसके अतिरिक्त 7 एवं 8 जून, 2018 को भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली में आयोजित पुनश्चर्या कार्यक्रम में केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा को सम्मिलित रूप से यह ज़िम्मेदारी सौंपी गई कि वे मिलकर एक मानक पाठ्यक्रम नई आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करें, जिसे कि सभी पीठों में लागू किया जा सके। आज नई शिक्षा नीति, 2020 के आलोक में इस बात की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा विकसित वीडियो व्याख्यानों की शृंखला, हिंदी की पुस्तकें व कतिपय कोश भी प्रत्येक पीठ को प्रदान की गई हैं, जिससे कि अध्ययन–अध्यापन सुगम हो सके। सी–डैक द्वारा विकसित विभिन्न सॉफ़्टवेयरों का संग्रह पीठ में किया गया है, जिसका उपयोग विद्यार्थी भाषिक दक्षता प्राप्त करने में करते हैं। इसके अतिरिक्त इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री एवं अन्य भाषिक टूल्स का भी उपयोग उनके अधिगम को रुचिकर बनाने हेतु किया जाता है। साथ ही हिंदी वातावरण से विद्यार्थियों को परिचय प्रदान करने हेतु हिंदी भाषियों से बातचीत के सत्र भी आयोजित किए गए, जिससे कि वे हिंदी में बातचीत करने को लेकर सहज हो सकें और उनमें आत्मविश्वास आ सके। पीठ के पुस्तकालय को सुसज्जित करने हेतु आवश्यक पुस्तकों की एक सूची भी दूतावास को क्रय करने हेतु उपलब्ध कराई गई है, जो कि शीघ्र ही पीठ को प्रदान किए जाने की आशा है।

पीठ द्वारा प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस और 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस धूम–धाम से मनाया जाता है, जिनमें वर्तमान विद्यार्थियों के साथ पूर्व विद्यार्थी भी सम्मिलित होते हैं। इस अवसर पर तीन–चार दिन पूर्व से ही विभिन्न प्रतियोगिताओं एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। प्रतियोगिता के विजेताओं को विभिन्न पुरस्कार एवं हिंदी पुस्तकें भेंट दी जाती हैं। हिंदी अध्ययन की समस्या यह होती है कि हिंदी की पुस्तकें व अभ्यास पुस्तिकाएँ आदि यहाँ किताबों की दुकानों पर सुलभ नहीं होती हैं, अतः ये पूरे तौर पर पीठ के संसाधनों पर ही निर्भर करते हैं। ये बाधाएँ विद्यार्थियों के सीखने की राह में रोड़ा नहीं, बल्कि प्रेरक का कार्य करती हैं। इनकी लगन और परिश्रम की जितनी प्रशंसा की जाए वह कम है। भारतीय साहित्य के स्वाध्याय में भी इनकी गहरी रुचि है।

श्री कृष्ण भावनामृत संघ (इस्कॉन) के स्वामी प्रभुपाद ने भक्ति–भावना का जो बीजारोपण यूरोपीय देशों में किया, उसका प्रभाव है कि विद्यार्थी अपने पिता या दादा के समय की भगवद्गीता की स्पेनी अनुवाद की प्रति लेकर आते हैं और इसे पढ़ने, इसके बारे में और भी अधिक जानने और इसकी व्याख्याएँ पढ़ने की इच्छा रखते हैं। इन्हें देखकर अन्य विद्यार्थी भी प्रेरित होते हैं। भारतीय संस्कृति के वैश्विक स्तर पर प्रचार–प्रसार में इस्कॉन का योगदान अप्रतिम है। रामायण, महाभारत एवं पतंजलि के योगसूत्र से लेकर स्वतंत्रता पश्चात् भारत की राजनीतिक स्थिति तक इन विद्यार्थियों की रुचि विस्तृत है। फ़ार्मेसी के छात्र आयुर्वेद की जानकारी और इसके माध्यम से दवाओं के क्षेत्र में शोध करना चाहते हैं।

इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को भारत की विरासत, सभ्यता एवं संस्कृति तथा खान–पान से परिचित कराने हेतु पावर पोंइंट प्रेज़ेंटेशन एवं फ़िल्में तथा डॉक्युमेंटेरी आदि भी दिखाए जाते हैं। यह खुला कार्यक्रम होता है और इसमें अन्य विभागों के प्राध्यापक तथा विद्यार्थी भी भागीदारी करते हैं। कार्यक्रम के अंत में चर्चा सत्र का आयोजन होता है, जिसमें सभी बढ़–चढ़कर भागीदारी करते हैं। समाचार माध्यमों के द्वारा भारत संबंधी जो भी जानकारी उन्हें मिलती है, वे उसके बारे में और जानना चाहते हैं और आलोचनात्मक चर्चाएँ करते हैं। मुझे इस दृष्टि से भी यह उपयोगी प्रतीत हुआ कि इन मंचों के माध्यम से उनकी भारत के प्रति एक स्पष्ट समझ बनती है और भारत संबंधी मिथ्या धारणाओं का भी निराकरण होता है।

यद्यपि आज का व्यक्ति सर्वाधिक सूचित व्यक्ति है, परन्तु सूचनाओं का संसाधन एवं प्रस्तुतीकरण किस प्रकार किया जाता है, यह व्यक्ति के मत एवं रुझान को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन अर्थों में हिंदी पीठ की एक कूटनीतिक भूमिका हो जाती है। हिंदी पीठ के अंतर्गत भारत में पर्यटन, व्यापार एवं वाणिज्य को प्रोत्साहन देने हेतु कतिपय कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं, जो कि पर्यटन के आकर्षण केन्द्रों की जानकारी देने के साथ–साथ भारत में मौजूद अवसरों एवं सरकारी नीतियों की भी जानकारी प्रदान करते हैं। हिंदी पीठ हिंदी अध्यापन के साथ–साथ भारत के संबंध में जानकारी देने का सूचना केंद्र है और इस प्रकार लोगों को भारत से जोड़ने का भी कार्य करती है।

विदेशी भाषा के रूप में हिंदी अध्ययन एवं अध्यापन की सबसे बड़ी चुनौती अंतरराष्ट्रीय मानक के अनुरूप पाठ्यक्रम एवं पाठ्य–सामग्री के अभाव का होना है। हमें यथाशीघ्र इस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है। एक ऐसे मानक पाठ्यक्रम की आवश्यकता है, जो अद्यतन होने के साथ ही साथ दृश्य–श्रव्य माध्यमों के प्रयोग और प्रचुर अभ्यास सामग्री से परिपूर्ण हो। सार्वभौमिक रूप से यह पाठ्यक्रम समस्त हिंदी शिक्षण केन्द्रों पर लागू किया जाए। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय को एक प्रमाणन एजेंसी के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा के प्रमाणन की यह एकमात्र एजेंसी हो। इस पाठ्यक्रम का स्वरूप कुछ इस तरह का हो कि ये पाठ्य सामग्री मुक्त रूप से बाज़ार में उपलब्ध रहे और स्वाध्याय कर विद्यार्थी इस पाठ्यक्रम की परीक्षा में बैठ सकें। साथ ही यह भी आवश्यक है कि भारत में चल रहे भाषाई मतभेद की परछाईं से ये केंद्र मुक्त रहें और अधिकारी वर्ग की सहानुभूति और सहयोग विदेश में स्थित इन केन्द्रों को बिना शर्त निरंतर मिलता रहे।

संदर्भ :

1. https://www.indexmundi.com/world/languages.html#:~:text=kmost%2Dspoken%20language%3A%20English%2015.1,2.7%25%20(2019%20est.)
2. https://www.doximity.com/press_releases/first_ever_national_study_to_examine_different_languages_spoken_by_us_doctors
3. https://www.theweek.in/wire-updates/international/2020/01/17/fes19-us-hindi.html
4. http://www.newsonair.com/Main-News-Details.aspx?id=k381514
5. http://ddnews.gov.in/international/uae-introduces-hindi-third-official-language#:~:text=kIn%20a%20landmark%20decision%2C%20Abu,to%20improve%20access%20to%20justice.
6. कुमार, के. विजय. (संपा.) मानक हिंदी पाठ्यक्रम (2011) आगरा : केंद्रीय हिंदी संस्थान, पृ. 15
7. https://www.iccr.gov.in/online-form/chairs/introduction इंद्रनाथ, इन्द्रदेव भोला, हिंदी विश्व भर में (1834–2017) : विशद ऐतिहासिक दस्तावेज़: नई दिल्ली : स्टार पब्लिकेशंस, पृ. 486

hindi.spain@gmail.com

अमेरिका में हिंदी शिक्षण व प्रशिक्षण की दशा

– डॉ. कुसुम नैपसिक
नॉर्थ केरोलाइना, अमेरिका

अमेरिका में हिंदी के अनेक प्रशिक्षण के कार्यक्रम तथा कार्यशालाएँ चलती हैं, जिनमें शिक्षकों को पढ़ाने की नई–नई तकनीकों से अवगत कराया जाता है। मेरे विचार से कोई भी भाषा शिक्षक इससे वंचित नहीं रह सकता, क्योंकि ये प्रशिक्षण बार–बार और अनेक शहरों में साल–भर होते रहते हैं। और तो और, अधिकांश ऑनलाइन हैं। सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण बात है कि ये प्रशिक्षण ज़्यादातर मुफ़्त होते हैं फिर कोई इनसे अछूता कैसे रह सकता है?

स्टारटॉक शिक्षक प्रशिक्षण

अगर किसी एक संस्था को अमेरिका में हिंदी प्रशिक्षण सुदृढ़ और व्यवस्थित करने का श्रेय दिया जा सकता है, तो वह है स्टारटॉक। स्टारटॉक की पृष्ठभूमि पर गौर करें, तो प्रो. सुरेन्द्र गंभीर के अनुसार "अमेरिका में हिंदी–शिक्षण में एक नई लहर आई थी। 6 फ़रवरी, 2006 को अमेरिका के राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने 'नेशनल सिक्योरिटी लेंग्वेज इनिशिएटिव' नाम की एक भाषा–नीति की घोषणा की थी। फिर इसमें 2008 में हिंदी, उर्दू और पर्शियन जोड़ी गईं।" आगे प्रो. गंभीर बताते हैं कि सरकारी तंत्र के तहत चलने वाले कार्यक्रमों में भाषा के साथ उसकी अभिन्न सहचरी संस्कृति के भौतिक और वैचारिक पक्षों को समझने–समझाने की अनिवार्यता पर भी बल है।

प्रो. विजय गंभीर ने इन कार्यक्रमों पर दृष्टिपात करते हुए बताया है कि मुख्य रूप से इनका उद्देश्य 'क्रिटिकल भाषाओं के विद्यार्थियों व प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या को बढ़ाना और इन भाषाओं के लिए प्रभावी पाठ्यक्रम तथा शिक्षण–सामग्री उपलब्ध कराना है।'

मैं स्टारटॉक के एक भाषा शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में 2011 में भागीदारी करने न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय गई थी। यह प्रशिक्षण दस दिन तक चला। रहना, खाना और प्रशिक्षण सबका इंतज़ाम स्टारटॉक की तरफ़ से था। मैंने वहाँ जिन चीज़ों के बारे में सीखा और जाना उनमें से मैं लगभग कुछ भी पहले से नहीं जानती थी। आप सोच सकते हैं दस दिन में आठ से नौ घंटे रोज़ जितना ज्ञान मेरे मस्तिष्क में उड़ेला गया, उसमें से ज़्यादातर बाहर आ गया। कुछ ही चीज़ें मैं अपने साथ समेटकर ला सकी।

सबसे बड़ी बात यह थी कि वहाँ के सभी प्रोफ़ेसर अपने काम में माहिर थे और उन्होंने न सिर्फ़ प्रशिक्षण दिया, बल्कि जो सिखाया जा रहा था उसको आज़माने का मौका भी दिया। इस प्रशिक्षण में दूसरी भाषा के लोगों को बुलाया गया, जिन पर हम लोग अपने नए सीखे हुए प्रशिक्षण और पाठ योजना के ज़रिए पढ़ाने का अभ्यास करते थे। वहाँ के प्रोफ़ेसर के पढ़ाने के तरीके से भी पढ़ाने का तरीका सीखा जा सकता था। छोटे–छोटे समूह में बैठकर की जाने वाली गतिविधियाँ बहुत कारगर साबित हुईं और उन्हें किसी भी कक्षा में ज़रूरत के मुताबिक सम्मिलित किया जा सकता है।

इस प्रशिक्षण में पारम्परिक उपाख्यानों के बदले खेलों और बातचीत की गतिविधियों पर अधिक ज़ोर दिया जाता है, जिसमें विद्यार्थी–केंद्रित (student-centered) कक्षाओं पर अधिक बल है। उन दिनों बनाए गए नोट्स मुझे आज भी पढ़ाने में बहुत मदद करते हैं। बहुत दिलचस्प था वह प्रशिक्षण और इसे धीरे–धीरे मैं अपने हिंदी–शिक्षण में आत्मसात कर पढ़ाने के आधुनिक ढंग से कदमताल करने लगी।

मुख्यतः जिन चीज़ों के बारे में मैंने वहाँ सीखा, वे थीं – पाठ्यक्रम बनाना, बैकवर्ड डिज़ाइनिंग (backward designing), जिसमें पहले सोचा जाता है कि सत्र के अंत में हम अपने पाठ्यक्रम से क्या परिणाम चाहते हैं और क्यों? और जो हम सिखाने का लक्ष्य कर रहे हैं, जिसे 'can do statements' भी कहते हैं, उसे हमारे विद्यार्थी कैसे सीख सकते हैं। फिर विचार

करना कि किस प्रकार पाठ्यक्रम पढ़ाने के दौरान मूल्यांकन (assessment) होना चाहिए। ये सभी बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं, जिनके जवाब में ही भाषा–शिक्षण का रहस्य छुपा हुआ है।

निर्णयात्मक मूल्यांकन (formative assessments) और योगात्मक मूल्यांकन (summative assessments) जिसमें निर्णयात्मक मूल्यांकन में लघु परीक्षाएँ, जैसे प्रश्नोत्तर, गृहकार्य, श्रुतलेख, वार्तालाप, मौखिक परीक्षाएँ ली जाती हैं और विचार किया जाता है कि विद्यार्थी सत्र के दौरान कितना सीख रहे हैं और उनकी ज़रूरतों के अनुसार उन्हें फ़ीडबैक दिया जाता है, जिससे समय रहते वे अपनी कमज़ोरियाँ सुधार सकें। और योगात्मक मूल्यांकन में मुख्य परीक्षा के ज़रिए विचार किया जाता है कि विद्यार्थी ने पूरे सत्र के दौरान कितना सीखा है। इसके अंतर्गत सत्र के अंत में होने वाली परीक्षाएँ शामिल हैं, जिसमें लिखित, मौखिक, सुनना और बोलना सभी कौशल सम्मिलित होते हैं।

पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को केंद्र में रखकर बनाया जाता है और कक्षा में भी शिक्षक के स्थान पर विद्यार्थियों की अधिक भागीदारी होती है, इसे 'विद्यार्थी केंद्रित' (student-centered) कक्षा भी कहते हैं, इसमें विद्यार्थी सिर्फ़ शिक्षक के उपाख्यान ही नहीं सुनते, बल्कि स्वयं भी उसमें भागीदारी करते हैं, जिसमें वे शिक्षण से सम्बंधित खेल और कुछ मौखिक गतिविधियों के ज़रिए भी सीखते हैं। तात्पर्य यह है कि वे जो शिक्षक से सीखते हैं, उसका व्यावहारिक रूप से अभ्यास भी करते हैं।

स्टारटॉक के प्रशिक्षण में 'विषय' पर आधारित (theme-based) पाठ्यक्रम बनाया जाता है। हर स्टारटॉक कार्यक्रम का एक मुख्य विषय होता है। उदाहरण के लिए अगर विषय है : भारत–भ्रमण, तो पूरे कार्यक्रम में भारत के कई राज्यों की 'आभासी वास्तविकता' (Virtual reality) के माध्यम से विद्यार्थियों को सैर करवाई जाएगी। विद्यार्थी राज्यों के बारे में सीखेंगे और चित्रों और चलचित्रों के ज़रिए उस राज्य में विचरण करेंगे और ज़रूरत के अनुसार बातचीत करेंगे।

उदाहरण के लिए उनके बातचीत के विषय होंगे : आप किसके साथ ताजमहल घूमने जाएँगे? तो वे कहेंगे, परिवार के साथ। इसमें वे परिवार के बारे में सीखेंगे।

फिर आप कैसे जाएँगे? यहाँ वे यातायात के साधनों के बारे में और ऑटो या टैक्सी कैसे लेनी है, दिशा–निर्देश कैसे देना है इसके बारे में विस्तार से जानेंगे।

आप वहाँ क्या–क्या खाएँगे? तो वे उन शहरों में मिलने वाले खाने के नाम, खाना कैसे बनाया जाता है? रेस्तराँ में खाने का ऑर्डर कैसे दिया जाता है, इसके बारे में जानकारी हासिल करेंगे।

इस तरह विषय को विस्तार देते हुए प्रतिदिन पढ़ाने के लिए पाठ बनता चला जाएगा, इसमें 'जीवंत सामग्री' (authentic material) के इस्तेमाल पर बल दिया जाता है। जीवंत सामग्री, जिसका अर्थ मोटे तौर पर होता है, वे सभी सामग्रियाँ, जिनको पढ़ाने की दृष्टि से न बनाया गया हो और जिनका निर्माण देश के लोगों के लिए और उनके द्वारा किया गया हो। इसमें पुस्तकें, अखबार, लेख, पत्रिकाएँ, फ़िल्में, टीवी धारावाहिक, विज्ञापन, मेन्यू कार्ड, चिट्ठी आदि शामिल हैं। इसके महत्त्व और उपयोगिता का लोहा तो सभी मानते हैं, लेकिन इसके प्रयोग में चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं।

प्राथमिक हिंदी की कक्षा में इसका इस्तेमाल मुश्किल होता है कारण है कि जीवंत सामग्री में सभी तरह की शब्दावलियाँ, भाषा, मुहावरे और वाक्यांश का मिला–जुला रूप पाया जाता है और आरम्भिक हिंदी के विद्यार्थियों ने उसे कक्षा में देखा या सीखा नहीं होता, जिससे वे घबरा जाते हैं और सोचते हैं हिंदी कठिन है। कक्षा में अधिकतर विद्यार्थी आसान से मुश्किल संरचना सीखते हैं और धीरे–धीरे व्याकरण, शब्दावली और मुहावरे आदि का प्रयोग करते हैं।

इसके साथ ही, लोग असल ज़िंदगी में बहुत जल्दी–जल्दी बोलते हैं, भाषा के नए विद्यार्थियों के लिए इसे समझना अत्यंत कठिन होता है, इसलिए शिक्षक कम–से–कम शुरुआती कक्षा में थोड़ा धीरे–धीरे बोलते हैं, ताकि विद्यार्थियों की समझ में बात आ जाए, लेकिन जब वे असल ज़िंदगी की भाषा सुनते हैं, चाहे बिल्कुल वही बात जो कक्षा में शिक्षक ने बारम्बार दोहराई हो, तो भी उनकी समझ में कुछ नहीं आता।

भाषा की गति एवं उतार–चढ़ाव समझना उनके लिए बहुत मुश्किल होता है; इसलिए यह ज़रूरी है कि उनको कक्षा में जीवंत सामग्री से ही पढ़ाया जाए। कुछ समय तो उनको परेशानी होगी, लेकिन धीरे–धीरे आदत होने लगेगी। उदाहरण के लिए, मैंने अपनी पहले साल की कक्षा में 'चश्मे बद्दूर' फ़िल्म का वह

सीन दिखाया जब 'दीप्ति नवल' पहली बार सेल्सगर्ल के रूप में कपड़े धोने का साबुन बेचते हुए 'फ़ारूख शेख़' से मिलती है और सर्वेक्षण करते हुए बहुत सारी जानकारी लेती है जैसे "आपका नाम क्या है? आपके परिवार में कौन–कौन हैं? आप काम क्या करते हैं? धुलाई के लिए कौन–सा साबुन इस्तेमाल करते हैं?" इत्यादि।

इस सीन में वे लोग कमरे में पड़ी कई वस्तुओं के बारे में भी बात करते हैं और साथ ही जब वह कपड़े धोने का डेमोन्स्ट्रेशन देती है, तो बहुत सारे निर्देश देती है जैसे "दो चम्मच साबुन डाल दीजिए। अच्छी तरह से मिलाएँ। कपड़ा छोड़िए।" विद्यार्थी 'मेरा परिवार', 'परिचय देना' और 'निर्देश देना' आदि कक्षा में सीख चुके होते हैं, लेकिन जब भी इस वीडियो क्लिप को देखते हैं, हमेशा शिकायत करते हैं कि यह बहुत मुश्किल है और लोग फ़िल्म में बहुत जल्दी–जल्दी बोलते हैं, लेकिन थोड़े महीने बाद जब विद्यार्थियों की सुनने और समझने की क्षमता बढ़ जाती है, तो वे स्वयं ही कहते हैं हमें 'चश्मे बद्दूर' फ़िल्म देखनी है, उसमें आगे क्या हुआ? इसका एक लाभ यह भी है कि इसके इस्तेमाल से विद्यार्थी भाषा को उसके संदर्भ में देख सकते हैं और इससे उनकी सांस्कृतिक समझ भी बढ़ती है।

जीवंत और सांस्कृतिक सामग्री का प्रयोग और उसके फ़ायदे के विषय में मैंने पहली बार स्टारटॉक में ही सुना था। इसके साथ ही यहाँ इस बात पर बहुत ज़ोर दिया जाता है कि शिक्षण सामग्री का चुनाव विद्यार्थियों की आयु और कक्षा के स्तर के अनुसार करना ज़रूरी है, क्योंकि आयु के अनुसार उनकी रुचि बदलती रहती है।

कक्षा के वातावरण का भी कक्षा की सफलता में बहुत बड़ा हाथ होता है, जिसमें विद्यार्थी निडर होकर कक्षा में पूछे गए सवालों का जवाब दे सकें और बेहिचक सवाल पूछ सकें। इस बात पर मुझे याद आए भारत के वे अध्यापक जिनके आते ही पूरी कक्षा थर–थर काँपने लगती थी और जवाब आते हुए भी आवाज़ हलक से बाहर नहीं आ पाती थी।

इस प्रशिक्षण में एक बहुत ज़रूरी बात यह हुई कि इसमें मुझे बहुत से लोगों से मिलने का अवसर मिला और लगा कि मैं अकेली नहीं हूँ, बहुत से लोग और भी हैं, जो हिंदी शिक्षण से जुड़े हुए हैं और उनकी भी समान समस्याएँ हैं। अच्छी बात यह है कि इस प्रशिक्षण का लाभ कोई भी उठा सकता है, चाहे वह कहीं पढ़ाता हो या नहीं, पहले से प्रशिक्षित हो या नौ–सिखिया।

ये प्रशिक्षण अमेरिका के कई राज्यों में अलग–अलग संस्थाओं द्वारा गरमी की छुट्टियों में ही होते हैं। मैं स्वयं अब तक लगभग नौ–दस स्टारटॉक के प्रशिक्षण में भाग ले चुकी हूँ। इसमें हर बार कुछ नया सीखने को मिलता है और कुछ कार्यक्रमों में पुराने की पुनरावृति हो जाती है, इससे भी अच्छी बात यह होती है कि शिक्षण में क्या नया चल रहा है, इसका पता चलता रहता है।

कई बार यहाँ पर स्टारटॉक के विद्यार्थियों के कार्यक्रम में नौकरी की जानकारी भी मिलती है। और तो और प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरांत प्रशिक्षक स्वयं विद्यार्थियों के कार्यक्रम के लिए अनुदान प्राप्त कर सकते हैं और अन्य लोगों को हिंदी की नौकरी दे सकते हैं। इसके लिए सबसे पहले सरकार से अनुदान के लिए आवेदन करना पड़ता है। मैंने खुद 'यूनिवर्सिटी ऑफ़ बोल्डर, कोलोराडो' में पढ़ाते हुए अन्य लोगों के साथ मिलकर स्टारटॉक के विद्यार्थियों के कार्यक्रम के लिए अनुदान लिखा था और लगातार तीन साल तक अनुदान प्राप्त भी किया।

स्टारटॉक के शिक्षक कार्यक्रम, जो मेरे विचार से सबसे ज्ञानवर्धक हैं, उनमें से 'कीन विश्वविद्यालय–न्यूजर्सी', 'न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय', 'यू.सी.एल.ए. (UCLA)-केलिफ़ोर्निया' की हेरिटेज कार्यशाला और 'सांता बारबरा विश्वविद्यालय–केलिफ़ोर्निया' का लीडरशिप प्रोग्राम ज़बरदस्त था। इन्हीं कार्यशालाओं से मुझे ACTFL की जानकारी मिली, जो मौखिक और लिखित परीक्षा के ज़रिए विद्यार्थियों के भाषा बोलने और लिखने की क्षमता के स्तर का मूल्यांकन करके उन्हें प्रमाण–पत्र प्रदान करता है।

अमेरिकन काउन्सिल ऑन द टीचिंग ऑफ़ फॉरेन लेंग्वेजज़ (ACTFL)

ACTFL (अमेरिकन काउन्सिल ऑन द टीचिंग ऑफ़ फ़ॉरेन लेंग्वेजज़) की भाषा प्रवीणता के अंतर्गत पाँच स्तर निर्धारित किए गए हैं, जिसमें नॉविस, इंटरमीडिएट, एडवांस्ड, सुपीरियर और डिस्टिंग्विश्ड हैं। इसमें नॉविस, इंटरमीडिएट और एडवांस्ड के तीन और स्तर हैं – नॉविस–लो, नॉविस–मिड, नॉविस–हाई।

इसमें बताया जाता है कि नॉविस के अंतर्गत वे लोग आते हैं, जिनका बोलने का ज्ञान सीमित होता है और वे अपने बारे में रटे–रटाए शब्द, सूची, वाक्यांश या छोटे–छोटे साधारण वाक्य बोल सकते हैं, जिनका प्रयोग रोज़मर्रा की ज़िंदगी में होता है।

इंटरमीडिएट स्तर में छात्र कुछ वाक्यों और अनुच्छेदों (paragraph) में अपने आसपास देखी हुई चीज़ों का ब्यौरा दे सकते हैं। सवाल–जवाब कर सकते हैं और थोड़े आसान विषयों पर बात कर सकते हैं।

एडवांस्ड के विद्यार्थी वर्तमान, भूत, भविष्य आदि सभी कालों का प्रयोग भली–भाँति कर सकते हैं और वाक्यों के स्तर से आगे बढ़कर कई अनुच्छेदों में भी अपनी बात कर सकते हैं। फिर भी उनकी बातों में कभी–कभी व्याकरण की अशुद्धियाँ मिल सकती हैं। ये छात्र सामाजिक, समसामयिक और राजनीतिक विषय क्षेत्र से सम्बंधित बातचीत कर सकते हैं।

प्रवर (Superior) की बातचीत में कम अशुद्धियाँ होती हैं और वे औपचारिक भाषा का इस्तेमाल करते हुए सामाजिक, राजनैतिक, वैश्विक विषयों पर अपनी राय दे सकते हैं। वे अपनी बात को उदाहरण देकर और संदर्भ के साथ सिद्ध कर सकते हैं। उनका शब्दावली भंडार अपार होता है। अक्सर विश्वविद्यालय में पढ़ानेवाले लोग इसी श्रेणी में आते हैं।

इसके बाद सम्मानित (Distinguished) की श्रेणी आती है, जिसमें बहुत कम लोग फ़िट हो पाते हैं अधिकतर लेखक या वक्ता ही इस श्रेणी तक पहुँच पाते हैं, जिनके पास ज्ञान और शब्दावली का अथाह भंडार होता है और वे किसी भी विषय के बारे में धाराप्रवाह बोल सकते हैं।

ACTFL की यह मौखिक और लिखित परीक्षा हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं में भी होती है, जिनको क्रिटिकल लेंग्वेज (critical languages) की श्रेणी में रखा गया है। यह भाषा की परीक्षा पूरे उत्तरी अमेरिका में मान्य है। अगर किसी नौकरी में विदेशी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता होती है, तो उम्मीदवार इन क्रिटिकल लेंग्वेजज़ में से किसी को भी चुन सकता है और इस परीक्षा के ज़रिए, जान सकता है कि उसकी भाषा का स्तर क्या है।

अक्सर सेना, अंतरराष्ट्रीय कम्पनियों, गैर–सरकारी संस्थाओं, अस्पतालों में विदेशी भाषा जानने वालों को नौकरी में ज़्यादा मौके मिलते हैं और उनके वेतन में भी वृद्धि होती है।

इसके साथ ही ACTFL किसी भी क्रिटिकल भाषा के विशेषज्ञ को मौका देता है कि वह खुद ACTFL के परीक्षक बनें, जिसकी एक जटिल प्रक्रिया होती है। परीक्षक को स्वयं भी परीक्षा देनी होती है, जिसमें उसे प्रवर होना होता है। इसके परीक्षक को तीन से चार दिन की एक ACTFL की कार्यशाला में भागीदारी करनी होती है। उसके बाद तीन चरणों में एक सीमित समयावधि में ही इक्कीस से बाईस साक्षात्कार करके ACTFL को भेजने होते हैं। इसके साथ ही अपने द्वारा किए गए साक्षात्कारों का स्तर भी बताना होता है, जैसे नॉविस–हाई, सुपीरियर, इंटरमीडिएट वगैरह। फिर ACTFL उसे किसी अन्य भाषा विशेषज्ञ के पास भेजता है। यदि उन दोनों के स्तर की रेटिंग एक जैसी होती है, तो 'ACTFL' परीक्षक को प्रमाण–पत्र देता है। इसके बाद परीक्षक घर बैठे–बैठे फ़ोन पर परीक्षा ले सकता है और रेटिंग का काम कर सकता है और यह उसकी आमदनी का अच्छा–खासा ज़रिया हो सकता है।

ACTFL भाषा–शिक्षण के विषयों पर शोध करवाता रहता है और उसको अपनी वेबसाइट पर भी लगाता है। ACTFL के 'can do statements' बहुत ही मशहूर हैं, जिसमें अनेक भाषाविदों ने मिलकर तय किया कि किस स्तर के विद्यार्थी भाषा में क्या–क्या काम करने में सक्षम हो सकते हैं। इससे कोई भी नया शिक्षक प्रेरणा ले सकता है और अपना पाठ्यक्रम बनाते हुए, इसका प्रयोग एक सफल सत्र के लिए कर सकता है : जैसे नॉविस के लिए कहा गया है विद्यार्थी ''रोज़मर्रा के विषय पर अपनी पसंद और नापसंद ज़ाहिर कर सकते हैं। जिसमें वे याद किए हुए या अभ्यास किए हुए वाक्य का प्रयोग कर सकते हैं।''

इससे विद्यार्थियों को भी समझ आ जाता है कि इस सत्र के अंत तक वे किन विषयों में पारंगत हो पाएँगे। ये 'can do statements' उनके लिए और शिक्षक के लिए एक रोडमैप का कार्य करते हैं।

इसके अतिरिक्त भी ACTFL का भाषा–शिक्षण के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान है। प्रोफ़ेसर विजय गंभीर के एक लेख से इसका उल्लेख करना चाहूँगी, उन्होंने कहा है ''भाषा–प्रवीणता की कमियों को देखते हुए और 21वीं शताब्दी के वैश्विक जगत में सफलता पाने के लिए अमेरिकी विद्यार्थियों को भाषा कैसे

सिखाई जाए, इसके लिए भाषाविदों ने भाषा अधिग्रहण के अनुसंधान *(Second Language Acquisition Research)* से प्रेरणा प्राप्त कर *1996* में दूसरी या विदेशी भाषा सीखने के लिए अलग–अलग भाषा–प्रवीणता के स्तरों के लिए स्टैंडर्ड तैयार किए। ये स्टैंडर्ड *"World-readiness Standards for Learning Languages"* के नाम से जाने जाते हैं।"

इसके पाँच स्तम्भ हैं, जिसे '5 C's' के नाम से जाना जाता है। आइए, इसपर भी एक दृष्टि डाल लें। सबसे पहले संप्रेषण (communication) है, जो किसी भी भाषा का प्राण है, इसमें भाषा को समझना, बोलना, सुनना शामिल है। इसके भी तीन प्रकार (mode) हैं – इंटरप्रेटिव, इंटरपर्सनल, प्रेज़ेंटेशनल। इंटरप्रेटिव में विद्यार्थी कुछ पढ़कर, देखकर या सुनकर उसका भाव समझते हैं। इंटरपर्सनल में जो वे समझे हैं उसके बारे में एक दूसरे के साथ बातचीत करते हैं। प्रेज़ेंटेशनल में बोलकर या लिखकर अपने विचार श्रोता गणों तक पहुँचाते हैं।

इसके बाद संस्कृति (cultures) है, जिसे जानना विद्यार्थियों के लिए बहुत ज़रूरी है, ताकि वे विदेशी भाषा के संदर्भ में सही निर्णय ले सकें। यहाँ एक किस्सा याद आया, जब एक हिंदी शिक्षक श्री कुमार साहब ने पहले पहल पढ़ाना शुरू किया था, तो उन्होंने अपनी कक्षा को बताया 'हेलो' को हिंदी में 'नमस्ते' कहते हैं, लेकिन वे यह बताना भूल गए कि 'नमस्ते' का प्रयोग अपने हम–उम्र के लोगों के साथ नहीं किया जाता।

उनकी छात्रा जब भारत गई, तो जैसे अमेरिका में 'हेलो' का प्रयोग सबके साथ करते हैं, वैसे ही 'नमस्ते' का करने लगी, जिसका नतीजा यह हुआ कि जिस परिवार के साथ वह रहती थी, उसमें एक लड़का जो उसका हम–उम्र था, उसने उसे टोक दिया और कहा "तुम मुझे 'नमस्ते' क्यों करती हो वह भी रोज़ाना?"

उसने कहा "फिर क्या कहूँ?"

"कुछ नहीं या सिर्फ़ 'हाय' या 'कैसे हो' चलेगा।"

उस छात्रा ने अपने शिक्षक को उसी दिन ई–मेल किया और पूछा कि 'नमस्ते' का इस्तेमाल कैसे करना है? कुमार साहब को अपनी भूल पर बड़ी शर्म आई और तब से वे जब संस्कृति के बारे में बताते हैं, तो यह भी बताते हैं कि उसका इस्तेमाल कैसे और कब करना है।

इसी तरह अगर कोई कहे, "और खाना लीजिए"

लेकिन आपका पेट भर गया हो, तो कैसे आदरपूर्वक और खाना देने से मना किया जा सकता है। अन्यथा सामने वाला आपकी प्लेट भरता जाएगा और पेट फटने की नौबत आ जाएगी।

फिर दूसरा स्तम्भ है, विषयों से सम्बंध (connections), जिसमें अन्य विषयों के साथ सम्बंध जोड़ा जाता है। भाषा सीखने में राजनीति, विज्ञान, इतिहास, गणित, प्रौद्योगिकी, अर्थशास्त्र आदि विषयों को भी समेटा जा सकता है, जिससे विद्यार्थी उसे अपने काम से जोड़ सकें और अपनी भाषा का दायरा बढ़ाते जाएँ, जैसे ताज़े समाचार के ज़रिए उनको राजनीति और समसामयिक खबरों से अवगत कराया जा सकता है और इतिहास के बारे में बताकर उनकी रुचि मुगलों से लेकर हड़प्पा संस्कृति में जागृत की जा सकती है, वे इसकी तुलना अपने देश के इतिहास से भी कर सकते हैं।

पहेलियों, कहानियों, गानों या वस्तुओं के हवाले से गिनती, जोड़, घटा, गुणा, भाग करना भी सिखाया जा सकता है। जैसे 'तेज़ाब' फ़िल्म का गाना 'एक दो तीन' या ख़रीद–फ़रोख़्त की बातचीत करते हुए पैसों का हिसाब–किताब करना इत्यादि।

तकनीक का प्रयोग करने का एक उदाहरण है भारत से सम्बंधित वस्तुओं जैसे ताजमहल, कमल, अशोक स्तंभ का '3 D printing' करके उसके बारे में एक प्रस्तुति देना। इससे विद्यार्थी देख सकते हैं कि हिंदी भाषा का उपयोग कितना व्यापक हो सकता है। इसमें बहुत आनंद भी है।

अगला स्तम्भ है तुलना (comparisons), जिसमें लक्षित भाषा और मातृभाषा की संरचना और संस्कृति की तुलना की जाती है। उदाहरण के लिए यदि हम कक्षा में भारत का खाना बना रहे हैं, तो विद्यार्थी अपने देश के खाने की तुलना भारत के खाने से कर सकते हैं, जिससे उनकी विश्लेषण करने की क्षमता बढ़ेगी।

फिर है भाषा–समूह (communities) से कक्षा को जोड़ना क्योंकि इससे विद्यार्थी भाषा का सही मायनों में इस्तेमाल करना सीख सकेंगे। इसके लिए किसी स्थानीय हिंदी भाषी कलाकार को कक्षा में बुलाया जा सकता है, जैसे नाट्यकर्मी, साहित्यकार, चित्रकार, संगीतकार, गीतकार, पत्रकार आदि, जो उन्हें अपनी कला तो सिखाए ही, साथ ही कला के संदर्भ में भाषा का प्रयोग

भी करे। अगर यह सम्भव न हो पाए, तो स्काइप, हैंगआउट, ज़ूम जैसी तकनीकों के ज़रिए भी विद्यार्थी दूर बैठे हिंदी–भाषी से वार्तालाप कर सकते हैं।

इसके लिए बहुत ही अच्छा होगा अगर कक्षा के विषय से जुड़े हुए भाषा–समूह को आमंत्रित किया जाए, जैसे अगर विषय है समाचार–पत्र, तो किसी पत्रकार से सम्पर्क करके उसे कक्षा में बुलाया जा सकता है और वह समाचार–पत्र के बारे में और अपने काम के बारे में बता सकता है और विद्यार्थी उनसे कुछ सवाल पूछ सकते हैं या उन्हें ई–मेल कर सकते हैं। कई बार शिक्षक भारत में काम कर रहे गैर–सरकारी संस्थानों से भी अपने विद्यार्थियों की बात करवाते हैं, जिससे उनकी सामाजिक न्याय के विषयों पर जागरूकता बढ़ती है। यह अनुभव विद्यार्थियों के लिए जीवन–भर याद रखने वाली बात होती है और इसके प्रभाव और परिणाम दूरगामी होते हैं।

इसके अलावा ACTFL अमेरिका में हर साल क्रिटिकल भाषाओं का एक बहुत विशाल सम्मेलन भी करवाता है, जिसमें शिक्षक अपने भाषा सम्बंधित शोध और विचारों से दूसरों को अवगत कराते हैं।

हिंदी–उर्दू स्नातकोत्तर कार्यक्रम

अमेरिका में हिंदी–उर्दू शिक्षण–शास्त्र में स्नातकोत्तर का एक विशिष्ट डिग्री का कार्यक्रम 2016 से शुरू हुआ है, जो 'कीन विश्वविद्यालय' (Kean University) में होता है। यह दो साल का कार्यक्रम है और इनमें ऑनलाइन और ऑनसाइट कक्षाएँ शामिल हैं। इसमें भाषा–विज्ञान और साहित्य पर ज़ोर दिया जाता है, जिन लोगों ने इन कार्यक्रमों में भाग लिया और उत्तीर्ण भी हुए, उन्हें नौकरियाँ मिलने में आसानी हुई। यह कार्यक्रम अभी शैशव काल में ही है और स्टारटॉक के अनुदान से चलता है, जिससे इसके कार्यक्रम शुल्क में छात्रों को बड़ी रियायत मिलती है।

विश्वविद्यालय प्रशिक्षण

वैसे हर विश्वविद्यालय स्वयं भी हर सत्र में अपने शिक्षकों को कई तरह के भाषा से सम्बंधित प्रशिक्षण देने का प्रावधान रखता है, जो पूरी तरह से वैकल्पिक होता है। अक्सर ऐसे प्रशिक्षण में अपने ही विश्वविद्यालय के अन्य शिक्षकों से मिलने का मौका मिलता है और साथ ही प्रशिक्षक विश्वविद्यालय से ही होते हैं, तो उनसे बाद में भी ई–मेल के द्वारा सवाल पूछा जा सकता है या व्यक्तिगत रूप से मिला जा सकता है।

सबसे ज़्यादा दिलचस्प होता है नए तकनीक और टूल के उपयोग से सम्बंधित प्रशिक्षण, उदाहरण के लिए 'ड्यूक विश्वविद्यालय' में श्रवण के लिए एक नए टूल 'प्ले–पॉज़िट' (PlayPosit) के बारे में बताया गया, जिससे विद्यार्थी को एक वीडियो या ऑडियो की क्लिप दी जा सकती है और वीडियो को बीच में काट–छाँटकर वीडियो के बीच–बीच में ही प्रश्नों को डाला जा सकता है, वह भी हिंदी में। विद्यार्थी इसमें बहु–विकल्प वाले प्रश्न, खाली स्थान भरना, मत देना, अपने विचार बताना जैसे प्रश्नों का जवाब आसानी से लिखकर या बोलकर दे सकते हैं। विद्यार्थी वीडियो को बार–बार सुन सकते हैं और यह टूल ग्रेडिंग भी कर देता है। इसी तरह के नए–नए शोध और टूल के बारे में जानकारी विश्वविद्यालय खुद ही मुहैया करवाता है।

सालटा

इसके अलावा सालटा (The South Asian Language Teachers Association) हर साल सम्मेलन कराता है, जिसमें सभी भारतीय भाषाओं जैसे तमिल, बांग्ला, तेलुगू, गुजराती, पंजाबी के शिक्षक मिलते हैं और अपने शिक्षण की नई पद्धति से अवगत कराते हैं और एक दूसरे का सहयोग करते हैं। इसी तरह के कई और भी सम्मेलन हैं, जिसमें बड़ी संख्या में हिंदी के शिक्षक भाग लेते हैं, जिसमें 'निक्कलटिक्कल' NCOLCTL (National Council of Less Commonly Taught Languages), 'आस' AAS (The Association for Asian Studies), International Hindi Conference और The Annual Conference on South Asia प्रमुख हैं।

ये सभी सम्मेलन अक्सर अमेरिका के अलग–अलग शहरों में होते हैं और इनकी तारीखें भी हर वर्ष बदलती रहती हैं। इनमें जाने से हिंदी के शिक्षकों में एक समूह (community) की भावना आती है और वे एक दूसरे से मेल–जोल बढ़ाते हैं और एक दूसरे की सहायता करते हैं।

लगभग ये सभी संगठन भाषा से संबंधित सम्मेलन करवाने के साथ–साथ पत्रिकाएँ भी निकालते हैं, जिसमें वे भाषा से

सम्बंधित शोध–पत्रों का प्रकाशन करते हैं। यदि कोई चाहे तो इसमें अपना शोध प्रकाशित करवाकर, अपने विचार दूसरों से साझा कर सकता है, लेकिन सम्मेलन और पत्रिका दोनों की भाषा अंग्रेज़ी ही होती है, जिससे अन्य भाषा–भाषी भी इसे पढ़ सकें और इसका लाभ व्यापक हो सके। इन सभी कार्यक्रमों को देखकर यही लगता है कि अमेरिका में हिंदी अपने पैर मज़बूती से जमाने में सफल हो रही है।

संदर्भ :

पत्र–पत्रिकाएँ

1. गंभीर, विजय. 2017. ''अमेरिका में हिंदी–शिक्षण व प्रशिक्षण''. विश्व हिंदी पत्रिका, मॉरीशस, पृष्ठ 85
2. गंभीर, सुरेन्द्र. 2011 ''अमेरिका में हिंदी शिक्षण की लहर: हम कितना आगे कितना पीछे''. विश्व हिंदी पत्रिका, मॉरीशस, पृष्ठ 8.
3. पैन्यूली, अर्चना. 2018. ''विदेशों में हिंदी शिक्षण की चुनौतियाँ''. बहुवचन (जुलाई–सितंबर), महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
4. बेदी, सुषम. 2010. ''अमेरिका में हिंदी–एक सिंहावालोकन''. विश्व हिंदी पत्रिका, मॉरीशस, पृष्ठ 19.

वेबसाइट :

1. Can do statements, ACTFL, 2020, accessed 19 March 2020, <https://www.actfl.org/publications/guidelines-and-manuals/ncssfl-actfl-can-do-statements>
2. World-readiness standards ACTFL, 2020, accessed 20 March 2020, <https://www.actfl.org/publications/all/world-readiness-standards-learning-languages>
3. 3D printing in Hindi, Duke University, 2019, accessed on 24 December 2019, <https://learninginnovation.duke.edu/blog/2019/11/dukes-hindi-students-use-3d-printing-to-connect-with-culture-and-language/>
4. Hindi and Urdu language pedagogy (M.A. program), 2016, Kean University-New Jersey, accessed on 1 February 2020, <https://www.kean.edu/academics/programs/hindi-and-urdu-language-pedagogy-ma>
5. STARTALK National Foreign Language Center, 2020, University of Maryland, accessed on 14 April 2020, <https://startalk.umd.edu/public/about>
6. South Asian Language Teachers Association, 2008, SALTA, accessed on 15 April 2020, <http://salta.uchicago.edu/SALTA_ISSUE_1.pdf>
7. A sample lesson plan STARTALK, 2015, accessed on 26 April 2020, <Travel lesson plan>

kusumknapczyk@gmail.com

मॉरीशस की प्राथमिक पाठशालाओं में हिंदी की पढ़ाई

– सुश्री आरती हेमराज़
मॉरीशस

यह सर्वमान्य है कि प्राचीनकाल से ही मनुष्य ने प्रगति की है। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि निस्संदेह भाषा ही रही है। लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य है कि कोई भी भाषा तब तक कारगर नहीं हो सकती है, जब तक कि वह व्यक्ति की अपेक्षाओं की कसौटी पर खरी नहीं उतरती है। इस संदर्भ में श्री भारतेंदु हरिश्चंद जी का कथन है :

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा–ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।''

यह उक्ति निश्चित रूप से हिंदी भाषा के महत्त्व पर चिंतन–मनन करने के लिए हमें बाध्य करता है। इतिहास इस बात की साक्षी है कि हमारे बहुजातीय एवं बहुसांस्कृतिक मॉरीशस में हिंदी भाषा का फलित व पुष्पित होना कोई संयोग की बात नहीं है, वरन् यह हमारे पूर्वजों के संघर्ष का प्रतीक है। इसके साथ ही पंडित विष्णुदयाल, काशीनाथ किश्तो, प्रोफ़ेसर रामप्रकाश आदि बहुप्रचलित महानुभाव हुए, जिनके योगदान से हिंदी भाषा प्रगति की राह पर चल पड़ी।

प्रसन्नता की बात है कि समकालीन परिस्थितियों में हिंदी भाषा का पठन–पाठन हमारी सरकारी पाठशालाओं अर्थात् प्राथमिक, माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयों में औपचारिक और नियमित रूप से हो रहा है।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि सन् 1963 में सरकार ने प्राथमिक पाठशालाओं की छठी कक्षा में हिंदी भाषा की परीक्षा का आयोजन किया। उस समय पर लिया गया यह निर्णय हमारे लिए हिंदी के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए पहला पड़ाव रहा।

अब हमारे मन–मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि प्राथमिक स्तर पर हिंदी भाषा की क्या उपलब्धि रही है? कुछ लोगों के मतानुसार अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं की तरह हिंदी कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ रही है। इस बात में दो राय नहीं कि हिंदी भाषा के विकास में सन् 2004 एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। अनेक हिंदी प्रेमियों के कठिन परिश्रम व कृपा से छठी की परीक्षा के श्रेणीकरण में हिंदी को उचित मान्यता मिली। निस्संदेह, हिंदी भाषा–भाषियों के लिए यह एक स्वर्णिम अवसर रहा। परिणामस्वरूप, अभिभावक अपने बच्चों को हिंदी के पठन–पाठन के प्रति प्रेरित कर रहे हैं। इसके साथ ही हिंदी शिक्षकों के लिए सरकार ने उचित प्रशिक्षण के लिए भी व्यवस्था की है। सरकार द्वारा ऐसी प्रणाली का प्रबंध हुआ है, जिसके अनुरूप गैर हिंदी भाषा–भाषी भी हिंदी की पढ़ाई कर सकते हैं। यह अपने आप में एक सराहनीय कदम है। इससे यही स्पष्ट होता है कि हमारी सरकार हिंदी भाषा के शिक्षण पर बल दे रही है।

इस आधुनिक युग में अगर मॉरीशसीय सरकार ने औपचारिक रूप से प्राथमिक स्कूलों में हिंदी–शिक्षण को सम्मिलित किया है, तो इसके कुछ विशिष्ट उद्देश्य हैं, जो मुख्य रूप से इस प्रकार हैं :

1. विद्यार्थी की योग्यताओं को सही रूप में परखना और उनको पाठ्यक्रम के अनुसार ग्रहण कराना

2. विद्यार्थियों के विभिन्न कौशलों अर्थात् श्रवण, भाषण, वाचन और लेखन कौशलों को विकसित कराना

3. विद्यार्थियों को पठित तथ्यों व रचनाओं को आधार बनाकर, उनकी भावाभिव्यक्ति विकसित कराना। कहने का अभिप्राय यह है कि उनकी छिपी हुई कलाओं को विकसित कराना।

इस विश्वव्यापीकरण की दौड़ में प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों के लिए हिंदी के लिए उचित पाठ्य–पुस्तकें एवं पाठ्यक्रम हैं। उचित पाठ्य–पुस्तक की महत्ता के बारे में रिस्क ने बताया है :

"The modern text-book, however, is an instrumental asset that has a valuable place in the modern school room, if it is rightly used. The modern text-book on the

whole, represents better planning than the inexperienced teacher can hope to equal." - Risk

इसके उपरांत, पाठशालाओं में बच्चों के लिए दृश्य–श्रव्य साधन जैसे कम्पयूटर, टेब्लेट, टेलीविजन आदि की व्यवस्था हैं, जिनमें हिंदी व्याकरण, गद्य–लेखन, कहानी, कविता आदि विषय सम्मिलित हैं। इन सब में से आवश्यक बात यह है कि प्राथमिक स्तर पर हिंदी विषय के अंतर्गत बाल–मनोविज्ञान पर ध्यान केंद्रित करते हुए, बच्चों के सर्वांगीण विकास अर्थात् शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास पर बल दिया जाता है।

प्राथमिक स्तर पर होने वाली हिंदी की पढ़ाई पर एक दृष्टि :

शुद्ध उच्चारण की शिक्षा

यह ध्यातव्य है कि जब छात्र पहली कक्षा में प्रवेश करता है, तब अध्यापिका या अध्यापक मुख्य रूप से श्रवण और भाषण कौशल को विकसित करते हैं। अध्यापिका या अध्यापक बाद में लिपि की शिक्षा देते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि छात्रों को शुद्ध उच्चारण कैसे सिखाया जाए?

सबसे पहले, अध्यापक आदर्श उच्चारण करते हैं, फिर बच्चे उनका अनुकरण करते हैं। कभी–कभी वीडियो, टेपरिकॉर्डर आदि उपकरणों द्वारा भी शुद्ध उच्चारण सिखाते हैं। कक्षा–अध्यापक को यह भी ध्यान देना नितांत आवश्यक है कि वर्णमाला को सिखाते समय आसान वर्णों से शुरू करें, जैसे 'अ', 'आ', फिर कठिन वर्णों से परिचित कराएँ।

अध्यापक को हमेशा बच्चों को अर्द्ध–स्वरों एवं अर्द्ध व्यंजनों से परिचित कराना चाहिए। फिर बाद में बच्चों को संयुक्त अक्षरों पर ध्यान देना चाहिए। इस कार्य को भली–भाँति करने के लिए अध्यापक विश्लेषण विधि को अपना सकते हैं, जिससे कि छात्र गण शुद्ध उच्चारण करने में सफल हों। और तो और अध्यापक को बच्चों को यह भी बताना परम आवश्यक है कि कौन–सा अक्षर मुख के किस भाग से उच्चरित होता है, इससे बच्चों को उच्चारण करने में आसानी होती है। अध्यापक को उच्चारण की शिक्षा देते समय हमेशा सस्वर उच्चारण से आरम्भ करना चाहिए, व्यक्तिगत और टोलीगत उच्चारण की विधि अपनानी चाहिए। इससे बच्चों को बोलने की प्रेरणा मिलती है।

अब हमारे मन–मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि शुद्ध उच्चारण को कैसे परख सकते हैं?

इसके लिए अध्यापक कक्षा में उच्चारण प्रतियोगिताएँ, भाषण एवं संवाद प्रतियोगिताएँ आदि का प्रयोग कर सकते हैं।

लिपि की शिक्षा

प्राथमिक स्कूलों में लिपि की शिक्षा पर बहुत बल दिया जाता है। छात्र जहाँ बोलकर अपने मन की बातों को प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार वह लिपि के माध्यम से भी अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। प्राथमिक पाठशालाओं में लिपि की शिक्षा बहुत ही प्रभावशाली और मनोवैज्ञानिक ढंग से दी जाती है। पहली कक्षा से ही बच्चों को लिखने की रुचि पैदा कराते हैं। उन्हें लिखने व सही प्रकार से कलम पकड़ने का ढंग बताते हैं। अध्यापक उचित वातावरण स्थापित करके, बच्चों को मनोरंजक साधनों जैसे रंगीन कलम, रंगीन कागज़, चित्र, रंगीन खिलौने आदि देते हैं।

अध्यापक बच्चों को चित्रों के माध्यम से आड़ी, सीधी, गोल, टेढ़ी आदि लकीरें बनाने की प्रक्रिया सिखाते हैं।

कभी–कभी अध्यापक रंगीन कागज़ों के टुकड़ों को काटकर उनपर अक्षर लिखकर उन्हें कैंची से काटने को कहते हैं।

कुछ अध्यापक अक्षरों की अभ्यास पुस्तिका का भी प्रयोग करना उचित समझते हैं। यह ध्यान देना आवश्यक है कि चित्रों के माध्यम से भी अक्षरों से परिचित कराया जा सकता है। जैसे :

अ – अनार , आ – आम आदि।

वाचन की शिक्षा

वाचन भाषा–शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वाचन की शिक्षा पर अपने विचार देते हुए एक विचारक ने कहा है :

''लिपि–संकेतों को देखने, पहचानने, समझने, मन स्थिर करने और अर्थ ग्रहण करने की प्रक्रिया को वाचन कहते हैं।''

प्राथमिक कक्षाओं में पठन की प्रक्रिया मुख्य रूप से इस प्रकार से होती है :

1. सर्वप्रथम, पाठ से संबंधित बालक के पूर्वज्ञान को परखा जाता है। बच्चों से वार्तालाप करके, उचित वातावरण स्थापित

करके उनको पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

2. उसके बाद, अध्यापक सहायक सामग्री द्वारा नवीन शब्दों का परिचय देते हैं। ध्वनि, विभेदीकरण को माध्यम बनाकर अध्यापक छात्रों को ध्वनियों और शुद्ध उच्चारण व अंतर बताते हैं।

3. यह कहना अनिवार्य है कि प्राथमिक कक्षाओं में पहले अध्यापक आदर्श वाचन करता है, फिर बच्चों द्वारा अनुकरण व सस्वर वाचन कराते हैं। उसके बाद अध्यापक द्वारा अशुद्धियों का निवारण किया जाता है।

शब्द भण्डार एवं नवीन शब्दों को सिखाते समय, अध्यापक शब्दों का विश्लेषण व अवलोकन करते हैं। और तो और अध्यापक यह भी परखते हैं कि छात्र ने शब्दों के अर्थ को कितना ग्रहण किया।

व्याकरण की शिक्षा

व्याकरण की शिक्षा के महत्त्व पर पं. लज्जाशंकर झा का कहना है :

''भाषा का शुद्ध रूप पहचानने में छात्रों को सक्षम व समर्थ बनाना ही व्याकरण का उद्देश्य है। इस प्रकार व्याकरण से शुद्ध बोलना एवं लिखना आ जाता है।''

पं. सीताराम चतुर्वेदी जी के मतानुसार :

''व्याकरण की शिक्षा भाषा की शिक्षा का एक आवश्यक और अपरिहार्य अंग है।

भाषा को शुद्ध बनाए रखने का काम व्याकरण का ही है।''

अतः इन विचारों के अनुसार स्पष्ट हो जाता है कि प्राथमिक स्कूलों में व्याकरण की शिक्षा एक अनिवार्य तत्त्व है। इस बात को कदाचित नकारा नहीं जा सकता है कि हमारे प्राथमिक स्कूलों में हिंदी व्याकरण के पठन–पाठन की प्रक्रिया बहुत ही व्यवस्थित रूप से होती है। स्कूलों में मुख्य रूप से इन विधियों का प्रयोग होता है

1. सूत्र प्रणाली :

इस विधि के अनुसार, पहले बच्चों को नियम के बारे में बताते हैं, फिर उदाहरण देकर बच्चों को प्रयोग करने की विधि बताते हैं।

2. खेल–विधि :

खेल विधि के अंतर्गत बच्चे खेलते हुए व्याकरण सीखते हैं। इससे व्याकरण की शिक्षा और भी रोचक हो जाती है।

3. आगमन विधि :

इस विधि व प्रणाली को अपनाकर अध्यापक पहले उदाहरण देते हैं, फिर वह बच्चों को व्याकरण के नियम समझाते हैं।

4. पाठ्य–पुस्तक प्रणाली :

इस प्रणाली द्वारा अध्यापक पाठ्य–पुस्तक का उपयोग कर व्याकरण का ज्ञान प्रदान करते हैं। इन पाठ्य–पुस्तकों में पहले नियम बताए जाते हैं, उसके बाद उदाहरण दिए जाते हैं। उदाहरण के द्वारा व्याकरण के सिद्धांतों को स्पष्ट किया जाता है।

शब्द–लेखन

प्राथमिक कक्षाओं में अध्यापक वर्ण माला या फिर अक्षरों को सिखाने के बाद ही, बच्चों को शब्द लिखना सिखाते हैं। पहले अध्यापक दो अक्षरों से बने शब्द, फिर तीन अक्षरों आदि से बने शब्दों को सिखाते हैं। शब्द–लेखन कार्य में उच्चारण पर बहुत बल दिया जाता है, क्योंकि जिस प्रकार शब्द उच्चारण होगा, वैसे ही शब्द को लिखा जाएगा। अध्यापक बच्चों को पढ़ने और लिखने का अधिक अवसर देते हैं, जिससे कि छात्र शब्द–लेखन में निपुण हो। कभी–कभी अध्यापक श्रुतलेख, अनुलेख, प्रतिलेख, लिखित कार्यों का सम्यक सुधार आदि भी करते हैं, ताकि छात्र लेखन–कार्य में सफल हों।

वाक्य–लेखन

शब्द–लेखन सीखने के बाद ही अध्यापक बच्चों को वाक्य–लेखन सिखाते हैं। कारण यही है कि शब्दों के समूहों को जोड़ने से वाक्य बनता है। प्राथमिक पाठशालाओं के पाठ्यक्रम का अनुशीलन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि अध्यापक सबसे पहले बच्चों को सरल या साधारण वाक्य लिखना सिखाते हैं, जैसे 'यह लड़का है', 'यह लड़का उठता है' आदि। सरल वाक्य–लेखन सिखाने के बाद ही अध्यापक बच्चों को संयुक्त वाक्य–लेखन की विधि से परिचित कराते हैं, जैसे कि दो

वाक्यों को 'और' शब्द का प्रयोग करके संयुक्त वाक्य लिखाना। उदाहरणार्थ–

'यह लड़का उठता है और वह तैयार होता है।'

'यह लड़का उठता है और वह पानी पीता है।'

सरल और संयुक्त वाक्यों को सिखाने के बाद ही विशेषकर पाँचवीं और छठी कक्षाओं में मिश्रित वाक्य लेखन सिखाया जाता है। उदाहरण :

'लड़के ने उठकर कहा कि वह बस्ता लेकर पाठशाला जा रहा है।'

परिच्छेद–लेखन

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि जब छात्र वाक्य लिखना सीख जाता है, तब अध्यापक उसको परिच्छेद–लेखन सिखाते हैं। इसमें अध्यापक मुख्य रूप से किसी कार्य या किसी चीज़ को करने के क्रम के बारे में पूछते हैं, जिससे कि परिच्छेद–लेखन आसान हो। उदाहरणार्थ :

'लड़का उठता है। वह स्नानघर में स्नान करता है। फिर वह स्कूल के लिए तैयार होता है। उसके बाद, वह नाश्ता करता है। नाश्ते के बाद वह बस्ता लेकर स्कूल जाता है। स्कूल में वह बस्ता रखकर जुटाव में भाग लेता है।'

निबंध–लेखन / रचना–शिक्षण

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि प्राथमिक स्तर पर निबंध–लेखन की प्रक्रिया पाँचवीं तथा छठी कक्षा में की जाती है। प्राथमिक कक्षाओं में रचना–शिक्षण बहुत आवश्यक है, क्योंकि इससे छात्र अपने विचारों तथा भावनाओं को शब्दों के माध्यम से बड़े ही कलात्मक रूप से प्रस्तुत करते हैं। निबंध–लेखन पर अपना विचार देते हुए चेम्पसन ने कहा है :

"The ultimate aim of composition is to enable the pupil to arrange his own ideas, in his own way freely, to choose his own words, to express his own ideas freely." - Champson

प्राथमिक स्कूलों में जब अध्यापक बच्चों को निबंध–लेखन सिखाते हैं, तब वह मुख्य रूप से प्रश्नोत्तर विधि अपनाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अध्यापक रचना से जुड़े प्रश्न पूछते हैं, जैसे – कब?, क्यों?, कहाँ?, कैसे?, कितने? आदि। फिर बाद में अध्यापक गूढ़ बातों तक पहुँचते हैं।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि अध्यापक रचना–लेखन प्रक्रिया में चित्र–वर्णन प्रणाली और उद्‌बोधन प्रणाली, तर्क प्रणाली, आदर्श प्रणाली आदि का प्रयोग करते हैं, ताकि बच्चों की काल्पनिक क्षमता में वृद्धि हो। इन विधियों को अपनाने से बच्चों की विचार–शक्ति बढ़ती है।

कविता–शिक्षण

अनेकानेक शिक्षाविदों व विचारकों के अनुसार कविता–शिक्षण प्राथमिक कक्षाओं में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कविता–शिक्षण के उद्देश्य पर अपने विचार देते हुए हादो (Hadow) ने कहा है :

''यदि हम अपने विद्यार्थियों में सौंदर्य–संवेदन उत्पन्न कर सकें, जिससे कि जब वे हमें छोड़ें, तब वे सभी चीज़ों में सौंदर्य की ओर स्वाभाविक रूप से उन्मुख हो जाँए–ध्वनि एवं दृश्य में, विचार एवं कार्य में – तब हम शिक्षा के उच्चतम उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे।''

यह कहना उचित है कि हमारी प्राथमिक पाठशालाओं में मुख्य रूप से कविता को गीत–प्रणाली, अभिनय प्रणाली, रसास्वादन विधि, शब्दार्थ कथन विधि आदि अपनाकर सिखाया जाता है।

कविता सिखाते समय अध्यापक को यह ध्यान देना आवश्यक है कि प्रस्तावना को रोचकता के साथ और आकर्षक रूप में प्रस्तुत करें। इससे बच्चों में उत्सुकता उत्पन्न होती है और बच्चे कविता सुनना चाहेंगे। सर्वप्रथम, अध्यापक द्वारा आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से कविता का पठन होता है। अध्यापक को उचित हाव–भाव, गति, लय, भावानुकूल एवं उचित आरोह–अवरोह के साथ ही कविता का प्रस्तुतीकरण करना चाहिए। उसके बाद, बच्चों द्वारा सस्वर, टोलीगत एवं व्यक्तिगत वाचन होता है। वाचन के बाद, अध्यापक कविता के शब्दों के अर्थ स्पष्ट करके नवीन शब्दों का विश्लेषण करते हैं। उसके बाद अध्यापक पुनः कविता का रसास्वादन कराते हैं।

गद्य–शिक्षण

प्राथमिक कक्षाओं में गद्य शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण अंग है। गद्य–शिक्षण की प्रक्रिया मुख्य रूप से इस प्रकार हैं :

1. पहले, अध्यापक छात्रों के पूर्व ज्ञान को परखते हैं।

2. फिर पाठ की प्रस्तावना की ओर बढ़ते हैं।

3. उद्देश्य कथन के बाद, अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन होता है। उसके बाद, बच्चों द्वारा अनुकरण, व्यक्तिगत एवं टोलीगत वाचन होता है।

4. वाचन प्रक्रिया के बाद ही, अध्यापक बच्चों को नवीन शब्दों का बोध कराते हैं और शब्दों का विश्लेषण कराते हैं।

5. अध्यापक सहायक सामग्री (चित्र/दृश्य–श्रव्य साधनों) द्वारा शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

6. यह ध्यान देने योग्य है कि अध्यापक द्वारा वाक्यों, समान शब्दों, विलोम शब्दों आदि द्वारा शब्दों के अर्थ समझाते हैं। कभी–कभी व्याख्या द्वारा मुहावरों के अर्थ समझाए जाते हैं।

वाचन एवं शब्दों की व्याख्या करने के बाद विचारों का विश्लेषण कराया जाता है। इसके उपरांत अध्यापक नवीन शब्दों को श्वेतपट पर लिखकर संधि–विच्छेद, उपसर्ग आदि से बने शब्दों का ज्ञान देते हैं। इसके बाद, अध्यापक कक्षा कार्य एवं गृहकार्य देते हैं।

कहानी–शिक्षण

कहानी–शिक्षण, हिंदी–शिक्षण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कहानी के द्वारा बच्चा न केवल भाषा अर्जित करता है, अपितु शिक्षा, नैतिकता, आनंद एवं मनोरंजन भी पाता है। प्राथमिक स्तर पर कहानी–शिक्षण के अंतर्गत कहानी का चुनाव करना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। अध्यापक को कहानी की भाषा और कहानी कहने की शैली पर आवश्यक ध्यान देना चाहिए। प्राथमिक कक्षाओं में मूलतः कहानी से जुड़े चित्र बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करके ही कहानी पढ़ाई जाती है। अध्यापक चित्रों को दिखाकर उनसे जुड़े प्रश्न पूछते हैं। कहानी की शिक्षा देते समय अध्यापक कहानी को अलग–अलग सोपानों में विभाजित करते हैं। इसके पश्चात् अध्यापक कहानी से जुड़े प्रश्न पूछते हैं। फिर अध्यापक बच्चों को कक्षा के सामने आकर कहानी प्रस्तुत करने की प्रेरणा देते हैं। कहानी के संवादों को माध्यम बनाकर ही, अध्यापक बच्चों से अभिनय कराते हैं।

प्राथमिक स्तर पर हिंदी का शिक्षण भाषा के चार कौशलों को ध्यान में रखते हुए, क्रमिक रूप से होता है। इस संदर्भ में यह कहना आवश्यक बन जाता है कि

''तिनके–तिनके से घोंसला बनता है।
बूँद–बूँद से सागर भरता है।
और पाई–पाई से रुपया बढ़ता है।''

यदि अध्यापक कड़ी मेहनत करेंगे, पूरी तैयारी के साथ कक्षा में जाएँगे और सकारात्मक सोच अपनाएँगे, तो निश्चित ही हिंदी का भविष्य उज्ज्वल होगा।

aartee18jan@yahoo.com

हिंदी : विविध आयाम

22. हिंदी के प्रसार में कनाडा के हिंदू इंस्टीट्यूट का योगदान - डॉ. रत्नाकर नराले

23. असम में हिंदी का विस्तार : एक अनुशीलन - श्री जैनेंद्र चौहान

24. समय और सच की भाषा हिंदी - अजित्रा आर. एस.

25. पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक समन्वय में हिंदी - संगीता कुमारी पासी

26. भारतीय तथा वैश्विक पटल पर हिंदी में रोज़गार की संभावनाएँ - डॉ. पद्माकर पांडुरंग घोरपडे

27. फ़िजी हिंदी साहित्य सृजन : प्रो. सुब्रमनी के औपन्यासिक कृतियों का अवलोकन - श्रीमती सुभाषिनी एस. लता

28. न्यायपालिका और हिंदी : अवरोध और चुनौतियाँ - प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

हिंदी के प्रसार में कनाडा के हिंदू इंस्टीट्यूट का योगदान

– डॉ. रत्नाकर नराले
टोरंटो, कनाडा

क्षेत्रफल की दृष्टि से कनाडा उत्तरी अमेरिका महाद्वीप में स्थित संसार का दूसरा सबसे बड़ा देश है। अमेरिका के समान ही कनाडा की भी अधिसंख्य आबादी का संबंध यूरोप से ही है, फिर भी अन्य देश के लोगों के यहाँ पर आगमन और निवास के साथ ही उनकी भाषा और संस्कृति भी यहाँ पर आयी। भारत के लोगों के कनाडा में आगमन के साथ ही जो भाषाएँ यहाँ आईं, उनमें हिंदी भाषा भी थी और जिस प्रकार से भारत में हिंदी का आन्दोलन सशक्त होता गया, उसी क्रम में भारत के बाहर भी हिंदी को बल मिलता गया, जिसका एक सुंदर उदाहरण कनाडा देश है। कनाडा में रह रहे भारतवंशियों और उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं ने हिंदी के प्रचार एवं उसके साहित्य के संवर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कनाडा की एक ऐसी ही संस्था है – हिंदू इंस्टीट्यूट ऑफ़ लर्निंग, जिसका हिंदी के प्रचार में सराहनीय योगदान रहा है।

कनाडा में भारत से हिंदी बोलने वाले लोगों का आना बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध से आरंभ हुआ। मध्य में हिंदी बोलने वाला मनुष्य सौभाग्य से ही नज़र आता था। उत्तरार्द्ध में वह संख्या कुछ हज़ार हो गई और वही छोटा–सा समूह बढ़ते–बढ़ते आज एक बहुत बड़ा समुदाय बन गया है। 3 अगस्त, 2017 तक कनाडा में हिंदी जनों की संख्या 175,000 से अधिक हो गई।[1] सरकारी तौर पर कनाडा के (3 अगस्त, 2016) सेंसस में कनाडा की 140 प्रवासी भाषाओं में हिंदी का स्थान 2011 के 21वें क्रम से 2016 में 17वें क्रम पर आ गया है और हिंदी का विस्तार मुख्य चार भारतीय भाषाओं में सबसे तेज़ी से हुआ।[2]

निम्न तालिका में देखा जा सकता है कि हिंदी भाषा का विस्तार भारतीय भाषाओं में सबसे तेज़ है, तो फिर हिंदी भाषा का अर्थात् भाषा बोलने वालों का कनाडा में विस्तार किस अहम साधन से बढ़ा है, या बढ़ता है? 1969 में मैं जब यहाँ आया, तब हिंदी–भाषी, जो अल्प लोग यहाँ थे उनका हिंदी प्रचार–प्रसार का एक मात्र रूढ़िबद्ध ज़रिया था घरों में हिंदी कवि–सम्मेलन या हिंदी गोष्ठी करना। इस रूढ़िगत लोकरीति के अतिरिक्त, एक छोटा–सा हिंदी हितैषी मंडल बनाकर वे इस विषय पर बहुत चर्चा करते थे, किंतु निष्कर्ष यह निकला कि हिंदी कवि–सम्मेलन में हिंदी जानने वालों ने हिंदी जानने वालों को हिंदी कविता सुनाकर हिंदी–भाषी समागम तो सिद्ध किया, परंतु इसमें मात्र मनोरंजन या काव्य–कला प्रदर्शन ही हुआ। हिंदी का आदान–प्रदान तो हुआ, मगर इसमें हिंदी भाषा और हिंदी–भाषियों की संख्या का विस्तार तो शायद हुआ ही नहीं। इससे तो अच्छा है अगर

Immigrant mother tongues with more than 100,000 people in 2016, in Canada

Language	Rank in 2016	Rank in 2011	Change	2011	2016	Difference	Change from 2011 to 2016
				number			percent
Punjabi	3	1	-2	459,990	543,495	83,505	18.2
Urdu	9	12	+3	194,095	243,090	48,995	25.2
Tamil	16	16	0	143,395	157,120	13,725	9.6
Hindi	**17**	**21**	+4	106,305	133,925	27,620	26.0
Gujarati	18	22	+4	101,310	122,460	21,150	20.9

हिंदी नहीं जानने वालों को या हिंदी कम जानने वालों को हिंदी सिखाई जाए और हिंदी–भाषी बनाया जाए, तब सही मायने में हिंदी भाषियों की संख्या बढ़ेगी और हिंदी का विस्तार या सच्चा प्रसार हो सकेगा। इसी तत्त्व और तथ्य को सही साधन मानकर इस मंडल ने 1970 से टोरंटो के अहिंदी–भाषियों को हिंदी पढ़ाकर हिंदी–भाषी बनाने का पवित्र कार्य आरंभ कर दिया। 1969 में सारे कनाडा में केवल 2–4 हज़ार ही हिंदी–भाषी लोग थे, जो कि कनाडा के किसी भी सेंसस में नहीं गिने जाते थे। हिंदी शिक्षार्थी मात्र भारत के अहिंदी लोग ही नहीं थे, बल्कि उनसे भी अधिक संख्या में अंग्रेज़ी बोलने वाले गयाना, त्रिनिदाद, टोबेगो, जमैका, फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम के महाजन थे और कई सारे जिज्ञासु व खुले मन के भारतीय संस्कृति प्रेमी गोरे लोग भी थे, जिनको संस्था ने अपने साथ जोड़कर अपनी ओर आकर्षित करना शुरू किया।

उन दिनों साधनों और संख्या की कमी होने के कारण संस्था के सदस्यों ने अपने–अपने घरों से या दफ़्तरों से हिंदी कक्षाएँ आरंभ कीं। पढ़ाने की सामग्री हस्तलिखित और ब्लू–प्रिंट प्रति बनाकर करनी पड़ती थी और कोई उपाय नहीं था। भारत से पहली कक्षा की पुस्तकें लाकर देखी, मगर वे सभी हिंदी माध्यम से हिंदी सीखने की होने के कारण अहिंदी व अंग्रेज़ी लिखने–बोलने वालों के लिए सुविधाजनक व प्रभावशाली नहीं होती थी। ज़िरोक्स कॉपी तंत्र प्रचलित होते ही Books-India नामक गैर सरकारी संस्था स्थापित करके, Learn Hindi through English Medium पुस्तक लिखकर अहिंदियों में बाँटकर हिंदी भाषा के प्रसार का कार्य किया गया।

फिर धीरे–धीरे कनाडा के ओंटारियो प्रान्त की सरकार ने 1977 में हेरिटेज–लेंग्वेज–प्रोग्राम[3] की स्थापना करके हिंदी को गैर शासकीय भाषा के रूप में स्कूल–बोर्डों में भी पढ़ाने की अनुमति दी और टोरंटो की कुछ पाठशालाओं में हिंदी हेरिटेज के अंतर्गत हमारी पुस्तक के सहारे हिंदी के प्राथमिक वर्ग चलाने लगे। इस दिशा में महत्त्वपूर्ण घटना थी 1984 में हिंदी प्रेमी जगदीश चंद्र शास्त्री जी का केनिया से कनाडा में आना। भीष्म पितामह शास्त्रीजी ने यह मान लिया था और ठान भी लिया था कि हिंदी की सेवा के लिए सबसे पुण्य कार्य है अहिंदियों को हिंदी पढ़ाना और हिंदी–भाषी बनाना। वे स्वयं श्रेष्ठ हिंदी कवि थे, मगर कवि–सम्मेलन संस्था बनाने की बजाय, उन्होंने 1986 में टोरंटो के Bloor Street पर Ontario School of Indian Languages स्थापित करके स्वयं हिंदी पढ़ाना आरंभ कर दिया।

1989 में शास्त्रीजी का ध्यान समान ध्येयी संस्था Books-India पर गया और इन दो संस्थाओं की लम्बी बातचीत के बाद शास्त्रीजी के सहयोगी डॉ. व्यंकटाचार्य, डॉ. जॉर्ज गिबन्स, श्री बिहारी सिंह, श्री नवीन मेहता, श्री देव करनाहन, श्री जी.ए. कृष्णन जी के योगदान से हिंदू इंस्टीट्यूट ऑफ़ लर्निंग नामक संस्था पंजीकृत की गई। फिर 26 अक्टूबर, 1995 को पंजीकृत होकर वह चारिटेबल संस्था (Registered Charity No. 1014851–20C) हो गई, जिसके प्रधानाचार्य का पद Books-India के प्रो. रत्नाकर नराले को मिला। 1996 में 2411 Dundas Street West, Toronto पर संस्था का मुख्य कार्यालय खोला गया। संस्था की वेबसाइट (www.hilwebsite.com) बन गई और कनाडा के लोग बड़े पैमाने पर मुक्त हस्त से इसमें दान भी देने लग गए।

भारत से कनाडा रहने आकर अपने बच्चों को पैसे देकर हिंदी सिखाने का उत्साह और स्वहित दुर्भाग्यवश आम भारतीय हिंदी–भाषियों में नहीं था और वे हिंदू इंस्टीट्यूट से लाभ लेने में आगे नहीं आए। मगर हिंदी पढ़ने के शुभ कार्य का लाभ गैर हिंदियों ने, अभारतीयों ने और डायस्पोरा भारतीयों ने हिंदू इंस्टीट्यूट से खूब उठाया।

संस्था की वेबसाइट बन जाने के बाद संस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था 'ऑनलाइन हिंदी लर्निंग' की सुविधा प्रदान करना। इसके अंतर्गत हिंदी की सामग्री वेबसाइट पर उपलब्ध करा दी जाती थी, जो कि मुफ़्त में सबके लिए सुलभ होती थी। यह योजना काफ़ी लोकप्रिय हुई, जिसका अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि वर्ष में 10 लाख से अधिक बार और 25 से अधिक देशों में वेबसाइट को देखा जाता था। हिंदी के साथ ही संस्कृत का प्रचार एवं उसकी शिक्षा देना भी इस संस्था के कार्यों में शामिल था। 'संस्कृत विद्या परिषद्' नामक संस्था, जो कि हिंदू इंस्टीट्यूट के अंतर्गत कार्य करती थी, उसमें संस्कृत के विद्वानों के व्याख्यान आयोजित हुआ करते थे, जो कि एक घंटे का हुआ करता था। हर दूसरे महीने इसका सत्र होता था और इसके कुल 14 सत्र आयोजित हुए। संस्था के प्राधानाचार्य इसकी

अध्यक्षता किया करते थे। भारतीय भाषा एवं संस्कृति के प्रचार में इन आयोजनों ने प्रशंसनीय कार्य किए।

संस्था के प्रधानाचार्य का यश और संस्था की कीर्ति सुनकर टोरंटो के अनेकों मंदिरों और धार्मिक संस्थाओं ने हिंदू इंस्टीट्यूट को उनकी अपनी संस्थाओं में हिंदी, संस्कृत, संगीत, गीता की कक्षाएँ हिंदू इंस्टीट्यूट की ओर से चलाने के लिए निरंतर अनुरोध किया गया, जिसके आधार पर हिंदू इंस्टीट्यूट ने इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। एक समय में तो संस्था में चार सौ से अधिक 8 से 80 वर्ष तक की आयु के विद्यार्थी अन्यान्य कक्षाओं में पंजीकृत थे, जिनमें लगभग 75 प्रतिशत छात्र वेस्ट इंडीज़ के डायस्पोरा के लोग होते थे। संस्था में आयोजित होने वाले कार्यक्रमों के बाकायदा विज्ञापन निकाले जाते थे। उदाहरण के लिए कुछ विज्ञापन :

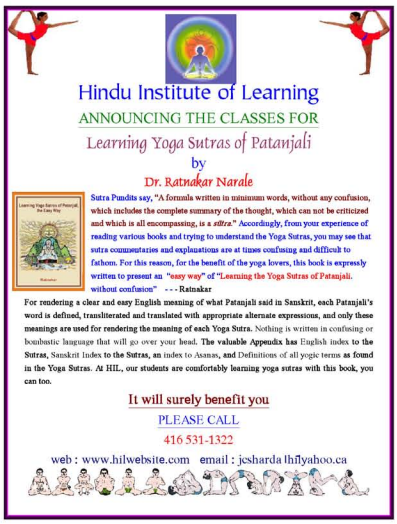

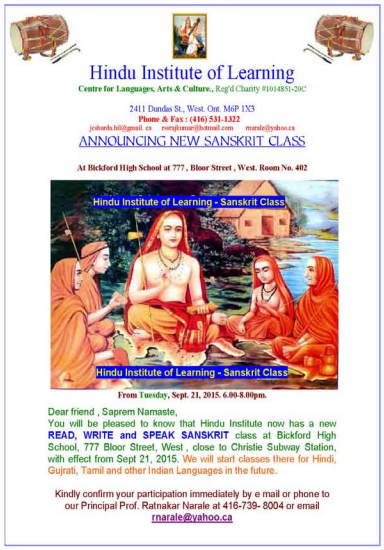

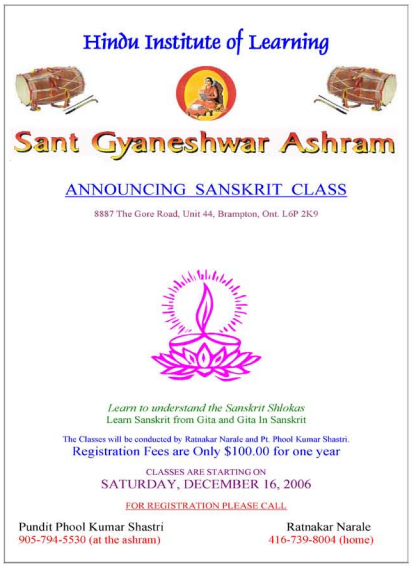

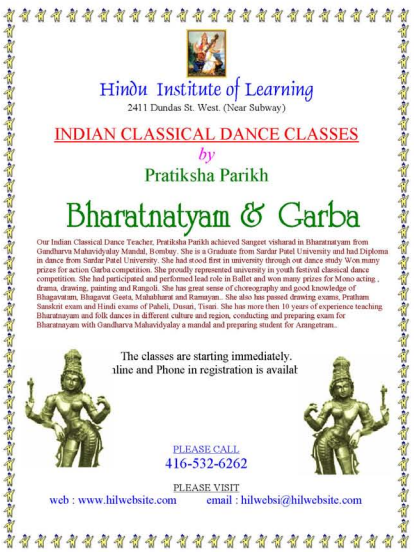

भारत से आकर स्वामी श्री गोविंद देव गिरि महाराज ने कनाडा के ब्रैम्प्टन उपनगर में श्री जेठ लाल जी की अध्यक्षता में संत ज्ञानेश्वर आश्रम स्थापित करके हिंदू इंस्टीट्यूट के प्रधानाचार्य को आशीर्वाद देकर आश्रम के भारत माता मंदिर में हिंदी और संस्कृत पढ़ाने का कार्य सौंप दिया गया। फलतः वहाँ हिंदू इंस्टीट्यूट की ओर से हिंदी, संस्कृत व गीता की कक्षाएँ प्रारंभ की गई, जो काफ़ी सफल रहीं तथा हिंदू इंस्टीट्यूट संस्था का वार्षिकोत्सव प्रति वर्ष आयोजित किया। यह आयोजन 2

अक्टूबर को होता था। इस आयोजन में जिससे कि महात्मा गांधी और लाल बहादुर शास्त्री दोनों महापुरुषों की जयंतियाँ भी एक साथ मनाई जाती थीं और साथ ही प्रीतिभोज व फंड-रेज़िंग का आयोजन होता था। इस कार्यक्रम में कनाडा के विशिष्ट व्यक्तियों को आमंत्रित किया जाता था। इस प्रकार के आयोजन लगभग 20 वर्षों तक होते रहे, जिनमें 400-500 लोगों की उपस्थिति कनाडा जैसे देश के लिए काफ़ी महत्व रखती है। इस प्रकार के वार्षिकोत्सव में संस्था द्वारा समर्पित लोगों को सम्मानित भी किया जाता था।

मुख्य रूप से डायस्पोरा भारतीयों में हिंदी, संस्कृत तथा गीता के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न की। इस संस्था ने लाखों लोगों में हिंदी का प्रचार कर हिंदी की असीम सेवा की। इस कार्य के लिए हिंदू इंस्टीट्यूट के अध्यक्ष श्री जगदीशचंद्र शारदा और प्रधानाचार्य डॉ. रत्नाकर नराले को 12 नवंबर 2017 को कनाडा के महानगर टोरंटो के उपनगर मारखम में मेयर फ्रेंक स्कारपिट्टी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए 'हिंदू-हेरिटेज-मंथ' के शानदार समारोह में 'हिंदू-रत्न' उपाधि प्रदान की गई। निःसंदेह कनाडा जैसे देश से हिंदी के प्रचार के प्रयास के लिए इस प्रकार की मान्यता को सराहनीय और प्रेरणादायी कहा जा सकता है।

हिंदू इंस्टीट्यूट कनाडा की एकमात्र संस्था है, जिसने

Musical genius Dev Bansraj awarded Sangeetacharya title

लगभग दो वर्षों से यह हिंदू इंस्टीट्यूट ऑफ़ लर्निंग संस्था हिंदू इंस्टीट्यूट फ़ाउंडेशन में तब्दील होने के कारण निदेशक मंडल के निर्णय के द्वारा अब फाउंडेशन में शिक्षा का विभाग समाप्त कर दिया गया है, फिर भी हिंदू इंस्टीट्यूट के हिंदी प्रचार–प्रसार के 25–30 वर्षों के अनमोल कार्य को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

संदर्भ :

1. https://www.google.ca/search?dcr=k0-sxsrf=kALeKk02jMrnu6_dJ1AHzzo5rLRImahGziw:3A1596909261131-ei=kzeYuX-zGB8rItQb10KCICQ&q=khow+many+Hindi+speaking+people+in+canada&oq=khow+many+Hindi+speaking+people+in+canada&gs_

असम में हिंदी का विस्तार : एक अनुशीलन

– श्री जैनेंद्र चौहान
गुवाहाटी, भारत

भारत के पूर्वोत्तर में अवस्थित असम सभ्यता व संस्कृति से पूरी तरह सम्पन्न है। पूर्वोत्तर सात बहनों – अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, असम, नागालैंड, मणिपुर, मिज़ोरम, त्रिपुरा और एक भाई सिक्किम का समूह है। इन राज्यों में असम सबके मध्य में स्थित है। असम का प्राचीन नाम 'प्रागज्योतिषपुर' और 'कामरूप' है। कामरूप राज्य का उल्लेख उत्तर प्रदेश के प्रयागराज में सबसे पहले समुद्रगुप्त के शिलालेख में मिलता है। असम के बारे में कहा जाता है – "असम नाम 'संस्कृत' भाषा से उद्भूत है, जिसका अर्थ है, जो समतल नहीं है अर्थात् असमतल है। कुछ लोगों की मान्यता है कि 'असम' संस्कृत के 'अस्म' अथवा 'असमा' से लिया गया है। कुछ विद्वानों का मानना है कि 'असम' शब्द संस्कृत के 'असोमा' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है अनुपम और अद्वितीय।"[1] वास्तव में असम अपने आप में अनुपम, अद्वितीय व अद्भुत है। यहाँ अनेक जातियों, उपजातियों और जनजातियों के लोग निवास करते हैं, जिनमें असमिया, बंगाली, बोडो, मिसीङ, आहोम, तीवा, देउरी, कार्बी, डिमासा आदि प्रमुख हैं। इन जातियों– जनजातियों के साथ हिंदी–भाषी राज्यों से आए हुए लोग भी यहाँ की संस्कृति के साथ घुलमिल कर रहते हैं। असम का प्रमुख त्योहार 'बिहू' है, जो तीन प्रकार का होता है। पहला 'बहाग बिहू' या 'रंगाली बिहू', यह चैत और बैशाख महीने की संक्रान्ति के दौरान मनाया जाता है। दूसरा 'काति बिहू' या 'कंगाली बिहू', यह अश्विन व कार्तिक महीने की संक्रान्ति के समय मनाया जाता है और तीसरा 'माघ बिहू' या 'भोगाली बिहू', यह माघ व पूस की संक्रान्ति के वक्त मनाया जाता है। 'बिहू' के अलावा असम में हिन्दू संस्कृति व सभ्यता के प्रायः सभी त्योहार हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं। असम की प्रमुख भाषा असमिया, बांग्ला और बोडो है। इन तीनों भाषाओं को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भी किया गया है। पूर्वोत्तर भारत के प्रसिद्ध भाषाविद अवधेश कुमार जी ने लिखा है – "असम में असमिया, बोडो और बांग्ला भाषाएँ क्रमशः असमिया, देवनागरी और बांग्ला लिपियों का प्रयोग करती है।"[2] इन प्रमुख भाषाओं के अलावा यहाँ अनेक प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनकी अपनी लिपियाँ नहीं हैं।

असम में हिंदी के विस्तार की बात की जाए तो यहाँ हिंदी का स्रोत आदिकाल से ही दृष्टिगत होता है। 7वीं शताब्दी के सिद्ध एवं नाथ संप्रदायों द्वारा प्रयोग की गई भाषा 'अपभ्रंश' है। इस बात से हम भली–भांति अवगत हैं कि आदिकाल में प्रचलित अपभ्रंश भाषा ही हिंदी का प्रारंभिक रूप है। यह माना जाता है कि सिद्धों के प्रथम आचार्य सरहपा असम के ही थे, जिन्हें पंडित राहुल सांकृत्यायन ने हिंदी का प्रथम कवि माना है। असम में सिद्ध आचार्यों के निवास करने का दावा कई विद्वानों ने किया है। डॉ. हरेराम पाठक जी लिखते हैं – "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर्यन्त बहुत से विद्वान सरहपा को कामरूप ज़िले (असम) के रानी (राणी) गाँव का निवासी मानते हैं। सरहपा के अतिरिक्त लुइपा, दरिकपा, कारूपा, कुक्कुरिपा, टेण्टेन्पा (तातिपा), महीधरपा आदि सिद्धाचार्य असम के ही निवासी प्रमाणित हुए हैं... अतः भाषा एवं साहित्य की दृष्टि से हिंदी साहित्य के आरम्भिक काल में इन सिद्धाचार्यों की अहम भूमिका रही है। 7वीं शताब्दी के अंतिम चरण से 11वीं, 12वीं शताब्दी तक सिद्धाचार्यों का प्रभाव पूर्वांचलीय क्षेत्र में व्यापक रूप से रहा है।"[3] इन सिद्धाचार्यों ने असम तथा पूर्वांचलीय क्षेत्रों के न केवल भाषा एवं साहित्य को प्रभावित किया, बल्कि तत्कालीन समाज, संस्कृति एवं धर्म को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया था।

14वीं शताब्दी में असम में महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव का आविर्भाव हुआ। उन्होंने एक दिव्य पुरुष की तरह असम में फैली समाजिक कुरीतियों को मिटाकर सभ्य समाज की स्थापना

करने का प्रयास किया। शुरुआती दौर में उन्होंने अपने ज्ञान के भंडार को विस्तार रूप देने के लिए भारतीय सभ्यता व संस्कृति को बारीकी से जानने व आत्मसात करने के लिए देशभ्रमण किया। उन्होंने काशी, हरिद्वार, रामेश्वरम् आदि धर्म स्थलों के दर्शन किए। शंकरदेव ने ज्ञान व धर्म के प्रसार के लिए ऐसी भाषा का चुनाव किया था, जो हिंदी से काफ़ी मिलती–जुलती सी प्रतीत होती है, जिसका नाम 'ब्रजावली' है। इस भाषा में उत्तर भारत की ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगही आदि सभी बोलियों का समावेश है। 'ब्रजावली' भाषा द्वारा महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव जी ने असम के कोने–कोने तक 'एक शरणीय नाम धर्म' का प्रचार–प्रसार किया। 'ब्रजावली' भाषा के विषय में मध्यकालीन साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान श्रीकृष्ण नारायण 'मगध' जी का मत है – "वस्तुतः अवहट्टकाल के उपरांत एक अंतर–प्रांतीय व्यवहार और काव्य की भाषा का नाम है 'ब्रजावली', जिसकी सूत्रधारिणी थी शौरसेनी की सार्वदेशिकता और यहाँ मात्र इतना कहना ही पर्याप्त है कि मध्यकालीन असमी के भक्त एवं संत कवियों ने ब्रजावली में अपरिमित रचनाएँ की हैं। वे रचनाएँ विषय–वस्तु एवं भाषा–वैज्ञानिक दृष्टि से तत्कालीन उत्तर भारत की मानक रचनाओं के अधिक निकट पड़ती हैं। यह निर्विवाद है कि जिनकी मातृभाषा मगही, मैथली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि हैं, वे ब्रजावली की रचनाओं को अधिक सहजता से समझ और ग्रहण कर सकते हैं।"[4] श्रीमंत शंकरदेव जी ने 'ब्रजावली' भाषा में कई अंकिया नाटक लिखे, जिनमें से रुक्मिणी हरण, केलि–गोपाल, कालि–दमन, राम–विजय आदि प्रमुख हैं। नाटकों के अलावा उन्होंने 'कीर्तन घोषा' नामक ग्रन्थ और 'बरगीत' भी ब्रजावली भाषा में ही लिखा है। श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य रहे माधव देव ने भी धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए ब्रजावली भाषा का ही उपयोग किया। उन्होंने 'नामघोषा' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ को ब्रजावली में लिखा। यही कीर्तन घोषा, नामघोषा एवं बरगीत आज भी असम के सत्रों, नामघरों और घर–घर में बड़ी ही मधुरता व सुगमता के साथ गाए जाते हैं। इस तरह मध्यकाल में हिंदी 'ब्रजावली' भाषा के रूप में असम में पुष्पित व पल्लवित हुई।

आधुनिक काल तक आते–आते भारत अंग्रेज़ों का गुलाम हो गया था। असम में भी अंग्रेज़ों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। अंग्रेज़ अपने व्यवसाय और कारोबार को करने के लिए यहाँ के लोगों से प्रायः हिंदी में ही वार्तालाप करते थे। असम के जननायक गोपीनाथ बरदलै जी हिंदी से प्रेम करते थे। इनका घनिष्ठ सम्बन्ध महात्मा गांधी जी से था। गांधीजी ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का बिगुल बजाने के लिए हिंदी भाषा को चुना था। उन्होंने राष्ट्रीय एकता तथा भारत को एक सूत्र में पिरोने के लिए हिंदी के महत्त्व के बारे में जन–जन को बताया। इसी दृष्टि से गोपीनाथ बरदलै की अध्यक्षता में 1938 ई. में 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना हुई। असम में हिंदी के प्रचार–प्रसार की अवस्था के बारे में श्री चन्द्र भूषण ने लिखा है – "बाबा राघवदास ने असम पहुँचकर प्रातः स्मरणीय स्व. गोपीनाथ बरदलै के सभापतित्व में हिंदी प्रचार के लिए एक गोष्ठी आयोजित करने का सुझाव रखा। इसी गोष्ठी में श्री बाणीकांत काकति, श्री रजनीकांत चक्रवर्ती, श्री देवकांत बरुवा, श्री हेम बरुवा और हज़ारिका ने पैदल जत्थेवार गाँव–गाँव घूमकर हिंदी प्रचार का कार्यक्रम बनाया। वह कार्यक्रम 1939 ई. तक चला। तत्पश्चात् श्री बरदलै की अध्यक्षता में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हुई। 1938 ई. में स्व. श्री कमलदेव ने स्व. श्री जमुना प्रसाद के साथ मिलकर इस कार्य को संपन्न किया था। इसके बाद लोगों ने 'असमिया हिंदी साहित्य परिषद्' की स्थापना की। इस परिषद् की स्थापना के साथ ही असम में हिंदी साहित्य का उदय हुआ।"[5] स्वतंत्रता के पश्चात् असम में हिंदी का विस्तार तेज़ी से होने लगा। असम के विद्यालयों में कक्षा छठी से दसवीं तक हिंदी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है। असम के लोग हिंदी सीखने व पढ़ने के साथ–साथ हिंदी में रोज़गार भी पाने लगे हैं। उच्चत्तर शिक्षण संस्थानों में भी हिंदी पढ़ी व पढ़ाई जाती है। सर्वप्रथम गौहाटी विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग खोला गया। गौहाटी विश्वविद्यालय के अधीन प्रायः सभी महाविद्यालयों में हिंदी में स्नातक कराया जाता है। वर्तमान समय में असम के चार विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है।

असम में हिंदी की विकास यात्रा में आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा सिनेमा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। आकाशवाणी द्वारा चलाए जा रहे अखिल भारतीय कार्यक्रम ने वर्तमान समय तक अनेकों असमिया नाटक, काव्य, गीत हिंदी में अनूदित होकर प्रसारित हो चुके हैं। असम के ही भारत रत्न स्व. श्री भूपेन

हज़ारिका ने हिंदी सिनेमा जगत में गीतकार, संगीतकार और गायक के रूप में खूब प्रसिद्धि पाई। उन्होंने बहुत से हिंदी गाने गाए, जिनमें से कई सदा बहार हैं। यथा –

"दिल हूम–हूम करे
घबराए
घन धम–धम करे
गरजाए
इक बूंद कभी पानी की
मोरी अखियों से बरसाए।"

इस प्रकार हिंदी सिनेमा जगत में भी असम पीछे नहीं रहा। वर्तमान में भी असम के कई कलाकार हिंदी सिनेमा जगत में कार्य कर रहे हैं।

अनुवाद के क्षेत्र में यदि दृष्टि डालें, तो पाते हैं कि असमिया से हिंदी में कई अनुवाद हुए हैं। हरमोहनदास ने माधवदेव कृत 'नामघोषा' का अनुवाद हिंदी में किया है। हरिनारायण दत्त बरुवा ने बैष्णव ग्रंथ 'चित्र भागवत' का हिंदी अनुवाद किया। इसके पश्चात् उन्होंने श्रीमंत शंकरदेव और माधव देव विरचित 'बरगीत' का भी हिंदी में अनुवाद किया। असमिया कृतियों का हिंदी में अनुवाद करने वाले श्री लोकनाथ भराली जी का नाम काफ़ी प्रसिद्ध है, इन्होंने कई असमिया उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया है। सबसे अधिक हर्ष की बात यह है कि जितने भी विद्वानों ने असमिया कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया है, वे सभी असमिया भाषी हैं, जिन्होंने हिंदी को गहराई से अध्ययन किया। इसी प्रकार हिंदी से असमिया भाषा में भी कई अनुवाद हो चुके हैं। श्री महन्त ने हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा कृत प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' का असमिया भाषा में अनुवाद किया है। इन्होंने ही हिंदी के मनोविश्लेशणवादी साहित्यकार जैनेंद्र कुमार की कृति 'त्यागपत्र' और आंचलिक उपन्यासकार फ़णीश्वरनाथ 'रेणु' द्वारा रचित 'मैला आँचल' उपन्यास का भी अनुवाद किया है। असम राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा सुमित्रानन्दन पंत की चुनी हुई कविताओं का 'पंत अरिहना' नाम से असमिया भाषा में अनुवाद हुआ है। नेशनल बुक ट्रस्ट की तरफ़ से पुलिन बिहारी बरठाकुर ने भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' का असमिया भाषा में अनुवाद किया। वर्तमान समय में भी हिंदी से असमिया तथा असमिया से हिंदी में कई अनुवाद कार्य हो रहे हैं।

स्वतंत्रता के पूर्व से ही असम में हिंदी की प्रसिद्धि बढ़ने लगी थी। असम में हिंदी के विस्तार के लिए यहाँ मुद्रित एवं प्रकाशित होने वाले दैनिक, साप्ताहिक, मासिक एवं त्रैमासिक हिंदी पत्र–पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। गुवाहाटी से प्रकाशित होने वाली हिंदी का दैनिक पत्र 'लोकमान्य' है और साप्ताहिक पत्रों में यहीं से 'अन्तर्द्वन्द', 'जागृति', 'मेरी कलम', 'राजदूत', 'पूर्व ज्योति', 'शंखनाद' हैं। वहीं तिनसुकिया से 'आलोक', डिब्रुगढ़ से 'नवजागृत' और तेजपुर से 'महाजाति' पत्र प्रकाशित होते हैं। मासिक हिंदी पत्र–पत्रिकाओं पर दृष्टि डालें, तो गुवाहाटी से 'जय हिंद', 'अभियान', 'संवाद', 'प्राच्य भारती', 'राष्ट्रसेवक' प्रकाशित होती हैं। तिनसुकिया से 'प्रभात', 'रणभेरी', डिब्रुगढ़ से 'नवीन समाज', 'असम प्रदीप' हिंदी के मासिक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। गुवाहाटी से 1997 ई. में रविशंकर रवि ने 'उलूपी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। इस पत्रिका के माध्यम से संपादक महोदय द्वारा असमिया की अनेक कहानियों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित हो चुका है। इस पत्रिका में छपी रचनाओं द्वारा हिंदी के पाठकों तक पूर्वोत्तर के साहित्य को पहुँचाया है। इसके अलावा 'मेघालय दर्पण', 'अरुण प्रभा', 'समन्वय पूर्वोत्तर' ने भी हिंदी तथा पूर्वोत्तर की भाषाओं को जोड़ने का कार्य किया है।

असम में कई समाचार–पत्र हिंदी में प्रकाशित होते हैं, जिनमें 'देशहित' साप्ताहिक समाचार–पत्र उमा शंकर मिश्र के संपादन में गुवाहाटी से प्रकाशित होता है। यहीं से 'प्रातःखबर' श्रीधर बेरीवाला के संपादन में प्रकाशित होने वाला दैनिक समाचार–पत्र है। इन समाचार–पत्रों के अलावा परमेश्वर लाला द्वारा 'पूर्वांचल प्रहरी', ज्योतिष चन्द्र द्वारा 'पूर्वोत्तर संवाद', पल्लवी गोहांई द्वारा 'विकसित भारत' समाचार–पत्र हिंदी में प्रकाशित होता है। इन पत्र–पत्रिकाओं और समाचार–पत्रों का हिंदी में प्रकाशित होना असम में हिंदी को और भी सबल बनाता जा रहा है।

कहा जा सकता है कि असम ही नहीं, बल्कि पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में भारत सरकार के सहयोग से हिंदी का विस्तार व विकास और तेज़ी से हो सकता है। दक्षिण भारत की तुलना में पूर्वोत्तर व असम में हिंदी के प्रति बहुत अधिक श्रद्धा है। यहाँ हिंदी बोलने में तथा हिंदी संगीत में लोगों की काफ़ी दिलचस्पी

है। असम में हिंदी के स्वरूप में नए–नए आयाम जुड़ते जा रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी यहाँ के लोगों को हिंदी पढ़ने में रुचि है। असम में अनेक जाति व जनजाति के लोग हैं तथा उनकी भाषा भिन्न–भिन्न है, फिर भी हिंदी भाषा का यहाँ पर्याप्त विस्तार देखने को मिलता है। हिंदी अपने लचीलेपन के कारण असम के शिक्षित व अशिक्षित सभी लोगों द्वारा बोली व समझी जाती है। अतः असम में हिंदी की लोकप्रियता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

संदर्भ सूची :

1. प्रो. मोहन (सं.), समन्वय पूर्वोत्तर, अंक 10, जनवरी–मार्च 2011, पृ. सं. – 21
2. समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल–जून, 2001, पृ. सं. – 178
3. पाठक, हरेराम, पूर्वांचली राज्यों के साहित्यकारों का हिंदी को योगदान, पृ. सं. 1–2
4. मलिक मोहम्मद (सं.), हिंदी साहित्य को हिंदीतर प्रदेशों की देन, पृ. सं. 175
5. चन्द्रभूषण, लोहित किनारे, पृ. सं. 105–106

jaichauhan271@gmail.com

समय और सच की भाषा हिंदी

श्रीमती अजित्रा. आर.एस.
केरल, भारत

भाषा भावों और विचारों की संवाहक होती है। हिंदी संपर्क भाषा, मानक भाषा, राजभाषा आदि अनेक रूपों में देश और समाज की पहचान विकसित कराने की भूमिका निभाती है। आज हिंदी का स्वरूप काफ़ी व्यापक हो चला है। साहित्य, फ़िल्म, कला, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान, संचार भाषा आदि क्षेत्रों में हिंदी ने अपनी महत्ता कायम की है। हिंदी भारत की संवैधानिक राजभाषा है और सारे स्तरों को पार कर विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। कई विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई होती है। भारत विश्व का सबसे बड़ा बाज़ार है और इसी कारण से भारतीयों की भाषा यानी हिंदी सीखना विदेशियों की विवशता है। हर वर्ष विदेशों के कई विद्यालयों में हिंदी–शिक्षण और शोध का कार्य बढ़ रहा है। "मॉरीशस, फ़िजी, बहरीन, संयुक्त अरब अमीरात, कनाडा, अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, सूरीनाम, कुवैत, सिंगापुर, दक्षिण अफ़्रीका, चीन और ऑस्ट्रेलिया तथा अनेक यूरोपीय देशों में बसे लाखों लोगों द्वारा हिंदी का उपयोग किया जा रहा है। निःसंदेह हिंदी भाषा अपनी सरलता, सांस्कृतिक संपन्नता तथा अध्यात्म प्रधानता आदि गुणों के कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लगातार लोकप्रिय हो रही है। विश्व के 40 से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन हो रहा है।"[1]

वह भाषा जो अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रयोग की जाती है, उस समय, उस भाषा का वैश्विक रूप प्राप्त होता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भाषा के प्रसार एवं विकास की बड़ी संभावनाएँ हैं। भारतीयता को आगे बढ़ाने का अवसर है, क्योंकि भाषा केवल विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, यह देश की अस्मिता की पहचान है। वैश्विक स्तर पर वही भाषा टिक पाएगी, जिसका शब्द–भंडार बड़ा हो और लगातार वह अपनी शब्दावली में वृद्धि करेगी। हिंदी के बारे में यह कहा जाता है कि यह एक भाषा नहीं है, भाषाओं का समाहार है। मध्य देश की सारी भाषाओं को समेटकर एक भाषा के अंतर्गत समाहित करने का काम हिंदी का रहा है। हिंदी को केवल खड़ी बोली से परिभाषित नहीं किया जा सकता। मैथिली, ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, राजस्थानी, खड़ी बोली आदि को हिंदी के अंतर्गत ही स्थान मिला है। हिंदी ने फ़ारसी, अरबी, उर्दू, अंग्रेज़ी आदि अनेक भाषाओं के शब्दों को भी आत्मसात किया। द्रविड़ परिवार की लगभग सभी भाषाओं में पर्याप्त संख्या में हिंदी पर्यायवाची और समान उच्चारण वाले शब्द हैं। इस प्रकार, हिंदी का लचीलापन हिंदी भाषा के समृद्ध शब्द–भंडार का मुख्य कारण है, जिसकी वजह से आज हिंदी शब्द–संख्या की दृष्टि से दुनिया की सबसे समृद्ध भाषा मानी जाती है। भारत के आर्थिक विकास और विश्व समुदाय में उभरती हुई वैश्विक ताकत के रूप में इसकी मान्यता के कारण हिंदी का महत्त्व बढ़ रहा है।

समय के साथ विकास के विभिन्न चरणों से गुज़रती हुई संस्कृत से पालि, प्राकृत और अपभ्रंश व हिंदी का उद्‌भव 10वीं शताब्दी में होता है। पहले संस्कृत भाषा समस्त भारत को एक सूत्र में समेटने का काम करती थी, अब इसका भार हिंदी के कंधे पर है। भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली प्रभावी कड़ी बनने की ज़िम्मेदारी हिंदी निभाती है। हिंदी भारतीय संस्कृति की परिचायक है और दिशा बोध एवं नई ऊर्जा की भावना के साथ संस्कृति के निरंतर प्रवाह को आगे बढ़ा रही है। यह किसी एक स्थान पर सीमित नहीं रही। भारतीय संस्कृति की 'उदार चरितानाम तु वसुधैव कुटुंबकम्' और 'यत्र विश्वम् भवत्येक नीड़म्' अर्थात् वर्तमान वैश्विक संकल्पना ग्लोबल विलेज को मूर्त रूप प्रदान करने में हिंदी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे सनातन संस्कृति का प्रमुख सूत्र 'विश्व बंधुत्व' रहा, जो संपूर्ण विश्व को अपने अंदर समाहित करने का प्रयास करता रहा है। आपसी एकता लाने में हिंदी भाषा का बहुत बड़ा योगदान रहा

है। विश्व के चिन्तकों, दार्शनिकों, शिक्षाविदों, इतिहासकारों एवं राजनीतिज्ञ हिंदी भाषा में लिखे साहित्य को पढ़कर और भारतीय दर्शन और व्यवहार से हमारी समकालीन संस्कृति से अवगत होते आए हैं। यह सच है कि भारतीय संस्कृति ममतामूलक एवं समता स्थापक है, इसलिए विदेशी भी इससे प्रभावित होते हैं। डॉ. विमलेश कांति वर्मा के अनुसार – "भाषा की नियति उसके बोलने वालों से जुड़ी होती है। हिंदी के साथ आज अस्तित्व का कोई संकट नहीं है, क्योंकि भारत में जहाँ वह करोड़ों की मातृभाषा है, वहीं विश्व में करोड़ों की अनुराग भाषा भी है। विश्व के अनेक देशों में हिंदी का प्रचलन है तथा वहाँ के प्रवासी भारतीय उसकी सुरक्षा तथा प्रतिष्ठा के लिए सजग व सचेष्ट हैं।"[2]

विश्व बाज़ार में हिंदी एक प्रभावशाली भाषा के रूप में उभर रही है। इस बाज़ार के लिए विश्व की सबसे बड़ी कंपनियाँ हिंदी को ध्यान में रखकर सुविधाएँ विकसित कर रही हैं। आज विश्व के दरबार में, संयुक्त राष्ट्र संघ में, अंतरराष्ट्रीय मंचों पर राजनेताओं के द्वारा हिंदी का प्रयोग आम बात है। अपने उत्पादों के विज्ञापन में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हिंदी का बड़े पैमाने पर उपयोग कर रही हैं। यह बाज़ार की सबसे शक्तिशाली भाषा के रूप में सामने आ रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा के 32वें अधिवेशन में 4 अक्टूबर, 1977 को माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विदेश मंत्री के रूप में हिंदी में अपना भाषण देकर सबको चौंका दिया था। इस भाषण में उन्होंने मानव अधिकारों के साथ–साथ रंगभेद जैसे विषयों पर अपना मत प्रकट किया। उनके ओजपूर्ण भाषण के कुछ अंश इस प्रकार हैं – "अध्यक्ष महोदय, वसुधैव कुटुम्बकम् की परिकल्पना बहुत पुरानी है। भारत में सदा से हमारा इस धारणा में विश्वास रहा है कि सारा संसार एक परिवार है। अनेकानेक प्रयत्नों और कष्टों के बाद संयुक्त राष्ट्र के रूप में इस स्वप्न के साकार होने की संभावना है। यहाँ मैं राष्ट्रों की सत्ता और महत्ता के बारे में नहीं सोच रहा हूँ। आम आदमी की प्रतिष्ठा और प्रगति मेरे लिए कहीं अधिक महत्त्व रखती है।"

इसके बाद हिंदी में बोलने की प्रथा महासभा में शुरू हुई। 2017 ई. के 72वें अधिवेशन में भी तत्कालीन विदेश मंत्री माननीया श्रीमती सुषमा स्वराज ने महासभा में अपना प्रभावपूर्ण भाषण हिंदी में ही प्रस्तुत किया। अभी संयुक्त राष्ट्र संघ की 7वीं आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को स्थान दिलाने का प्रयास भी जारी है। वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी भी विदेशी दौरे में हिंदी का प्रयोग कर न केवल हिंदी भाषा, बल्कि भारतीय संस्कृति का परचम लहरा रहे हैं और वहाँ उन्होंने हिंदी को पूरा सम्मान दिया है। माननीय मोदी जी जिस देश में जाते हैं, वहाँ के भारतीयों से मिलते हैं और हिंदी में बातचीत करते हैं। पिछले साल हिंदी दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी ने हिंदी भाषा का इस्तेमाल अधिक से अधिक करने पर ज़ोर दिया। उनके शब्दों में – "भारत विभिन्न भाषाओं का देश है और हर भाषा का अपना महत्त्व है, परंतु पूरे देश की एक भाषा होना अत्यंत आवश्यक है, जो विश्व में भारत की पहचान बने। आज देश को एकता की डोर में बाँधने का काम अगर कोई एक भाषा कर सकती है, तो वह सर्वाधिक बोली जाने वाली हिंदी भाषा ही है।"

विभिन्न मंत्रालयों की हिंदी सलाहकार समितियाँ पहले की तुलना में अधिक चुस्त दिखती हैं। अब तक कुल 11 विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न हुए हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी को विश्वव्यापी पहचान दिलाने के साथ–साथ भारतीय सामासिक संस्कृति की महिमा और गरिमा की उद्घोषणा भी करते हैं। पहले विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन द्वारा इस बात की पुष्टि हो गई कि हिंदी असाधारण सामर्थ्य–संपन्न भाषा है और वह संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के गौरव की अधिकारिणी है। इस आयोजन ने पहली बार हिंदी को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया और हिंदी के पक्ष में एक वातावरण निर्मित किया। इस आयोजन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिणाम यह था कि हिंदी के बहाने दुनिया भर के प्रवासी भारतीय भारत से जुड़े।

अब इंटरनेट का युग है। भारत सरकार द्वारा 2015 में 'डिजिटल इंडिया' आयोजित किया गया। देश को डिजिटल रूप से सशक्त बनाना इसका उद्देश्य है। साथ ही यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक नागरिक को डिजिटल शक्ति प्रदान की जा रही है एवं उनकी माँग पर शासन द्वारा सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं। इसके तहत सरकारी विभागों को देश की जनता से जोड़कर कागज़ के बिना सरकारी सेवाएँ इलेक्ट्रॉनिक रूप से जनता तक पहुँचते हैं। देवनागरी लिपि इंटरनेट के लिए उपयुक्त लिपि बन गई है। तकनीक ने हिंदी के प्रयोग को गति दी है। सरकारी काम–काज

में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने एवं कर्मचारियों के बीच हिंदी का अधिक प्रयोग करने के लिए कार्यालयों के कंप्यूटरों में कई वेब टूल्स स्थापित किए गए। एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2021 तक भारत में हिंदी के 201 मिलियन इंटरनेट प्रयोगकर्ता होंगे। लोगों को हिंदी भाषा में ही समाचार, विज्ञापन, संगीत, वीडियो, डिजिटल राईट अप, भुगतान पोर्टल, ऑनलाइन गवर्नमेंट सर्वीसज़, डिजिटल क्लासीफ़ाइड उपलब्ध करवाना होगा, तभी देश में डिजिटल क्रांति का स्वप्न साकार होगा।

आजकल लोग अपने मोबाइल में अंग्रेज़ी की जगह हिंदी भाषा का प्रयोग करने लगे हैं। कंप्यूटर में भी हिंदी का उपयोग बढ़ रहा है और युवा वर्ग हिंदी को एक नए रूप में उपयोग कर रहा है। लोग सोशल मीडिया में भी हिंदी भाषा का चयन कर रहे हैं तथा ब्लॉग, फ़ेसबुक, व्हाट्सएप्प, ट्विटर आदि पर हिंदी में लिखना शुरू कर दिया है। हिंदी भाषी लोगों को आकर्षित करने के लिए फ़ेसबुक एवं अन्य लोकप्रिय सोशल मीडिया कंपनियाँ हर संभव कदम उठा रही है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिंदी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं और इंटरनेट पर हिंदी में हर प्रकार की जानकारी प्राप्त हो रही है, जो कि हिंदी भाषा की लोकप्रियता को दर्शाती है। अनेक देशों में प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिंदी को स्थान दिया गया है। हिंदी साहित्य भी अब तकनीकी से जुड़ रहा है। हिंदी गद्य विधा में 'अभिव्यक्ति', 'गर्भनाल' तथा काव्य में 'अनुभूति' जैसी वेब पत्रिकाएँ हिंदी साहित्य की बेहतर छवि को निरंतर निखार रही है।

डॉ. करुणा शंकर उपाध्याय ने मीडिया और वेब पर हिंदी के बारे में कहा है – "आज विश्व में सबसे ज़्यादा पढ़े जाने वाले समाचार–पत्रों में आधे से अधिक हिंदी के हैं। इसका आशय यही है कि पढ़ा–लिखा वर्ग भी हिंदी के महत्त्व को समझ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं, बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाड़ी देशों, अफ़्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह चेनलों के ज़रिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। आज मॉरीशस में हिंदी सात चेनलों के माध्यम से धूम मचाई हुई है। विगत कुछ वर्षों में एफ़.एम. रेडियो के विकास से हिंदी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है। हिंदी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे ई–मेल, ई–कॉमर्स, ई–बुक, इंटरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है।

माइक्रोसॉफ़्ट, गूगल, सन, याहू, आई.बी.एम. तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाज़ार और भारी मुनाफ़े को देखते हुए हिंदी प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेज़ी के दबाव के बावजूद हिंदी बहुत ही तीव्र गति से विश्व मन के सुख–दुख, आशा–आकांक्षा की संवाहिका बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, ऑस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिंदी के रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिंदी के शब्दकोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।"[3]

राजभाषा हिंदी के विकास के लिए खासतौर से राजभाषा विभाग का गठन किया गया है। भारत सरकार का राजभाषा विभाग इस दिशा में प्रयासरत है कि केंद्र सरकार के अधीन कार्यालयों में अधिक से अधिक कार्य हिंदी में हों। इसी कड़ी में राजभाषा विभाग द्वारा प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस समारोह का आयोजन किया जाता है। 14 सितंबर, 1949 का दिन स्वतंत्र भारत के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है। 14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया और संविधान के लागू होने की तारीख अर्थात् 26 जनवरी, 1950 से हिंदी इस देश की राजभाषा बन गई। इसके बाद संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के संबंध में व्यवस्था की गई। इसके फलस्वरूप आगे भारत सरकार ने राजभाषा के प्रचार–प्रसार को अधिक महत्त्व दिया। संघ की राजभाषा नीति के अनुसार केंद्रीय सरकार के अधीनस्थ सभी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग में सक्षम होना अनिवार्य बन गया।

भारतीय संविधान की संकल्पना थी कि हिंदी का विकास इस तरह हो कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के तत्त्वों को ग्रहण कर जन–जन की अभिव्यक्ति का माध्यम बने। आज भारत

की तमाम भाषाओं का साहित्य हिंदी में अनूदित होकर व्यापक जनसमुदाय तक पहुँच रहा है। यूनिकोड फ़ोण्ट से हिंदी के शब्द हम सही रूप में लिख सकते हैं और इंटरनेट में इसका उपयोग अधिकाधिक हो रहा है। तकनीकी युग में प्रवेश करने के साथ ही हिंदी का प्रयोजनमूलक स्वरूप सामने आया था। हिंदी के इस स्वरूप ने उसकी वैशिष्टय परिधियों के वृत्त क्षेत्र को और अधिक विस्तार दे दिया। इसके बाद हिंदी भाषा का प्रयोग अपने देशीय क्षेत्र से बाहर राजनीतिक, सांस्कृतिक या वाणिज्यिक कारणों से विश्व सीमाओं में प्रसार पाने लगा है। सी–डैक ने हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लिए अनेक नवीन सॉफ़्टवेयरों का निर्माण किया है। इसकी सहायता से ही राजभाषा विभाग ने अपना www.rajbhasha.gov.in तैयार किया है। सी–डैक के साथ मिलकर राजभाषा विभाग ने कंप्यूटर की सहायता से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिंदीभाषा को स्वयं सीखने के लिए कंप्यूटर प्रोग्राम तैयार किए हैं।

14 सिंतबर, 2017 को राजभाषा विभाग द्वारा नई दिल्ली के विज्ञान भवन में हिंदी दिवस समारोह के आयोजन के अवसर पर राष्ट्रपति महामहिम रामनाथ कोविन्द ने कहा "हिंदी अनुवाद की नहीं, बल्कि संवाद की भाषा है। किसी भी भाषा की तरह हिंदी भी मौलिक सोच की भाषा है।" हिंदी दिवस के मौके पर राजभाषा विभाग द्वारा सी–डैक के सहयोग से तैयार किए गए हिंदी स्वयं शिक्षण हेतु बहुभाषिक 'लीला एप्प' का लोकार्पण भी महामहिम राष्ट्रपति द्वारा किया गया। 'लीला प्रबोध', 'प्रवीण' तथा 'प्राज्ञ' पाठ्यक्रम हेतु इस एप्प को विकसित किया गया है। (LILA-Rajbhasha : Learn Indian Languages through Artificial lntelligence) हिंदी सीखने के लिए एक बहु–मीडिया आधारित बुद्धिमान अनुप्रयोग है। LILA का उपयोग करना, अपने मोबाइल पर एक भाषा सीखना वास्तव में खेलने के रूप में सुखद हो सकता है। इस एप्प की मुख्य विशेषताएँ ये हैं :

1. यह मोबाइल पर हिंदी सीखने के लिए निःशुल्क उपलब्ध है।
2. यह गूगल तथा एप्पल एप्स स्टोरों में उपलब्ध है। स्टोर के सर्च में 'लीला राजभाषा' डाउनलोड किया जा सकता है।
3. 'लीला मोबाइल एप्प' पूर्णतया यूज़र – फ्रेंडली है।
4. इसके द्वारा अंग्रेज़ी, असमिया बांग्ला, नेपाली, पंजाबी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम के माध्यम से हिंदी सीखी जा सकती हैं।

केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी का अधिकाधिक उपयोग सुनिश्चित करने हेतु भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा उठाए गए कदमों के परिणामस्वरूप कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करना अधिक आसान एवं सुविधाजनक हो गया है। इसी क्रम में राजभाषा विभाग द्वारा वेब आधारित सूचना प्रबंधन प्रणाली विकसित की गई है, जिससे भारत सरकार के सभी कार्यालयों में हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग से संबंधित तिमाही प्रगति रिपोर्ट तथा अन्य रिपोर्ट राजभाषा विभाग को त्वरित गति से भिजवाना आसान हो गया है। सभी मंत्रालयों और विभागों ने अपनी वेबसाइट हिंदी में भी तैयार कर ली हैं। सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा संचालित जन कल्याण की विभिन्न योजनाओं की जानकारी आम नागरिकों को हिंदी में मिलने से गरीब, पिछड़े और कमज़ोर वर्ग के लोग भी लाभान्वित होते हुए देश की मुख्य धारा से जुड़ रहे हैं।

प्रशासनिक क्षेत्र में हिंदी भाषा के संपूर्ण प्रयोग से हम हिंदी विश्व का विस्तार कर सकते हैं, हमें साथ में अनुवाद की विधा को भी महत्त्व देना चाहिए, जो सभी भाषाओं के शब्दों का हिंदी में तथा हिंदी के शब्दों का अन्य सभी भाषाओं में अनुवाद कर सके। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी ज्ञान से संबंधित साहित्य के सरल अनुवाद के लिए राजभाषा विभाग ने सरल हिंदी शब्दावली तैयार की है। गूगल सॉफ़्टवेयर से अंग्रेज़ी डॉक्यूमेंट को हिंदी भाषा में तुरंत अनूदित करने की सुविधा उपलब्ध हो गई है। हिंदी सॉफ़्टवेयर के बारे में भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल का कथन द्रष्टव्य है – "संचार और प्रौद्योगिकी के इस युग में कार्यालयों, विभागों और मंत्रालयों में विविध हिंदी सॉफ़्टवेयर प्रयोग में लाए जा रहे हैं। हमें मानक सॉफ़्टवेयर बाज़ार में लाना चाहिए, ताकि कार्य में एकरूपता आए। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र के सहारे युवा विशेषज्ञ निश्चित यह काम कर सकते हैं। हिंदी को आगे लाकर कंप्यूटर जगत में एक नई क्रांति लानी चाहिए, ताकि हिंदी को एक मज़बूत तकनीकी आधार मिल सके। इसी प्रकार प्रत्येक राज्य में भिन्न–भिन्न तकनीकी और प्रशासनिक शब्दावली प्रयोग में लाई जाती है। इसमें भी एकरूपता लानी चाहिए।"

https://play.google.com/store/apps/details?id=kcom.google.android.apps.translate इस गूगल अनुवाद एप्प द्वारा हम 103 भाषाओं के बीच अनुवाद कर सकते हैं।

गूगल अनुवाद निम्नलिखित सुविधाओं तक पहुँचने के लिए अनुमति माँग सकता है :

* भाषण अनुवाद के लिए माइक्रोफ़ोन
* कैमरा के माध्यम से पाठ का अनुवाद करने के लिए कैमरा
* पाठ संदेशों का अनुवाद करने के लिए एस.एम.एस.
* ऑफ़लाइन अनुवाद डेटा डाउनलोड करने के लिए बाहरी संग्रहण (external memory)
* डिवाइस पर साइन इन और समन्वय के लिए खाते की अनुमति और प्रमाण–पत्र।[4]

"आज विश्व के अधिकांश देशों में हिंदी पूरी आन–बान–शान के साथ प्रतिष्ठित है। भारत के लोक प्रतिनिधि विदेशों में 'वंदे मातरम' तथा जय हिंद की पुलक ध्वनि का अभिवादन सुख प्राप्त कर रहे हैं। यह गौरव बोध प्रत्येक भारतीय का है। हिंदी की अनंत ऊर्जामयी भागीरथी सर्वत्र प्रवहमान देखी जा सकती है। वस्तुतः हिंदी भारतीयता के सर्वोच्च गुणों की अभिव्यक्ति का सशक्त संशोधन है।"[5]

हिंदी अभी भी विकासशील भाषा है, इसके विकास की अनगिनत दिशाएँ हैं। विज्ञान की सभी विधाओं में और संबंधित क्षेत्रों में हिंदी भाषा में लेखन पर्याप्त नहीं है। स्तरीय शोध ग्रंथ भी कम हैं। हिंदी विश्व के विकास के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है। नाभिकीय विज्ञान, पर्यावरण, वनस्पति शास्त्र, भूगर्भ विज्ञान, गणित आदि अन्य क्षेत्रों में भी हिंदी का प्रभाव अनिवार्य है। हिंदी को समुचित स्थान प्रदान करना राष्ट्रीय अथवा सामासिक संस्कृति के विकास की पहली शर्त है। हिंदी कई विषम परिस्थितियों को पार करने के बाद यहाँ आई है और उसके विकास का क्रम जारी रहेगा, क्योंकि यह राज्याश्रय में नहीं, लोकाश्रय में पनपी है। वह जनभाषा है, जिसका प्रभाव कभी रुक नहीं सकता।

संदर्भ सूची :

1. 'स्मारिका' – 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस, पृष्ठ संख्या : 101
2. 'राजभाषा भारती' पत्रिका – अंक 155, पृष्ठ संख्या : 43
3. हिंदी का वैश्विक परिदृश्य – डॉ. करुणा शंकर उपाध्याय
4. www.abhivyakti-hindi.org
5. 'राजभाषा भारती' पत्रिका – अंक 156, पृष्ठ संख्या : 119
6. 'स्मारिका' –11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस, पृष्ठ संख्या : 73
7. महानुभावों का कथन – गूगल सर्च से

ajithramadhu@gmail.com

पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक समन्वय में हिंदी

– संगीता कुमारी पासी
गुवाहाटी, भारत

भाषा न केवल परस्पर आदान–प्रदान का साधन है, अपितु उन महत्त्वपूर्ण इकाइयों में से भी है, जो मानव–जाति को एक सूत्र में पिरोकर रखती हैं। भाषा के स्वरूप का निर्धारण मानव–समाज द्वारा होता है और मनुष्य तथा समाज की पहचान भाषा से ही होती है। अतः मानव समाज का ऐतिहासिक, भोगौलिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन भाषा के स्वरूप को भी एक नया मोड़ दे सकता है। जिस देश की भाषा जितनी व्यापक तथा सुदृढ़ है, वह देश आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उतना ही विकसित है। विश्व में भारत एक विविधतापूर्ण अद्‌भुत देश है, जहाँ बहुजातीय, बहुभाषीय, बहुनस्लीय और बहुधर्मी मानव–समुदाय परस्पर प्रेम और सौहार्द से मिल–जुलकर रहते हुए और एक गौरवशाली राष्ट्र का निर्माण करते हैं। भारत की आंतरिक शक्ति इसकी मिली–जुली सामाजिक संस्कृति है। हमारी भाषाएँ न केवल अभिव्यक्ति का माध्यम हैं, अपितु हमारी संस्कृति की संवाहिका भी है।

मनुष्य प्रकृति का एक अभिन्न अंग है तथा प्रकृति के नियमों की अनिवार्यता को मद्देनज़र रखते हुए वह संसार में जन्मता, जीता और मरता है, लेकिन प्रकृति ने पशुओं से अलग मनुष्य के शरीर विन्यास और मस्तिष्क में कुछ ऐसे विकास किए हैं, जिसके आधार पर वह अधिक स्वतंत्र और सामर्थ्यवान बना हुआ है। इसी स्वतंत्रता से मनुष्य की संस्कृति में विविधता परिलक्षित होती है। 'संस्कृति' की सबसे सरल परिभाषा यही है कि 'संस्कृति मनुष्य की कृति अथवा रचना है।' इसी कारण विभिन्न देशों और युगों में जीवन–यापन करने वाले मानव–समाज की संस्कृति में भिन्नता दृष्टिगत होती है। मनुष्य अपनी स्वतंत्रता और सामर्थ्य के आधार पर एक अलग समाज और संस्कृति का गठन करता है। श्री राहुल राम लिखते हैं – "किसी भी अंचल की सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ उस अंचल के सामाजिक गठन पर निर्भर रहती है। प्रकारांतर से समाज के जनसमुदाय का निर्माण करने वाले तत्त्व, जैसे विभिन्न नस्लें या प्रजातियाँ, उनके विशिष्ट गुण, उनकी आकांक्षाओं, जातिगत अस्मिता, संचेतना, निष्ठा, आपसी संबंध–संपर्क, उनके धर्म, धार्मिक विश्वास, रीति–रिवाज़, उनकी भाषाएँ, भाषिक संस्कृति, लोक विश्वास एवं साहित्य आदि किसी अंचल की सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रभावित करती है।"[1]

भाषा मनुष्य की सांस्कृतिक रचना है। प्रायः बड़ी–बड़ी क्रांतियाँ भाषा के बल पर ही हुई हैं। कहा जाता है कि जब किसी राष्ट्र को नष्ट करना हो, तो सबसे पहले उसकी संस्कृति को नष्ट करना चाहिए और अगर संस्कृति को नष्ट करना हो, तो सबसे पहले उसकी भाषा को नष्ट करना चाहिए, क्योंकि संस्कृति और भाषा के नष्ट होते ही वह राष्ट्र अपने आप ही टूटकर बिखर जाएगा। भाषा में एक अद्‌भुत शक्ति, संगीत का माधुर्य पाया जाता है, जिसके माध्यम से किसी को भी कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लाया जा सकता है। यह शक्ति संभवतः तलवार में दुर्लभ होती है। अतः विश्वबन्धुत्व की भावना को पैदा करने तथा संसार को एक सूत्र में संगठित करने की शक्ति भाषा में ही दृष्टिगत होती है।

पूर्वोत्तर भारत से तात्पर्य भारत के उन राज्यों से है, जो इसके उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में स्थित है। इन राज्यों के अन्तर्गत आठ राज्य आते हैं – असम, मेघालय, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, मिज़ोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा और सिक्किम। पूर्वोत्तर भारत के इन आठ राज्यों में से सिक्किम को भाई और बाकी 7 राज्यों को 'सप्त भगिनी' (सात बहन) के नाम से अभिहित किया गया है। इन राज्यों की उन्नति एवं विकास हेतु सन् 1971 में केंद्रीय संस्था के रूप में 'पूर्वोत्तर परिषद्' (North Eastern Council) की स्थापना हुई है।

पूर्वोत्तर भारत की भाषाएँ एवं संस्कृति

भारत के उत्तर–पूर्वांचल में स्थित 8 राज्यों में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक दृष्टि से पर्याप्त विविधता परिलक्षित होती है। पूर्वोत्तर भारत के ये 8 राज्य संपूर्ण राष्ट्र के हृदय का स्पन्दन है। इन्हें भारतवर्ष के तमाम संस्कृतियों का संगम स्थल भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ विभिन्न नस्लों, प्रजातियों, रीति–रिवाज़ों, लोक–संस्कृतियों, भाषाओं, धर्मों के लोगों का वास है।

अरुणाचल प्रदेश :

अरुणाचल जहाँ सूरज की पहली किरण पड़ती है। पहले इसे 'नेफ़ा' (North West Frontier Agency) नाम से पुकारा जाता था। यह राज्य सर्वप्रथम असम राज्य का ही एक पर्वतीय भाग था। इसे सन् 1972 में 20 जनवरी को 'अरुणाचल प्रदेश' नाम से अभिहित करते हुए केन्द्रशासित प्रदेश का दर्जा प्रदान किया गया। आगे चलकर अरुणाचल प्रदेश को पूर्ण रूप से एक राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। इस राज्य में सौ से भी अधिक जनजातियाँ निवास करती हैं। इन जनजातियों में 'नोकते', 'वांचू', 'टांचा', 'मोनपा', 'मिजी', 'अका', 'तंगसा', 'अबोर', 'आवा', 'डफला', 'शेरदुकपेन', 'न्येसी', 'आदी', 'अपतानी', 'तागिन', 'दिगारू–मिश्मी', 'मिजु–मिश्मी', 'इदु–मिश्मी', 'खामती', 'सिंहफो', 'गिरि', 'खेला', 'लामचा तुपि' आदि हैं। ये सभी मूल रूप से आदिवासी हैं। इन जनजातियों की भाषाएँ एक–दूसरे से अलग–अलग हैं। अरुणाचल प्रदेश में मुख्य रूप से आदी मोनपा, आका, शरदुकपेन, मिजी, नोकते, निशी, तागिन, बगनी आदि भाषाएँ ही प्रयोग में लाई जाती हैं।

अरुणाचल प्रदेश में प्रचलित प्रमुख त्योहारों में निशी लोगों का न्योकुम आदी का सोलुंग हिल–मिरी और शेरदुकपेन समुदाय का बूरी–बुत, मोपिन और अपतानी लोगों का द्ररी आदि अन्तर्भुक्त है। यहाँ मनाया जाने वाला एक बहुरंगी त्योहार 'लोसार' है, जिसे एक उत्सव के रूप में पूरे सप्ताह तक मनाया जाता है। इस उत्सव में होने वाले समस्त धार्मिक कार्य एवं रीति–रिवाज़ बौद्ध पंडित (लामा) द्वारा सम्पन्न होता है। लोसार के इस सप्ताहिक उत्सव में भगवान बुद्ध के समक्ष प्रार्थना करते हुए मक्खन की आरती होती है। यहाँ के लोगों ने इस उत्सव को सामूहिक दृष्टि से मनाकर अपनी इस संस्कृति को पीढ़ी–दर–पीढ़ी संरक्षित रखा है। इसके अतिरिक्त अरुणाचल प्रदेश में कुछ अन्य पारंपरिक समारोह होते हैं, यथा – फांगले, बोरटन, थाइ, ल्हाबसंग, चेरटन, रमने, मालम, तासी और मार में–सखा। यहाँ की जनजातियाँ त्योहारों एवं उत्सवों में रंगबिरंगे कपड़े और मुखौटे पहनकर नृत्य प्रस्तुत करते हैं।

मेघालय :

'मेघालय' का शाब्दिक अर्थ है 'बादलों का घर'। यह राज्य पहले असम के अन्तर्गत स्थित था, परंतु 21 जनवरी, 1972 में असम में आने वाले खासी, गारो और जयंतिया पर्वतीय ज़िलों को अलग कर 'मेघालय' नाम दिया गया। इसे 'पूर्व का स्कॉटलैंड' भी कहा जाता है। इस राज्य में मुख्य रूप से तीन जनजातियाँ ही पाई जाती हैं जैसे – खासी, गारो और जयंतिया। इन जनजातियों के अलावा यहाँ बंगाली, असमिया, राभा, नेपाली भी निवास करते हैं। गारो जनजाति आज भी तिब्बत की मूल निवासी है। इनकी भाषा तिब्बत वर्मी परिवार के बोडो शाखा में आती है। मेघालय में मुख्य रूप से खासी, गारो, बियट, हजोंग और बाँग्ला भाषाएँ बोली जाती हैं। अंग्रेज़ी यहाँ की लोकप्रिय भाषा है, जिसमें कार्यालय के समस्त कामकाज सम्पन्न होते हैं। यहाँ निवास करने वाले जनजातियों में भाषिक और सांस्कृतिक विविधता पाई जाती है। "इनमें जनजाति की सांस्कृतिक विरासत लोकगीत, लोककला, लोकनृत्य और लोकसंगीत के रूप में व्यक्त होती है। इनके विविध उत्सवों और धार्मिक महोत्सवों का उद्देश्य ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना है। यह जनसमाज धर्म में गहरी आस्था रखता है।"[2]

मेघालय के खासी जनजाति का प्रमुख धार्मिक त्योहार 'पाम्ब्लेंग–नोंग्क्रेस' है, जो 5 दिनों तक मनाया जाता है। यह त्योहार 'नोंग्क्रेस नृत्य' के नाम से भी प्रख्यात है। पूर्वजों के प्रति आदर तथा राज्य और धर्म के संस्थापकों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु, इस उत्सव का प्रतिवर्ष पालन किया जाता है। खासियों द्वारा मनाए जाने वाले अन्यतम महत्त्वपूर्ण त्योहारों में 'शाद सुके मिन्सिम' है। इस पर्व को हर वर्ष अप्रैल के महीने में मनाया जाता है। जयंतिया आदिवासियों द्वारा मनाया जाने वाला महत्त्वपूर्ण पर्व 'बेहदडेनखलाम' है। 'कालुखमी' उत्सव

खासी जयंतिया पहाड़ियों का एक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। गारो जनजाति के लोग अपने देवता सल्जोंग (सूर्य देवता) के प्रति आदर भाव व्यक्त करते हुए अक्टूबर–नवम्बर महीने में 'वंगाला' त्योहार मनाते हैं, जो पूरे एक सप्ताह तक चलता है।।

मणिपुर :

'मणिपुर' का शाब्दिक अर्थ है 'आभूषणों की भूमि'। यह पूर्वोत्तर भारत का एक छोटा– सा पहाड़ी इलाका है। मणिपुर राज्य में मुख्यतः 3 जनजातियों का वास है, जिनमें मैतेई, नागा और कूकी प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ मणिपुरी मुस्लिम तथा भारत के अलग–अलग क्षेत्र से आए विभिन्न जाति और धर्म के लोग बसे हुए हैं। यहाँ बोली जाने वाली भाषाओं में प्रमुखतः मणिपुरी, तांखुल, कुबुई, थादों म्हार, पाइते, माओ वाइफे, जांऊ और मिजो है। अंग्रेज़ी यहाँ की राजभाषा है तथा सरकारी कामकाज अंग्रेज़ी और मणिपुरी भाषा में सम्पन्न होती है। मणिपुर में अनेक पर्व, पूजा–पाठ एवं उत्सव मनाए जाते हैं। यहाँ का विख्यात त्योहार 'लाईहराओबा' है। वार्षिकोत्सव और देवी को प्रसन्न करने हेतु 'लाईहारोबा' लोकनृत्य प्रमुखतः मार्च–अप्रैल के महीने में विशेष ढंग से प्रदर्शित किया जाता है। अपने पूर्वजों को स्मरण करते हुए दस कलाकार इस नृत्य की प्रस्तुति करते हैं। 'पुड़ चोलम' नामक लोकनृत्य में बीस कलाकारों द्वारा राधा–कृष्ण के प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। इस राज्य में साल भर कोई–न–कोई उत्सव मनाया ही जाता है। यहाँ के निवासियों द्वारा मनाया जानेवाला अन्य पर्व इमोइनु, लुइ नगई नी, गान नागी, योशंग, ईद उल जुहा, हचोंग्बा आदि हैं।

त्रिपुरा :

त्रिपुरा को सन् 1972 में राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ था। त्रिपुरा के संबंध में नरेशचंद वर्मा जी लिखते हैं – "भारत के पूर्वी प्रान्त में बसे इस राज्य में सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ विभिन्न जनजातियाँ निवास करती हैं। इनमें त्रिपुरी, देववर्मा, रियाङ, जमातिया, कुकी, लुसाई, मोग, चकमा, नोवातिया, कलई, मूगसिंड रूपनी और उचई हैं। इनकी बोली को 'कॉकबरक' कहा जाता है।"[3] त्रिपुरा राज्य में प्रयोग में लाई जाने वाली भाषाओं में मुख्यतः त्रिपुरी, जमातिया, बांग्ला, रियाङ, चकमा, कुकी, मघ और कॉकबरक हैं। यहाँ की राजभाषा अंग्रेज़ी है और राजकाज हेतु अंग्रेज़ी, बंगाली, त्रिपुरी भाषा व्यवहृत होती हैं। त्रिपुरा में वास करने वाले जनजातियों के संदर्भ में प्रो. दिनेश कुमार चौबे कहते हैं – "आगत जनजाति समूहों में जमातिया तथा जवोतिया हिंदू हैं। चकमा बौद्ध तथा मिजो ईसाई हैं। नवागत बांग्ला भाषी समुदायों में हिंदू मुसलमान सम्मिलित हैं।"[4] त्रिपुरा का प्रसिद्ध एवं विशेष त्योहार 'सङसई' हैं। 'भाग' नामक समुदाय के युवक–युवतियाँ सिर पर कल्पतरु (विश ईल्डिंग ट्री) रखकर घर–घर घूमते हैं। समुदाय के बड़े–बूढ़े मांगलिक घड़े के जल से नहाते हैं। इसमें रखे गए कच्चे नारियल के पानी से प्रत्येक घर पर छिड़काव किया जाता है। हलाम समुदाय द्वारा 'हाई–होक' नृत्य प्रस्तुत होता है।

मिज़ोरम :

मिज़ोरम राज्य पर्वतों वाला देश है। 'मिजो' भाषा में 'मिज़ोरम' शब्द का अर्थ है – पर्वत निवासियों की भूमि। यह राज्य 1972 में केन्द्र शासित राज्य था, परन्तु आगे चलकर सन् 1987 ई. में इसे भारतीय गणतंत्र का एक पृथक राज्य का दर्जा मिला। माता प्रसाद के शब्दों में – "मिज़ोरम में कई जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनको मुख्यतः 3 भागों में बाँटा जाता है। (1) मिजो कबीले, जिनकी कई उपजातियाँ हैं। इनमें प्रमुख लुसाई, राल्ते, हमार, फनाइस, पांग, पोवी और लक्षेर हैं। ये जनजातियाँ उत्तर और पूर्व के भागों से आकर बस गई हैं। (2) दूसरे कबीले की जातियाँ, जिनमें चकमा और रियांग प्रमुख हैं। ये जनजातियाँ चटगाँव पहाड़ी क्षेत्र से और त्रिपुरा से पलायन कर मिज़ोरम डेमागिरी क्षेत्र में बस गई थीं। (3) इनके अलावा दूसरी जातियाँ भी हैं, जो कुछ समय पूर्व आकर यहाँ बस गईं, जिनमें बंगाली और नेपाली हैं।"[5]

आठ भाषाएँ मुख्य रूप से मिज़ोरम में बोली जाती हैं, यथा – मिजो, लखेर, चकमा, रियाङ और नेपाली। 'अंग्रेज़ी' यहाँ की राजभाषा है तथा कार्यालय का समस्त कार्य अंग्रेज़ी और मिजो दोनों भाषाओं में होता है। मिजो भाषा की अपनी कोई स्वतंत्र लिपि न होने के कारण इसे रोमन लिपि पर आश्रित होना पड़ता है।

मिज़ोरम में प्रमुखतः तीन त्योहार मनाए जाते हैं – चपचारकुत, मिमकुत और थालफवाङकुत। यहाँ 'कुत' शब्द का अर्थ 'त्योहार' है। 'पोवलकुत' उत्सव धान की कटाई के पश्चात्

दिसंबर महीने में 'कटाई उत्सव' के नाम से बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। यहाँ के लोग नृत्य में विशेष रुचि रखते हैं। जैसे – 'चेराव', 'सोलकिया', 'युआललाभ', 'छीब लाम', 'चेरोकान', 'पखुलिया नृत्य', 'जङतलाम' और 'ल्लाइलमा'।

असम :

'असम' पूर्वोत्तर भारत का प्रमुख राज्य है। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में इसे 'प्रागज्योतिषपुर', नाम से अभिहित किया गया है। असम को 'कामरूप' नाम से भी जाना जाता था। देवेन्द्र कुमार मिश्र जी लिखते हैं – "असम नाम संस्कृत भाषा से उद्‌भूत है, जिसका अर्थ है जो समतल नहीं है अर्थात् असमतल है। कुछ लोगों की मान्यता है कि 'असम' संस्कृत के 'अस्म' अथवा 'असमा' से लिया गया है, जिसका अर्थ 'असमान है' का अपभ्रंश है। कुछ विद्वानों का मानना है कि 'असम' शब्द संस्कृत के 'असोमा' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है अनुपम और अद्वितीय, लेकिन ज़्यादातर लोग असम की उत्पत्ति 'अहोम' शब्द से मानते हैं।"[6] इस राज्य में वृहत्तर जनजातियों के लोग निवास करते हैं और इनकी भाषाओं में भिन्नता भी पाई जाती है। असम में मुख्य रूप से बोडो, कार्बी, राभा, मिसिङ, देउरी, डिमासा, भूमिज, मुंडा आदि भाषाओं को बोलने वाली जनजातियाँ निवास करती हैं। असम में अधिकांश लोग 'असमिया' भाषा का ही प्रयोग करते हैं। यहाँ पाई जाने वाली जनजातियों में प्रमुखतः बोडो, मिसिङ, गारो, कार्बी, खामती, पहाड़ी नवागत हैं।

असम राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण और प्राचीनतम त्योहार 'बिहू' है, जो साल भर में 3 बार विधि–विधान से मनाया जाता है – (क) बोहाग बिहू (अप्रैल महीने में), (ख) माघ बिहू (जनवरी महीने में), (ग) काति बिहू (अक्टूबर महीने में)। यहाँ प्रसिद्ध कामाख्या मन्दिर में अम्बुबाशी मेला, उमानन्द एवं अन्य शिव मंदिरों में महाशिवरात्रि मेला, पौष मेला, परशुराम मेला, दिवाली, दोल–यात्रा, ईद, क्रिस्मस, दुर्गा पूजा आदि सभी त्योहार बड़े धूमधाम से मनाए जाते हैं। युवक–युवतियाँ मिलकर मैदान में बिहू गीत गाते हुए नृत्य करते हैं। "असम का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पर्व 'करम' पर्व है। भादो महीने में इसका अनुष्ठान होता है। इस समय एक ओर 'आउस' धान का नया चावल आता है, तो दूसरी ओर 'शाल' धान के रोपने का अंतिम समय होता है। फसल की वृद्धि की कामना से यह पर्व करम (एक पेड़) की दो डाल को पास–पास गाड़कर पूजा करके मनाया जाता है।"[7] असम का एक अन्य महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय पर्व 'टुसु' है, जो अगहन की फ़सल काटने के पश्चात् मनाया जाता है।

नागालैंड :

1 दिसम्बर सन् 1963 ई. में 'नागालैंड' को एक राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। इसका अधिकांश क्षेत्र पर्वतीय है, जो घने जंगलों से भरा है। इस राज्य में निवास करने वाले लोग इण्डो–मंगोलीय परिवार के अन्तर्गत आते हैं। एक परिवार के होने के बावजूद भी इनकी भाषाओं में अन्तर पाया जाता है। 'नागालैंड' राज्य जनजाति बहुल राज्य है। यहाँ कुल चौदह जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें 'अंगामि', 'सेमा', 'लोथा', 'आओ', 'रेंमा', 'रियाङ', 'कोन्याक', 'फोम', 'चाङ', 'साउथम', 'खिनमङन', 'मिचिङ', 'आलियाङ' और 'चखेसाङ' हैं। यहाँ जितनी जनजातियाँ हैं, सबकी अलग–अलग बोलियाँ तथा रीति–रिवाज़ हैं। इस राज्य में प्रयोग में लाई जाने वाली भाषाओं में मुख्यतः कोन्याक, ऑओ, सेमा, लोमा, फोम, अंगानि, चङ, चिमचुङर हैं। नागालैंड की राजभाषा अंग्रेज़ी है।

माता प्रसाद जी लिखते हैं – "नागा जातियों के अधिकतर पर्व–त्योहार कृषि सम्बन्धी कार्यों से संबंधित हैं। पर्व के साथ गीत गाना अनिवार्य है। इसमें परंपरा का बखान, वीरता का वर्णन, प्रणय कथा, किसी प्रमुख कथा का वर्णन होता है। इनके नृत्य बड़े ओजस्वी होते हैं। नागा नृत्य सामूहिक ही होते हैं। नृत्य में भाला या दाव घुमाते हैं। नाचने में पुरुषों का अधिकार है। पहले नाच धीरे–धीरे शुरू होता है, फिर पैर पटककर मुँह से ज़ोर की आवाज़ करते हैं, जल्दी–जल्दी हाथ घुमाते हैं और ज़ोर–ज़ोर से नाचते हैं।"[8] वैसे पूर्वोत्तर भारत के इस राज्य को उत्सवों की धरती कहा जाता है। 'लोथा' नागा जनजातियों द्वारा मनाया जाने वाला महत्त्वपूर्ण पर्व है। 'अंगामी–सेक्रन्यी' त्योहार अंगामी नागा जनजाति के लोग दस दिन तक मनाकर अपने–आपको शुद्ध एवं पवित्र करते हैं। इसके अतिरिक्त 'आओ–मोआत्सु मोङ त्योहार', 'सेमा तुलनी त्योहार', 'हार्नाबिल फ़ेस्टिवल' (धनेश पक्षी त्योहार) मनाया जाता है।

सिक्किम :

हिमालय की गोद में बसे सिक्किम राज्य को सन् 1975 ई. में भारत के संविधान से संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई थी। यह भारत का एक लघुतम राज्य है। यहाँ की आधिकारिक भाषा नेपाली है। यहाँ मुख्यतः लेप्चा, नेपाली, भूटिया लोगों का वास है। नेपाली के अन्तर्गत 'गुरुङ', 'भवुन' (शर्मा), 'लिम्बू', 'राई', 'प्रधान', 'शेर्पा', 'तमांङ' आदि अनेक वर्ग सम्मिलित हैं। भूटिया जाति की भाषा भूटिया ही है। सिक्किम राज्य में संस्कृति, धर्म एवं भाषा सभी में भिन्नता दृष्टिगत होती है। इतनी विविधता के बावजूद भी यहाँ के निवासी आपस में मिलजुलकर एक नई मिली–जुली संस्कृति का निर्माण करते हैं। 'सिंघीछाम्म' नृत्य सिक्किम का विख्यात लोकनृत्य है। खुशी और पर्व के शुभ अवसर पर इस नृत्य की प्रस्तुति होती है। 'याकछाम्म' एक अन्यतम नृत्य है, जिसे कुल डेढ़ दर्जन कलाकार मिलकर प्रदर्शित करते हैं। 'घांटू' यहाँ के गुरूङ समुदाय का एक विशेष नृत्य है, जो खासकर दीवाली तथा अन्य धार्मिक त्योहारों के अवसर पर आयोजित होती है।

उपरोक्त विवेचन से भली–भाँति स्पष्ट होता है कि पूर्वोत्तर भारत में अनेकानेक जनजातियाँ निवास करती हैं। यहाँ के समाज में बहुधर्मीय, बहुभाषीय, बहुजातीय एवं बहुसंस्कृति के लोगों की भरमार है। एक राज्य में वास करने के बावजूद भी लोग अलग–अलग बोलियों और भाषाओं में विचार–विनिमय करते हैं अर्थात् जितनी जातियाँ, उतनी बोलियाँ। सबसे बड़ी विडम्बना तो इस बात की है कि इनके द्वारा प्रयोग की जानेवाली भाषाओं एवं बोलियों में कहीं कोई मेल नहीं है। प्रत्येक राज्य की अपनी एक अलग मातृभाषा और सम्पर्क भाषा है, जो दूसरे राज्य से भिन्न है। भाषाओं में विविधता के कारण लोग अपने भावों एवं विचारों को एक–दूसरे के समक्ष प्रकट नहीं कर पाते हैं। भाषागत कठिनाई के कारण न तो वे अपने बहुरंगी साहित्य और संस्कृति को समझा ही पाते हैं और न ही किसी दूसरे राज्य के साहित्य एवं संस्कृति को जानने में सक्षम होते हैं। इस सम्बन्ध में माता प्रसाद का यह कथन सारगर्भित प्रतीत होता है – "पूर्वोत्तर भारत रंगारंग लोक संस्कृति की धरोहर है। असम तथा पूर्वोत्तर भारत की सभी जातियों, उपजातियों, जनजातियों की अपनी संस्कृति है। इन संस्कृतियों के साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का भी सम्पर्क है, परन्तु आज शेष भारत के लोगों का इन पूर्वोत्तर की संस्कृतियों के साथ परिचय न के बराबर है, जो भारतीय एकता की कमज़ोर कड़ी है। इसके कारण इनके मध्य भावनात्मक संपर्क का भी अभाव है।"[9]

किसी भी जाति को जानने के लिए उसके लिखित साहित्य एवं संस्कृति का होना अनिवार्य है, किन्तु पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में परम्परागत लिपि के अभाव के कारण उनके साहित्य–संस्कृति को जानने–समझने में विशेष कठिनाई होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन समस्याओं से कैसे निजात पाया जाए? ऐसी विकट स्थिति में एक ऐसी भाषा की ज़रूरत आन पड़ती है, जो सभी भाषागत समस्याओं का समाधान करते हुए समन्वय स्थापित करे। यह कार्य हमारी राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा और विश्वभाषा हिंदी ही कर सकती है। हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, असम से लेकर कच्छ तक बोली और समझी जाती है। यह गौरव का विषय है कि हिंदी आज भारत की सीमा को लाँघकर विश्व के कोने–कोने तक जा पहुँची है। हिंदी हमारे देश में एकता, अखण्डता की कड़ी और राष्ट्र अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है।

अक्सर हिंदी के संबंध में सुना जाता है कि यह एक कठिन एवं जटिल भाषा है, किन्तु यह धारणा बिल्कुल निराधार है। हिंदी विश्व की भाषाओं में अत्यन्त सरल, सहज एवं बोधगम्य भाषा है। उदाहरण के लिए इसकी ध्वनियों को ही ले लीजिए, जिसमें लेखन और अंकन में समानता है। जो लिखा जाता है, वही उच्चरित भी होता है। इसकी ध्वनियों में पाई जाने वाली व्यापकता अन्य भाषाओं की ध्वनियों में दुलर्भ है। व्याकरण की दृष्टि से भी यह सरल है। इसमें प्रयुक्त सर्वनाम, कारक–विभक्तियाँ सहज–सरल हैं। हिंदी बोलने के लिए केवल 3 धातुओं (होना, करना, बनाना) का ज्ञान ही काफ़ी है।। इसके वाक्य–विन्यास एवं विचार–पद्धति एक–दूसरे के अनुकूल है। हिंदी भाषा विश्लेषणात्मक होने के कारण इसके अर्थों को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है। यह अपनी लिपि के कारण भी सरल–सहज है। हिंदी, मराठी, गुजराती, बांग्ला, उड़िया, असमिया आदि लिपियाँ देवनागरी लिपि से ही उत्पन्न हुई हैं। इन लिपियों में समानता होने के कारण लोग आसानी से एक–दूसरे की भाषा बोल एवं समझ सकते हैं।

हिंदी अपने लचीलेपन के कारण बहुत ही कम समय के

भीतर सीखी और बोली जा सकती है। छोटे–बड़े शिक्षित–अशिक्षित, नगर व गाँव के लोग अपनी–अपनी भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति आसानी से हिंदी में कर सकते हैं। आज विभिन्न धार्मिक पर्यटन एवं तीर्थ स्थानों, बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों, हवाई अड्डों आदि जगहों पर सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी भाषा का प्रयोग होता है। आज हिंदी अपना परचम दिग–दिगन्त में लहरा रही है, क्योंकि वह भारत के जन–जन की भाषा है, हर मन की भाषा है, सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ. सुलभा कोरे (सं.), यूनियन सृजन, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, केन्द्रीय कार्यालय, मुंबई, जुलाई–सितम्बर, 2019, पृ. 12
2. आर.एस. लिडड़ो, द सोनाटा ऑव म्यूजिक एवं डॉस अक्रास द ब्लू हिल्स ऑव मेघालय, वेस्ट पब्लिकेशन शिलांग, 2005, पृ. 28
3. नरेशचंद देव वर्मा, कुमुदकुंदु चौधरी एवं त्रिपुरार आदिवासी, त्रिपुरा दर्शन प्रकाशन, अगरतला, 2009, पृ. 23
4. दिनेश कुमार चौबे, 'पूर्वोत्तर भारतः सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक', समन्वय पूर्वोत्तर, 10वाँ अंक, जनवरी–मार्च, 2011, पृ. 18
5. माता प्रसाद, पूर्वोत्तर भारत के राज्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1998, पृ. 191–192
6. देवेन्द्र कुमार मिश्र, 'पूर्वोत्तर भारत की कला और संस्कृति', समन्वय पूर्वोत्तर, अंक 10 जनवरी–मार्च, 2011, पृ. 21
7. रतन कुमार, 'दीवान चाय', 'बागान लोक सांस्कृतिक परिदृश्य', समन्वय पूर्वोत्तर, जनवरी–मार्च–2010, पृ. 72–73
8. माता प्रसाद, पूर्वोत्तर भारत के राज्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1998, पृ. 59
9. पूर्ववत्, पृ. 5

sangeetapasi1991@gmail.com

भारतीय तथा वैश्विक पटल पर हिंदी में रोज़गार की संभावनाएँ

– डॉ. पद्माकर पांडुरंग घोरपड़े
महाराष्ट्र, भारत

आज के युग में उसी भाषा का अस्तित्व रहेगा, जो व्यापक दृष्टि को अपनाकर स्वयं को विस्तारीत कर सकेगी। इस कसौटी पर हिंदी खरी उतरती है। 'हिंदी की प्रकृति तद्भव परक है, वह निरंतर कठिनता से सरलता की ओर उन्मुख होती चलती है। परिवेश के अनुसार ढल जाने का स्वाभाविक गुण उसमें मौजूद है। अपने संपर्क में आनेवाली भाषाओं और बोलियों से नए शब्द ग्रहण करती हुई हिंदी लगातार सामान्य जन के लिए सरल सहज और अपनेपन से लबरेज होती जा रही है और यह हिंदी की एक नई विकास यात्रा है, जिसने पूरे भूमंडल को अपने में समेट लिया है।[1] वर्तमान दौर में इसने अपनी एक अलग पहचान एवं अस्तित्व बना लिया है। आज वैश्विक पटल पर वह एक संवाहिका के रूप में उभरकर अपना कर्त्तव्य भली–भाँति निभा रही है। आज यह भाषा दुनिया की सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा बन चुकी है। वैश्विक पटल पर लगभग हर देश में हिंदी अपना परचम लहरा रही है। ज्ञान–विज्ञान, शिक्षा, प्रकाशन, विज्ञापन, अनुवाद, पर्यटन, सिनेमा, पटकथा लेखन, साहित्य, ब्लॉगिंग, माइक्रो ब्लॉगिंग आदि नए–पुराने संचार माध्यमों के ज़रिए इसने दूर–दूर तक अपनी एक अलग पहचान एवं पहुँच बना ली है। अब वैश्विक पटल पर हिंदी के बदलते रूप, स्वरूप को देखते हुए व्यापक विचार–विमर्श की आवश्यकता एवं माँग है।

वैश्विक पटल पर हिंदी को विश्वभाषा की प्रतिष्ठा दिलाने, एक अलग पहचान दिलाने में विश्व के कोने–कोने में फैले 4 करोड़ से अधिक अनिवासी भारतीयों की अविस्मरणीय भूमिका रही है। विश्व में हिंदी जाननेवालों की संख्या 1022 मिलियन से भी अधिक है। यह संख्या विश्व में किसी भी भाषा को जाननेवालों की संख्या में सर्वाधिक है। वैश्विक पटल पर सौ करोड़ से भी अधिक लोग हिंदी भाषा को समझते हैं तथा पचास करोड़ से भी अधिक लोग हिंदी को व्यवहार में लाते हैं। यदि भारतीय मूल निवासी लोगों को छोड़ दे तो भी 132 देशों के 1 करोड़ 20 लाख से अधिक भारतीय अनिवासी हिंदी को व्यवहार में लाते हैं।

भारतीय तथा वैश्विक पटल पर हिंदी में रोज़गार की संभावनाएँ :

यदि उपर्युक्त बातों पर एक नज़र डालें, तो यह साफ़ विदित है कि विश्व में हिंदी की स्थिति काफ़ी अच्छी है। जब इतनी अधिक संख्या में लोग हिंदी जानते एवं व्यवहार में लाते हैं, तब निश्चित रूप से हिंदी को लेकर रोज़गार की संभावनाएँ भी बढ़ जाती हैं। आज रोज़गार की दृष्टि से हिंदी सर्वाधिक उपयुक्त भाषा है। इसे निम्न तरह से देख सकते हैं।

शिक्षा क्षेत्र :

भारतीय पटल पर शिक्षा क्षेत्र में हिंदी में रोज़गार :

भारतीय पटल पर भारतीय संविधान के भाग 17, विभाग 1, अनुच्छेद 343–351 में भाषा संबंधी प्रावधान किए गए हैं। वहाँ साफ़–साफ़ लिखा है कि 'संघ की लिपि देवनागरी एवं भाषा हिंदी होगी। हिंदी के लिए अंकों का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप होगा, प्रांतीय भाषाएँ राष्ट्र भाषा कहलाएँगी।[2]

हिंदी के संदर्भ में यदि शिक्षा क्षेत्र की बात की जाए, तो यह विदित होता है कि भारत में शिक्षा संबंधी राधाकृष्णन आयोग, मुदलियार आयोग, खेर आयोग, कोठारी आयोग, नई शैक्षिक नीति 1986, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2005 आदि में प्रावधान किए गए हैं। कोठारी आयोग के भाषा संबंधी त्रिभाषा सूत्र में कहा गया है कि 'प्रथम भाषा के रूप में उस प्रान्त की स्थानीय भाषा रहेगी, द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी भाषा रहेगी तथा तृतीय एवं अनिवार्य भाषा के रूप में अंग्रेज़ी रहेगी। भारतीय पटल पर भारतीय शिक्षा प्रणाली इसी त्रिभाषा सूत्र पर आधारित कार्य करती है।[3]

भारतीय नौकरियों में 10वीं एवं 12वीं में तथा स्नातक स्तर पर कला, वाणिज्य, विज्ञान, संगणक आदि शाखाओं में द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी ज्ञान अनिवार्य किया गया है तथा स्नातक एवं स्नातकोत्तर कला शाखा में हिंदी को ऐच्छिक रूप से रखा गया है।

1. हिंदी अध्यापक :

सरकारी, अर्ध सरकारी, असरकारी, केंद्रीय एवं राज्य संचालित अनुदानित पाठशालाओं में हिंदी का अध्यापन किया जा सकता है। इसके लिए स्नातक उपाधि के साथ हिंदी को लेकर शिक्षा शास्त्र उपाधि अनिवार्य है।

2. हिंदी प्राध्यापक :

सरकारी, अर्द्ध सरकारी, असरकारी, केंद्रीय एवं राज्य संचालित अनुदानित पाठशालाओं या 11वीं, 12वीं के लिए हिंदी प्राध्यापक के रूप में अध्यापन किया जा सकता है। इस के लिए स्नातकोत्तर हिंदी उपाधि के साथ हिंदी को लेकर शिक्षा शास्त्र उपाधि अनिवार्य है।

3. हिंदी अधिव्याख्याता :

सरकारी, अर्द्ध सरकारी, असरकारी, केंद्रीय एवं राज्य संचालित अनुदानित महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर पर हिंदी में अध्यापन किया जा सकता है। इसके लिए स्नातकोत्तर उपाधि के साथ केंद्रीय लोकसेवा आयोग समतुल्य राष्ट्रीय पात्रता या राज्य पात्रता (नेट/सेट) अनिवार्य है।

4. हिंदी प्रपाठक/विभागाध्यक्ष :

सरकारी, अर्द्ध सरकारी, असरकारी, केंद्रीय एवं राज्य संचालित अनुदानित महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी में अध्यापन किया जा सकता है। इसके लिए स्नातकोत्तर उपाधि के साथ विद्यावाचस्पति (पी.एच. डी.) उपाधि अनिवार्य है।

विश्व पटल पर शिक्षा क्षेत्र में हिंदी में रोज़गार :

1. हिंदी अध्यापक/प्राध्यापक :

मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, मंगोलिया, थाईलैंड, श्रीलंका, इंडोनेशिया, उज़्बेकिस्तान, कज़ाकस्तान, सिंगापुर, मलेशिया, म्यानमार, हॉलैंड, त्रिनिदाद आदि 73 राष्ट्रों के 600 पाठशालाओं एवं विद्यालय–महाविद्यालय स्तर पर हिंदी अध्यापन के सहारे हिंदी रोज़गार का साधन बनी है। इसके लिए स्नातक उपाधि के साथ शिक्षा शास्त्र उपाधि अथवा इससे समतुल्य उस राष्ट्र की उपाधि अनिवार्य है।

2. अधिव्याख्याता / प्रपाठक / विभागाध्यक्ष :

चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, पॉलैंड, रूस, रोमानिया, गयाना, पश्चिम जर्मनी, यू.के., अमेरिका, यू.एस.ए. आदि 40 राष्ट्रों के 100 से भी अधिक विश्वविद्यालयों के अंतर्गत आने वाले महाविद्यालयों में हिंदी अध्यापन कर सकते हैं। इसके लिए भारतीय पटल के स्नातकोत्तर उपाधि के साथ नेट/सेट पात्रता परीक्षा तथा विद्यावाचस्पति (पी.एच.डी.) उपाधि अथवा इससे समतुल्य उस राष्ट्र की उपाधि अनिवार्य है।

भारतीय केंद्रीय सरकार के अंतर्गत आनेवाले कार्यालयों में हिंदी में रोज़गार :

भारतीय विदेश मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय और कर्मचारी चयन आयोग :

1. द्विभाषिक अनुवादक :

भारतीय केंद्रीय सरकार के अंतर्गत विदेश मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय होता है। इनमें तथा साथ ही कर्मचारी चयन आयोग के अंतर्गत आनेवाले सभी कार्यालयों में द्विभाषिक ही नहीं अनुवादक के रूप में रोज़गार प्राप्ति कर सकते हैं। भारतीय 'प्रशासन के अंतर्गत संसद, केंद्रीय सरकार के अधीन सभी मंत्रालयों, कार्यालय के संकल्पों, आदेशों, नियमों, अधि–सूचनाओं, प्रतिवेदनों, प्रेस विज्ञप्तियों, अनुज्ञापनों, सूचनाओं, निविदा प्रारूपों आदि का समावेश होता है। उसी प्रकार प्रशासनिक कार्यालय, सैनिक, असैनिक, रेल, डाक, तार, बैंक, बीमा, आकाशवाणी आदि विविध कार्यालयों के कामकाज के लिए अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवाद किया जा रहा है।[4] इसके लिए पदानुरूप 12वीं, स्नातक, स्नातकोत्तर हिंदी उपाधि के साथ हिंदी अनुवादक उपाधि अनिवार्य है। साथ ही द्विभाषा का ज्ञान आवश्यक है।

आज वर्तमान में वैश्विक पटल पर विश्व में मौजूद लगभग बहुताधिक देशों में एक विदेश मंत्रालय होता है। इन देशों को भारत के साथ व्यवहार करने के लिए उस देश की अपनी भाषा के साथ हिंदी की भी आवश्यकता होती है। यदि उस देश का नागरिक अपनी स्थानीय भाषा के साथ हिंदी का अच्छा ज्ञान रखता है,

तो वे इन केन्द्रीय मंत्रालयों के अंतर्गत आनेवाले कार्यालयों में द्विभाषिक अनुवादक के रूप में रोज़गार प्राप्ति कर सकते हैं। इसके लिए उस देश के किसी भी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की अनुवादक की उपाधि आवश्यक है।

सरकारी / गैर सरकारी बैंको तथा कंपनियों में हिंदी में रोज़गार :

1. हिंदी टंकलेखक/अनुवादक के रूप में हिंदी में रोज़गार :

भारत में मौजूद सभी सरकारी, गैर सरकारी एवं आर.बी. आई. के अंतर्गत मान्यता प्राप्त सभी बैंको के कार्यालयों तथा एफ़. डी.आई. कंपनी अधिनियम के अंतर्गत आने वाले सभी सरकारी, गैर सरकारी कंपनियों में हिंदी टंकलेखक एवं अनुवादक के रूप में रोज़गार प्राप्ति कर सकते हैं। इसके लिए 12वीं अथवा मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की स्नातक उपाधि के साथ अनुवादक की उपाधि अनिवार्य है।

उपर्युक्त क्षेत्र के अलावा अनुवाद की दृष्टि से केंद्रीय सरकार के अधीन कार्यालयों, प्रशासनों, विधि एवं कानून, बैंक एवं वणिज्य, विज्ञान एवं तकनीकी, शिक्षा, जनसंचार माध्यम आदि क्षेत्रों में भी एक अनुवादक के रूप में रोज़गार की अनंत संभावनाएँ हैं। इसके लिए पदानुरूप 12वीं अथवा मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की स्नातक, स्नातकोत्तर हिंदी उपाधि के साथ अनुवादक की उपाधि अनिवार्य है।

2. वैयक्तिक हिंदी अनुवादक के रूप में हिंदी में रोज़गार :

साहित्य तथा साहित्येतर विषयों का अनुवाद करके भी हिंदी में रोज़गार की प्राप्ति की जा सकती है। आजकल रोज़गार की दृष्टि से यह क्षेत्र काफ़ी आशादायक साबित हो रहा है। कई लोगों ने तो अपनी ज़िंदगी का स्वतंत्र हिस्सा इसके लिए समर्पित किया है। इसके लिए कम–से–कम प्रथम भाषा एवं लक्षित भाषा पर अधिकार, प्रभुत्व के साथ अनुवाद कला का उत्तम ज्ञान अत्यावश्यक है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी में रोज़गार :

आज सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार का युग है। सूचना प्रौद्योगिकी के कारण ही हिंदी बोलने, जानने वालों, समझने वालों की संख्या में दिन–ब–दिन बढ़ोत्तरी हो रही है। वैश्विक पटल पर हिंदी के प्रचार–प्रसार, विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका भूमंडलीकरण और संचार माध्यमों के विस्तार की रही है। व्यवसाय, उद्योग, ज्ञान–विज्ञान, इंजीनियरिंग, बैंक, अंतराल अवकाश, भूगर्भ, कृषि आदि क्षेत्रों में सॉफ़्टवेयर, ऑनलाइन बेबसाइट, इलेक्ट्रॉनिक स्मार्ट कार्ड, ए.टी.एम. कार्ड, क्रेडिट कार्ड, सेलफ़ोन, संगणक, मोबाइल आदि के रूप में हिंदी के प्रयोग में दिन–ब–दिन बढ़ोत्तरी हो रही है। अतः सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी में रोज़गार के कई अवसर उपलब्ध हो रहे हैं। इसके लिए उस देश के किसी भी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय के हिंदी–ज्ञान के साथ संगणकीय उपाधि आवश्यक है।

संवाददाता / पत्रकार के रूप में हिंदी में रोज़गार :

1. मीडिया :

आज के इस वैश्विक दौर में सूचना प्रौद्योगिकी, मीडिया के क्षेत्र में हिंदी में रोज़गार की असीम संभावनाएँ हैं। भारत में मौजूद सरकारी, गैर सरकारी, मीडिया में, साथ ही दैनिक पत्र–पत्रिकाओं के विभागान्तर्गत आनेवाले सभी कार्यालयों में हिंदी पत्रकार तथा हिंदी संवाददाता के रूप में रोज़गार प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही, वैश्विक पटल पर विश्व में मौजूद लगभग बहुताधिक देशों में हिंदी प्रसारण चेनल होता है। इन चेनलों में संवाददाता या पत्रकार के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। इसके लिए उस देश के किसी भी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की स्नातक और स्नातकोत्तर हिंदी उपाधि के साथ पत्रकारिता के क्षेत्र में मौजूद पत्रकार या संवाददाता की उपाधि की आवश्यकता है।

2. आकाशवाणी :

आज से 6 साल पूर्व पाँच सौ करोड़ रुपयों का भारत का रेडियो बाज़ार प्रतिवर्ष 40 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी के साथ आज साढ़े सात सौ करोड़ रुपयों के बाज़ार में परिवर्तित हो गया है। भारतीय आकाशवाणी विभागान्तर्गत आनेवाले सभी केन्द्रों, उपकेंद्रों एवं कार्यालयों में हिंदी पत्रकार या संवाददाता के रूप मे रोज़गार प्राप्ति कर सकते हैं। इसके लिए किसी भी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर हिंदी उपाधि के साथ पत्रकारिता के क्षेत्र में मौजूद पत्रकार या संवाददाता की उपाधि की अनिवार्यता है। साथ ही सुमधुर गंभीर आवाज़ इसकी अपनी

एक अलग पहचान है।

भारतीय तथा विदेशी कंपनियों में हिंदी में रोज़गार :

1. विज्ञापन विशेषज्ञ :

भारत तथा विदेश में मौजूद सरकारी, गैर सरकारी कंपनियों में हिंदी विज्ञापन विशेषज्ञ के रूप में रोज़गार के अवसर उपलब्ध हैं। इसके लिए स्नातकोत्तर हिंदी उपाधि के साथ विज्ञापन का ज्ञान अनिवार्य है।

2. परामर्शदाता :

भारत तथा विदेश में मौजूद सरकारी, गैर सरकारी कंपनियों में हिंदी परामर्शदाता के रूप में रोज़गार की प्राप्ति की जा सकती है। इसके लिए स्नातकोत्तर हिंदी उपाधि के साथ सही सोच एवं सही मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

सिनेमा जगत में हिंदी में रोज़गार :

वैश्विक पटल पर सर्वाधिक आबादी वाले देशों में भारत अग्रसर है। इसलिए यदि दुनिया के लिए भारत एक बड़ा बाज़ार है, तो भारतीय फ़िल्मों के लिए यही आबादी एक सबसे बड़ा बाज़ार है। भारतीय सिनेमा आज विश्व के लिए एक पहेली, आश्चर्य, कुतूहल, जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। आज भारत ही नहीं विश्व के तमाम लोगों के लिए भारतीय सिनेमा उद्योग रोज़गार का असीम खज़ाना बनकर उभर रहा है। 'यह उद्योग 01.4 मिलियन डॉलर की लागत से प्रति वर्ष हज़ार से भी अधिक फ़िल्में बनाता है।[5] विश्व में प्रति वर्ष सर्वाधिक फ़िल्में भारत में ही बनती हैं। हिंदी की फ़िल्म इंड्रस्ट्री समूचे विश्व में सबसे ज़्यादा टर्नओवर वाली इंड्रस्ट्री है। इसका वार्षिक कारोबार 95 अरब डॉलर के आसपास है। हिंदी का फ़िल्म उद्योग भारत के लिए सबसे ज़्यादा विदेशी मुद्रा कमाने वाली संस्थाओं में से प्रमुख है।[6] भारतीय सिनेमा जगत में सिनेमा डबिंग के साथ अभिनय, गीतकार, कहानीकार, पटकथाकार, संवाद लेखक, संगीतकार, गायक, निर्माता, निर्देशक, वितरक, साइन फ़ोटोग्राफ़र, कोरियोग्राफ़र, ग्राफ़िक डिज़ाइनर, कैमरा मैन, प्रदर्शक वीडीयो एडिटर, समीक्षक आदि रूपों में रोज़गार की अनंत संभावनाएँ हैं। इसके लिए हिंदी भाषा पर अच्छे प्रभुत्व के साथ अपनी अलग गुणवत्ता, कुछ कर दिखने का जूनून, हुनर चाहिए।

1. पटकथाकार के रूप में हिंदी में रोज़गार :

भारतीय फ़िल्म दुनिया, धारावाहिक, नाटकों आदि में पटकथा लिखकर कथा की गुणवत्तानुरूप रोज़गार प्राप्ति कर सकते हैं। इसके लिए स्नातकोत्तर हिंदी उपाधि के साथ विज्ञापन का ज्ञान आवश्यक है। वैश्विक पटल पर विश्व में मौजूद लगभग बहुताधिक देशों में एक हिंदी प्रसारण चैनल होता है। यह चैनल अपने दर्शकों के लिए विविध धारावाहिक, नाटक आदि का प्रसारण करते हैं। इसके लिए आप पटकथाकार के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। इसके लिए अलग सोच, कल्पना एवं भाषा पर प्रभुत्व की आवश्यकता होती है।

2. साहित्यकार के रूप में हिंदी में रोज़गार :

भारत तथा भारत के बाहर वैश्विक पटल पर एक अच्छे साहित्यकार के रूप में हिंदी को अपनाकर रोज़गार प्राप्ति कर सकते हैं। काव्य, कहानी, नाटक, निबंध, उपन्यास, पत्र, डायरी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा, एकांकी आदि विधाओं में वैयक्तिक रूप से लेखन के माध्यम से अपनी कथा की गुणवत्ता भाषा प्रभुत्व एवं पाठक की अभिरुचि, पसंद के अनुरूप सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान, पुरस्कार आदि प्राप्त कर सकते हैं।

पर्यटन क्षेत्र में हिंदी में रोज़गार :

1. मार्गदर्शक :

आजकल भारत में विदेशी सैलानियों की संख्या काफ़ी मात्रा में बढ़ रही है। इन सैलानियों को भारत आने पर सबसे बड़ा सामना भाषा से करना पड़ता है। ताजमहल, अजंता, एलोरा, खजुराहो, बीबी का मकबरा, अयोध्या, मथुरा, बौद्ध स्तूप, विहार, काशी, गुरुद्वारा, चर्च आदि अनगिनत पर्यटन की दृष्टि से विलोभनीय स्थलों पर इन सैलानियों को मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। यदि हम हिंदी के साथ–साथ फ्रेंच, रूसी, जर्मनी, जापानी, मंदारीन, अंग्रेज़ी आदि अन्य विदेशी भाषाओं में से सभी या कोई एक भाषा पर प्रभुत्व प्राप्त करते हैं, तो हम हिंदी के सहारे एक उत्तम मार्गदर्शक की भूमिका अदा कर सकते हैं। साथ ही हमारे कई भारतीय हर दिन कई देशों की यात्रा करते हैं, उन्हें वहाँ की स्थानीय भाषा का ज्ञान न होने के कारण कई बार गुमराह होते हैं या धोखाधड़ी का शिकार बन जाते हैं। यदि उस देश का नागरिक अपनी भाषा के साथ–साथ हिंदी भाषा का ज्ञान

रखता है, तो वह इन भारतीयों को अपने यहाँ के पर्यटन स्थल, धार्मिक स्थल तथा अन्य जानकारी हिंदी में देकर सही मार्गदर्शन कर रोज़गार प्राप्ति कर सकते हैं।

2. सैलानियों के लिए कोचिंग क्लास :

1022 मिलियन यह आँकड़ा ही हिंदी की बढ़ती व्यापकता एवं लोकप्रियता को अधोरेखित करता है। इसलिए आजकल कई विदेशी सैलानी हिंदी सीख रहे हैं। पर्यटन के रूप में भारत आने पर उन्हें इसकी अत्यावश्यकता महसूस होती है। इसलिए हिंदी को हम रोज़गार के रूप में अपना सकते हैं। इसके लिए हमें हिंदी के साथ–साथ अन्य भाषा का ज्ञान आवश्यक है।

साक्षात्कारकर्ता के रूप में हिंदी में रोज़गार :

हिंदी भाषा पर अच्छा प्रभुत्व रखने वालों के लिए साक्षात्कारकर्ता के रूप में हिंदी में रोज़गार की संभावनाएँ हैं। 'साक्षात्कार वह विधा है, जिसमें कई व्यक्ति विशेष और एक सजग प्रश्नकर्ता आमने–सामने होते हैं। उनके प्रश्नोत्तरों के माध्यम से व्यक्ति–विशेष की साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि मान्याताएँ जीवन–जगत यानी व्यक्तित्व–कृतित्व का उद्‌घाटन होता है। उसका चरित्र और उसकी अवधारणाएँ सामने आती हैं। उस व्यक्ति के अंतर्मन के देखे–अनदेखे कोनों की झाँकी दिखाई जाती है'।[7] यदि आपके पास समाचार के 6 (कब, कहाँ, क्यों, क्या, कौन, कैसे?) ककारों के ज्ञान के साथ–साथ आत्मविश्वास, तार्किकता, समन्वय, निष्पक्षता, स्पष्टता, वैचारिकता, प्रत्युत्पन्मति, समय सूचकता, आकर्षक व्यक्तित्व आदि गुण हैं, तो आप किसी महान पुरुष–महिला, नेता, कलाकार, आध्यात्मिक गुरु, साहित्यकार, खिलाड़ी आदि के साक्षात्कार के रूप में इस क्षेत्र में रोज़गार के अच्छे–खासे अवसर उपलब्ध हैं।

पुस्तक एवं पत्र–पत्रिका प्रकाशन क्षेत्र में हिंदी में रोज़गार :

आजकल भारत तथा विश्व में पुस्तकों एवं पत्र–पत्रिकाओं का बाज़ार काफ़ी बढ़ रहा है। जहाँ लेखकों की नज़र शब्दों पर होती है, वहीं प्रकाशकों की नज़र पन्नों पर होती है। लेखक के अधिकाधिक शब्दों को कम–से–कम पन्नों में प्रकाशित कर एक रोज़गार के रूप में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। इस क्षेत्र में लेखक, पुस्तक, पत्र–पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं अपनी प्रकाशन की गुणवत्ता, लोकप्रियता तथा पाठकों की माँग के आधार पर आर्थिक प्राप्ति की जा सकती है।

इस तरह उपर्युक्त मुद्दों पर एक नज़र डालें, तो यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाती है कि विविध क्षेत्रों में हिंदी में रोज़गार की अनंत संभावनाएँ हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि अब वह दिन दूर नहीं कि कोई भी हिंदी ज्ञानी व्यक्ति बेकार घूमता नज़र नहीं आएगा, बल्कि इसका सहारा लेकर अपनी गुणवत्तानुरूप अपने पैरों पर खड़ा होकर अपना नाम रौशन करता नज़र आएगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. हिंदी : राष्ट्र की अस्मिता (अभिनंदन ग्रंथ 2011)
2. प्रयोजनमूलक हिंदी – डॉ. माधव सोनटक्के
3. व्यवहारिक हिंदी – डॉ. माधव सोनटक्के
4. कार्यालयी हिंदी एवं कार्यालयी अनुवाद तकनीक – सं.– डॉ. सुरेश माहेश्वरी – पृ. – 290
5. रोज़गारभिमुख हिंदी : दिशाएँ एवं संभावनाएँ – सं. डॉ. सुभाष तलेकर लेख – इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में रोज़गार की संभावनाएँ – डॉ. भारती गोरे – पृ. – 133
6. रोजगारभिमुख हिंदी : दिशाएँ एवं संभावनाएँ – सं. डॉ. सुभाष तलेकर लेख – हिंदी में रोज़गार – डॉ. आलोक भट्टाचार्य – पृ. 55
7. साहित्यिक विधाएँ – डॉ. हरिमोहन

आधार ग्रंथ :

1. हिंदी के अद्यतन अनुप्रयोग – डॉ. माधव सोनटक्के
2. अनुवाद : सिद्धात एवं व्यवहार – नवटीयाद
3. आधुनिक जनसंचार और हिंदी – प्रो. हरिमोहन
4. टेलीविजन लेखन – असग़र वजाहत
5. भारतीय मीडिया : अन्तरंग पहचान – स्मिता मिश्र
6. हिंदी कम्पूटिंग – त्रिभुवन शुक्ल
7. हिंदी पत्रकारिता : स्वरूप एवं संदर्भ – डॉ. विनोद गोदरे

ghorpade.p123@gmail.com

फ़िजी हिंदी साहित्य सृजन : प्रो. सुब्रमनी की औपन्यासिक कृतियों का अवलोकन

– श्रीमती सुभाषिनी एस. लता
फ़िजी

फ़िजी हिंदी फ़िजी द्वीप में बसे प्रवासी भारतीयों की मातृभाषा है। इस भाषा में अवधी, भोजपुरी, तमिल, तेलुगू, ब्रज, मराठी आदि भाषाओं के साथ–साथ अंग्रेज़ी और फ़िजियन भाषा के शब्दों का अनूठा मिश्रण है। फ़िजी हिंदी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द सम्मलित हैं, जो गिरमिट काल के दौरान कृषि जीवन और नए माहौल में ढलने के लिए ज़रूरी थे। प्रो. सुब्रमनी के दोनों उपन्यास 'डउका पुरान' और 'फ़िजी माँ' फ़िजी हिंदी की ऐतिहासिक कृतियाँ हैं। फ़िजी के प्रवासी भारतीयों की भाषा, जीवन–शैली, संस्कृति, परंपरा, अनुभव आदि का चित्रण 'डउका पुरान' और 'फ़िजी माँ' में सजीवता से मिलता है।

हालाँकि, 'फ़िजी हिंदी' फ़िजी के लगभग सभी भारतवंशियों की मातृभाषा है, लेकिन अंग्रेज़ी और खड़ी बोली हिंदी की तुलना में इसे निम्न कोटि की भाषा समझा जाता है। जहाँ शिक्षण और औपचारिक स्थलों पर मानक हिंदी को मान्यता दी जा रही है, वहीं अनौपचारिक स्थलों पर फ़िजी हिंदी अभिव्यक्ति का माध्यम है। फ़िजी हिंदी के साथ अक्सर यह संदेह रहा है कि वह एक अपूर्ण टूटी–फूटी, व्याकरणहीन भाषा है और इसका प्रयोग सिर्फ़ बोलचाल के लिए ही उपयुक्त है। इस वजह से इसके लेखन व संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया गया, लेकिन आज आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के दौर में अंग्रेज़ी भाषा का निरंतर प्रभाव फ़िजी के प्रवासी भारतीय समाज पर भी देखा जा सकता है। 21वीं शताब्दी में फ़िजी हिंदी भाषा के प्रलेखन की ओर प्रो. सुब्रमनी का ध्यान गया और उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा के मोह को छोड़कर फ़िजी हिंदी में साहित्यिक कृतियाँ लिखनी प्रारंभ की। फ़िजी हिंदी भाषा एवं साहित्य सृजन में सुब्रमनी जी की औपन्यासिक कृतियों का स्थान अद्वितीय है।

फ़िजी हिंदी कथाकार : प्रो. सुब्रमनी

प्रो. सुब्रमनी का जन्म सन् 1943 में फ़िजी के एक दक्षिण भारतीय परिवार में हुआ। यह वह दौर था, जब फ़िजी में गिरमिट काल का अंत हो चुका था, लेकिन अब भी फ़िजी देश ब्रिटिश शासन के अधीनस्थ था। वे मूलतः लम्बासा शहर के बत्नीकामा गाँव के निवासी हैं। अपनी जन्म भूमि को सुब्रमनी जी 'रामचरितमानस का देश' मानते हैं। उनके पिता, रामा एक गिरमिटिया मज़दूर थे, जो गिरमिट प्रथा के अंतर्गत फ़िजी आए थे। सुब्रमनी जी को बचपन से ही पुस्तकों में दिलचस्पी रही है। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास, रवींद्रनाथ टैगोर, विलियम शेक्सपियर, मुंशी प्रेमचंद, जर्मन लेखक फ्रैंज काफ़्का तथा कुशवाह कांत जैसे प्रमुख रचनाकारों की कृतियाँ पढ़ीं और उनसे अधिक प्रभावित भी हुए। भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' ने सुब्रमनी जी को सबसे अधिक प्रभावित किया है। उनका कहना है कि रामायण ने जैसे उनके लिए किताबों की दुनिया ही खोल दी। गिरमिट काल में पराजय और निराशा की चरम स्थितियों में साहस और सांत्वना देने के अलावा, फ़िजी में भारतीय समुदाय के बीच गोस्वामी तुलसीदास की 'रामचरितमानस' भाषा, साहित्य, धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करने वाला प्रहरी रहा है। प्रो. सुब्रमनी रामचरितमानस को अपना साहित्यिक सृजन स्त्रोत और श्री राम जी को अपने प्रथम नायक मानते हैं।

फ़िजी हिंदी में लिखने के संबंध में सुब्रमनी जी कहते हैं कि "भारतवंशियों के इतिहास को अगर ईमानदारी के साथ लिपिबद्ध करना हो, तो उसे किसी अन्य भाषा में करना असम्भव होगा। अगर इस उपन्यास (डउका पुरान) को अंग्रेज़ी में लिखा गया होता, तो कहानियों व पंक्तियों के भावार्थ में बदलाव आ जाता।

जब मैंने फ़िजी हिंदी में लिखना शुरू किया, तो इसकी भाषा–शैली ने मुझे अकस्मात अपनी ओर प्रभावित कर लिया।" उनका विचार है कि फ़िजी के भारतीय मूल के लोगों को अपनी मातृभाषा और सभ्यता पर गर्व करना चाहिए। उनका मानना है कि सभी के अन्दर एक कहानी छिपी हुई है, जिसे लिपिबद्ध करना ज़रूरी है, ताकि फ़िजी की भाषा और साहित्य का विकास होता रहे।

अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर होते हुए भी सुब्रमनी जी ने हमेशा मातृभाषा के महत्त्व, शिक्षा और शिक्षण पर अधिक बल दिया है। अपने भाषणों, आलेखों और साहित्य के माध्यम से उन्होंने भारतीय तथा फ़िजियन समुदाय को मातृभाषा की भूमिका तथा शिक्षा में इसकी अनिवार्यता पर कई प्रस्ताव रखे हैं। सुब्रमनी जी की रचना–दृष्टि विभिन्न साहित्यिक रूपों में प्रवृत्त हुई है। प्रतिभा संपन्न सुब्रमनी जी ने कहानी, उपन्यास, नाटक, समीक्षा, निबंध, संपादकीय आदि विधाओं में रचनाओं की सृष्टि की है। सुब्रमनी जी बहुआयामी साहित्यकार हैं, जिनकी कृतियाँ दक्षिण प्रशान्त के अंग्रेज़ी व हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उनकी प्रवीणता और कौशल इस तथ्य पर निहित है कि उनकी साहित्यिक कृतियाँ अंग्रेज़ी और फ़िजी हिंदी दोनों भाषाओं में उपलब्ध हैं।

फ़िजी हिंदी उपन्यास : 'डउका पुरान'

'डउका पुरान' का सृजन फ़िजी हिंदी भाषा एवं साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपलब्धि रही है। सन् 2001 में स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 521 पृष्ठों का यह पहला फ़िजी–हिंदी उपन्यास है। इस उपन्यास की खासियत यह है कि प्रो. सुब्रमनी ने इस रचना के माध्यम से निम्नवर्गीय व्यक्तियों को वाणी प्रदान की है तथा फ़िजी हिंदी भाषा को साहित्यिक विधा में लिपिबद्ध कर इसे साहित्य विश्व में स्थापित करने का प्रयास किया है। उपन्यास गद्यात्मक महाकाव्य होता है, जिसमें युग जीवन की अभिव्यक्ति के साथ समाज के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं और परिस्थितियों का व्यापक चित्रण मिलता है। साहित्यकार ने 'डउका पुरान' में अपने पूर्वजों की संवेदनाओं, भावनाओं तथा विचारों को निजी अनुभवों के साथ अपने बचपन की भाषा में अभिव्यक्त किया है।

अक्सर सत्ताधारी पूंजीवादी व्यवस्था के दौर में निम्नवर्गीय लोगों की आवाज़ को दबा दिया जाता है। 'डउका पुरान' का नायक निम्नवर्गीय फ़िजी लाल है। उक्त उपन्यास की भूमिका में प्रो. हरीश त्रिवेदी लिखते हैं – "सबाल्टर्न का अपना सच्चा स्वर तो डउका पुरान की फ़िजी हिंदी जैसी भाषा में ही मुखरित हो सकता था।" तथा वे उपन्यास की भाषा को कथा शैली के लिए उपयुक्त मानते हैं। ऑस्ट्रेलिया में प्रकाशित हिंदी समाचार–पत्रिका 'डउका पुरान' के महत्त्व को इन शब्दों में प्रतिपादित करती है – "डउका पुरान एक ऐतिहासिक और मनोरंजक पुराण है, विशेषकर फ़िजी के भारतीय मूल वासियों के लिए एक अमूल्य पुस्तक है, जो अतीत को जागृत करता है। यह उपन्यास फ़िजी के गाँववासियों का जीवन, परिवार, मण्डलियों की स्थापना, त्योहार, गाँव से शहर का निर्माण, ग्रामोफ़ोन, रेडियो, सिनेमा, धर्म, राजनीति कैसे उनके जीवन में आए उसकी विस्तृत कथा है।" अतः 'डउका पुरान' को फ़िजी के प्रवासी भारतीयों का ऐतिहासिक दस्तावेज़ कहा जा सकता है।

'डउका पुरान' में फ़िजी के हिन्दुस्तानी समाज का व्यापक फलक अभिव्यंजित है। उपन्यासकार 'डउका पुरान' की कथावस्तु की विविधता के संबंध में लिखते हैं – "डउका पुरान में खाली गोबरे थोरे है। तो का है? नदी, परबत, चांदनी रात, सादी, बिआह, मही तीरथ और एक औरत जेकर नाम है पिंगला।" लेखक ने इसकी कथा को सात अध्यायों में विभक्त किया है, जहाँ उपन्यास का नायक, फ़िजी लाल अपने अनुभव के विस्तार के लिए फ़िजी के विभिन्न गाँवों तथा शहरों की यात्रा पर निकलता है। इस यात्रा के दौरान फ़िजी लाल की मुलाकात जगन्नाथ, नान्हू, घुरउ, सूरज, कौसल, मूलचंद, मेरासामी, अलिपाते, तुकूनी बाबा, सुखलाल, हरुन आदि पात्रों से होती है और इन पात्रों की प्रासंगिक कथाओं के ज़रिए कथानक का विकास होता है। उपन्यास की कथा के संबंध में पं. विवेकानंद शर्मा जी लिखते हैं – "फ़िजी के ग्राम्य जीवन का इतना ज़ोरदार चित्रण पहले कभी नहीं हुआ। हाल ही में किसानों के विस्थापित किए जाने से उनकी जीवन–शैली ही बिखर जाने को है। इस उपन्यास में उसी जीवन–शैली का प्रभावी, करुण व विडम्बनात्मक चित्रण हुआ है।" नायक फ़िजी लाल की यात्रा के दौरान कहानियों और उप–कहानियों के गठन से कथा में

व्यापकता और रोचकता आती है।

साहित्य में जीवन के अंतरंग–बहिरंग का वास्तविक चित्रण करना किसी भी कलाकार का मूल संवेद्य हो सकता है। साहित्यकार का मूल उद्देश्य केवल मनोरंजन या भाव लोक को उत्तेजित करना ही नहीं होता, बल्कि वह समाज की परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उस समाज की समस्याओं को भी अपनी कृति में अंकित करता है, जिससे समाज जागरूक होकर उसके समाधान की ओर बढ़े। वस्तुतः हर उपन्यास अपनी महत्ता लिए है।

'डउका पुरान' निम्नवर्गीय साधारण व्यक्ति फ़िजी लाल के असफल प्रेम और तीर्थ यात्रा की घटना पर आधारित है। अधिकांशतः इन निम्नवर्गीय व्यक्तियों को इतिहास में मुश्किल से स्थान प्राप्त होता है। किंतु, प्रो. सुब्रमनी ने एक निम्नवर्गीय पात्र फ़िजी लाल को तथा फ़िजी में मानक हिंदी की तुलना में निम्न समझी जाने वाली फ़िजी हिंदी भाषा को ही अपने उपन्यास का केंद्र बनाया है। जात–पात, ऊँच–नीच, अमीरी–गरीबी के भेद–भाव को अस्वीकारते हुए उपन्यासकार नायक फ़िजी लाल के माध्यम से कहता है – "सबन के जगहा हाईक चाही देस कै इतिहास मा, चाहे डउकन होय अउघड़ या लाड़ाकू लफाड़ी (डउका पुरान, पृ. 6)।" एक ओर प्रो. सुब्रमनी ने निम्नवर्गीय फ़िजी लाल को उपन्यास के नायक के रूप में चित्रित किया, वहीं दूसरी ओर फ़िजी में विलुप्त हो रही फ़िजी हिंदी भाषा के संरक्षण हेतु साहित्यिक भाषा के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रो. सुब्रमनी इस उपन्यास को फ़िजी हिंदी भाषा का पुरालेख मानते हैं। 'डउका पुरान' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने फ़िजी हिंदी भाषा का परिष्कार एवं साहित्य जगत में फ़िजी हिंदी को नई दिशा प्रदान की है। चूँकि 'डउका पुरान' फ़िजी हिंदी का पहला उपन्यास है, इस आधार पर यह उपन्यास फ़िजी हिंदी साहित्य की बुनियादी अवस्था को नवीन मोड़ देने की प्रेरणा प्रदान करता है। साथ ही, साहित्य की अन्य विधाओं में अभिव्यक्ति के द्वार भी खोलता है। इस उत्कृष्ट रचना के लिए प्रो. सुब्रमनी को सन् 2003 में 7वें विश्व हिंदी सम्मेलन के अंतर्गत पुरस्कृत किया गया है।

'डउका पुरान' उपन्यास की भाषागत विशेषताओं के अलावा, इसमें प्रवासी भारतीयों की सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों का फ़िजी लाल की यात्रा के दौरान विवरण किया गया है। फ़िजी लाल अपने देश फ़िजी की यात्रा के दौरान अनेक अनुभव व आत्मज्ञान प्राप्त करता है। उपन्यास के समीक्षक फ़िजी लाल की यात्रा का उद्देश्य प्रज्ञा की खोज मानते हैं – "यात्रा द्वारा फ़िजी लाल को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक ज्ञान के विकास के साथ आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।" नायक फ़िजी लाल राजा से मिलकर फ़िजी पर आई समस्याओं पर चर्चा करना चाहता है। यात्रा के दौरान वह कई लोगों से मिलता है। उनके गाँव व शहरों की कथा सुनता–सुनाता है। तुलसीदास कृत रामचरितमानस में यात्रा तत्व का समावेश श्री राम के 14 वर्ष के वनवास द्वारा दर्शाया गया है। श्री राम 14 वर्ष के वनवास के पश्चात् ऐतिहासिक पुरुष कहलाए। मगर फ़िजी लाल की यात्रा किसी राजा या महापुरुष की नहीं है, बल्कि एक निम्नवर्गीय व्यक्ति की है, जो प्रज्ञा की खोज में निकलता है।

इसके साथ–साथ उपन्यासकार को अपनी संस्कृति के प्रति गौरव है, जो वस्तुतः राष्ट्रीय अस्मिता का हिस्सा है। इस संदर्भ में साहित्यकार अज्ञेय का कथन युक्तियुक्त है – "संस्कृतियों का संबंध अपनी देश भूमि से होता है।" प्रगति, विकास, संस्कृति, इतिहास–भूगोल आदि की जड़ भाषा होती है और भाषा को समृद्ध साहित्य करता है और साहित्य प्रत्येक वर्तमान को कलात्मक एवं यथार्थ रूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। भाषा के संबंध में फ़िजी लाल कहता है – "भाखाक कदर हम जान पावा, जब हमार तीरथ सुरु भय। केतने आनूआनूम रात गुज़ारा। कभी जहाज़ मा कभी–कभी कोरोम। खाली भाखाक दुई बात जानके ज़रिये लोग आपन दुवारी खोल देवैं। आखिर ई–डउका पुरान का है – भाखा तो है जड़ एकर।" लेखक का मत है कि मानव को अपनी सांस्कृतिक, शैक्षणिक, जातीय और सामाजिक मूल्यों को कायम रखने के लिए अपने पूर्वजों की भाषा को संजोकर रखना है। जहाँ भाषा अल्पसंख्यक समूह की पहचान का एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है, वहाँ भाषा को लंबे समय तक बनाए रखने की संभावना रहती है, वरन् उसके लुप्त होने की संभावना बढ़ जाती है। 'डउका पुरान' में उपन्यासकार अपने पूर्वजों की भाषा के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं।

फ़िजी हिंदी उपन्यास : 'फ़िजी माँ'

'फ़िजी माँ' प्रो. सुब्रमनी की दूसरी औपन्यासिक कृति है, जिसका प्रकाशन सन् 2018 में हुआ। यह 1026 पृष्ठों का एक

बृहद नायिका प्रधान उपन्यास है, जिसमें एक साधारण नारी बेद मती के अस्तित्व की खोज की कथा प्रस्तुत है। बचपन में पिता उसका नाम गौतमी रखना चाहते थे, मगर माँ ने बेद मती रख दिया। बेद के गर्म मिज़ाज के कारण आजी उसे सनका देवी बुलाती थी और पढ़ाई–लिखाई और खेलकूद में तेज़ होने के कारण पं. हरनिंदन तेजेश्ववरी कहने लगा। शादी के बाद पति और सास उसे प्यार से मोहिनिया कहने लगे। 'असली बेद कौन है?' यह प्रश्न बेद को व्याकुल करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में बेद मती की कथा के साथ–साथ फ़िजी के बहुजातीय समाज के भारतीय मूल के फ़िजियन और वहाँ के मूल फ़िजियन वासियों के जीवन से संबंधित परिवर्तनों का चित्रण है। 'फ़िजी माँ – Mother of Thousand' अर्थात् हज़ारों की माँ का तात्पर्य नायिका बेद मती से है, जो पेशे से एक भिखारिन है और खून का रिश्ता न होने के बावजूद भी वह फ़िजी वासियों के तनाव को दूर करने के लिए उनके दुख–सुख को साझा कर, माँ की तरह स्नेह बरसाती है – "हम तौ बिन बोले सबन के माई बन गवा।" 'फ़िजी माँ' में सुब्रमनी ने आत्मकथात्मक शैली में बहुत ही प्रभावी ढंग से अपने पूर्वजों की भाषा फ़िजी हिंदी में एक निम्नवर्गीय स्त्री की कथा को अभिव्यक्त किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथा 6 अध्यायों में विभक्त है, जो नायिका बेद मती की जीवन यात्रा से संबंधित है। कथा की शुरुआत वर्तमान से होकर अतीत में चली जाती है और फिर वर्तमान की उपलब्धियों के साथ खत्म होती है। आत्मकथात्मक शैली तथा फ़्लैशबैक तकनीक के माध्यम से लेखक ने कथा को प्रस्तुत किया है। यह कथा एक साधारण नारी बेद मती के दृष्टिकोण से कही गई है। 'फ़िजी माँ' फ़िजी वासियों के जन–जीवन के विविध पहलुओं को छूता है और यथार्थ की भावभूमि पर आधुनिक भाव बोध को भी स्थापित करता है। सुब्रमनी का यह कथा साहित्य निम्न वर्गीय महिला बेद मती की संवेदनाओं से जुड़ा है।

कथाकार ने 'फ़िजी माँ' में फ़िजी के बहुजातीय जनसाधारण के जीवन को फ़िजी हिंदी भाषा में यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उपन्यास को एक शक्तिशाली विधा स्वीकारते हुए लिखते हैं कि "समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न–भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं।" यह विचार 'फ़िजी माँ' के संदर्भ में बिलकुल सटीक परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत उपन्यास लेखक के देश प्रेम की भावना को दर्शाता है। यह कथा साहित्य पाठकों को फ़िजी की अनोखी बहुजातीय संस्कृति, भाषा तथा राष्ट्र प्रेम की भावनाओं से ओत–प्रोत कराती है। इसका साक्षात प्रमाण उपन्यास का शीर्षक 'फ़िजी माँ' में सन्निहित है। उपन्यासकार ने फ़िजी के प्रवासी भारतीयों की कई समस्याओं को 'फ़िजी माँ' की कथा में संप्रेषित किया है। जहाँ समाज में व्याप्त बुराई का विरोध करना भी एक प्रकार की राष्ट्रभक्ति है। एक लेखक राष्ट्र के आईने में अपने साहित्य को रचता है, वह जिस जगह पर रहता है, जिस चीज़ को देखता है, उसी को अपनी रचना में व्यक्त करता है। लेखक की दुनिया में देश बड़ी चीज़ है, उसके लिए उसका गाँव भी देश ही है। वह समाज में सताए हुए लोगों को जागृत करता है। देश के विकास में पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों का भी उत्तरदायित्व रहा है, जिसे पितृसत्तात्मक समाज अनदेखा कर देता है। बेद मती, आजी, इंदरा, नानीसे, भवानी, जोय, शीरा अपने कर्त्तव्यों को निभाती हैं। समग्र उपन्यास में उपन्यासकार ने यह बार–बार एहसास दिलाया है कि औरत चाहे समाज के किसी भी वर्ग की क्यों न हो, उसका समग्र जीवन दुखों से ही भरा हुआ होता है। सुब्रमनी जी भिखारी की ओर देखने के हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन को इस प्रकार की अपेक्षा व्यक्त कर उनकी पीड़ा का भी विमर्श मूलक आख्यान प्रस्तुत करते हैं। सुब्रमनी ने 'फ़िजी माँ' में उपेक्षित नारियों की कथा को वाणी प्रदान की है और उनके सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त किया है।

फ़िजी में काईवीती और हिन्दुस्तानी समाज के बीच की खाई को सुब्रमनी अंतर्जातीय मेल–मिलाप से भरने का संदेश देते हैं। लेखक रातू भाषण के माध्यम से कहता है – "हम माँगों हम लोग के जिला से कोई काईवीती इंडिया जाव, हुंवा से पढ़–लिख के आव अउर हाथ बटाव राज चलाए में।...मिल–जुल के रहो, हरदम मेल मिलाप रखो, वही बात हम दोहराय मांगित।" समाज की एकता ही सर्वोपरि है। संगठन में ही शक्ति है। सामाजिक स्तर पर संगठित होकर ही हम तन–मन–धन से समाज को उन्नति

की ओर ले जा सकते हैं। दोनों जातियों को एक दूसरे के निकट लाने के लिए लेखक अंतर्जातीय विवाह का भी प्रस्ताव रखते हैं।

अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर होते हुए भी लेखक ने फ़िजी हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना। वे पाठकों को अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति जागृत करते हुए लिखते हैं – "रामचरितमानस बिना हम फ़िजी वासी सब अनाथ है।" इसके साथ–साथ वे मातृभाषा के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं – "हिंदी नइं सिखियों तुलसीदास अउर देवदास के कहानी कइसे पढ़ियों?" इस उपन्यास में सुब्रमनी जी ने फ़िजी हिंदी के ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो आधुनिक भाषाओं के मोह में लुप्त हो रहे हैं। सुब्रमनी जी की औपन्यासिक कृतियाँ 'फ़िजी माँ' और 'डउका पुरान' में मुख्यतः लम्बासा ज़िले में प्रयुक्त होने वाली फ़िजी हिंदी की लोकगंध मिलती है। सुब्रमनी जी ने इन औपन्यासिक कृतियों में फ़िजी हिंदी के ऐसे अनूठे शब्दों को संग्रहित किया है, जो आधुनिक भाषाओं के मोह में लुप्त हो रहे थे। जैसे 'मनहई', 'छीछर लेदर', 'बजर भट्टू', 'टिर्राई', 'नारियल के बूलू', 'टिबोली', 'झाप', 'निपोरिस', 'ठिनकही', 'गोदना', 'झाप', 'बकेड़ा', 'दाबे', 'आवा–गावा' आदि फ़िजी हिंदी शब्दों के पुरालेख हैं। इसके अतिरिक्त इसमें फ़िजियन भाषा के बहुत से शब्द उधार लिए गए हैं, जैसे – 'बकेड़ा' (केकड़ा), 'लोलो' (नारियल दूध), 'वनुवा' (गाँव), 'तबाले' (साला), 'मातंगाली' (सामंत), 'तईतई' (खेत) आदि। साहित्यालोचक एवं लेखक विजय मिश्र 'फ़िजी माँ' की प्रशंसा इन शब्दों में करते हैं – "फ़िजी हिंदी पाठक तथा जो कोई देवनागरी लिपि पढ़ सकता है, फ़िजी के भारतीयों के अनुभव, परंपरा, संस्कृति को संग्रहित एवं कला की जटिल अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए सुब्रमनी के ऋणी रहेंगे।"

'फ़िजी माँ' में प्रो. सुब्रमनी ने देवी पूजा, भूमि पूजा, लोक गीत, बकड़ी पूजन, पियरी झाड़ना, पूर्वजों के अंधविश्वास, पूर्वजों के खान–पान की चीज़ें, शादी–ब्याह आदि को उपन्यास की कथा में समाहित किया है। उदाहरण के लिए 'सतवा' एक प्रकार का मिष्ठान है, जो फ़िजी के लम्बासा ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित था, पर वर्तमान पीढ़ी इस के बारे में बहुत कम जानती हैं। आज के अधिकांश युवा वर्ग ने इस मिष्ठान को चखा तक नहीं है। 'फ़िजी माँ' में नायिका बेद मती अपनी माँ से 'सतवा' के विषय में पूछती है –

"मइया थरिया में रकम–रकम के दाल निकारे रही, सबेरे पीसे के खातिर – उर्दी, मटर, तूर, मकई। माँ, सतुवा कइसे बने?...

रोज देखत हिव, पता नइं तोके? काहे सिखियो, तोके कहां चक्की चलाय के है। पता नइं का करियो आगे चल के।...

सात रंग के दाल से बने सतवा।"

जब बेद मती की बहन बिंदा बीमार पड़ती है, तब माँ एक साधू (महादेव) से पियरी उतारने को कहती हैं। पियरी उतारने का वर्णन लेखक ने इन शब्दों में दिया है –

"चूना मंगाइस, पूजा वला थाली में दूब गिरास अउर पियाली में पानी। महादेव चूना राउन से पूजा वला थाली में डारिस, उप्पर से पानी छोड़िस। दूब गिरास के मोटा से गुहिस। बिंदा के ठीक से सामने बैठारिस, बताइस थाली में देखो। महादेव मंतर पढ़े के सुरू करिस अउर दूब गिरास थाली के राउन घुमाय लगा। ...महादेव मइया के थाली के तरफ इसारा करिस। हम लोग सब कोई थाली देखे लगा। थाली में चूना पियर होई लगा। मइया बिंदा के आँखी हाथ से खोल के देखिस। 'सच्चे महादेव आँखी बहुते फरका लगे'।"

इस प्रकार फ़िजी हिंदी का प्रलेखन एक ओर प्रवासी भारतीयों की भाषा, रीति–रिवाज़, उनके आचार–विचार, आशा–आकांक्षाओं और उनके उत्थान एवं पतन का आख्यान है, वहीं दूसरी ओर फ़िजी में बसे भारतवंशियों के मनोविनोद, ज़मीन, खेती–बारी, पशुओं, परंपरागत विश्वास आदि प्रवृत्तियों का अनोखा भाषागत संकलन है। यदि हम भाषाओं को खो देते हैं, तो हम प्राचीन ज्ञान भी खो देते हैं।

सुब्रमनी जी की औपन्यासिक कृतियाँ 'डउका पुरान' और 'फ़िजी माँ' के अनुशीलन के उपरांत, यह पाया जाता है कि इन कृतियों में प्रवासी जीवन की अनुभव की गहराई है, अध्ययन की गहनता तथा चिंतन की प्रौढ़ता है। सुब्रमनी जी के दोनों उपन्यास मील के पत्थर साबित हुए हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से फ़िजी हिंदी भाषा और प्रवासी साहित्य सृजन को नई दिशा प्रदान की है।

न्यायपालिका और हिंदी : अवरोध और चुनौतियाँ

– प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी
दिल्ली, भारत

लोकतांत्रिक सरकार के तीन अंग हैं – विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। इनमें न्यायपालिका की अहम एवं सशक्त भूमिका रहती है। लोकतंत्र की सफलता मज़बूत और स्वतंत्र न्यायपालिका पर आधारित होती है। इसके लिए सजग और सतर्क रूप से न्याय व्यवस्था का विकास करने की आवश्यकता होती है। न्यायपालिका की सहायता के लिए जागरूक विधायिका की ज़रूरत होती है, जो समाज के सर्वांगीण विकास और कल्याण के लिए विधि–निर्माण करती है, ताकि कार्यपालिका उन क़ानूनों का पालन करते हुए देश में सुशासन और प्रबंधन ईमानदारी से कर सके। देश और समाज में कानून और व्यवस्था के पालन के लिए न्याय–व्यवस्था एक कारगर साधन के रूप में काम करती है। इस न्याय–व्यवस्था के प्रति सामाजिक जागरूकता होना ज़रूरी है, जिससे समाज उसे ठीक तरह से समझ सके और उसका सही रूप से पालन कर सके। इसलिए जनता को न्याय दिलाने के लिए जनता की अपनी भाषा की विशेष भूमिका रहती है। भाषिक दूरी से कानून को समझने के रास्ते में कई प्रकार की कठिनाइयाँ और अड़चनें आती हैं। अतः न्याय–व्यवस्था का अनुपालन और कानून का सार्थक कार्यान्वयन तभी सही रूप से संभव हो पाएगा, यदि इनमें अपनी भाषा, राजभाषा अथवा राष्ट्रभाषा का प्रयोग किया जाए। जन–सामान्य तक त्वरित और निष्पक्ष न्याय सुलभ कराने के लिए अपनी भाषा का होना अनिवार्य है। 'रूल ऑफ़ लॉ' सभ्य समाज की आत्मा होता है और कानून से ही देश की न्याय–व्यवस्था मज़बूत होती है, सुशासन सशक्त बना रहता है, जिससे राष्ट्र का विकास संभव हो पाता है।

प्रायः यह कहा जाता है कि कानून अंधा है, अर्थात् न्याय की देवी ने आँखों पर पट्टी बाँध रखी है। आज़ादी से पहले भारत माता ज़ंजीरों से जकड़ी हुई थी। स्वतंत्रता के बाद भारत माता परतंत्रता की ज़ंजीरों से तो मुक्त हो गई, लेकिन उसके मुँह पर अंग्रेज़ी की पट्टी बाँध दी गई है, ताकि वह गूंगे, मूक और बेजुबान की भाँति चुपचाप सब कुछ देखती रहे और कुछ भी बोल न सके कि उसके सामने क्या हो रहा है। अब समय आ गया है कि भारत माता के मुँह को अंग्रेज़ी के पाश से छुड़ाया जाए, तभी न्याय की देवी की आँखों से पट्टी हट पाएगी और न ही बेजुबान तथा गूँगा होगा लोकतंत्र। अब भारत को उसकी अपनी जुबान चाहिए, अपनी भाषा चाहिए, न कि विदेशी भाषा चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो न्यायतंत्र खुले नेत्रों से न तो न्याय दे पाएगा, न ही दूसरों की भाषा में कुछ समझा पाएगा और न ही लोकतंत्र को अपनी अभिव्यक्ति देने की स्वतंत्रता मिल पाएगी।

इसी स्थिति के कारण राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक बार अपना दर्द व्यक्त करते हुए कहा था, यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इन्साफ़ पाना है, तो मुझे अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग करना पड़े। उन्होंने दुखी होकर आगे कहा कि बैरिस्टर होने पर भी मैं अपनी भाषा ही न बोल सकूँ। दूसरे आदमी को मेरे लिए तर्जुमा कर देना चाहिए। यह कुछ दंभ है? यह गुलामी की हद नहीं, तो और क्या है? इसमें मैं अंग्रेज़ी का दोष निकालूँ या अपना? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेज़ी जानने वाले लोग हैं।

हमारे देश में संसद, राज्य विधान सभाएँ, विधि एवं न्याय मंत्रालय तथा पंचायत से लेकर उच्चतम न्यायालय तक न्याय–व्यवस्था के प्रमुख अंग हैं, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इनमें देश की अपनी हिंदी का प्रयोग नहीं होता। वास्तव में अखिल भारतीय न्याय व्यवस्था के लिए संविधान में जो संतुलित और सुव्यवस्थित भाषा नीति बनाई गई है, उन पर न तो गंभीरता से विचार किया गया और न ही परीक्षण करने की आवश्यकता समझी गई। इसी कारण विधि कॉलिजों के भाषा–प्रश्न की ओर सोचा ही नहीं गया, जो विधि व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। संविधान का अनुच्छेद 120 लोक सभा में प्रयुक्त भाषा के संदर्भ में विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त संविधान के 17वें भाग के अनुच्छेद 348 में स्पष्ट रूप से यह

व्यवस्था की गई है कि लोक सभा की कार्यवाही हिंदी अथवा अंग्रेज़ी में होगी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अनुच्छेद 120 में दी गई व्यवस्था के होते हुए अनुच्छेद 348 के अधीन कार्य चलेगा, अर्थात् लोक सभा की कार्यवाही या तो हिंदी में होगी या अंग्रेज़ी में। इसके साथ यह भी व्यवस्था है कि यदि कोई सांसद अपना वक्तव्य हिंदी या अंग्रेज़ी में अच्छी तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकता, तो वह अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित कर सकता है, लेकिन उसे इसके लिए लोकसभा के अध्यक्ष या राज्य सभा के सभापति से या उस समय सदन के पीठासीन अधिकारी से, जैसी भी स्थिति हो, सहमति लेनी होगी। इससे स्पष्ट है कि मातृभाषा को महत्त्व दिया गया है, क्योंकि सदस्य अपनी मातृभाषा में सहजता से अच्छी अभिव्यक्ति कर सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अगर सांसद मातृभाषा की अपेक्षा अपनी प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय भाषा में अच्छी अभिव्यक्ति कर सकता है, तो फिर भी उसे अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्ति करने के लिए अध्यक्षता करने वाले अधिकारी की सहमति या अनुमति मिलेगी। इसका यह भी आशय हो सकता है कि संविधान–निर्माताओं ने प्रादेशिक भाषा और मातृभाषा में अंतर न कर उन्हें एक ही श्रेणी में रखा हो, जिसे सत्तारूढ़ दल ने या तो समझा नहीं है या समझने का प्रयास ही न किया हो, अन्यथा संसद मातृभाषा के साथ–साथ प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय भाषा को जोड़ सकती थी। दूसरा, अनुच्छेद 120 के अनुसार यदि संसद से अंग्रेज़ी हटा दी जाती है, तो इसका आशय होगा कि सांसद को अब हिंदी में अच्छी अभिव्यक्ति न कर पाने के कारण अपनी मातृभाषा में बोलने की सहमति अध्यक्ष या अधिकारी से लेनी होगी। अनुच्छेद 120 की उपधारा में यह प्रावधान भी है कि संविधान के लागू होने के 15 वर्ष की समाप्ति पर अर्थात् 26 जनवरी 1965 के बाद अगर कोई विधेयक पारित न हुआ तो अनुच्छेद 120 से अंग्रेज़ी शब्द अपने–आप निकल गया माना जाएगा। लेकिन दुर्भाग्य से संसद में राजभाषा अधिनियम 1963 में संशोधन किया गया, जिसमें पहले की व्यवस्था ही रखी गई कि अंग्रेज़ी तदनुसार संसद के कामकाज में पहले की तरह बनी रहेगी। इस प्रकार अनिश्चित काल के लिए संसद में द्विभाषिक स्थिति बनी हुई है।

संविधान में ऐसा कोई विशेष अनुच्छेद नहीं है, जिसमें उच्चतम न्यायालय की भाषा का निर्देश दिया गया है। इसके अलावा अनुच्छेद 343 में अंग्रेज़ी के बारे में 15 वर्ष की जो अवधि रखी गई थी, वह उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय पर लागू नहीं होती, क्योंकि इन न्यायालयों के संबंध में कोई कालावधि नहीं रखी गई। इसका आशय यह भी हो सकता है कि विधि के अनुसार संसद की इच्छा पर, किंतु वास्तविकता के आधार पर संघ के मंत्री परिषद् अर्थात् प्रधान मंत्री की इच्छा पर यह बात छोड़ दी गई हो कि कब ऐसा कानून बनाया जाए, जिससे उपर्युक्त मामलों में अंग्रेज़ी भाषा के स्थान पर हिंदी भाषा को रखा जाए। अनुच्छेद 348 से यह झलकता है कि अंग्रेज़ी–समर्थकों की अंदरूनी इच्छा थी कि संघ के राजकाज के लिए अंग्रेज़ी भाषा को सदैव बनाए रखा जाए। इस प्रावधान के कारण जिन राज्यों में अंग्रेज़ी का प्रयोग नहीं भी होता था, उनमें भी वैधानिक रूप से अंग्रेज़ी को विधि और न्याय की भाषा के रूप में अनिवार्य कर दिया गया। इसी अनुच्छेद के खंड (3) में यह व्यवस्था की गई कि यदि किसी राज्य का विधान मंडल अंग्रेज़ी से भिन्न भाषा में कानून बनाता है अथवा उस राज्य का राज्यपाल अंग्रेज़ी से भिन्न भाषा में अध्यादेश जारी करता है, तो उस अध्यादेश या कानून का अंग्रेज़ी अनुवाद राज्यपाल के प्राधिकार से उस राज्य के राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि हिंदी के संघ की राजभाषा घोषित होने के बावजूद नियमों–विनियमों, क़ानूनों, अध्यादेशों के प्राधिकृत पाठ अंग्रेज़ी में ही माने जाएँगे, जब तक संसद इस बारे में कोई अन्य प्रावधान पारित नहीं करता। यही कारण है कि अंग्रेज़ीदाँ लोग इस बात पर तुले हुए थे और आज भी हैं कि जहाँ तक संभव हो स्वतंत्र भारत में कानून और न्याय की भाषा अंग्रेज़ी को ही बनाए रखा जाए। यह भी उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 345 में राज्यों को यह प्राधिकार दिया गया है कि वह जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा या हिंदी को राजभाषा के रूप में अपना सकती है। यह सही है कि कोई भी राज्य अपनी भाषा की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसलिए वह अपनी भाषा के साथ हिंदी को भी दूसरी भाषा के रूप में अपना सकता है। वस्तुतः गुजरात राज्य के अलावा अन्य किसी राज्य ने हिंदी को अपनी दूसरी भाषा के रूप में नहीं अपनाया। यह भी दुर्भाग्य है कि किसी भी राजनैतिक दल या राजनेता ने इस बारे में विचार ही नहीं किया। विधि मंत्रालय ने भी यही सोचा कि इस बारे में कौन मुसीबत ले।

उच्चतम न्यायालय को समूचे देश के लिए एक इकाई की भाँति काम करना होता है। इसलिए उसे अपनी कार्यवाही एवं

विवेचना करने के साथ–साथ न्याय–निर्णय, डिक्री, आदेश आदि देने के एक ही भाषा का प्रयोग करना पड़ता है और वह है अंग्रेज़ी। इस संबंध में अगर संसद कानून बनाती है, तभी उच्चतम न्यायालय में हिंदी अंग्रेज़ी का स्थान ले पाएगी। इस संबंध में कुछ विधि–विशेषज्ञों में मतभेद है। उनका कथन है कि उच्चतम न्यायालय में हिंदी का प्रयोग तभी संभव है, अगर देश के सभी उच्च न्यायालयों में हिंदी के प्रयोग का प्रावधान हो। अगर उच्च न्यायालयों या निचली अदालतों में अपनी भाषा में निर्णय, डिक्री, न्याय आदि देने का प्रावधान किया जाता है, तो उनके द्वारा हिंदी अनुवाद प्रस्तुत करने पर उन अनूदित पाठों के आधार पर कानून का और कार्यवाहियों का स्पष्टीकरण करने या उनकी व्याख्या करने में ही उच्चतम न्यायालय का बहुत समय लग जाएगा। उच्चतम न्यायालय में एक भाषा हिंदी के प्रयोग के संबंध में आंध्र प्रदेश के पूर्व मुख्य न्यायाधीश और हिंदीतर भाषी स्वर्गीय गोपाल राव एकबोटे ने अपना मत (राष्ट्रभाषा विहीन राष्ट्र, 1987) देते हुए यह कहा है कि अगर देश की समूची न्याय प्रणाली में एकत्व स्थापित किया जाता है और समूचे देश में कानून के निर्माण में और उच्च न्यायालयों तथा निचली अदालतों के न्याय, निर्णय, डिक्रियों, आदेशों आदि के लिए एक ही माध्यम या भाषा होती है, तभी देश की न्याय–व्यवस्था को एकसंघीय ढाँचे में लाया जा सकता है। न्यायाधीश एकबोटे के इस मत के अनुसार उच्चतम न्यायालय में हिंदी का प्रयोग संभव तो है, लेकिन इसमें बहुत–सी कानूनी पेचीदगियाँ उठ खड़ी होंगी या खड़ी की जाएँगी। इस लोकतांत्रिक और बहुभाषी भारत में हिंदीतर भाषी राज्य अड़चनें पैदा कर सकते हैं और इसी कारण सत्तारूढ़ दल इस मामले में हाथ डालने से कतराते हैं। हालाँकि संसदीय राजभाषा समिति ने भी संकल्प संख्या 1/20012/4/92 रा. भा. (नी–!) की मद संख्या 5(13) में अपनी रिपोर्ट में सिफ़ारिश की है कि अब उच्चतम न्यायालय में अंग्रेज़ी के साथ–साथ हिंदी का प्रयोग प्राधिकृत होना चाहिए। प्रत्येक निर्णय दोनों भाषाओं में उपलब्ध हो। साथ ही समिति ने मद संख्या 5(14) में भी कहा है कि उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों और अन्य अधिकारियों को अपने प्रशासनिक और न्यायिक कार्यों में हिंदी का प्रयोग करने के संबंध में प्रोत्साहित करने के लिए एक योजना शुरू की जानी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि का आयोजन किया जाना चाहिए। राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित आदेश भी निकले हैं, किंतु विडंबना यह है कि इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी इस पर अभी तक न तो कोई कार्रवाई की गई है और न ही विचार किया गया है।

अनुच्छेद 348 की उपधारा (2) के अधीन कुछ राज्यों के राज्यपालों के आदेश से उच्च न्यायालयों की कार्यवाहियों में हिंदी का प्रयोग अधिकृत हो गया है। कुछ राज्यों के उच्च न्यायालयों में अंग्रेज़ी के साथ–साथ अपनी प्रादेशिक भाषा का प्रयोग भी अधिकृत है। सन् 1950 में राजस्थान सरकार, 1970 में उत्तर प्रदेश सरकार, 1971 में मध्य प्रदेश सरकार और 1972 में बिहार सरकार के अनुरोध पर भारत सरकार ने उनके उच्च न्यायालयों में हिंदी प्रयोग को अधिकृत किया था। इन राज्यों में हिंदी के अलावा अंग्रेज़ी के प्रयोग का भी प्रावधान है। इसके अतिरिक्त निम्न एवं माध्यमिक न्यायालयों में अंग्रेज़ी के स्थान पर प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति तो बढ़ रही है, लेकिन अंतिम निर्णय, न्याय, डिक्रियाँ आदि अंग्रेज़ी में जारी करने की प्रथा अभी भी प्रचलित है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फ़ैसलों के हिंदी अनुवाद की व्यवस्था करने के लिए हरियाणा सरकार और पंजाब सरकार भी विचार कर रही हैं। उच्चतम न्यायालय ने भी अपने निर्णय हिंदी और कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने की व्यवस्था की है। इसी संबंध में माननीय राष्ट्रपति महामहिम रामनाथ कोविंद ने भी केरल उच्च न्यायालय की हीरक जयंती के अवसर पर 28 अक्टूबर, 2017 को कहा था कि अदालत के फ़ैसले अंग्रेज़ी में दिए जाते हैं, जबकि हमारा देश अनेक भाषाओं का देश है। इसलिए एक ऐसी व्यवस्था की जाए, जिसमें उच्च न्यायालयों के अपने न्याय–निर्णयों का प्रमाणित अनुवाद स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाए। जनता को न्याय देना महत्त्वपूर्ण है, लेकिन वह वादी और प्रतिवादी की भाषाओं में दिया जाए, ताकि जो न्याय दिया गया है, वह उनकी समझ में आ जाए। वास्तव में न्यायालयों में अनिवार्य रूप से अंग्रेज़ी में निर्णय देने के कारण जन सामान्य को देरी से न्याय मिलता है, जो नितांत चिंता का विषय है। इसके अतिरिक्त जिन लोगों को न्याय मिलता भी है, तो उसे यह पूरी तरह से मालूम नहीं होता कि उसने अपने मुकदमे में जो दस्तावेज़ अथवा कागज़–पत्र दाखिल किए हैं, उनमें क्या लिखा है। उसके मुकदमे में वकीलों में जो बहस हुई थी, उसमें क्या–क्या

तर्क दिए गए थे, क्या वे तर्क सही भी थे और अंत में जो फ़ैसला हुआ, उसमें क्या–क्या कहा गया है? उसे वकील के भरोसे रहना पड़ता है और वकील अंग्रेज़ी के भरोसे रहता है। इसलिए जब तक न्यायपालिका में अंग्रेज़ी का वर्चस्व रहता है, तब तक देश के गरीब, पिछड़े, दलित, वंचित, मज़दूर और ग्रामीण किसान सबसे ज़्यादा हानि उठाते रहेंगे। एक तो उन्हें फ़ैसला देर से मिलता है, दूसरा उनका पैसा भी बहुत खर्च होता है और तीसरा मुकदमे के फ़ैसले की पूरी जानकारी भी उन्हें नहीं मिल पाती। राष्ट्रपति जी की यह चिंता वाजिब है कि अंग्रेज़ी के वर्चस्व से गरीब जनता और भारतीय भाषाओं के साथ व्यवहार नहीं हो पा रहा, अतः न्यायालयों के निर्णय का अनुवाद उनकी भाषाओं में उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाए। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट करना असमीचीन नहीं होगा कि विधि अर्थात् कानूनी भाषा तकनीकी–प्रधान भाषा है और इसी कारण यह भाषा अन्य विषयों की भाषा की अपेक्षा अधिक एकार्थी, जटिल और विशिष्ट होती है। इसकी शब्दावली और व्याकरणिक संरचना अपनी अलग विशिष्टता रखती है, इसलिए दूसरी भाषा में अनुवाद करने से अशुद्धि और संदिग्धता की संभावना प्रायः बनी रहती है। यदि मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा में न्याय, निर्णय आदि दिया जाए, तो वह शुद्ध और असंदिग्ध होगा। इसलिए अनुवाद की व्यवस्था कानूनी भाषा में पूरी तरह से कारगर भूमिका नहीं निभा पाएगी। केवल यही नहीं, न्यायालय के अंग्रेज़ी में दिए गए निर्णय की अपेक्षा उसके अनुवाद में और अधिक विलंब होने की पूरी–पूरी संभावना है, क्योंकि अंग्रेज़ी में दिए गए निर्णय के सटीक एवं सही अनुवाद में और समय लगेगा। साथ ही, अनुवाद के लिए अधिक धन खर्च करने की व्यवस्था भी करनी होगी, जो अंततः जनता पर ही पड़ेगा।

सिविल कोर्ट, ज़िला कोर्ट, विशेष न्यायालय के अतिरिक्त संसद तथा राज्य विधान सभाओं के विधेयक द्वारा गठित राजस्व, आबकारी, बिक्रीकरण, सहकारी आदि अधिकरण एवं न्यायाधिकरण की कार्यवाहियों, न्याय–निर्णयों, आदेशों तथा डिक्रियों के भाषा–माध्यम का प्रश्न भी विचारणीय है। दंड प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) में भी व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 345 के अंतर्गत राज्य विधान मंडलों को अनुमति दी गई है कि वे कानून बनाकर एक से अधिक भाषाओं को अथवा हिंदी को अपने सभी या किन्हीं सरकारी कामकाज में लागू कर सकते हैं। इसके साथ ही सिविल प्रक्रिया संहिता (Civil Procedure Code) की धारा 137 के उस दफ़ा पर विचार करना होगा, जिसमें न्यायालयों की वह भाषा जारी रहेगी, जो इस कोड के लागू होने के समय लागू हुई थी। इससे राज्य सरकार को किसी दूसरी भाषा का प्रयोग करने के बारे में निर्देश देने का अधिकार प्राप्त होता है। राज्य सरकार यह घोषणा कर सकती है कि इस प्रकार के न्यायालय की भाषा क्या हो, किस लिपि में आवेदन पत्र आदेश दिए जा सकते हैं और न्यायालय की कार्यवाही आदि के लिए किस भाषा का प्रयोग किया जाए।

न्यायपालिका के सबसे निचले सोपान अर्थात् ग्राम पंचायत के लिए स्थानीय भाषा के प्रयोग का प्रावधान है। संविधान के अनुच्छेद के अंतर्गत कुछ ग्राम–पंचायतों को दीवानी तथा फ़ौजदारी न्याय संबंधी सीमित अधिकार मिले हुए हैं। ऐसे न्यायालयों अर्थात् ग्राम–पंचायतों को भी अपना निर्णय स्थानीय भाषा में देने का प्रावधान है।

संविधान–निर्माताओं ने न्यायपालिका की भाषिक आवश्यकताओं के निर्धारण के लिए संविधान में जो संकल्पना रखी थी, उससे स्पष्ट होता है कि कुछ कालावधि तक अंग्रेज़ी में और बाद में अंततः हिंदी में ही काम करना होगा। यह व्यवस्था निचली अदालतों से लेकर उच्चतम न्यायालय की कार्यवाहियों में लागू हो सकती है। इससे केंद्र और राज्य दोनों की न्याय प्रणाली में ऐक्य लाने में सहायता मिलेगी। जब कभी भारतीय ज़िला न्यायाधीशों के संवर्ग (Cadre) का गठन किया जाएगा अथवा वह अस्तित्व में आएगा तभी अखिल भारतीय न्याय सेवाओं में भाषिक एकात्मकता स्थापित होगी। इससे भारतीय भाषाओं अर्थात् प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय भाषाओं में न्यायालयों की कार्यवाही हो पाएगी। संविधान सभा की तदर्थ समिति के सदस्य के रूप में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने यह टिप्पणी दी थी कि उच्चतम न्यायालय के कानून विषयक एक ही व्याख्या करने और एक ही प्रभाव बनाए रखना आवश्यक है। न्यायालयी एकात्मकता और राष्ट्रीय एकता के लिए कानूनी एकात्मकता और एक–सी व्याख्या प्रभावी सिद्ध होगी और देश की संघीय पद्धति सहज तथा सरल होगी। संविधान सभा की प्रारूप समिति के संयोजक डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस बात पर बल देते हुए कहा था कि संविधान ने एकसंघीय न्याय–प्रणाली की व्यवस्था की है और दीवानी या फ़ौजदारी मामलों में उठने वाली समस्याओं को अधिकार पद्धति में रखकर तथा उसमें परिष्कार करने के

लिए उसे प्राधिकृत भी किया है। मुंशी जी और डॉ. अंबेडकर की इन भावनाओं का आदर न करना और जान–बूझकर उनकी गलत व्याख्या करना वास्तव में देश का अहित करना है।

यह कल्पना करना पूर्णतया गलत है कि न्यायपालिका के सभी सोपानों में या स्तरों में अर्थात् पंचायत से उच्चतम न्यायालय तक भविष्य में अंग्रेज़ी अनंतकाल तक चलती रहेगी। लेकिन इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वर्तमान न्याय प्रणाली में जो भाषिक प्रक्रिया विद्यमान है, उसमें पूर्ण रूप से परिवर्तन लाने की नितांत आवश्यकता है। इसके लिए सरकार में पहले दृढ़ संकल्प होना बहुत ज़रूरी है। इसके लिए उसे अत्यधिक प्रयास करने पड़ेंगे और सुविचारित योजना बनानी पड़ेगी। इस अभियान में राजनीतिक दलों को भी पूरा–पूरा सहयोग देना पड़ेगा। केंद्र और राज्य सरकारों में हिंदी के प्रयोग के बारे में जो झिझक और हिचकिचाहट विद्यमान है, उसे दूर करना होगा, उसे समाप्त करना होगा। स्वतंत्रता–पूर्व देसी राज्यों के अनुभवों को देखते हुए यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि न्यायपालिका में भाषिक परिवर्तन कोई कठिन कार्य नहीं है। हैदराबाद रियासत में उर्दू, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि हिंदी राज्यों के अनेक उदाहरण हैं, जहाँ अपनी–अपनी भाषा में न्याय–व्यवस्था थी।

मुग़ल शासन में अरबी–प्रधान फ़ारसी भाषा राजभाषा के रूप में थी, इसलिए उस काल की जनता को यह भाषा सीखनी पड़ी। बाद में इस भाषा के अपभ्रंश रूप का प्रयोग होने लगा। ब्रिटिश शासन में सन् 1882 में उत्तर और मध्य भारत में पेशावर से बिहार तक निचले न्यायालयों की कार्यालयी भाषा तो उर्दू को बना दिया गया और शेष समूचे न्यायतंत्र में पूर्णतया अंग्रेज़ी का प्रयोग प्रारंभ हो गया। दूसरा, तत्कालीन भारत में विधि, विज्ञान, चिकित्सा आदि ज्ञानानुशासनों का शिक्षा–माध्यम अंग्रेज़ी भाषा थी। इसलिए हमारे अंदर यह धारणा बैठ गई कि अंग्रेज़ी माध्यम से ही आधुनिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। तीसरा, अनुवाद से अधिक समय और राशि खर्च होने की आशंका से अंग्रेज़ी को ही जारी रखने की व्यवस्था की गई। इसलिए अंग्रेज़ीवादी लोग यह तर्क देते हैं कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ इतनी विकसित नहीं हैं कि न्यायपालिका में वे सुचारु रूप से अपनी भूमिका निभा सकें। उनका यह तर्क नितांत निराधार है। वास्तव में अंग्रेज़ी मानसिकता वाले इन लोगों का या तो मात्र बहाना है या भारतीय भाषाओं के प्रयोग में बाधा पहुँचाना है। वास्तव में भाषा अविकसित नहीं होती है, अविकसित होता है स्वयं भाषा–प्रयोक्ता और इसीलिए वह अपना दोष मढ़ देता है भाषा पर। उनकी समझ में यह नहीं आ रहा कि देश के विकास और समृद्धि के लिए समूचे देश की न्याय–प्रणाली में एक ही भाषा का होना आवश्यक है और यह भूमिका कारगर ढंग से निभा सकती है हिंदी ही। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि ब्रिटेन, फ़्रांस, स्पेन, जर्मनी, इटली, चीन, जापान, इराक, ईरान, अमेरिका आदि विकसित, समृद्ध और शक्तिशाली राष्ट्रों की अदालतों में अपनी भाषा का प्रयोग होता है, न कि विदेशी भाषा का। पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मॉरीशस आदि कुछ ऐसे देश हैं, जो भारत की तरह ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहे हैं, उनमें अंग्रेज़ी अर्थात् विदेशी भाषा में कानून बनाए जाते हैं, न्यायालयों में मुकदमे की बहसों और फ़ैसलों में भी विदेशी भाषा का प्रयोग होता है। एक कारण यह भी है कि ये देश विकसित और समृद्ध नहीं बन पाए हैं।

देश में उच्च शिक्षा की जो भाषायी स्थिति है, वही स्थिति विधि शिक्षा की भी है। इस समय देश के लगभग सभी विश्वविद्यालयों और कॉलिजों में विधि शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी ही है। संविधान में न्याय–प्रणाली को प्रभावकारी बनाने के लिए अंग्रेज़ी के स्थान पर हिंदी को लागू करने की जो अवधारणा प्रस्तुत की गई है, उसके समाधान के लिए विधि शिक्षा का माध्यम हिंदी होना आवश्यक है। राष्ट्र की विधि प्रणाली और एकसंघीय न्याय व्यवस्था की एकात्मकता को बनाए रखने के लिए विधि शिक्षा में अंग्रेज़ी या अनेक भाषाओं के शिक्षा–माध्यम की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए हिंदी को माध्यम के रूप में प्रयोग करने से उच्च श्रेणी के विधिज्ञ पैदा होंगे। हिंदी के प्रयोग पर आपत्ति करते हुए कुछ अंग्रेज़ी–समर्थक विशेषज्ञों का कथन है कि हिंदी के प्रयोग से विधिज्ञ (Bar) और बेंच (Bench) का स्तर गिर जाएगा, जो बिलकुल निराधार और निरर्थक सिद्ध होता है, क्योंकि स्वतंत्रता–पूर्व हैदराबाद रियासत का उत्कृष्ट उदाहरण हमारे सामने है, जहाँ न्याय–प्रणाली के साथ–साथ विधि कॉलिजों में एक ही शिक्षा–माध्यम उर्दू भाषा थी। उस समय विधि कॉलिजों में कानून की पढ़ाई के अतिरिक्त सभी न्यायालयों में, जिनमें उच्च न्यायालय और ज्युडिशियल कमेटी भी शामिल थी, उर्दू भाषा का प्रयोग सफल रहा। ज्युडिशियल कमेटी हैदराबाद रियासत में एक प्रकार का उच्चतम न्यायालय था। रियासत के सभी कानून

भी उर्दू में थे। इसलिए अब समय आ गया है कि भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय, विधि और न्याय मंत्रालय, राज्य सरकारों तथा सभी विश्वविद्यालयों को इस विषय पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। यह कितनी दुखद स्थिति है कि भारतीय विधि मंडल (Bar Council of India) ने इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर ध्यान ही नहीं दिया। यदि हिंदी और भारतीय भाषाओं में कानून की शिक्षा दी जाती है, तो विधि स्नातक न्यायालयों में, यहाँ तक कि उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय में अपनी वकालत सुचारू रूप से कर सकेंगे, जो वादी और प्रतिवादी के लिए सहज, सुगम तथा संप्रेषणीय भी होगा। अनेक समितियों और आयोगों ने दृढ़ता से इस बात पर बल दिया है कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी होने से छात्रों में रटंत की आदत पड़ जाएगी और मौलिक शोध, अन्वेषण तथा स्वतंत्र चिंतन–मनन करने की शक्ति क्षीण हो जाएगी। विधि की शिक्षा के संदर्भ में संसदीय राजभाषा समिति के संकल्प की मद संख्या 19 और 24 नवंबर, 1998 के राष्ट्रपति के आदेश में भी हिंदी माध्यम में विधि की शिक्षा के बारे में कहा गया है – "हिंदी के माध्यम से भी स्नातक स्तर और स्नातकोत्तर स्तर पर विधि की शिक्षा व्यवस्था पूरे देश में तथा अन्य विधि के क्षेत्र में कार्यरत सभी विश्वविद्यालयों, अन्य संस्थाओं को करनी चाहिए।" लेकिन शिक्षा के कर्णधारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हिंदीतर भाषी न्यायाधीश गोपाल राव एकबोटे ने तो हिंदी और भारतीय भाषाओं का समर्थन करते हुए कहा है कि आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विधि कॉलिजों में हिंदी और अपनी प्रादेशिक भाषा दोनों को शिक्षा माध्यम के रूप में व्यवस्था की जा सकती है। लेकिन इन दोनों शिक्षा–माध्यमों के लिए विश्वविद्यालयों को अनिवार्यतः एक–समान सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी। साथ ही यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि जिन कॉलिजों में प्रादेशिक भाषा शिक्षा–माध्यम के रूप में लागू किया जाता है, उनमें छात्रों को हिंदी का पर्याप्त ज्ञान देना भी ज़रूरी होगा। हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान भी देना होगा, ताकि ये छात्र विधि स्नातक होने के बाद उच्चतम न्यायालय में भी वकालत कर सकें, क्योंकि उच्चतम न्यायालय में सभी न्याय–निर्णय हिंदी में ही देने होंगे। भारतीय भाषाओं में, विशेषकर हिंदी में विधि की पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन करना होगा।

भारत के न्यायालयों में जो करोड़ों मुकदमे अधर में लटके पड़े रहते हैं, उनके प्रमुख कारणों में एक कारण अपनी भाषा में मुकदमे की सुनवाई न होना है। एक ब्रिटिश विद्वान और चिंतक जॉन स्टुअर्ट ने सही कहा है कि विलंब से दिया गया निर्णय नहीं के बराबर होता है। प्रश्न उठता है कि वादी या प्रतिवादी को उसे अपनी भाषा या अपने देश की भाषा में न्याय क्यों नहीं मिलता? लोकतंत्र में उसके अधिकार को सीमाओं में बाँध रखा है, जो वास्तव में उसके मौलिक अधिकारों का हनन है। जनता को जनता की भाषा में न्याय मिलना चाहिए।

स्वतंत्र न्यायपालिका के लिए स्वभाषा, क्षेत्रीय भाषा, देश की भाषा या राष्ट्र भाषा में निर्णय देने की व्यवस्था की जाए। वस्तुतः बहुभाषी राज्य में न्याय व्यवस्था के एकीकरण के लिए, विशेषकर उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के लिए विशेष दूरदर्शिता तथा सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

भारत की अधिकतर संख्या अपना भाषा–व्यवहार अपनी भाषा में करती है। फिर भी न्यायालयों की भाषा अंग्रेज़ी बनी हुई है। न्याय–व्यवस्था में पारदर्शिता की आवश्यकता रहती है। यदि अपनी भाषा में न्याय प्रक्रिया नहीं चलेगी, तो पारदर्शिता की अपेक्षा करना व्यर्थ है। बड़ी दुखद स्थिति है कि अपनी भाषा इन न्यायालयों के दरवाज़े के बाहर यह आशा लेकर चुपचाप खड़ी रहती हैं, शायद उसे कभी न्यायालय के अंदर बुला लिया जाएगा। यह कैसी विडंबना है कि जनता ने जिस संसद को चुना, वह संसद जनता की भाषा में कानून न बनाकर विदेशी भाषा अंग्रेज़ी में बनाती है। इससे हमारे जजों और वकीलों को मनमानी करने का मौका तो मिलेगा ही, साथ ही लोकतंत्र के साथ छल और धोखा भी होगा। अगर जन–सामान्य को अपनी भाषा में न्याय मिलता है, तो न्यायालयों को वह बेहतर ढंग से समझ पाएगा और उसे आत्मसात कर पाएगा। अतः भाषा अभियान चलाने की आवश्यकता है, क्योंकि मातृभाषा अर्थात् अपनी भाषा का कोई विकल्प नहीं हो सकता, यह वैज्ञानिक सत्य है। यूनाइटड अरब अमीरात (यू.ए.ई) के आबू धाबी में अपने न्यायालयों के लिए अरबी, अंग्रेज़ी भाषाओं के साथ हिंदी को तीसरी आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया है, ताकि वहाँ बसे भारतीयों को सुविधा मिल सके। यह विडंबना ही है कि विदेश में प्रवासी भारतीयों को न्यायालयों में हिंदी का प्रयोग करने की सुविधा मिल रही है, जबकि भारत में अपने भारतीयों को ही न्यायालयों में अपनी भाषा का प्रयोग करने की सुविधा नहीं दी गई है।

kkgoswami1942@gmail.com

हिंदी के पथप्रदर्शक

29. उपनिवेशों में हिंदी भाषा के प्रथम प्रचारक : आर्य समाजी भाई परमानंद	- डॉ. राकेश कुमार दूबे
30. गांधी : लेखकों के लेखक	- डॉ. कमल किशोर गोयनका
31. हिंदी, प्रादेशिक भाषाएँ और दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि	- श्री उमेश चतुर्वेदी
32. पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों की भाषिक बनावट-बुनावट	- प्रो.(डॉ.) सूर्यकांत त्रिपाठी
33. महात्मा गांधी और मॉरिशस : एक अटूट संबंध	- डॉ नूतन पाण्डेय
34. 'गोदान' की हस्तलिखित पांडुलिपि	- आभार : डॉ. कमल किशोर गोयनका

उपनिवेशों में हिंदी भाषा के प्रथम प्रचारक : आर्य समाजी भाई परमानंद

– डॉ. राकेश कुमार दूबे
वाराणसी, भारत

आज हिंदी की गणना विश्व की प्रमुख भाषाओं में की जा रही है और भारत के साथ ही विश्व के अन्य देशों में हिंदी का जिस प्रकार प्रचार और व्यवहार है, उसके आधार पर ही हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का प्रयास किया जा रहा है। हिंदी भाषा के वैश्विक प्रचार में बहुत–सी संस्थाओं एवं व्यक्तियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। औपनिवेशिक काल में संस्थाओं में इसका प्रथम श्रेय आर्य समाज एवं व्यक्तियों में भाई परमानंद को जाता है, जिन्होंने भारत में तो आजीवन हिंदी का प्रचार किया ही, साथ ही सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में जाकर प्रवासी भारतवासियों में वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति का हिंदी भाषा में प्रचार किया।

19वीं सदी में भारत दयनीय अवस्था में था। परंतु 19वीं सदी से ही भारत में जागृति के चिह्न भी दिखलाई पड़ते हैं, जो कि भारत का नवजागरण काल था। भारत में पुनर्जागरण की चेतना का सूत्रपात ब्रह्म–समाज आन्दोलन से होता है। इस समाज की स्थापना 1828 ई. में राजा राममोहन राय द्वारा हुई थी। इस समाज का प्रभाव बंगाल में अल्पसंख्यक शिक्षित मध्यम वर्ग तक ही सीमित था। यह आंदोलन सामान्य वर्ग तक नहीं फैल सका। आर्यसमाज ही ऐसा आंदोलन था, जिसने सामान्य जनता को भी प्रभावित किया। इस समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 10 अप्रैल, 1875 ई. को बम्बई में की थी। इस संस्था का उद्देश्य वैदिक संस्कृति का प्रचार, जाति भेदों का नाश, कर्मानुसार वर्णाश्रम पद्धति की स्थापना, अछूतोद्धार और राष्ट्र में स्वराज्य की स्थापना आदि था।[1] उन्होंने भारतीय अतीत के गौरव को उद्घाटित किया तथा भारत के लोगों में स्वाभिमान की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया।

उस समय के भारतीय समाज में अनेक विसंगतियाँ तो पहले से ही विद्यमान थीं, परंतु जो भारतवासी उपनिवेशों को ले जाए गए, उनमें उपनिवेशों को जाते–जाते उनके धर्म का लोप हो गया। कुली–लाइनों में रहकर उनमें अनेक नई सामाजिक बुराइयों का जन्म हुआ। उनकी भाषा, शिक्षा, वस्त्र, खान–पान, रहन–सहन, संस्कार एवं संस्कृति भारतीय परम्परा के विपरीत होती गई। उनका जीवन अत्यन्त पतित और गिरा हुआ तो था ही, साथ ही, यूरोपियनों द्वारा उनके साथ बड़ा अमानवीय व्यवहार किया जाता था, जिसको शब्दों में बयान करना मुश्किल है। इन्हीं प्रवासी भारतवासियों के बीच प्रथम आर्य समाजी प्रचारक के रूप में भाई परमानंद दक्षिण अफ्रीका गए थे।

भाई परमानंद (4 नवंबर, 1876 ई. – 8 दिसंबर, 1947 ई.) का जन्म अविभाजित भारत के पंजाब प्रांत में झेलम जनपद के करियाला ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम भाई ताराचंद था, जो कि बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे।[2] शैशवावस्था में ही माता का निधन हो जाने के कारण वे मातृ स्नेह से वंचित हो गए, पर उन्होंने भारत माता की ऐसी सेवा की कि उनका नाम भारत के सपूतों में सदा के लिए स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में और माध्यमिक शिक्षा चकवाल मिडल स्कूल में हुई। जब वे चकवाल के विद्यालय में पढ़ रहे थे, तभी उनका परिचय आर्य समाज की सुधारवादी प्रवृत्तियों से हो गया और तभी से उन्होंने अपने जीवन को समाज–सेवा के कार्यों में खपा देने का महान संकल्प कर लिया। क्योंकि आर्य समाज का अधिकांश प्रचार कार्य हिंदी में होता था, इसलिए पंजाब प्रांत के होते हुए भी, जहाँ उर्दू और पंजाबी भाषा की प्रधानता थी, उन्हें हिंदी भाषा से प्रेम हो गया, जो निरंतर बढ़ता ही गया और उन्होंने आजीवन हिंदी का व्यवहार और प्रचार किया। उन्होंने डी.ए.वी. कॉलिज लाहौर और अंत में पंजाब विश्वविद्यालय से बी.ए. की

परीक्षा उत्तीर्ण की। थोड़े समय उपरांत ही वे डी.ए.वी. कॉलिज लाहौर में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए।

आर्य समाज के कार्यों की प्रशंसा सुनकर नेटाल, दक्षिण अफ़्रीका के प्रवासी भारतीयों ने डी.ए.वी. कॉलिज लाहौर के प्राचार्य महात्मा हंसराज से एक प्रचारक दक्षिण अफ़्रीका भेजने की प्रार्थना की, जिसके आधार पर महात्मा हंसराज ने भाई परमानंद को आर्य समाजी प्रचारक के रूप में केवल 27 वर्ष की आयु में दक्षिण अफ़्रीका भेजा, जिन्होंने नेटाल, दक्षिण अफ़्रीका में वैदिक धर्म का प्रचार किया। वे 5 अगस्त, 1905 को दक्षिण अफ़्रीका पहुँचे थे।[3] भाई परमानंद की उत्कृष्ट इच्छा थी कि वहाँ पर आर्य समाज स्थापित किया जाए, परंतु उस समय ऐसा न हो सका, क्योंकि उस समय वहाँ पर भिन्न–भिन्न संप्रदायों के मनुष्य थे और वे आर्य समाज स्थापित करना नहीं चाहते थे। इसीलिए भाई परमानंद जी ने इस विवाद का अंत करने के लिए 'हिंदू सुधार सभा' के नाम की एक संस्था स्थापित की और वहाँ रहने वाले भारतीयों में अपने विचारों का प्रचार किया, जिसके कारण भारतीयों और कुछ अंग्रेज़ों पर भी आपका अच्छा प्रभाव पड़ा।

नेटाल के बाद भाई परमानंद नेपाल की राजधानी मेरिट्सबर्ग गए तथा कितने ही मनोहर व्याख्यान उसके समीपवर्ती नगरों में दिए। इन व्याख्यानों में लोगों की अच्छी उपस्थिति होती थी और उनकी बातों का लोगों पर बहुत ही सकारात्मक प्रभाव पड़ता था। मेरिट्सबर्ग में अक्टूबर, 1905 में 'हिंदू यंगमेंस एसोसिएशन' नामक एक संस्था की स्थापना की।[4] मेरिट्सबर्ग में 1 माह रहने के बाद आप लोगों के बुलावे पर लेडीस्मिथ चले गए।

लेडीस्मिथ में उनके कई व्याख्यान मैंशेरिक हॉल में हिंदी और अंग्रेज़ी में हुए। वहाँ से वे डांडी गए और भिन्न–भिन्न विषयों पर व्याख्यान दिए। नेटाल में 3 मास प्रचार कर ट्रांसवाल को प्रस्थान किया। वहाँ उनके कई भाषण हिंदी और अंग्रेज़ी में हुए। इसके पश्चात् उनके कई भाषण प्रिटोरिया में हुए, जिसका वहाँ के अंग्रेज़ों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा। अंत में वे केपटाउन गए और इस प्रकार इन सभी स्थानों पर भारतीय आदर्श और प्राचीन वैदिक धर्म का उपदेश दिया। भाई परमानंद के सहयोग से जर्मिस्टन के शिक्षित युवकों ने 'इंडियन यंग मैन एसोसिएशन' की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य था भारतीय तरुणों में राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक विषयों की अभिरुचि उत्पन्न करना। भवानी दयाल सन्यासी इसके अध्यक्ष, आर. नायडू मंत्री और श्री राम स्वामी मुदालियर खज़ांची थे।[5]

दक्षिण अफ़्रीका में रहते हुए भाई परमानंद ने वहाँ के विभिन्न नगरों में जिस प्रकार वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति का प्रचार किया था, वह महात्मा गांधी को, जो उस समय दक्षिण अफ़्रीका में ही रह रहे थे, को काफ़ी अच्छा लगा था और भाई परमानंद के इस प्रचार से प्रभावित होकर ही उन्होंने उन्हें अपने पास ठहरने का निमंत्रण दिया था।[6] भाई परमानंद दक्षिण अफ़्रीका में बहुत थोड़े समय तक रहे और भिन्न–भिन्न स्थानों का भ्रमण कर अपने व्याख्यान दिए। वहाँ पर बसी हुई भारतीय जनता की दीन–हीन दशा को देखकर रोने लगते थे। आपके विषय में वहाँ के एक विद्वान अंग्रेज़ मिस्टर जी.डब्ल्यू. विलिस ने लिखा था – "वह केवल 27 वर्ष की युवावस्था वाला एक सुसंस्कृत विद्वान है। उसका जीवन बड़ा उच्च और शानदार है। उसके सम्मुख परोपकार का मिशन है। हमें आशा और विश्वास है कि इस मिशन से उत्पन्न हुआ लाभ विशेषतः उसकी जाति में विस्तृत रूप से प्रसारित होगा।"[7]

भाई परमानंद ने दक्षिण अफ़्रीका के विभिन्न नगरों में घूमकर वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति का प्रचार किया और वह भी आधिकांशतः हिंदी भाषा में। उनके प्रचार कार्यों की प्रशंसा प्रवासी लेखकों में सबसे प्रसिद्ध भवानी दयाल सन्यासी ने अपनी आत्मकथा में किया और लिखा कि "उनके व्याख्यान से हिंदुओं की प्रगाढ़ निद्रा भंग हो गई और उन्होंने हिंदुत्व को अपनी धारणा से भिन्न रूप में देखा। भाई जी ने दक्षिण अफ़्रीका के विभिन्न धर्मावलंबियों के समक्ष भाषण देते हुए ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिखाया कि वैदिक धर्म ही विश्व के समस्त धर्मों का आदी स्रोत है और आर्य संस्कृति ही विभिन्न संस्कृतियों की मूल धारा। शिक्षित तरुणों को इतना तो मालूम हो गया कि उनका भी कोई धर्म है और उनकी भी कोई संस्कृति है, जिन पर वे गर्व से मस्तक ऊँचा कर सकते हैं।"[8]

दक्षिण अफ़्रीका में भाई परमानंद के प्रचार कार्य एवं उसके परिणामों को देखकर वहाँ की गोरी सरकार घबरा गयी। सरकार को उनके कार्यों से विद्रोह की गंध आने लगी और सरकार उन पर राजद्रोह लगाने की तैयारी करने लगी। परिस्थितियों को भाँपते हुए भाई परमानंद दक्षिण अफ़्रीका से

अमेरिका चले गये और वहाँ पर 'गदर आंदोलन' से जुड़े लोगों के भी संपर्क में रहे। अमेरिका से लौटते हुए इंग्लैंड गए, जहाँ इन्हें भारतीय इतिहास के ब्रिटिश काल का अध्ययन करने का मौका मिला। इस अध्ययन में इन्हें 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के रिकॉर्ड को देखने का अवसर मिला, जिसके उपरांत इनके शिक्षा संबंधी विचारों में भारी परिवर्तन हुआ और ये इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत की शिक्षा प्रणाली को तुरंत बदलकर अंग्रेज़ी को शिक्षा के माध्यम से बिलकुल हटा देना चाहिए।

भारत वापस आने पर भाई परमानंद ने 1909 ई. में भारत के विभिन्न नगरों में भ्रमण कर राष्ट्रीयता की भावनाओं का प्रखर प्रचार किया, जिससे यहाँ की ब्रिटिश सरकार घबरा गई और उनके पीछे गुप्तचर लगा दिए गए। इसी कड़ी में इंग्लैंड में रहकर भारत का इतिहास नए सिरे से लिखने के लिए जो सामग्री एकत्र की थी, वह सब चोरी हो गई। इसके पीछे गुप्तचर विभाग का प्रमुख हाथ था। अपने गाँव जाकर भाई परमानंद ने 'भारत का इतिहास' नामक ग्रंथ की रचना 'एक इतिहास प्रेमी' के नाम से की। यह ग्रंथ उन्होंने हिंदी में लिखा था, जो हिंदी के अनन्य प्रेमी काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त की प्रकाशन संस्था 'ज्ञानमंडल लिमिटड काशी' से प्रकाशित हुआ। उस समय हिंदी में इस प्रकार के वृहद और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ शायद ही कोई लिखने की बात सोचता था। प्रकाशन के तुरंत बाद ही इस ग्रंथ ने देश में क्रांति की भावना उत्पन्न कर दी, जिसके कारण सरकार ने इसे प्रतिबंधित कर दिया और इसकी प्रतियाँ ज़ब्त कर ली।[8]

अब प्रश्न उठता है कि आखिर क्यों इस पुस्तक को प्रतिबंधित किया गया था। वास्तव में इस ग्रंथ में अंग्रेज़ी सरकार की बहुत ही कटु आलोचना की गई थी और उसे भारत के लिए बहुत ही अहितकर बतलाया था। पुस्तक में लिखा गया कि – "यदि कोई बादशाह बाहर से आकर राज्य हार लेता है, तो उसकी सल्तनत विजित राष्ट्र के लाभ के लिए नहीं होती। उसका आशय केवल यह होता है कि उस देश को दासता की दशा में रखे। इसलिए बाह्य जाति के शासकों का वृत्तांत उस जाति का इतिहास नहीं होता। इतिहास का उद्देश्य जाति के अंदर काम करने वाली उन शक्तियों का अध्ययन करना है, जो जातीय जीवन की द्योतक होती हैं।"[9] विशुद्ध भारतीय ढंग से लिखी इस पुस्तक में अंग्रेज़ी शासन की कमियों को बहुत ही बारीकी से उकेरा गया था। ग्रंथ में तो यहाँ तक लिखा गया कि – "जब एक जाति किसी प्रकार दूसरी जाति की अधीनता स्वीकार करती है, तो विजयी जाति का लाभ इसी में है कि पराजित जाति का इतिहास विशेष दृष्टि से लिखा जाए। विजयी जाति के लेखक जहाँ अपने गुणों को बदलकर अपने लिए स्तुति तथा अपने मनुष्यों में उत्साह का भाव उत्पन्न करते हैं, वहाँ वे पराजित जाति की निर्मलताओं और अवगुणों पर ज़ोर देकर उनके हृदयों से देशभक्ति का भाव हटाने का प्रयत्न करते हैं। स्वजातीय लोग अपना महत्त्व स्थिर रखने के लिए मरने–मारने पर तैयार किए जाते हैं, पर दूसरों को छोटा दिखाकर उनको अपने आप से घृणा करना सिखलाया जाता है। उनके नेत्रों तथा हृदयों पर इस प्रकार का इंद्रजाल डाला जाता है, जिससे वे विजयी जाति में सब प्रकार के गुण और अपने में अवगुण ही देख सकें। इस प्रकार उनका आत्मगौरव भाव नष्ट हो जाता है और वे देश–भक्ति से रहित हो जाते हैं।"[10]

भाई परमानंद जहाँ उच्च कोटि के समाज सुधारक और राजनीतिक नेता थे, वहीं उच्च कोटि के लेखक भी थे। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की और सबसे महत्त्वपूर्ण बात कि अधिकांश हिंदी में लिखे। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'आप बीती' (1921), 'काले पानी की कारावास' कहानी (1921), 'देश पूजा में आत्म बलिदान' (1921), 'भारत माता का संदेश' (1922), 'शिक्षा प्रणाली' (1922), 'वीर बैरागी' (1923), 'जीवन रहस्य' (1925), 'आर्य समाज और कांग्रेस' (1925), 'वाल्मीकि मुनि का जीवन चरित' (1925), 'महात्मा सुकरात' (1925), 'गीता रहस्य' (1925), 'भारत रमणी रत्न' (1925), 'छत्रपति' (1926), 'यूरोप का इतिहास' (1927), 'स्वराज्य संग्राम' (1927), 'हिंदू संगठन' (1928), 'महाराष्ट्र का इतिहास' (1928), 'हिंदू धर्म और उदासीन संत' (1928), 'हिंदू जीवन का रहस्य' (1928), 'भारत माता का संदेश' (1929), 'दो लहरों की टक्कर' (1929) और 'मेरे अंत समय के विचार' (1941) इत्यादि हैं।

आर्य समाज का विदेशों में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही और इसका श्रीगणेश दक्षिण अफ्रीका से भाई परमानंद ने किया। उनके प्रचार का फल यह हुआ कि दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियों में अपनी भाषा एवं संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ, जिसका लाभ भाई परमानंद के बाद जाने वाले आर्य समाजी प्रचारकों को मिला। निश्चय ही भाई परमानंद ने उस कठिन समय में विदेश में जाकर

आर्य समाज के प्रचार की नींव रखी, जिस पर एक–एक ईंट रखकर उसके बाद जाने वाले प्रचारकों ने वृहद् भवन का रूप दिया और प्रवासी भारतवंशी भी अपनी भाषा और संस्कृति को सुरक्षित रख सके।

संदर्भ सूची :

1. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय सं. 2006, पृष्ठ 477
2. सुमन, क्षेमचंद सं. दिवंगत हिंदी सेवी, द्वितीय खंड, शगुन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983 ई. पृष्ठ 514
3. सन्यासी, भवानी दयाल, प्रवासी की आत्मकथा, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, 1947, पृष्ठ 186
4. विदेशों में आर्य समाज सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली 1933 ई., पृष्ठ 6
5. सन्यासी, भवानी दयाल, प्रवासी की आत्मकथा, पृष्ठ 28
6. सुमन, क्षेमचंद सं. दिवंगत हिंदी सेवी, द्वितीय खंड, पृष्ठ 514
7. विदेशों में आर्य समाज, पृष्ठ 7
8. सन्यासी, भवानी दयाल, प्रवासी की आत्मकथा, पृष्ठ 186
9. भारतवर्ष का इतिहास, ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस, चतुर्थ सं. 2009 वि. पृष्ठ 7
10. वही, पृष्ठ 24

rkdhistory@gmail.com

गांधी : लेखकों के लेखक

– डॉ. कमल किशोर गोयनका
दिल्ली, भारत

गांधी लेखकों के संसार में विचार के, चिंतन के और विवेचन के शाश्वत विषय हैं। उनके साहित्य की विराटता एवं गंभीरता का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि उनके उपलब्ध साहित्य सौ खंडों में लगभग साठ हज़ार पृष्ठों में प्रकाशित है। इतनी विपुल सामग्री विश्व में केवल गांधी की ही उपलब्ध है और ध्यान रहे कि अभी उनकी अज्ञात–अप्राप्य सामग्री के खोजने–मिलने का दौर चल रहा है और यह वर्षों तक चलता रहेगा। गांधी बीसवीं सदी ही नहीं विश्व इतिहास के अकेले ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका लिखा एवं बोला अधिकांश एकत्र कर लिया गया है और वे हिंदी एवं अंग्रेज़ी में उपलब्ध हैं और जो कुछ ओझल है, उसे ढूँढने की कोशिश निरंतर चल रही है।

गांधी के जीवन, कृतित्व एवं वैचारिक वाङ्मय में कुछ ऐसे विषय हैं, जिनकी चर्चा दशकों से हो रही है और अभी खत्म नहीं हुई है। गांधी की अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग, सत्य, धर्म, स्वराज्य आदि ऐसे विषय हैं, जिनकी चर्चा के बिना गांधी पर बात ही शुरू नहीं होती। यही कारण है कि गांधी के संबंध में कुछ विषयों की ओर ध्यान ही नहीं गया अथवा गंभीरता से देखने की कोशिश ही नहीं की गई। गांधी की पत्रकारिता एवं भाषा–लिपि चिंतन ऐसे ही विषय रहे जिनपर मेरी पहली बार किताबें आईं। इधर उनकी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' तथा 'हिंद स्वराज' पर खूब विचार हुआ, परंतु गांधी के लेखकीय कृतित्व पर कोई व्यवस्थित लेख मुझे नहीं मिला। अब हमारे सामने सौ खंडों का 'गांधी वाङ्मय' है, जो कालक्रमानुसार है, लेकिन किसी खंड में उनके लेखक और लेखन पर कोई टिप्पणी नहीं है। इसी से हम यह समझ सकते हैं कि इसके विद्वान संपादक गांधी को एक लेखक के रूप में उपेक्षणीय मानकर छोड़ देते हैं और हम सब उनके कृतित्व के इस पक्ष से अंजान बने रहते हैं।

गांधी लेखकों के भी लेखक थे, अर्थात् लेखक थे, लेकिन वे न कवि थे, न कथाकार, न नाटककार। उन्होंने कई रूपों में अपने लेखक होने का प्रमाण दिया है – वे अनुवादक थे, निबंधकार थे, पत्र–लेखक थे, भूमिका लेखक थे, आत्मकथाकार थे, टीकाकार एवं इंटरव्यूकर्ता और ये उनके लेखक के ऐसे पक्ष हैं, जिन पर कभी चर्चा नहीं हुई और न कभी किसी के दृष्टि–पथ में आए। गांधी का स्वाधीनता संग्राम, स्वाधीनता–दर्शन तथा धर्म–चिंतन इतना प्रमुख था तथा बौद्धिक चिंतकों एवं राजनीतिक विश्लेषकों एवं इतिहासकारों पर इतना हावी था कि गांधी के व्यक्तित्व के कई पक्ष, कई रूप कभी विचारणीय नहीं बन पाए।

'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' के सौ खंड मेरे प्रमाण हैं। उनके आधार पर गांधी ने हज़ारों पृष्ठों का अंग्रेज़ी से गुजराती, हिंदी आदि में अनुवाद किया और अपने अखबारों में प्रकाशित किया। 'हिंद स्वराज' का उन्होंने खुद ही गुजराती से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। उन्होंने अपने सिद्धांत–शब्दों पर – अहिंसा, सत्य, धर्म, स्वदेशी, असहयोग आदि पर अनेक निबंध लिखे, जो उन्होंने अपने अखबारों में प्रकाशित किए। इनमें से कई निबंध दशकों तक पाठ्यक्रमों में पढ़ाए जाते रहे। पत्र–लेखक के रूप में तो गांधी का योगदान अप्रतिम है। उस युग में उनसे बड़ा पत्र–लेखक कोई नहीं हुआ, बच्चन तो उनके सामने बच्चे ही दिखाई देते हैं और मैं खुद अब तक पंद्रह हज़ार पत्र लिखने वाला बौना ही नज़र आता हूँ। साहित्य में पत्र–लेखन एक विधा है और उसके दीर्घकालीन महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय में गांधी के हज़ारों पत्र संकलित हैं। ये पत्र गांधी की विचार एवं संवेदनशील आत्मा के दर्शन कराते हैं और उनकी कानूनी तर्कशीलता की अकाट्यता उनका भक्त बना देती है। उनके टॉलस्टॉय, टैगोर आदि को लिखे पत्रों को आप पढ़ें तो गांधी के इस पक्ष से अंजान रहने पर अवश्य ही पछताएँगे। इन पत्रों में इतनी सामग्री है कि गांधी की कालक्रमानुसार जीवनी

लिखी जा सकती है। उनके लेखक का एक पक्ष भूमिका तथा प्रस्तावना लेखक का है, जिस पर किसी की निगाह नहीं गई। मैंने उनकी लगभग 100 भूमिकाएँ–प्रस्तावनाएँ खोजी हैं, जो उन्होंने विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों में लिखी हैं। यह भूमिकाएँ गुजराती, अंग्रेज़ी एवं हिंदी आदि भाषाओं में लिखी गई है और विशेष बात यह है कि गांधी पुस्तक को आद्योपांत पढ़ने के बाद ही लिखते हैं। गांधी अपने राष्ट्रीय कार्यक्रमों की घोर व्यस्तता में भी इसके लिए समय निकालते थे और थोड़ा बहुत लेखकीय–संसार से जुड़े भी रहते थे। गांधी ने 'हिंद स्वराज' के चौथे अंग्रेज़ी संस्करण की भी भूमिका लिखी और उन्होंने लिखा, "जो विचार इन पृष्ठों में किए गए हैं, उनको अनेक वर्षों तक आचरण में उतारने का प्रयत्न करते जान पड़ता है कि उसमें दिखाया गया मार्ग स्वराज का सच्चा मार्ग है। सत्याग्रह अर्थात् प्रेम–धर्म ही जीवन का धर्म है। उससे च्युत होना विनाश की ओर तथा उस पर आरूढ़ रहना नवजीवन की ओर ले जाता है।" इंटरव्यू विधा में, जो साहित्य तथा पत्रकारिता में बड़ी लोकप्रिय है, गांधी का दो तरफ़ा योगदान है। गांधी ने आरंभ में स्वयं कुछ इंटरव्यू लिए थे और राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति के क्षेत्र में प्रवेश के बाद तो विश्व का कोई पत्रकार, संवाददाता, लेखक आदि नहीं होगा, जो उनसे इंटरव्यू लेने के लिए लालायित न होगा। गांधी से लिए गये ऐसे इंटरव्यू की संख्या एक हज़ार से अधिक है और यदि उनकी प्रेस विज्ञप्तियों एवं भाषणों की संख्या की जाए, तो वे कई हज़ार में बैठेगी। इसके साथ यदि आप उनके संपादकीय भी जोड़ लें, तो वे भी हज़ारों में बैठेंगे। यदि आप इन सबको लेखकीय कार्य मानें, तो विपुलता तथा विभिन्न विषयों में लिखने वाला और बोलने वाला दूसरा कोई लेखक विश्व में नहीं मिलेगा।

मैं अब उनकी दो महत्त्वपूर्ण तथा विख्यात एवं लोकप्रिय पुस्तकों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करूँगा। उनकी एक पुस्तक उनकी आत्मकथा है 'सत्य के प्रयोग'। यह गांधी की आत्मकथा है। गांधी पर दबाव था कि आत्मकथा न लिखें, लेकिन वे अपने जीवन के सत्य प्रयोगों को कहने के लिए लालायित थे। उन्होंने इसकी भूमिका में वायदा किया कि वे 'कहने योग्य एक भी बात मैं छिपाऊँगा नहीं' और सच यह है कि उन्होंने आत्मकथा में जो कंफ़ेशन किए हैं, वे किसी अन्य आत्मकथाकार के लिए असंभव ही है। डॉ. नगेंद्र ने अपनी आत्मकथा 'अर्द्ध–सत्य' के नाम से लिखी और बच्चन ने 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में अपने निजी जीवन के कुछ रहस्यों–तथ्यों का उद्‌घाटन नहीं किया। मैंने उनसे कहा था कि आपने अपने प्रेम–संबंधों का पूर्णतः उद्‌घाटन नहीं किया, तो उनका उत्तर था कि मेरे गीतों में प्रेम संबंधों की कहानी छिपी है। अतः गांधी ने अपनी आत्मकथा में जो आत्म–स्वीकृतियाँ कीं उसके कारण वे लेखक के रूप में और बड़े हो जाते हैं। जैनेंद्र जी ने अपने निजी जीवन के कुछ कंफ़ेशन मुझसे किए थे, जिन पर मैंने लिखा था और उसके कारण उनका रचना–सिद्धांत कि विचार से रचना जन्म लेती है, गलत सिद्ध हो गया था। गांधी की आत्मकथा का यह भी महत्त्व है कि वे आत्मकथा में एक कसौटी बन गई है और उसे लाँघना आसान नहीं है।

अब मैं उनकी विश्व–प्रसिद्ध पुस्तक अंग्रेज़ी में 'इंडियन होम रूल' तथा हिंदी में 'हिंद स्वराज' की चर्चा करूँगा। इस पुस्तक ने गांधी को विश्व का सबसे अधिक पठनीय होने के साथ विवादास्पद भी बना दिया। यह गांधी चिंतन की सबसे अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय एवं सिद्धांतपरक पुस्तक मानी गई और विश्व की कोई भाषा होगी, जिसमें इसका अनुवाद न हुआ हो। गांधी ने चालीस वर्ष की आयु में इसकी रचना की थी और इससे हम उनकी बौद्धिक क्षमता, उनके सरोकार तथा अभिव्यक्ति कौशल का अनुमान लगा सकते हैं। 'हिंद स्वराज' यूरोपीय यांत्रिक सभ्यता तथा भारत में अंग्रेज़ी दुःशासन के संदर्भ में भारतीय चिंताओं एवं आत्मबोध का दस्तावेज़ है और इसकी रचना–प्रक्रिया के संबंध में गांधी ने कई सूत्र हमें दिए हैं। गांधी ने इंग्लैंड से लौटते समय नवंबर, 1909 में इसे अपने जलयान में लिखा था। इसकी रचना कोई अचानक बौद्धिक विस्फोट नहीं थी। इसकी भूमिका दक्षिण अफ़्रीका में उनके वर्षों के अनुभवों तथा उन अनुभवों से निर्मित प्रतिमानों के बीच विदेशी दासता से मुक्ति का चिंतन उनमें बराबर चल रहा था और पश्चिमी सभ्यता, दासता, सत्याग्रह, अहिंसा, आत्मबल आदि की नई कसौटियाँ जन्म ले रही थीं। लंदन में वे कई आतंकवादियों से मिले थे और वहाँ रहते हुए भारतीय क्रांतिकारी मदनलाल धींगरा को फाँसी हुई थी। गांधी वीर सावरकर से भी मिले थे और डॉ. प्राण जीवन मेहता के साथ एक महीने रहे और उनसे हुई चर्चा को गांधी

ने 'हिंद स्वराज' के रूप में लिख दिया। गांधी ने माना कि यह पुस्तक अनेक वर्षों के चिंतन के दोहन का फल है, जो संघर्ष से परिपक्व हुए और सोच–समझकर व्यक्त किए। लेकिन यह भी सच है कि पुस्तक लिखने के कुछ तात्कालिक कारण भी थे और गांधी को लगा कि इसे टालना कायरता होगी।

'हिंद स्वराज' के लेखक के रूप में उन्होंने कुछ रोचक एवं कुछ आंतरिक तथ्यों का उद्घाटन किया है। 'हिंद स्वराज' गुजराती में लिखी, 'इंडियन ओपिनियन' में छपी और पुस्तक रूप में गुजराती में ही प्रकाशित हुई। ब्रिटिश सरकार ने इसे ज़ब्त कर लिया, तो गांधी ने इसका अंग्रेज़ी अनुवाद 'इंडियन होम रूल' के नाम से किया। गांधी गुजराती से अंग्रेज़ी में अनुवाद करके बोलते थे और उनके सहयोगी कैलेन बैक इसे लिखते थे। गांधी समझते थे कि इस पुस्तक को अंग्रेज़ी शासक 'खतरनाक' और 'राजविद्रोहात्मक' मानेंगे। गांधी ने अंग्रेज़ी संस्करण की भूमिका में लिखा कि ब्रिटिश सरकार ने भय ग्रस्त होकर इसे ज़ब्त किया, क्योंकि मैं ब्रिटिश सरकार के तौर–तरीकों तथा पश्चिमी सभ्यता की निंदा करता हूँ। सरकार का इसे राजविद्रोहात्मक मानना गलत है, क्योंकि इसमें हिंसा का समर्थन नहीं है और मैं हिंसा के आधुनिक तरीके का विरोधी हूँ। मैं 'न्याय और नीति' पर चल रहा था और मेरा विश्वास था कि भारतीय मुसीबतों का इलाज हिंसा नहीं है और भारतीय सभ्यता को आत्मरक्षा के लिए कुछ ज़्यादा ऊँचे किस्म के हथियार – अहिंसा, सत्याग्रह, आत्मबल आदि की ज़रूरत है।

गांधी ने लिखा है कि 'हिंद स्वराज' में व्यक्त विचार उनके हैं और उनके नहीं भी हैं। ये विचार उनके इसलिए हैं, क्योंकि वे उनकी आत्मा से निकले हैं, उन पर पूरी आस्था है और उन्हें आचरण में उतारते हैं, परंतु वे मेरे नहीं भी हैं, क्योंकि मैंने उन्हें अनेक पुस्तकों से निकाला है। साहित्य की रचना भी लेखक के भौतिक ज्ञान और आत्म–ज्ञान के द्वंद से होती है। गांधी ने 'हिंद स्वराज' लिखकर जो अपना हिंद–दर्शन निर्मित किया, वे समय के साथ और भी मज़बूत होते गए। गांधी ने कई बार कहा कि उन्हें अपने विचारों को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे मानते भी हैं कि उनके सारे विचार व्यावहारिक नहीं हैं, फिर भी वे मेरे लिए अपरिवर्तनीय हैं, लेकिन इतिहास का सच यह भी है कि उन्हें ब्रिटिश पार्लियामेंट को 'वेश्या' कहने पर एक ब्रिटिश महिला के कहने पर हटाया, असम के लोगों को 'असभ्य और जंगली' कहने पर सार्वजनिक रूप से उनसे क्षमा माँगी और मैनचेस्टर के कपड़ों के उपयोग का समर्थन वापस लेकर भारतीय मिलों को प्रोत्साहित करने का वक्तव्य दिया। गांधी को 'हिंद स्वराज' के सिद्धांतों और विचारों की सार्थकता एवं व्यावहारिकता के प्रश्न से जूझना पड़ा और वे यह कहते रहे कि 'हिंद स्वराज' अव्यावहारिक होने पर भी गलत नहीं है और यदि मैं अकेला ही उसे मानने वाला रह जाऊँ, तब भी कोई दुख न होगा, क्योंकि मैंने जैसा सत्य पाया है, उसका मैं साक्षी हूँ।

गांधी में राजनीति, अध्यात्म, धर्म, संस्कृति आदि ज्ञान की कई धाराएँ प्रवाहित थीं और साहित्य एवं कला पर भी उन्होंने विचार किया था और वे उनके मूल संघर्ष तथा युग के अनुरूप थे। गांधी तुलसीदास और उनके 'रामचरितमानस' की चर्चा बार–बार करते हैं और कबीर, मीराबाई आदि को भी अपने उद्देश्यों के प्रतिपादन में उल्लेख करते हैं। गांधी साहित्य–कला के विरोधी नहीं हैं, लेकिन वे कला हो या साहित्य उसे कल्याणकारी, उदात्त, पवित्र, शुद्ध तथा आत्मा के सौंदर्य से संपन्न देखना चाहते हैं। वे कहते हैं कि कला समाज के नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होनी चाहिए। प्रेमचंद का साहित्य–दर्शन भी इससे कुछ भिन्न नहीं था। वे भी स्वराज और भारतीय आत्मा की रक्षा के साथ मनुष्य में देवल की खोज में थे। गांधी का वैशिष्ट्य था कि वे राजनीतिक प्रश्नों और स्वाधीनता के लिए किए आंदोलनों के बीच भी लेखकों से संपर्क बनाए रखते थे। उनका प्रेमचंद से संबंध हुआ, जब उन्होंने उनके 'हंस' को अपनाया, चाहे वह कुछ महीने के बाद टूट गया। उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' को पढ़ा और उसमें उर्मिला के प्रसंग के विस्तार को रामकथा के लिए अनावश्यक बताया और उन्होंने बच्चन की 'मधुशाला' की शिकायत मिलने पर, बच्चन को बुलाकर 'मधुशाला' सुनी और सारे आरोपों को अस्वीकार करके 'मधुशाला' के दर्शन की प्रशंसा की।

ऐसे प्रसंगों से यह माना जा सकता है कि गांधी लेखकों के भी लेखक थे। गांधी का लेखकीय कर्म भावना तथा संवेदना पर नहीं विचार की कठोर भित्ति पर आधारित है। उन्हें बड़ी लड़ाई लड़नी थी और वे विचार से ही हो सकती थी। गांधी ब्रिटिश सत्ता की दासता और औपनिवेशिक बौद्धिकता तथा श्रेष्ठता के अहंकार

से वैचारिक युद्ध कर रहे थे और अपने भारतीय श्रेष्ठ मूल्यों एवं स्वत्व–बोध की दृढ़ विचार शक्ति से उसका प्रतिरोध कर रहे थे। 'हिन्द स्वराज' एक भारतीय देशभक्त का भारतीयता की दृष्टि से स्वाधीनता की प्राप्ति और भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता एवं उसकी आत्मा की रक्षा का शंखनाद है। यह वह समय था जब प्रेमचंद का 'सोज़ेवतन' तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'भारत दुर्दशा' जैसी पुस्तकें सामने आ रही थीं। गांधी में भारतीय आत्मा बोल रही थी कि हिन्द का स्वराज्य कैसा होगा, कैसे मिलेगा और कैसे अंग्रेज़ियत को भगाया जा सकता है। गांधी के जीवन काल में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में गांधी का प्रभाव मिलता है। प्रेमचंद ने तो 'रंगभूमि' उपन्यास के नायक को गांधी का प्रतिरूप बना दिया और अनेक कवियों ने गांधी दर्शन के अनुरूप कविताएँ लिखीं, लेकिन यहाँ इस प्रश्न का सामना करना होगा कि स्वाधीनता के बाद राष्ट्र का यह महानायक ही नहीं विश्व का महानायक, साहित्य और कला की दुनिया से कैसे गायब हो गया और 70 वर्ष में 'पहला गिरमिटिया' जैसी एक ही कृति सामने आ सकी। गांधी ने आज़ादी मिलने के बाद कहा था कि अब कांग्रेस पार्टी की ज़रूरत नहीं है, इसलिए इसे खत्म कर दिया जाए। तो क्या गांधी के साथ भी यही हुआ कि अब गांधी की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा क्यों हुआ कि गांधी ने जो स्वतंत्रता संग्राम 'हिन्द स्वराज' के आधार पर लड़ा था वह 'हिन्द स्वराज' आज़ादी मिलते ही निरर्थक हो गया और प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने विकास की धारा पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता की ओर मोड़ दी? क्या आज के भूमंडलीकरण के दौर में गांधी की कोई सार्थकता रह गयी है और हम बस बहस करके ही गांधी को जीने के अभ्यासी हो गये हैं? लेकिन विश्व में युद्ध की जो विराट विध्वंस की अनुगूंज सुनाई पड़ रही है, वह क्या हमें गांधी की ओर देखने के लिए आतुर नहीं कर रही है? गांधी की यदि इतनी भी प्रासंगिकता है, तो सच मानिए कि गांधी को कोई मार नहीं सकता। आप सोचें, क्या सचमुच गांधी वधनीय, विस्मरणीय तथा उपेक्षणीय हैं या मानव सृष्टि को उन्हें अपने साथ लेकर चलना होगा?

kkgoyanka@gmail.com
khsvicechairman.goyanka@gmail.com

हिंदी, प्रादेशिक भाषाएँ और दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि

– श्री उमेश चतुर्वेदी
नई दिल्ली, भारत

एकात्म मानव दर्शन क्या है? खुद की आत्मा के समान ही सबकी आत्मा को समझना। भारतीय राजनीतिक परंपरा के इस क्रांतिकारी वैचारिक दर्शन के मूल में करुणा का भाव है। लेकिन भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी के संदर्भ में इस क्रांतिकारी दर्शन के प्रणेता का विचार कुछ अलग ही रहा। 1964 के जनवरी–फ़रवरी महीने में मद्रास (अब चेन्नई) और आसपास के इलाकों में हिंदी के विरोध में हिंसक उपद्रव हो चुके थे। उसके बाद वहाँ के दौरे से लौटे दीनदयाल उपाध्याय ने बंबई (अब मुंबई) में एक पत्रकार सम्मेलन को संबोधित किया। हिंदी विरोधी आंदोलन से क्षुब्ध दीनदयाल उपाध्याय ने उस सम्मेलन में कहा था – "देश की अखंडता की रक्षा के लिए गृहयुद्ध का खतरा उठाकर भी देश के भाषाई उपद्रवों को दबा देना चाहिए।" (संदर्भ : पंडित दीनदयाल उपाध्याय, व्यक्तित्व–दर्शन, संपादक कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ संख्या 129)।

राष्ट्रवाद में संस्कृति के तत्त्वों की खोज करने वाला विचारक जब अपनी भाषा के प्रति ऐसा अगाध सम्मान दिखाता है, तो उसके मानस और भाषा के प्रति भाव को समझना होगा।

दीनदयाल उपाध्याय ने जिस एकात्म मानवदर्शन का विचार दिया, उससे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की राजनीतिक विचारधारा भी निःसृत हुई है। राष्ट्रवाद और लोकतंत्र की मौजूदा एवं बहुप्रचलित अवधारणाओं के बरक्स सांस्कृतिक राष्ट्रवाद बौद्धिक समुदाय के एक वर्ग के निशाने पर रहा है, जिसमें हास्य, उपेक्षा और तंज तीनों का भाव सम्मिलित है। इसका आधार है अंग्रेज़ी की कहावत, जिसमें कहा गया है कि शांतिकाल में राष्ट्र मर जाता है और युद्धकाल में वह ज़िंदा रहता है। लेकिन दीनदयाल उपाध्याय इसके ठीक विपरीत कहते हैं, "हमारा राष्ट्र जीवन, जो हज़ारों वर्षों से चला आ रहा है, यदि इसका आधार विरोध, युद्ध या विपत्ति ही हो, तो यह ठीक नहीं है। हम भावात्मक आधार पर खड़े हैं। जीवन की एक दृष्टि हमारे सामने है। हम संसार में पैदा हुए हैं, तो किसी का विरोध करने के लिए नहीं। हमारे सामने एक विधायक विचार है कि हम जोड़ने वाले हैं, तोड़ने वाले नहीं। यह जोड़ने वाला विचार हमारी संस्कृति है तथा यही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मर्म है।" स्पष्ट है कि जिसका विचार इतना सृजनात्मक हो, वह भाषा के मसले पर अगर एक अर्थ में आक्रामक लहज़े से सोचता है, तो इसके मूल में उसकी आक्रामकता से ज़्यादा अपनी संस्कृति और भाषा से अगाध स्नेह और सम्मान है।

भारतीय भाषाओं और हिंदी के संदर्भ में स्वतंत्र भारत की राजनीति ने इस अंदाज़ से सोचने और उसे आगे बढ़ाने का काम नहीं किया। संवैधानिक आधार पर हिंदी को जो अधिकार और सम्मान देने की कोशिश हुई, उन्हें वास्तविक धरातल पर आधे–अधूरे मन से उतारने की सिर्फ़ रस्म निभाई गई। इसे दीनदयाल उपाध्याय कितनी गहराई से समझते थे, इसे उनके एक निबंध में समझा जाता है। वे कहते हैं ''हमारे स्वातंत्र्य संग्राम के प्रारंभिक दिनों में ब्रिटिश समर्थक तत्त्वों को हमारा सामान्य उत्तर होता था कि स्वराज की प्यास को सुराज से नहीं बुझाया जा सकता। आज भी स्वभाषा की आवश्यकता की पूर्ति सुभाष से नहीं हो सकती।" (संदर्भ : दीनदयाल उपाध्याय, महेशचंद्र शर्मा)। स्पष्ट है कि हिंदी के प्रति आज़ाद भारत में जिस तरह का व्यवहार हुआ, दरअसल उस पर दीनदयाल उपाध्याय इस ढंग से क्षोभ व्यक्त करते हैं। तमिलनाडु में हिंदी विरोधी आंदोलन के बाद जिस तरह राजनीति और केंद्रीय सत्ता ने हिंदी को किनारे रखने के लिए संवैधानिक उपबंधों का सहारा लिया और कई बार उसका अतिक्रमण किया, वह अब अनदेखा और अपरिचित नहीं रह गया है। कुछ लोग तो मानते हैं कि हिंदी को अनंतकाल तक भारतीयता के प्रतीक से दूर रखने और अंग्रेज़ी के वर्चस्व

को बढ़ाने के लिए जानबूझकर इस आंदोलन को हवा दी गई। शायद दीनदयाल उपाध्याय को इसका भान था। तभी वे अपने इसी लेख में आगे कहते हैं – "राजनीतिज्ञ भाषा के नाम पर लड़ तो सकते हैं, लेकिन भाषा का सृजन नहीं कर सकते।"

जुलाई 2020 में आई नई शिक्षा नीति में प्राथमिक स्तर पर मातृभाषाओं में शिक्षा देने का प्रावधान किए जाने की बात कही गई है। वैश्विक स्तर पर मनोविज्ञानी और शिक्षाशास्त्री मानते हैं कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए। भारत की नई शिक्षा नीति एक तरह से इसी सोच को रूपायित करती है। लेकिन इसका भी विरोध शुरू हो गया। अपेक्षा के अनुरूप विरोध के सुर तमिलनाडु से ही उठे, जिसने 1965 में संविधान की व्यवस्था के मुताबिक हिंदी को राजभाषा के स्थान पर स्थापित किए जाने की व्यवस्था को उग्र हिंदी विरोधी आंदोलन के बहाने न सिर्फ़ चुनौती दी, बल्कि हिंदी को उसके वाजिब स्थान को हासिल करने में भी देर लगा दी। हिंदी विरोधी आंदोलन को हवा देने की दिशा में द्रविड़ मुनेत्र कणगम की सांसद कनिमोई ने चेन्नई हवाई अड्डे पर केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल के जवान द्वारा हिंदी में बात करने और उसके द्वारा कथित रूप से यह कहने कि आप हिंदी नहीं जानतीं और भारतीय हैं, कहने को मुद्दा बनाने की कोशिश की थी। चूँकि हिंदी को लेकर राजनीतिक सोच में बड़ा बदलाव भले ही नहीं आया हो, लेकिन इंटरनेट के विस्तार के दौर में आम लोगों की धारणा में परिवर्तन ज़रूर आया है। यही वजह है कि यह मुद्दा नहीं बन पाया है।

हालाँकि राजनीतिज्ञों द्वारा हिंदी को इस तरह किनारे रखने की भावी चेष्टा को दीनदयाल उपाध्याय समझते थे। तभी उन्होंने 1965 में प्रतिपादित अपने एकात्म मानव दर्शन में कहा है – "देश के स्वतंत्र होने के बाद स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न हम सब लोगों के सामने आ जाना चाहिए कि हमारे देश की दशा क्या होगी? किंतु सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि देश की स्वतंत्रता के बाद भी जितने भी गंभीर रूप से इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए था, उतने गंभीर रूप से लोगों ने विचार नहीं किया।"

भारतीय उपराष्ट्रीयता बोध ने कम–से–कम उपराष्ट्रीयता वाले क्षेत्रों में वहाँ की प्रादेशिक भाषाओं को ताकतवर तो बनाया है, लेकिन हिंदी की स्थिति कम–से–कम राजनीतिक रूप से उनकी तुलना में कमतर ज़रूर है। बांग्ला, असमिया, उड़िया, कन्नड़, तमिल, मलयालम, तेलुगू, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि उपराष्ट्रीयता बोध ने अपनी–अपनी प्रादेशिक भाषाओं को जीवन और गति भी दी है। लेकिन हिंदी के लिए वैसी कोई उपराष्ट्रीयता है भी नहीं। हिंदी का समाज स्थानीय बोलियों–भाषाओं के समुच्चय का समाज है। इस वजह से न तो समुच्चय विशेष के क्षेत्र की बोली–भाषा ही ताकतवर हो पाई है और न ही समुच्चय बोध वाली हिंदी भी राजनीतिक हैसियत हासिल कर पाई है। इसके लिए दीनदयाल उपाध्याय भारतीय समाज के प्रभावशाली वर्ग के अंग्रेज़ी बोध को ज़िम्मेदार मानते थे। एकात्म मानव दर्शन में वे कहते हैं – "आज भारत के शिक्षित वर्ग के जीवन मूल्यों पर पश्चिम का यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। हमें यह निर्णय करना पड़ेगा कि यह प्रभाव अच्छा है या बुरा। जब तक अंग्रेज़ थे, तब तक तो हम स्वदेशी की भावना से अंग्रेज़ियत को दूर रखने में ही गौरव समझते थे। किंतु अब, जब अंग्रेज़ चले गए हैं, तब अंग्रेज़ियत पश्चिम की प्रगति का द्योतक एवं माध्यम बनकर अनुकरण की वस्तु बन गई है।"

दीनदयाल उपाध्याय चूँकि भारतीयता के दर्शन और सिद्धांत के उद्घोषक थे, अपनी प्रगति के सूत्र वे अपनी सांस्कृतिक विरासत और अपनी मिट्टी के तत्त्वों में ढूँढ़ते थे, लिहाज़ा वे हिंदी के अनन्य प्रेमी थे। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वे भारतीय भाषाओं के विरोधी थे। विरोधी तो वे अंग्रेज़ी के भी नहीं थे। बल्कि वे हिंदी और भारतीयता की जगह पर अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत के वर्चस्व के विरोध में थे। वे प्रादेशिक राजकाज को प्रादेशिक भाषाओं में करने, यहाँ तक कि नौकरियों की परीक्षा के लिए प्रादेशिक भाषाओं को माध्यम बनाए जाने के समर्थक थे। 1967 में प्रादेशकि भाषाओं को सिविल सेवा की परीक्षाओं का माध्यम बनाए जाने की माँग उठी, तो उन्होंने इसका समर्थन किया था। उस समय नागपुर में एन एम घटाटे के एक सवाल के जवाब में इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए दीनदयाल जी ने कहा था, "माध्यम का चुनाव शिक्षार्थियों पर छोड़ दिया जाए। यदि वे प्रादेशिक भाषा स्वीकार करते हैं, तो उन्हें अनुमति दी जाए। उनकी नियुक्तियाँ संबंधित भाषाई प्रदेश में की जा सकती है। जिन्हें भारत के किसी भी प्रदेश में नौकरी करने की आकांक्षा होगी, वे प्रादेशिक भाषा को माध्यम के रूप में

स्वीकार न कर हिंदी को स्वीकार करेंगे।" (दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्ति दर्शन, पृष्ठ 133)

इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि दीनदयाल जी मानते थे कि अगर प्रादेशिक भाषाओं को बढ़ावा दिया गया, तो निश्चित तौर पर हिंदी को ही संपर्क भाषा के तौर पर लोग अपनाएँगे। लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। कालांतर में सिविल सेवा की परीक्षाओं में प्रादेशिक भाषाओं को माध्यम तो बनाया गया, लेकिन आधिकारिक संपर्क भाषा के तौर पर अंग्रेज़ी का वर्चस्व बना रहा। अंग्रेज़ी के बरक्स हिंदी को राजकाज की भाषा के तौर पर स्थापित करने को लेकर प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू का तर्क था – "हिंदी में आधुनिक प्रौद्योगिकी को परिभाषित करने के लिए शब्दों का निर्माण करना संभव नहीं है।" लोकसभा की एक बहस में उन्होंने इसे स्वीकार किया था। कमोबेश इसी तर्क को हिंदी विरोधी आज भी बढ़ावा देते हैं। लेकिन दीनदयाल उपाध्याय इस विचार से सहमत नहीं थे। उन्होंने इसके जवाब में लिखा है – "हिंदी को अधिकृत भाषा बनाना चाहते हो और सभी प्रादेशिक भाषाओं को भी उनके अपने राज्यों में अधिकृत भाषाएँ बनाना चाहते हो, विधि, विधानमंडलों, प्रशासन आदि में अनेक क्षेत्रों में इसी भाषा को प्रयोग करना चाहते हो, तो न्याय–विषयक उपयुक्त शब्दों को देसी भाषाओं में लाना ही पड़ेगा और सभी शब्दों को मूल संस्कृत धातु से ही बनाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कोई और चारा आपके पास नहीं है।" (पं. दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक विचार, संपादक, नीलम नायक चौरे, पृष्ठ 46–47)

अंग्रेज़ी के जवाब में प्रशासन और प्रौद्योगिकी की भाषा के तौर पर हिंदी किस तरह विकसित हो सकती है, इसे लेकर भी दीनदयाल उपाध्याय ने सुझाव दिए हैं। ऑर्गनाइज़र के 28 मई, 1967 के अंक में लिखे अपने स्तंभ पोलिटिकल डायरी में उन्होंने लिखा है – "जिन शब्दों के पर्याय हिंदी भाषा में नहीं हैं, उनके लिए हमें खोज–खोजकर शब्द चलन में लाना चाहिए। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी शासन काल में 'बड़े लाट साहब' (गवर्नर जनरल के लिए) शब्द चलन में था। तो क्या हम इन्हीं शब्दों को स्वतंत्रता के बाद भी देश में चलाते रहेंगे या राज्यपाल, राष्ट्रपति जैसे शब्दों का प्रयोग करेंगे?" हिंदी को किनारे रखने में एक तर्क का जमकर आधार बनाया जाता है। जैसे संस्कृतनिष्ठ और तत्सम शब्दों को प्रचलन और जनरुचि विरोधी बताकर ऐसे प्रयोगों वाली हिंदी को कठिन कहा जाता रहा है। वस्तुतः इस तर्क के ज़रिए एक तरह से हिंदी को शब्द संकुचन का शिकार बनाया गया। लेकिन दीनदयाल उपाध्याय अपने इसी लेख में इसका भी जवाब देते हैं – "राज्यपाल या राष्ट्रपति जैसे शब्द सामान्य जन की बोली से विकसित नहीं हुए हैं। किंतु एक बार टकसाल से निकलने के बाद अब सामान्य मनुष्य भी उसका प्रयोग करने लगा है।"

1956 में जब राज्यों का फ़ज़ल अली आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर पुनर्गठन किया गया, तो उसका प्रमुख आधार भाषा को बनाया गया। लेकिन दीनदयाल उपाध्याय भाषायी आधार पर राज्यों के गठन के विरोधी थे। उनका मानना था कि भाषा कोई भी क्यों न हो, संस्कृति तो अपनी एक है। जो एक–दूसरे को जोड़ती है। उनका मानना था कि गैर हिंदी–भाषी प्रदेशों को राजनीति के तहत यह जानबूझकर आभास कराया गया कि हिंदी भाषा उन पर बोझ स्वरूप लादी जा रही है, जिससे उनकी मातृभाषा विकसित नहीं हो पाएगी और उनका विकास नहीं हो पाएगा। दीनदयाल उपाध्याय मानते हैं कि भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के पीछे यही धारणा काम कर रही थी। दीनदयाल उपाध्याय मानते थे कि अंग्रेज़ों की तर्ज पर अंग्रेज़ी के समर्थक प्रादेशिक भाषाओं और हिंदी समर्थकों के बीच 'फूट डालो और राज करो' की नीति में चल रहे हैं। वे मानते थे कि यदि अंग्रेज़ी चली जाती है, तो उसका स्थान अकेले हिंदी नहीं, बल्कि प्रादेशिक भाषाएँ भी ग्रहण करेंगीं। इसीलिए वे त्रिभाषा यानी प्रादेशिक भाषा, हिंदी और एक विदेशी भाषा सीखने को बढ़ावा देने के हिमायती थे।

त्रिभाषा सूत्र को ज़रूरी बताते हुए 1960 में उन्होंने लिखा था – "मेरे विचार से सभी दृष्टिकोणों में त्रिभाषा नीति सबसे उपयोगी नीति है। यह आवश्यक नहीं है कि तीनों भाषाओं का स्तर समान हो। मातृभाषा को सर्वोच्च स्थान दिया जाना चाहिए। माध्यमिक स्तर तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। भारत जैसे बहुभाषी देश में यह आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी कम–से–कम दो भाषाओं से अवगत रहे। स्पष्ट है कि भारतीय भाषाएँ देवनागरी लिपि स्वीकार करें, तो प्रादेशिक भाषा सीखना कोई कठिन काम नहीं होगा। एक विदेशी भाषा के नाते अंग्रेज़ी भाषा सीखने का भी प्रबंध होना चाहिए। रूस, जापान तथा जर्मनी में भी अंग्रेज़ी पर्याप्त मात्रा में सीखी जाती है। किंतु वे लोग अंग्रेज़ी के दास बने या प्रशासन के माध्यम के रूप में

अंग्रेज़ी को स्वीकार नहीं किया। व्यापार, उद्योग–धंधों आदि के शैक्षणिक माध्यम के रूप में उन देशों में अंग्रेज़ी का प्रयोग नहीं किया जाता। हम इन क्षेत्रों से अंग्रेज़ी को निकाल बाहर करते हैं, तो वह एक बहुत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी।" (ऑर्गनाइज़र, 28 मई, 1967)

दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि स्पष्ट थी। वे मानते थे कि प्रशासनिक भाषा के पद से अंग्रेज़ी को हटाए बिना हिंदी या प्रादेशिक भाषा का विकास संभव नहीं है। अपने इसी निबंध में वे कहते हैं – "जब तक प्रशासन में अंग्रेज़ी है, तब तक विद्यार्थी अंग्रेज़ी सीखेंगे ही। उसके स्थान पर प्रादेशिक भाषा प्रशासन का माध्यम हो गई, तो अन्य भाषाओं की अपेक्षा वही भाषा छात्र सीखेंगे।"

वैसे देखें तो मध्यकाल से ही हिंदी देश की संपर्क भाषा के तौर पर प्रचलन में थी। शिवाजी पर भूषण की रचना हो या फिर गुरुगोविंद सिंह के संदेश या फिर आधुनिक दौर में विवेकानंद का जनजागरण अभियान, सब हिंदी में ही था। शिवाजी हिंदी–भाषी इलाके के नहीं थे, लेकिन उन पर भूषण ने हिंदी में रचना की। स्वामी विवेकानंद हिंदी–भाषी नहीं थे, लेकिन उनका जनजागरण हिंदी में भी है। हिंदी की यह परंपरा ही थी कि स्वाधीनता आंदोलन में भी सहज संपर्क भाषा के तौर पर हिंदी का व्यवहार होता रहा। लेकिन आज़ादी के बाद हिंदी को किनारे लगाने की अंग्रेज़ीपरस्त कोशिशें हुईं, तो हिंदी के इस गुण को सायासिक ढंग से किनारे किया गया। प्रादेशिक भाषाओं को हिंदी के वर्चस्व का डर दिखाकर उभारा गया। प्रादेशिक भाषाओं की इस शंका का समाधान करते हुए दीनदयाल उपाध्याय ने इस तरह किया है। पॉलिटिकल डायरी में एक जगह वे लिखते हैं – "यदि संविधान में हिंदी को परंपरागत रूप से सुप्रचलित नाम 'राष्ट्रभाषा' के बदले राजभाषा नाम दिया गया, तो उसका उद्देश्य अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के बारे में कुशंकाएँ दूर करना ही नहीं था, बल्कि यह प्रकट करना भी था कि वे सब भी समान रूप से राष्ट्रीय हैं। राष्ट्रीय एक गुण प्रधान कल्पना है, परिणाम प्रधान नहीं। भू–क्षेत्रीय राष्ट्रवाद के आदर्श पर चलने वालों के लिए इसका गूढ़ार्थ कठिन होगा। ऐसे लोग यह भी नहीं समझ सकते कि भाषा विषयक एवं अन्य प्रसंगों में भेद एकरूपता थोपे बिना भी राष्ट्रीय एकता कैसे अक्षुण्ण रखी जा सकती है।"

हिंदी के विरोध में प्रादेशिक भाषाओं के खड़े होने को लेकर दीनदयाल उपाध्याय संविधान में राजभाषा और राष्ट्रभाषा के संदर्भ में हिंदी की स्थिति के भ्रम को ज़िम्मेदार मानते हैं। पोलिटिकल डायरी में वे लिखते हैं – "संवैधानिक अभिव्यक्ति ने लोगों को भ्रमित किया है और इस कारण से वे यह अनुभव करते हैं कि यदि कोई हिंदी का विरोध और अंग्रेज़ी की वकालत करता है, तो इससे उसकी राष्ट्रीयता की भावना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

हिंदी को लेकर दीनदयाल उपाध्याय कितने आग्रही थे, इसका अंदाज़ा 1960 में लिखे उनके लेख 'राष्ट्रभाषा की समस्या' को पढ़ते हुए होता है। उन्होंने यह लेख राजभाषा के लिए 1960 में राष्ट्रपति द्वारा दिए गए एक आदेश के संदर्भ में हिंदी को किनारे रखे जाने की कोशिश के षड्यंत्र का पर्दाफ़ाश करते हुए लिखा था। इस लेख में वे कहते हैं – "आवश्यकता तो यह थी कि शासन क्षेत्र में हिंदी के अधिकाधिक एवं उत्तरोत्तर प्रयोग के संबंध में आदेश दिया जाता। किंतु उसके स्थान पर कहा गया कि गृह मंत्रालय ऐसी योजना के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए आवश्यक कार्यवाही करे, जिसमें ऐसे पग उठाए जा सकें, जो हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग को सुविधाजनक बना दे। अर्थात् पानी पिलाने के स्थान पर मात्र कुआँ खोदने की योजना बनाने का आदेश दिया गया।" अव्वल तो दीनदयाल उपाध्याय को राष्ट्रपति द्वारा आदेश जारी करने पर ही आपत्ति थी। उनका कहना था कि यह कार्य संसद द्वारा किया जाना चाहिए था। बहरहाल इस लेख में वे स्वीकार कर लेते हैं कि दरअसल इस आदेश का लक्ष्य अंग्रेज़ी के व्यवहार को अनंतकाल तक चलते रहने देना था।

1960 में लिखे अपने लेख में उन्होंने जो आशंका व्यक्त की थी, वह बिल्कुल सच निकली। हिंदी अब भी अपना वाजिब अधिकार पाने की प्रतीक्षा में है और अंग्रेज़ी का वर्चस्व बना हुआ है। बेशक बाज़ार ने कम–से–कम भारतीय संदर्भों में हिंदी के विस्तार को गति दी है। इस गति की राह में यदा–कदा अंग्रेज़ी बाधा बनती रहती है। लेकिन नई आर्थिकी उस बाधा को हटाती भी रहती है। हालाँकि जब तक प्रशासनिक स्तर पर हिंदी और दूसरी प्रादेशिक भाषाओं को स्थापित नहीं किया जाता, तब तक दीनदयाल जी के विचार प्रासंगिक बने रहेंगे।

uchaturvedi@gmail.com

पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों की भाषिक बनावट-बुनावट

– प्रो. (डॉ.) सूर्यकांत त्रिपाठी
असम, भारत

भाव और विचारों के प्रकटन का साधन भाषा है। वह बाहरी दुनिया में मनुष्य की गतिविधियों का माध्यम भी है। इसी हेतु उसका संप्रेषण यथोचित होना चाहिए, जिससे पाठक या श्रोता को भाव ग्रहण करने में सहूलियत हो। यहाँ वक्ता या लेखक का यह दायित्व हो जाता है कि वह सहज, सुबोध और संप्रेषणीय भाषा का इस ढंग से प्रयोग करे कि उसके पाठक या श्रोता उसके भावों या विचारों को उपयुक्त अर्थ में ग्रहण कर सकें। इसी बात को विंसेंट और ब्रुक्स ने इस रूप में प्रकट किया है – "कवि अनिवार्यतः अर्थान्वेषण की प्रक्रिया में भाषा की दर्ज़ीनुमा सिलाई करता है।"[1] यहाँ यह भी स्मरणीय है कि भाषा जीवन के हर क्षेत्र में विभिन्न दायित्वों का निर्वाह करती है और वह सदैव उसके साथ रहती है, न केवल वाणी में, बल्कि उसके विचारों एवं स्वप्नों में भी। मनुष्य का भाषा से इतना निकट का जुड़ाव है कि भाषा उसे स्वयं अलग प्रतीत नहीं होती, तभी तो महान दार्शनिक डेकार्त भी अपना अस्तित्व अपनी चिंतन प्रक्रिया पर ही निर्भर पाता है – "मैं सोचता हूँ, इसीलिए मैं हूँ। भारतीय मनीषा भी इसी बात की इस रूप में पुष्टि करती है – 'मनुते इति मनुष्यः'। (चिंतन करने वाला प्राणी ही मनुष्य है।)"

पं. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार, "भाषा स्थिर न होकर सर्जनात्मक मानवीय प्रक्रिया के रूप में आगे बढ़ती रहती है। जहाँ तक सिद्ध वस्तु के रूप में भाषा के विश्लेषण की बात है, वह सामान्य व्याकरण या सामान्य भाषाशास्त्र के अंतर्गत लाई जा सकती है, किंतु जहाँ नियमों की परिधि के विस्तार की बातें आती हैं या पूर्व निश्चित संकेतों के द्वारा द्योतित अर्थों या दूसरे शब्दों में अभिधेय संदेशों की परिधि के बाहर जाकर अभिधेयतर या वाच्येतर नवसर्जित संदर्भ के उन्मीलन का प्रश्न उठता है, वहाँ भाषा का एक अतिरिक्त प्रयोजन जुड़ जाता है।"[2] इसी संदर्भ को लक्ष्य कर पंडित जी ने दूसरी जगह उद्धृत किया है – "साहित्य का उद्देश्य सामाजिक संप्रेषण है। इस विषय में कोई भी मतभेद नहीं हो सकता, क्योंकि साहित्य का माध्यम भाषा है और भाषा समाज की देन है।"[3] इस रूप में साहित्य का माध्यम भाषा है और "भाषा समाज को परिभाषित करने वाला उसका एक मुख्य अभिलक्षण है, भाषा समाज के समस्त व्यवहार का प्रकृष्ट साधन भी है। इससे भी आगे जाकर यह कहा जा सकता है कि समाज और भाषा एक–दूसरे के बिना कोई अस्तित्व नहीं रखते।"[4] और ऐसी स्थिति में ही "भाषा जीवन की संवेदना से घुलमिल भाषा होगी। वह एक कदम आगे ले जाने वाली होगी। उसकी लय ऐसी बरबस मोहक लय होगी, आधी परिचित होगी, आधी अपरिचित और इसीलिए आदमी को अनायास आगे खींच ले जाने में समर्थ होगी।"[5]

भाषा कोई वस्तु नहीं, बल्कि वह एक प्रक्रिया है। किसी की सत्ता उसके बोलने वालों से अलग नहीं रहती। इसे यूँ कहें, तो प्रत्येक भाषा के विषय में कोई कथन वस्तुतः उस भाषा के बोलने वालों पर लागू होता है। यह सच है कि भाषा का आधार कोई–न–कोई बोली ही होती है, किंतु अपने विकास और विस्तार की प्रक्रिया में वह सब बोलियों का महत्तम समापवर्तक होती है। एक की होकर भी वह सबकी हो जाती है। सबके समन्वय–योगदान और सम्मिश्रण से उसमें भाषापन आता है, क्योंकि बोलियों के संघटन से ही भाषा बनती है और भाषा के विघटन से बोलियाँ बनती हैं। इस संदर्भ में डॉ. हरदेव बाहरी का यह कथन द्रष्टव्य है – "सामान्यतया साहित्यकार की अपनी बोली की पुट उसकी साहित्यिक भाषा में अवश्य रहती है। कबीर में भोजपुरी, नानक में पंजाबी, दादू में जयपुरी, मीरा में मारवाड़ी एवं केशव में बुंदेली शब्द और प्रयोग है ही। उस युग में बोलियों का व्यवहार साहित्य में निःसंकोच रूप से होता था। आज भी खड़ी बोली हिंदी साहित्य में साहित्यकार की जनपदीय बोली यत्र–तत्र अवश्य उभर

आती है। कभी–कभी विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिए साहित्यिक एवं सामान्य शब्दावली काम नहीं आती और कभी–कभी साहित्यिक भाषा का शब्द सूझता ही नहीं, अपनी बोली का शब्द ही सामने आता है। प्रत्येक साहित्यकार बोली के सहज प्रवाह, नैसर्गिक सामस्स और सीधे प्रवाह से लाभ उठाना चाहता है। कभी तो वह उसका रूपांतर करके साहित्यिक भाषा में रख देता है और कभी बोली को ही सामान्यता के धरातल पर लाने की चेष्टा करता है। इससे साहित्यिक भाषा समृद्ध होती रहती है।"[6]

पं. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार – "साहित्य की भाषा तो वस्तुतः अनुभव की समृद्धि के बीच उत्पन्न हुए तनाव से ही नई शक्ति पाती है और इस तनाव के कारण ही समृद्ध भाषा के अनुभव का संस्कार होता है और समृद्ध अनुभव से भाषा का निखार होता है। पर कभी–भी नहीं भूलना चाहिए कि केवल भाषा की भीतरी रंगतों और बुनावटों की पहचान करने चलें, तो उसमें व्यक्ति के अनुभव की रंगत या बुनावट प्रकट हुए बिना नहीं रहेगी।"[7] इस रूप में भाषा मनुष्य के सामाजिक परिवेश के विस्तार का आईना होती है। अतः भाषा अपनी सर्जनात्मक प्रक्रिया के कारण सर्जक के अनुभवों को परिभाषित और रूपायित करती है। इस संदर्भ में पंडित जी ने आगे लिखा है – "सोचने की प्रक्रिया और भाषा की प्रक्रिया एक ताल में बँधी रहे, तभी भाषा अभिव्यक्ति में समर्थ होती है और अनुभव तभी पूर्ण होता है।"[8] नहीं तो, अनुभव और भाषा के अधकचरे संस्कार सर्जक की सामाजिकता पर अंगुली उठा देते हैं। पंडित जी के शब्दों में – "आदमी दुनिया को तो अपनी सामाजिक दृष्टि का छलावा दे सकता है, पर अपनी भाषा को नहीं और रचनाकार तो किसी भी प्रकार नहीं।"[9]

भाषा व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्धारित करती है। उसकी आत्मचेतना, आत्मनिर्माण, आत्मगठन, विषय–वस्तु, विनिमय, अवधारणा–संवेदना, प्रत्ययन, विचार और बिम्ब प्रभृति पर ही निर्भर करती है। अपने प्रति दूसरे व्यक्ति की धारणा के अनुरूप व्यक्ति अपने संज्ञान और अभिव्यक्ति के विकास और विस्तार की सृष्टि करता है। भाषा के द्वारा ही सामाजिक मूल्य, दृष्टिकोण, विचार, परंपरा, आदर्श, लक्ष्य आदि निर्धारित होते हैं और यही व्यक्ति की सामाजिक चेतना के मूलाधार हैं। मनुष्य के रूप और उसकी समानता की सच्चाई का यथारूप कोई भी आईना प्रदर्शित नहीं कर सकता, जितनी सच्चाई के साथ भाषा कर सकती है। व्यक्ति अपनी दुनियाबी अनुभव को भाषा के द्वारा ही अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसीलिए भाषिक शैली व्यक्ति की व्यक्ति–शैली का सूचक है। व्यक्तित्व की शैली भाषा के द्वारा विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हो सकती है।

पं. विद्यानिवास मिश्र की भाषा की बनावट समाज, संस्कृति, अध्यात्म, दर्शन, राजनीति, गवईं गाँव की माटी की सोंधी सुरभि प्रभृति की प्रतिकृति है और उसकी बुनावट में है भाषाओं और बोलियों के वैविध्य की दिव्यता। पंडित जी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान हैं, अकूत भाषायी शब्द–संपदा के धनी हैं। कब और कहाँ किस शब्द के प्रयोग से चमत्कृत किया जा सकता है, इस कला में वे बखूबी निष्णात हैं। प्रस्तुत है उनकी भाषिक बनावट और बुनावट की किंचित बानगी :

1. पंडित जी के ललित निबंधों के ताने–बाने की शब्दावली।
2. पंडित जी के ललित निबंधों के वाक्यों की बनावट।

पंडित जी के ललित निबंधों के ताने–बाने की शब्दावली

पं. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों की शब्दावली के विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। यह स्पष्ट है कि कोई भी लेखक पहले से यह धारणा बनाकर या पूर्वाग्रह ग्रसित होकर यह निश्चित करके कोई लेख नहीं लिखता कि वह अपने अमुक लेख में अमुक शब्दावली का ही प्रयोग करेगा। इसलिए पं. विद्यानिवास मिश्र जी के ललित निबंधों के विषय में भी यह कह देना उचित नहीं कि उन्होंने अपने अमुक निबंध में संस्कृतनिष्ठ भाषा का ही अथवा सरल–सुबोध भाषा का ही प्रयोग किया है। तथापि उनके निबंधों में प्रयुक्त शब्द–समूह को हम निम्नवत् विभक्त कर देखने का उपक्रम करेंगे :

संस्कृत शब्दावली :
(1) तत्सम शब्द
(2) संधिज शब्द
(3) सामासिक शब्द

विदेशी शब्दावली :
(1) अरबी–फ़ारसी के शब्द
(2) अंग्रेज़ी के शब्द

लोक व्यवहार की लोक–प्रचलित शब्दावली :

(1) लोकबोली के शब्द
(2) युग्मात्मक शब्द
(3) ध्वन्यात्मक शब्द
(4) तद्भव शब्द
(5) मुहावरे

पंडित जी ने अपने ललित निबंधों की भाषा के जिस रूप का चयन किया है, देखने पर प्रतीत होता है कि उसमें भाषा के तत्सम शब्द की ही बहुलता है। उनकी मौलिक शब्द–सृष्टि संस्कृत पद–विन्यास के आधार पर है और उसका भाषिक गठन प्रायः 'अ', 'स' और 'प्र' उपसर्गों से युक्त है। यथा – अभिभूत, आरक्त, अमिट, अपरिमित, अथिर, अचिर, अम्लान, अवनति, अनुगता, अनुत्तर, अनिमेष, संगति, संस्पर्श, संस्कारात्मक, समाकार, सात्विक, सहकर्मी, समरसता, समष्टि रूप, सतत प्रवाही, प्राचीकृत, प्रतिरोध, प्ररोहित, प्रत्येक, प्रक्रिया प्रभृति शब्दों का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है।

उक्त उपसर्गों से युक्त पंडित जी की भाषा का यह वाक्य भी देखने योग्य है – "इसी सत्य पर दूसरे आर्य गुण अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, अप्रमाद आदि आधारित हैं, क्योंकि जो सत्य को अखंड और अविभक्त रूप में देखेगा, वह दूसरे की शक्ति के स्वीकार न करने को सत्य का खंडन मानेगा। सत्य का आग्रह उसे अपने आप नकारने की प्रक्रिया अर्थात् हिंसा से विरत करेगा, दूसरे के प्राप्य के लोभ से विरत करेगा, अपनी आवश्यकता से अधिक जोड़कर दूसरे को उसके उपभोग से वंचित करनेवाली कृपणता से वंचित करेगा। यह आकस्मिक नहीं है कि हमारे महान और प्रेरक काव्यों के नायक शौर्य के कारण नायक नहीं हैं, वे नायक है अपनी सत्य–संधता के कारण। राम हो, युधिष्ठिर हो दोनों ही सत्य–संध है, सत्य–संध होने के कारण वे कृपावंत हैं, शत्रु के प्रति भी करुण हैं।"[10]

यही वजह है कि मिश्र जी के निबंधों की भाषा अलंकार एवं प्रतीक युक्त शब्दों से भरी–पूरी है। उनके ललित निबंधों में उपमा, रूपक, अनुप्रास अलंकारों एवं बहुशः प्रतीकों की छटा देखते बनती है। उदाहरण के लिए सत्य का दीवट, तप का तेल, दया की बाती, आत्मा सरीखे आकाश, मृगशावकों से बादल, स्मृतियों का वितान, सत्य की वेदी, शब्दों की छलनी, अहंकार की गठरी, श्रमवारि, तरुण–उल्लास, कृपा–कोर, हृदय–मुकुल, दृग–पल्लव, कल्पना का पल्ला, पाहन–नयन, कपिलावाणी, माखन से मन प्रभृति देखे जा सकते हैं।

कुछ ललित निबंधों के शीर्षकों जैसे 'गंगायां घोषः', 'निर्माल्य', 'नमः शिवाय', 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्', 'बौद्धावतारे', 'जयति जननिवासो देवकी जन्मवादः', 'मा पुरो जरसो मृथाः दाम्यत दत्त दयध्वम्', 'अहम नृतात्सत्यमुपैमि' और संस्कृत श्लोकों के बहुशः उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंडित जी के ललित निबंधों की भाषा में संस्कृत के शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। उसके बाद दूसरे क्रम पर तद्भव शब्दों की प्रयुक्ति पाई जाती है। पंडित जी के निबंधों में तीसरा स्थान उर्दू के शब्दों का है। इससे स्पष्ट होता है कि इनके निबंधों में एक तरफ़ जहाँ संस्कृतनिष्ठता विद्यमान है, वहीं दूसरी ओर लोक प्रचलित शब्दों एवं विदेशी शब्दों की बिना झिझक प्रयुक्ति हुई है। इस प्रकार किसी एक भाषा को लेकर यह सुनिश्चित कर देना उचित नहीं लगता कि मिश्र जी की भाषा में किसी एक भाषा के रूप की ही अधिकता है, क्योंकि हर प्रकार के भाषा रूपों का इतना मिलाजुला रूप देखने को मिलता है कि उनको अलगाकर एक निष्कर्ष प्रस्तुत करना बड़ा कठिन प्रतीत होता है।

पं. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में क्षेत्रीय शब्दों के प्रयोग का बाहुल्य है। उन्होंने अपने ग्रामीणांचल भोजपुरी बोली के अनेक शब्दों को अपने निबंधों में स्थान दिया है। बतौर उदाहरण के टटोलने, डगर, ठीहा, कोना–अतरा, आसरा, गंवार, जुगजुगाती, पहरा, भाँदों, छुआकर, उलाहना, बचकानी, झटपट, सड़ाँध, रमझल्ला, अपनाव, निकासी, ढकेलकर, उजड्ड, हिलोर, उकसा, आँचर, तितास, बिगाड़, विसूरती, बटोर–बटोर, दुहरा, पाँत, उसाँस प्रभृति अनेक शब्दों के प्रयोग देखे जा सकते हैं।

पंडित जी जब लोक संस्कृति का चित्र अपने ललित निबंधों में उरेहते हैं, तो अनायास ही क्षेत्रीय शब्दों की भरमार हो जाती है। कहीं क्रिया रूपों पर तो कहीं लिंग पर पूर्वी बोली का रंग दिख पड़ता है। कहीं क्रियाओं के प्रयोग में पुलिंग के स्थान पर स्त्रीलिंग का प्रयोग भी मिल जाता है, जिसे हम पंडित जी की क्षेत्रीय बोली के संस्कारों के रूप में देख सकते हैं। कहीं–कहीं क्रियाओं के रूप भी लोक बोली की प्रकृति के अनुरूप पाए जाते हैं। ऐसे ही अनेक प्रयोग उनकी भाषा पर पड़ने वाले क्षेत्रीय

प्रभाव को दर्शाते हैं। कहीं संस्कृत के पुलिंग शब्दों के विशेषणों को अपनी बोली की प्रकृति के अनुसार स्त्रीलिंग बनाकर प्रयुक्त किया गया है। यथा – जब अक्षय तृतीया को पहला हल खेत में जाने लगता है तब हल, बैल और हलवाहा तीनों ही हल्दी से टीके जाते हैं। जब पहला बीज धरती पर पड़ने जाता है, तब खेतिहर, बैल, बीज और कुदाली चारों हल्दी से छिड़के जाते हैं, जब मातृत्व की सफलता में नारी उतरने को होती है, तब उसके नैहर से आई हुई हल्दी–रंगी पियरी और हल्दी–रंगी झँगुली ही उसको तथा उसके लाल को कुल के समक्ष प्रस्तुत करती है। जब कुमारी सुहागिन बनने को होती है, उसके अंग–अंग को हल्दी ही असीस देती है और नख–शिख हल्दी से रंगकर ही सौंदर्य सौभाग्य का सिंदूर दान पाता है। जिसको हल्दी नहीं लगती वह धरती परती पड़ जाती है।"[11]

पंडित जी के भाषिक वैशिष्ट्य के अंतर्गत क्षेत्रीय बोली के शब्दों में युगात्मक शब्दों का प्रयोग भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उदाहरण के लिए घाल–मेल, ताक–झाँक, विहग–दूती, समर्पण–वचन, प्रेम–प्रणति, रूप–लालसा, सुख–निदिया, जल–डूबे, धनांध–तामस जैसे शब्दों को लिया जा सकता है। इसी के अंतर्गत लोक बोली के बहुशः ध्वन्यात्मक शब्दों का भी अवलोकन किया जा सकता है, जो पंडित जी के ललित निबंधो में बहुतायत पाए जाते हैं, यथा – झिलमिलाना, चहचहाना, फड़फड़ाना, 'सांझ होते ही जंगल चहचहा उठा और बसंती बयार के झोंके से पीले पत्ते उड़ने लगे' प्रभृति।

आपकी भाषा की बनावट अधिकतर तत्सम शब्दों के माध्यम से हुई है, लेकिन आपका पूर्वाग्रह संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के प्रति कतई नहीं है। अतः उनकी भाषा में यथास्थान तद्भव शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। लोक व्यवहार की सहज भाषा का प्रयोग करने वाले पंडित जी के निबंधों में तद्भव शब्दों के प्रयोग की भी कमी नहीं। जैसे – उरेहना, पाँत, काढ़, रैन, परस सरीखे बहुशः तद्भव शब्दों के प्रयोग देखे जा सकते हैं।

यहीं पर पंडित जी के निबंधों में प्रयुक्त लोक प्रचलित लोकोक्ति एवं मुहावरों को भी देख लेना आवश्यक है :

(1) "अधिकतर लोग लोहा लगने की बाट जोहते रहते हैं और मुर्गे की..... ।"[12]

(2) "अपने समूचे वर्ग के साथ उसके पीछे हाथ धोकर पड़ जाते हैं।"[13]

(3) "पर वह प्रत्येक जीवन यात्री को वर्षा में फिसलने से बचाने के लिए पावड़े बिछाती हैं।"[14]

(4) "भरोसा मुँह चिढ़ाने वाला आईना रह गया है।"[15]

(5) "झख मारकर मुझे इनकी अपकार शक्ति को हाथ जोड़ने पड़ते हैं।"[16]

ठीक ऐसे ही बहुत सारे मुहावरे पंडित जी के निबंधों में सहजता से पाए जाते हैं और उनकी भाषा को जीवंतता प्रदान करते हैं।

मुहावरों की ही तरह लोकोक्तियों का भी आपकी भाषिक संरचना में बहुत अधिक योगदान है। लोकोक्तियों के कारण पंडित जी की भाषा अधिक प्रभावोत्पादक और व्यंजक हो गई है। लोकोक्तियों का कहीं तो आपने वाक्य–गठन में सीधा–प्रयोग किया है और कहीं लोकोक्तियाँ वाक्यों में फ़िट कर दी गई हैं तथा कहीं–कहीं तो लोकोक्तियों को वाक्यांश बनाकर प्रस्तुत कर दिया गया है और कहीं–कहीं सूरदास, तुलसीदास, बिहारी आदि की अर्द्धालियों या उनके अंशों को भी लोकोक्तियों की भाँति प्रयोग में लाया गया है। बतौर उदाहरण :

(1) "कभी–कभी मेरे मित्र फागुनी शाम की अँगूरी उजास से आलोकित और जंगली गंध में डूबी बतास से पुलकित थे।"[17]

(2) "जिन नव दृग–पल्लवों की बन्दनवार लगी वे दृग पल्लव मुरझा गए। नयन सलोने अधर मधु दोनों ही करूआ गए. ..... ।"[18]

(3) "हम झीनी–झीनी चदरिया ओढ़कर राम की बहुरिया बने। श्री जू की सहेली बने और हमारा समूचा ध्यान इसमें केन्द्रित हो गया कि कब ये अधम प्राण निकले और कब गगन के ऊपर सुन्न महल में दियना जलाकर सबसे ऊँची सेज पर पिया से हमारा मिलन हो।"[19]

पं. विद्यानिवास मिश्र की भाषा में अरबी, फ़ारसी, उर्दू और अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग बहुतायत मिलता है, जिसे उन्होंने सहज, निःसंकोच और आत्मीय भाव से अपनाकर अपने निबंधों में प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने दिलासा, गलती, ज़बरदस्ती, इज़ारेदारी, जवाब, ताज़गी, ज़िंदादिली, असलियत, चीज़, करिश्मे, गर्क, शरीक, गुम नुस्खा, बेखबर, निहायत, अहमियत, आदमी, दायरे, पैमाने, दर्जे, महज़ तोबा, बेगाना, नुमाइश,

बदस्तूर, मिज़ाज, मतलब, खुद, ज़मीन प्रभृति उर्दू–फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग किया है।

पंडित जी ने बहुशः अंग्रेज़ी शब्दों के तर्ज पर हिंदी के बहुशः समानार्थक शब्दों को नया रूप प्रदान किया है। जैसे – 'हाई एनर्जी सिस्टम' का 'उच्च ऊर्जा व्यवस्था', 'परिप्रेक्ष्य का पर्सपेक्टिव', 'दिक्काल–मुक्त' का 'नॉन–इन्सूलर' आदि शब्दों को नया रूप दिया है तथा अंग्रेज़ी के 'टेक्नीक' शब्द की हिंदी के स्वभाव के अनुसार 'तकनीक' सरीखे नए शब्दों को रूपायित कर अपने निबंधों में प्रयुक्त किया है। इनके निबंधों में फ़ोटोग्राफ़ी, फ़िल्मों, डिस्ट्रिक्ट, प्लानिंग ऑफ़िसर, ट्रेजडी, स्लेट, साइनबोर्ड, स्प्रिट, एयर कंडीशंड प्रभृति अंग्रेज़ी शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया है।

पं. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों के वाक्यों की बनावट

पंडित जी के निबंध–लेखन की भाषा की बुनावट की परख के लिए उनके निबंधों में रचे गए वाक्यों के गठन का विश्लेषण आवश्यक है। इसे हम निम्न स्तरों पर देखने का प्रयास करेंगे :

1. लम्बे वाक्य।
2. ध्वन्यात्मक वाक्य।
3. समुच्चयादि प्रयोग के वाक्य।
4. उद्धरणात्मक वाक्य।
5. तुकदार वाक्य।
6. प्रवाहयुक्त वाक्य।
7. गजगद्यात्मक वाक्य
8. सूक्तिपरक वाक्य।
9. परिसंवादात्मक वाक्य।
10. विविध प्रकार के विशिष्ट वाक्य।

लम्बे वाक्य :

पंडित जी एक उत्कृष्ट चिंतक और विचारक हैं और इसीलिए जहाँ उनके चिंतन की अभिव्यक्ति होती है, वहाँ स्वभावतः उनके वाक्य लम्बे हो जाते हैं। यथा – "जब हम नमः शिवाय कहते हैं, तो हम किसी अव्यक्त शिव को नमस्कार नहीं करते, हम इस पार्थिव सृष्टि को नमस्कार करते हैं, इस पार्थिव सृष्टि के मूर्धन्य मानव के चरम उत्कर्ष को नमस्कार करते हैं। एक महान देश की महान परंपरा को नमस्कार करते हैं, जिसने जीवन को शिवमयता की दीक्षा दी, कालिदास, भारवि, भवभूति, शंकर, अभिनव गुप्त और तुलसी को जोड़नेवाली काव्य–पयस्विनी को नमस्कार करते हैं। विंध्य को पश्चिमी जलधि से जोड़ने वाली नर्मदा को नमस्कार करते हैं। मोहनजोदड़ो को खजुराहो से जोड़ने वाली उस विशाल इतिहास को नमस्कार करते हैं और द्वीप और महाद्वीप के लघु पर्वत और महापर्वत के पतित और उत्थित के सुप्त और जागृत, वन्य और नागर के, सिद्ध और साधक के, गुरु और शिष्य के तथा प्रकृति और पुरुष के बीच की खाई को पाटने वाले सेतु बंधेश्वर को नमस्कार करते हैं।"[20]

ध्वन्यात्मक वाक्य :

पंडित जी के लेखन की प्रवाहमयता से उनके भाषागत वाक्यों में विविधता पाई जाती है। काव्यात्मक वाक्यों के गठन के सिलसिले में ऐसे वाक्य भी पाए जाते हैं, जिनके अंतर्गत ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग कुछ अद्‌भुत ढंग से हुआ है कि उनमें ध्वन्यात्मक शब्दों के अलावा कुछ और है ही नहीं तथा ऐसे वाक्यों का भी अपना रूपात्मक वैशिष्ट्य है, यथा –

(1) "असीम आकाश के लिए छोटी–सी धरती की बैचेनी मुखर करने वाला जातक तो हो सकता हूँ और अपनी प्यास नहीं सबकी प्यास बुझाने के लिए बादल को टेर सकता हूँ – पी कहाँ, पी कहाँ।"[21]

(2) "उस समय इन घड़ों की जो घड़घड़ाहट होती है, उसमें से लगता है कि 'ददद्द की ध्वनि निकल रही हो'।"[22]

समुच्चयादि प्रयोग के वाक्य :

समुच्चयादि प्रकार के वाक्यों का गठन उस स्थिति में महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जब बहुशः शब्दों के समुच्चय द्वारा वाक्य का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार के बहुत से शब्दों को कहीं कर्ता के रूप में, तो कहीं कर्म के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार के संश्लिष्ट वाक्यों की संरचना एक तरफ़ गतिशीलता में सहायक होती है, तो दूसरी ओर बहुत–सी क्रिया व्यापारों का समुच्चय अपने में समाहित करती है। उदाहरण – "जीवन का रस सूख क्यों गया है? बाहर से सूखा या अंदर–ही–अंदर जो एक घुलने की क्रिया होती रही, भाप बनकर उड़ जाने की क्रिया

होती रही, उड़कर आकाश में छा जाने की क्रिया होती रही, उसी का यह सहज परिणाम था कि रस वह सोता जिसको उपनिषदों में दहर कहा जाता है, योगियों ने सहस्र–दल कमल का आनंद सरोवर कहा है, संतों ने अनहद नाद कहा है और कवियों ने रस कहा है और जिसे भक्तों ने पुष्टि कही है, कृषक ने आशा कही है, वह सोता सूखते–सूखते पंक बन गया, पंक भी सूखते–सूखते दरार बन गयी और दरार भी एक दिन रौंदते–रौंदते धूलि बन गई।' अब हमें जीवन 'शरदः शतम्' की वाणी अपरिचित लगने लगी, अमृत–पुत्र का विशेषण अपूर्ण प्रतीत होने लगा और 'जिजीविषेत शतम् समाः' अव्यावहारिक भासने लगा।"[23]

उद्धरणात्मक वाक्य :

पंडित जी के निबंधों में ऐसे बहुत से वाक्य मिलते हैं, जिनमें उपनिषदों, महाभारत, रामायण, रामचरितमानस, कुमार–संभव, अभिज्ञान शाकुंतलम् प्रभृति प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों के साथ ही सूर, मीरा, कबीर, मुक्तिबोध, अज्ञेय सरीखे बहुत से कवियों की कुछ पंक्तियों का उद्धरण उनके वाक्य–गठन में दिखाई पड़ते हैं। ऐसे वाक्यों को रूपात्मक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। कुछ उदाहरण निम्नवत् देखे जा सकते हैं :

(1) "विराट पुरुषमेध में बसंत ही अज्य है, घृत है। इस ऋतु को इसी से भगवान कृष्ण ने गीता में अपनी विशेष विभूति माना है – 'ऋतूणां कुसुमाकरः'।"[24]

(2) "तुलसीदास ने जब कहा 'सो जब धरम करम जरि जाऊ। जेहि न रामपद पंकज भाऊ।।' या कृष्ण भक्त ने कहा 'बावरी वे अँखियाँ जरि जाएँ, जो साँवरे छाड़ि निहारति गोरो।' तो उसका तात्पर्य यह नहीं था कि राम भक्ति से विलग कोई धर्म नहीं है या कृष्ण रूप की माधुरी से विलग कोई माधुरी नहीं है।"[25]

तुकदार वाक्य :

वाक्य–गठन की दृष्टि से विभिन्न प्रकारों में इस तरह की वाक्य–रचना भी होती है, जब लेखक बीच–बीच में ऐसे उपवाक्यों की लड़ी लगाता जाता है, जिनमें ऐसी क्रियाएँ होती हैं, जो तुकांत–सी प्रतीत होती हैं। पंडित जी के निबंधों की भाषा में ऐसे बहुशः वाक्य पाए जाते हैं, जिनमें उन्होंने इस प्रकार के तुकदार वाक्यों में अल्पविराम के साथ तुकांतता की सृष्टि की है। दूसरे प्रकार के ऐसे वाक्य हैं, जिनमें उपवाक्यों के अंत में आने वाली क्रियाओं में तुकांतता उत्पन्न की गई है। प्रस्तुत है तुकदार वाक्य की एक बानगी – "परिवार में एक कर्ता होता है, वह कर्ता उम्र में छोटा भी हो सकता है, वह पिता भी हो सकता है, पुत्र भी हो सकता है, भाई भी हो सकता है। वह कर्ता परिवार को गति देने वाला परिवार की ओर से परिवार के लिए सारे कार्य करने वाला एक घटक या एक एजेंट मात्र होता है।"[26]

प्रवाहयुक्त वाक्य :

गद्यकार जब सहायक क्रिया को वाक्य के अंत में रखकर वाक्य के मध्य में लाकर रख देता है, तो एक तरफ़ काव्यात्मकता की रचना होती और दूसरी तरफ़ प्रवाहयुक्तता भी आ जाती है। ऐसे प्रवाहयुक्त वाक्यों में कहीं सहायक क्रिया रहती भी है और कहीं नहीं भी रहती। कहीं तो मुख्य क्रिया को ही वाक्य के मध्य में ही ले आया जाता है। यह प्रवाहयुक्तता सहायक क्रिया के साथ शुरू होने वाले वाक्य से रहती है और सहायक समूचा उपवाक्य ही सहायक क्रिया के बाद प्रयुक्त रहता है। प्रस्तुत है पंडित जी के निबंधों में प्रयुक्त ऐसे वाक्यों के कुछ नमूने :

(1) "गम गलत करने के दूसरे साधन तो पहुँच के बाहर है, बस ले–देकर काफ़ी है और काफ़ी की जान है गम की बात, या ठीक कहें बात की झाग, अधिक जली झाग, जिसके नीचे समस्त स्वादों को झुठलाने वाला एक स्वाद है, कसैला।"[27]

(2) "पर मैं अकेले क्या कर सकता हूँ, दूसरे किनारे के चरवाहे वंशी बजाते जब तक कगार से नीचे नहीं उतरते, मेरे सूखे गद्यात्मक सपाट प्रयत्न को अपनी वंशी से मुखरित नहीं करते, तब तक मैं हूँ क्या? महज़ एक निष्प्रयोजन रेखा, अटपटी असुविधा।"[28]

गजगद्यात्मक वाक्य :

गजगद्यात्मक वाक्यों की रचना की विशेषता तुकदार होने में है। इसका गद्य नाम इसी वजह से ही पड़ा है, क्योंकि इसमें तुकदार वाक्यों की लड़ी पिरोई जाती है। पंडित जी के निबंधों में ऐसे वाक्यों का बाहुल्य है, जिनमें अल्प विराम के द्वारा एक गति, एक लय पैदा की जाती है तथा यत्र–तत्र एक वाक्य में एक ही क्रिया के लिए अनेक कर्ता भी प्रयोग में लाए जाते हैं। बतौर उदाहरण – "मैं जानता हूँ इस किशोर लीला वाले अपने भीतर के

नटवर को, जो कभी निबंधकार बनकर, कभी नकली कवि बनकर, कभी यों ही विचारों का बनजारा बनकर, कभी मानवीय जीवन की नाट्य भूमिका में कुलपालक और प्रतिपालक राम बनकर, कभी प्रेमी और अनतापी दुष्यंत बनकर, कभी सत्यवादी और 'नरो वा कुंजरोवादी युधिष्ठिर का क्षुब्ध और शांत रूप धरकर, कभी कृष्ण की भूमिका धारण कर युद्ध की ललकार और नियत मृत्यु के सहज स्वीकार की विरोधी मुद्राओं की ठीक–ठीक उतारकर, कभी भद्दिनी की चंद्रिका, तो कभी न्यूनिया की दीपशिखा की अंतिम भभक बनकर भाँति–भाँति के बानकों के माध्यमों से कुछ ऐसा खिलवाड़ करता है, जिसे न मेरा शरीर झेल पाता है, न मेरा स्थूल परिवेश।"[29]

सूक्तिपरक वाक्य :

पंडित जी बौद्धिक चिंतन और वैचारिक चेतना के साहित्यकार हैं। यही वजह है कि उन्होंने अपने निबंधों में स्वयं के अनुभवों के निचोड़, नीति और सिद्धांत के कथनों से भरे वाक्यों को पर्याप्त मात्रा में समायोजित किया है। वे कहीं तो ऐसे सूत्रात्मक वाक्यों की सृष्टि करते हैं, जिनकी व्याख्या बहुत देर तक की जा सकती है, कहीं व्याख्यात्मक शैली में पहले एक सूत्रात्मक वाक्य दे देते हैं और बाद में उसकी व्याख्या भी करते हैं। इसी प्रकार के वाक्यों से लगता है कि पंडित जी ने अपने सिद्धांतों और मान्यताओं के निष्कर्ष भी दिए हैं। उदाहरण –

(1) "आधुनिकता मैं एक निरंतर सजगता मानता हूँ, एक शाश्वत विद्वता मानता हूँ।"[30]

(2) "असंभव ही रचनाकार की वास्तविक चुनौती है।"[31]

(3) "परंपरा का अर्थ, पर के भी जो परे हो, श्रेष्ठ से भी जो श्रेष्ठतर हो, जो कभी न भूत हो न भविष्यत, जो सतत वर्तमान हो, जो कभी सिद्ध न हो, निरंतर साध्य हो।"[32]

(4) "आदमी जब दूसरे आदमी को ढकेलकर आगे बढ़ता है, तो वह जितना बढ़ता है, उससे कहीं ज़्यादा पीछे ढकेल दिए जाने का खतरा मोल लेता है।"[33]

(5) "युग काल का बोधक नहीं वृत्ति का बोधक है।"[34]

परिसंवादात्मक वाक्य :

जब लेखक दो पात्रों के मध्य चलने वाले संवाद को प्रस्तुत करता है, तब नाटकीय शैली का प्रयोग करते समय वह इस प्रकार के परिसंवादात्मक वाक्यों का सृजन करता है। पंडित जी के निबंधों में इस प्रकार के वार्तालाप की पद्धति पर आधारित वाक्य पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, जिनमें यत्र–तत्र ऐसा प्रतीत होता है कि कोई पात्र किसी दूसरे पात्र को संबोधित कर रहा है। कुछ जगहों पर कथाकार की भाँति निबंधकार भी पात्र का संकेत करता है। उदाहरण के लिए :

"पर्वतराज तुम्हारी बाँह तो बड़ी लंबी है ही, तुम्हारा मुँह भी बहुत बड़ा है, नहीं तो तुम मेरी सुकुमारी बच्ची की सुध भूलकर बड़बोले देवताओं के फेर में क्यों पड़ते? उस घरफोरन नाशपिटे नारद ने मेरे घरभर की मति हर ली है।

धिक् धिक् तुमने अपने दामाद को साँप लपेटे देखकर अपरूप समझ लिया, तुमने उनकी गोरी–कांति नहीं देखी? उनके गले विष की घूंट देखकर डर गई, पर उनके भाल में लिखी अमृतवर्षरिणी चंद्रकला पर तुम्हारी दीठि नहीं जा सकी? धन्य है रानी मेरा भाग्य कि तुम बेटा जनमाकर नहीं तरी, बेटी जनमाकर तर गयी। तुम्हारी बेटी जगजननी हो गई और उसका सोहाग सोहागिनी के लिए अर्चना का विषय बन गया, इसे अब तुम नहीं समझ पा रही हो।

छमा करो नगाधिराज मैं अज्ञ हूँ, पर क्या मुझे अपने दामाद के साथ दो बात करने की मुहलत न दोगे?"[35]

विविध प्रकार के विशिष्ट वाक्य :

इसके अलावा उक्त कई प्रकार के वाक्य पंडित जी के निबंधों में देखने को मिलते हैं। कहीं शब्द, कहीं अव्यय–आवृत्ति, कहीं उद्धरण चिह्नों के प्रयोग, कहीं व्याख्या, कहीं भावात्मक, तो कहीं प्रश्नात्मक मुद्रा वाले वाक्यों के प्रयोग के द्वारा बल देने की बात की जाती है। यही नहीं वाक्यों के तेवर का वैशिष्ट्य भी देखते बनता है – "श्रीकृष्ण का जो हो उसे मुक्ता से, मुक्ति की कामना से क्या लेना–देना, मुक्ति भी कोई मूल्य है, इस मूल्य–भंजक मूल्य के आगे? प्रिया, प्रियतम के बीच यह हार क्यों आए, यह प्रभुता का पद क्यों आए, यह मर्यादा का कवच क्यों आए, यह अंतरंगता का संकोच क्यों आए?"[36]

पंडित जी की भाषा–संरचना का एक दूसरा वैशिष्ट्य यह है कि वे शब्दों के द्वारा वर्ण्य विषय का समूचा चित्र उरेह देते हैं। यथा – "देहात में है झिनकू साहू की फूलती–फलती हुई

बिरादरी, जिनकी बाँस की पेटी तक मोटे–मोटे भुजायठों से, हसुलियों से और कंठहारों से लेकर हलकी नकबेसर, लौंग, कनफूल, बेंदी और झूमक से ठसाठर भर गई है।"

यही नहीं पंडित जी की भाषा के गठन में विनोद का सहज पुट भी सर्वत्र पाया जाता है, जिसमें युगीन संजीदगी से परिपूर्ण लोकजीवन की प्रेरणा भी मिलती रहती है। उदाहरण के लिए – "अब जब सास परोसने आई, तो जल्दी–जल्दी में उन्हीं का शृंगार उल्टा–पुल्टा हो गया, आँख का काजल माथे लगा, माथे का टीका गले में आया, पैर का गहना हाथ में, हाथ का कंगन कानों में पहना गया, देखकर वर पक्ष के समधी ब्रह्मा भी अपनी सहज गंभीरता छोड़कर मुक्त भाव से हँस पड़े।"[37]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंडित जी के निबंधों की भाषा उनकी निजी है। एक तरफ़ उसमें सहज ही ऋग्वेद की अंतःप्रेरणा का प्रभाव है, तो दूसरी ओर कालिदास की कल्पना प्रवण लालित्य योजना है। एक तरफ़ बाण भट्ट की वाक्य संरचना है, तो दूसरी तरफ़ तुलसी की आंचलिकता से भरे–पूरे शब्दों का कसाव। एक तरफ़ सुमित्रानंदन पंत की कोमलकांतता है, तो दूसरी तरफ़ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का सांस्कृतिक बोध। लेकिन पंडित जी का यह प्रातिभ चमत्कार कुछ अलग ही है, जो उनकी भाषिक बनावट में प्रभावान्विति और परिवेश–सजगता का अनोखा सामंजस्य बनाए रहता है। सच कहा जाए, तो पंडित जी की भाषा उनके सामाजिक परिवेश के फैलाव का दर्पण है, जिसके अंतर्गत पंडित जी का गहन अनुभव है, जिसमें मात्र विचार ही नहीं आचरण पर भी पर्याप्त ज़ोर है और जीवन के आस्वाद में भरोसे की अभिव्यक्ति की गई है।

संदर्भ :

1. विंसेंट और बुक्स, लिटरेरी क्रिटिसिज्मः अ शार्ट हिस्ट्री, पृ. सं. 643
2. पं. विद्यानिवास मिश्र, रीतिविज्ञानः सर्जनात्मक समीक्षा का नया आयाम, पृ. सं. 14
3. पं. विद्यानिवास मिश्र, संचारिणी, पृ. सं. 84
4. वही, पृ.सं. 68.
5. पं. विद्यानिवास मिश्र, अस्मिता के लिए, पृ. सं. 85
6. डॉ. हरेदव बाहरी, ग्रामीण हिंदी बोलियाँ, पृ. सं. 10
7. पं. विद्यानिवास मिश्र, निज मुख मुकुर, पृ. सं. 63
8. वही, पृ. सं. 62
9. वही, पृ. सं. 64
10. पं. विद्यानिवास मिश्र, कटीले तारों के आर–पार, पृ. सं. 42
11. पं. विद्यानिवास मिश्र, तुम चंदन हम पानी, पृ. सं. 121
12. वही, पृ. सं. 88
13. पं. विद्यानिवास मिश्र, बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, पृ. सं. 130
14. पं. विद्यानिवास मिश्र, तुम चंदन हम पानी, पृ. सं. 120
15. पं. विद्यानिवास मिश्र, बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, पृ. सं. 139
16. वही, पृ. सं. 134
17. पं. विद्यानिवास मिश्र, कटीले तारों के आर–पार, पृ. सं. 90
18. वही, पृ. सं. 118
19. वही, पृ. सं. 11
20. वही, पृ. सं. 112
21. पं. विद्यानिवास मिश्र, कटीले तारों के आर–पार, पृ. सं. 98
22. पं. विद्यानिवास मिश्र, तुम चंदन हम पानी, पृ. सं. 03
23. वही, पृ. सं. 08
24. पं. विद्यानिवास मिश्र, संचारिणी, पृ. सं. 48
25. पं. विद्यानिवास मिश्र, परंपरा बंधन नहीं, पृ. सं. 43
26. पं. विद्यानिवास मिश्र, कटीले तारों के आर–पार, पृ. सं. 41
27. पं. विद्यानिवास मिश्र, बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, पृ. सं. 107
28. वही, पृ. सं. 102
29. पं. विद्यानिवास मिश्र, कटीले तारों के आर–पार, पृ. सं. 79
30. पं. विद्यानिवास मिश्र, संचारिणी, पृ. सं. 12
31. वही, पृ. सं. 12
32. पं. विद्यानिवास मिश्र, परंपरा बंधन नहीं, पृ. सं. 12
33. वही, पृ. सं. 82
34. वही, पृ. सं. 50
35. पं. विद्यानिवास मिश्र, तुम चंदन हम पानी, पृ. सं. 47
36. सूर की भाव भाषा, नवनीत पत्रिका, जुलाई 82, पृ. सं. 41
37. पं. विद्यानिवास मिश्र, तुम चंदन हम पानी, पृ. सं. 47

drskt74@gmail.com

महात्मा गांधी और मॉरीशस : एक अटूट संबंध

–डॉ. नूतन पाण्डेय
नई दिल्ली, भारत

महात्मा गांधी का उद्‌भव बीसवीं शताब्दी के विश्व–इतिहास की महत्त्वपूर्ण युगांतकारी घटनाओं में से है। महात्मा गांधी का राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में पदार्पण अद्‌भुत घटना है। सन् 1869 में भारत के गुजरात राज्य के पोरबंदर शहर में मोहनदास करमचंद गांधी के रूप में एक ऐसे महान व्यक्तित्व का जन्म हुआ, जो कई सन्दर्भों में चमत्कारिक कहा जा सकता है। सम्पूर्ण विश्व में महात्मा नाम से पुकारे जाने वाले मोहनदास गांधी का नाम आते ही हमारी आँखों के सामने एक ऐसा विराट चरित्र प्रत्यक्ष हो जाता है, जिसके समकक्ष विश्व के महान व्यक्तित्व बौने प्रतीत होते हैं। गांधी जी 'न भूतो न भविष्यति' की सूक्ति को चरितार्थ करते हुए अपने महान चरित्र और बहुमुखी व्यक्तित्व का ऐसा भव्य आवरण प्रस्तुत करते हैं, जिसके सम्मुख सहजता से खड़े होने की सामर्थ्य किसी में नहीं। गांधी जी का जीवन, सिद्धांत और अनुपालन का वह अद्‌भुत सम्मिश्रण है, जिसमें अनुप्रयोग पहले आता है, सिद्धांत बाद में। गांधी जी के अतिरिक्त ऐसा कौन हो सकता है, जिसमें यह कहने का साहस हो कि वह बदलाव, जो तुम दुनिया में देखना चाहते हो, पहले खुद में लेकर आओ। इतिहास साक्षी है कि इस मंत्र का जीवन भर संयमित रूप से पालन करते हुए गांधी ने अपने संपूर्ण जीवन में कोई ऐसा वक्तव्य या आश्वासन नहीं दिया, जिसकी वे दूसरों से तो अपेक्षा करते हों, लेकिन उसे पूरा करने का उनमें साहस न हो। गांधी जी वस्तुतः एक उपदेशक न होकर सच्चे मानवतावादी चिंतक थे। उन्होंने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, वे कोरे सैद्धांतिक न होकर, उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित थे और इसीलिए उनके विचार सरल और बोधगम्य प्रतीत होते हुए भी उन्हें समझना आसान नहीं।

समाजशास्त्रियों, शिक्षाविदों, राजनीतिज्ञों और विभिन्न विचारकों द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में गांधीवाद या गांधीवादी दर्शन की उपयोगिता पर चर्चा की जाती है। एक सिद्धांत के रूप में गांधीवाद के प्रति अस्वीकार्यता की प्रवृत्ति भी बहुत से विद्वानों में देखने को मिलती है। इस अस्वीकरण के पीछे इन विद्वानों की एकमात्र धारणा या तर्क यही हो सकता है कि गांधी दर्शन मूलतः सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और समस्त मानव–कल्याण की भावना आदि जिन सिद्धांतों पर आधारित है, वे मौलिक और नवीन नहीं हैं, बल्कि प्राचीन भारतीय संस्कृति में निहित वे शाश्वत मूल्य हैं, जो समस्त मानवता के लिए हर युग में प्रासंगिक और कल्याणकारी हैं। यहाँ तक कि गांधी जी ने यह बात स्वयं भी स्वीकार की है कि 'उन्होंने किसी नवीन विचारधारा या जीवन–दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया।'[1] इन सबके बावजूद यह भी सर्वस्वीकार्य है कि 'गांधी दर्शन भारत की उस आचार–परक आध्यात्मिक जीवन दृष्टि तथा सांस्कृतिक परंपरा का आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्धित तथा संशोधित संस्करण है, जो शताब्दियों से सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्म संयम आदि नैतिक मूल्यों को भौतिक जीवनमानों की अपेक्षा अधिक काम्य और वरेण्य मानती आई है।'[2]

गांधी जी ने मानव हित के लिए जिन सिद्धांतों पर बल दिया और उन्हें व्यापकता तथा सार्वभौमिकता प्रदान की, उनकी खूबसूरती उनकी व्यावहारिकता में निहित है। गांधी जी ने सर्वदा 'ईश्वर सत्य है' के स्थान पर 'सत्य ही ईश्वर है' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इसके पीछे उनकी यह भावना थी कि ईश्वर को सत्य मानने से हमारे पास करने को कुछ नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत यदि हम सत्य को ईश्वर मानते हैं, तो हम सत्य के मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सत्यमय बना सकते हैं। वे स्पष्ट शब्दों में उद्‌घोषणा करते हैं कि ''लाखों–करोड़ों गूँगों के हृदयों में जो ईश्वर विराजमान है, मैं उसके सिवा अन्य किसी ईश्वर को नहीं मानता। मैं इन लाखों–करोड़ों की सेवा द्वारा उस

ईश्वर की पूजा करता हूँ, जो सत्य है अथवा उस सत्य का जो ईश्वर है। मैं व्यक्तिगत रूप में भगवान को नहीं मानता, मेरे लिए सत्य ही ईश्वर है।"[3] अहिंसा, धर्म, भाषा, नैतिक–विकास, मानव समानता, सदाचारमय जीवन आदि अनगिनत मुद्दों पर विश्व के समक्ष गांधी जी ने जो सोच दी, वह समय और स्थान की सीमा से परे, सार्वदेशिक और सर्वकालिक है और इसीलिए गांधी जी के विचार समस्त मानवता के लिए आज भी उतने ही मूल्यवान और प्रासंगिक हैं, जितने वे अपने प्रवर्तन काल में थे।

गांधी जी ने भारत को ब्रिटिश सत्ता से आज़ादी दिलाने के लिए सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के जिन अनूठे शस्त्रों का प्रयोग किया, वे विश्व इतिहास में अभूतपूर्व थे। ये वे ब्रह्मास्त्र थे, जिन्होंने अपनी शक्ति और सामर्थ्य से समस्त विश्व को स्तंभित कर दिया। दीन–दलित, शोषित–उत्पीड़ित के हित संधान के लिए अपनी आवाज़ उठाने वाले गांधी जी की यह अतुलनीय और असाधारण विचारधारा का ही परिणाम था कि उनके सिद्धांतों से प्रभावित होकर दलाई लामा, नेल्सन मंडेला, बराक ओबामा, मदर टेरेसा और जूनियर मार्टिन लूथर किंग जैसे न जाने कितने वैश्विक नेताओं ने उनकी विचारधारा से प्रेरणा ग्रहण की और उसके अनुसार अपनी सोच में आमूलचूल परिवर्तन किया। प्रख्यात वैज्ञानिक आइंस्टाइन तो महात्मा गांधी से प्रभावित होकर यहाँ तक कह देते हैं कि "...आने वाली पीढ़ियाँ मुश्किल से ही विश्वास कर पाएँगी कि गांधी जैसा हाड़–मांस का पुतला कभी इस भूमि पर पैदा हुआ होगा। वह इंसानों में एक चमत्कार था।" डॉ. फ्रांसिस नील्सन के गांधी जी के संबंध में विचार भी इसी से मिलते जुलते हैं : "गांधी जी कर्म में डायोजीनियस, विनम्रता में सैंट फ्रांसिस और बुद्धिमानी में सुकरात थे, इन्हीं गुणों के बल पर गांधी जी ने दुनिया के सामने उजागर कर दिया कि अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए ताकत का सहारा लेने वाले राजनेताओं के तरीके कितने क्षुद्र हैं, इस प्रतियोगिता में, राज्य की शक्तियों के भौतिक विरोध की तुलना में, आध्यात्मिक सत्यनिष्ठा विजयी होती है।" उनके चमत्कृत व्यक्तित्व के प्रभाव से वशीभूत होकर डॉ. जे.एच. होम्स यह कहने में संकोच नहीं करते कि "गांधी जी गौतम बुद्ध के बाद महानतम भारतीय थे और ईसा मसीह के बाद महानतम व्यक्ति थे।"

गांधी जी की गणना उन इने–गिने महापुरुषों में होती है, जिन्होंने न केवल भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को गति और दिशा दी बल्कि यूरोप, मध्यपूर्व, एशिया और लैटिन अमेरिका आदि देशों में चल रहे सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों को भी प्रभावित किया। उन्होंने देश की परिधि को लांघकर समस्त विश्व के उपेक्षित, पीड़ित, वंचितों के लिए अपनी वाणी को मुखर किया। इन्हीं वैयक्तिक खूबियों, चरित्र की अटूट शक्ति, उद्देश्य की पवित्रता और निःस्वार्थ मानव सेवा की भावना के कारण गांधी जी के वैचारिक प्रभाव ने देश–काल की सीमाओं को लांघकर विश्वव्यापी स्वरूप ग्रहण कर लिया। निःसंदिग्ध रूप से गांधी जी अपने समय के सर्वाधिक प्रभावशाली, चर्चित और लोकप्रिय व्यक्ति माने जाते हैं। बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक तक झुग्गी–झोपड़ी से लेकर संसद तक कोई ऐसा स्थान नहीं रहा, जहाँ गांधी जी के नाम की गूँज न हो। पीड़ित, उपेक्षित और दलित व्यक्ति जहाँ गांधी जी को अपने मसीहा के रूप में देखते थे, वहीं चिन्तक और विचारक उनके सिद्धांतों का अनुसरण करके महत्त्वपूर्ण नीतियाँ निर्धारित करते थे। समस्त मानवीय चेतना पर गांधी जी के इस व्यापक प्रभाव का एक बहुत बड़ा कारण गांधी जी के सिद्धांतों का सहज और सरल होना है। उनका दर्शन एक ओर जहाँ लघुमानव के हित में सन्नद्ध दिखता है, पंक्ति में सबसे पीछे खड़े व्यक्ति के उद्धार के लिए निरंतर चिंता करता है, वहीं दूसरी ओर वह हाशिए पर खड़े मनुष्य को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने की ईमानदार कोशिश भी करता है।

बैरिस्टर के रूप में अपने जीवन का आरंभ करने वाले मोहन दास के जीवन की परिवर्तनकारी घटना दक्षिण अफ्रीका में उनका प्रवास माना जाता है। प्रिटोरिया के रेलवे स्टेशन पर गांधी जी के प्रति हुआ दुर्व्यवहार इतिहास के पन्नों में काले अक्षरों में दर्ज है। इस बात की चर्चा समय–समय पर गांधी जी ने अपने आलेखों में भी की है कि दक्षिण भारत में अश्वेतों के प्रति किए जा रहे दुर्व्यवहार ने उनकी मानसिक विचारधारा और दर्शन को नया स्वरूप प्रदान किया। उनका मानना था कि "मैं गया तो वहाँ पैसा कमाने था, लेकिन वहाँ जाकर मेरे जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया।"

दक्षिण अफ्रीका और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए किए गए उनके अप्रतिम संघर्ष के साथ–साथ ऐसे अनगिनत व्यक्ति और देश हैं, जिनके स्वर्णिम भविष्य के निर्माण में गांधी जी का

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान रहा है। मॉरीशस ऐसा ही एक देश है, जिसके इतिहास में गांधी जी का आगमन एक परिवर्तनकारी घटना के रूप में देखा जाता है। मॉरीशस में गांधी जी के क्षणिक प्रवास ने मॉरीशसवासियों के हृदय में न केवल अन्याय, अपमान और शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए चिंगारी का काम किया, बल्कि दबे, कुचले, शोषित, पीड़ित लोगों को आत्मसम्मान और आत्म गौरव के साथ जीवन जीने की दिशा भी निर्धारित की। इस शोध आलेख में महान चिन्तक, विचारक और विश्व–पथप्रदर्शक गांधी जी के करिश्माई व्यक्तित्व और विचारधारा का मॉरीशस और मॉरीशस वासियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका विशद विश्लेषण किया गया है। शोध आलेख में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि गांधी जी के संक्षिप्त प्रवास का द्वीप के राजनैतिक, सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक मनोधारा पर किस तरह के सकारात्मक और दीर्घकालिक परिणाम देखने को मिले।

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है कि दक्षिण अफ्रीका के अपने दीर्घ प्रवास में गांधी जी ने अनुभव किया कि वहाँ रहने वाले भारतीयों और अश्वेतों के प्रति सरकार का व्यवहार अत्यंत निंदनीय था। रंगभेद के चलते इन लोगों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता था, यहाँ तक कि उन्हें मताधिकार भी प्राप्त नहीं था। यह सब देखकर गांधी जी ने उपेक्षितों को उनके अपेक्षित अधिकार दिलाने के लिए संगठित और एकजुट किया और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए देश में नताल इण्डियन कांग्रेस की स्थापना की। इक्कीस वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में रहने के बाद वे भारत आकर अपने देश की आज़ादी के लिए कृत संकल्पित हो गए और अंतिम साँस रहने तक इस देश की निःस्वार्थ सेवा करते रहे। दक्षिण अफ्रीका प्रवास ने गांधी जी के व्यक्तित्व को एक नया रूप दिया, वे एक बैरिस्टर के रूप में वहाँ गए थे, लेकिन वे दलितों और शोषितों के मसीहा और उनके हितैषी के रूप में वापिस लौटे। सच कहा जाए, तो यह इंग्लैंड से बैरिस्टर बनकर लौटे मोहनदास का उस महात्मा की काया में प्रवेश था, जिसने गांधी जी के नेतृत्व में चलाए जा रहे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के माध्यम से समस्त मुक्ति आंदोलनों को एक नई राह दिग्दर्शित की। हिंदी के वरिष्ठ लेखक श्री गिरिराज किशोर ने अपने बहुचर्चित उपन्यास पहला गिरमिटिया में गांधी जी को पहला गिरमिटिया कहकर उनके व्यक्तित्व के इसी पहलू को छुआ है।

इतिहास विदित है कि महात्मा गांधी जी के योगदान को दक्षिण अफ्रीका और भारत के संदर्भ में विशेष रूप से स्मरण किया जाता है। इस विषय में अनेक पुस्तकें और कॉलम भी लिखे गए हैं, लेकिन मॉरीशस में गांधी जी के प्रवास और तदुपरांत इस देश में रहने वाले भारतीय मूल के लोगों की विचारधारा में आए परिवर्तन और प्रभाव पर इतिहास अधिक रोशनी नहीं डालता। किन्तु यह सत्य है कि मॉरीशस के लोग और यहाँ का कण–कण महात्मा गांधी के प्रति कृतज्ञ है। यहाँ की सड़कें, यहाँ के अस्पताल, शिक्षा संस्थान, यहाँ के हॉल, यहाँ के वृद्धाश्रम और सबसे बढ़कर यहाँ के साहित्य के पन्ने इस बात की गवाही देते हैं कि इस देश के लोगों में महात्मा गांधी के प्रति अगाध सम्मान और कृतज्ञता की जो धारा प्रवाहित हो रही है, समय के प्रवाह से भी न तो उसकी गति कभी मंद पड़ेगी और न ही कभी क्षीण ही होगी।

मॉरीशस बहुसंस्कृति, बहुभाषा और बहुजातीय देश है। मॉरीशस की आधी से अधिक जनसंख्या भारतवंशियों की है, जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, तमिल, तेलुगू, मराठी, गुजराती और सिक्ख सम्मिलित हैं। लगभग दो शताब्दी पूर्व दास प्रथा की समाप्ति के पश्चात् भारत के पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से बड़ी संख्या में भारतीय मज़दूर गन्ने की खेती के लिए 'एग्रीमेंट' अर्थात् शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत यहाँ लाए गए थे। 'एग्रीमेंट' शब्द बिगड़ते–बिगड़ते 'गिरमिटिया' बन गया और इन मज़दूरों को गिरमिटिया मज़दूर कहा जाने लगा। कहने को तो गिरमिटिया व्यवस्था दास प्रथा के उन्मूलन के परिणामस्वरूप सामने आई थी, लेकिन वास्तव में यह दास प्रथा का ही नवीन रूप थी, जहाँ गिरमिटिया मज़दूरों की दशा दासों से भी अधिक शोचनीय थी। अधिकांश मज़दूर अशिक्षित थे और वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी नहीं थे। जब महात्मा गांधी का इस देश में आगमन हुआ, उस समय यहाँ के भारतीय अत्यंत दयनीय जीवन जी रहे थे। गांधी जी ने उसी समय मन ही मन भारतीयों की दशा सुधारने का दृढ़ संकल्प कर लिया। महात्मा गांधी की मॉरीशस यात्रा के सन्दर्भ में यह बताना उल्लेखनीय है कि यह यात्रा कतई पूर्व नियोजित नहीं थी। डरबन से मुंबई जाते समय 29 अक्टूबर सन् 1901 में उनका जहाज़ नौशेरा कुछ समय के लिए मॉरीशस

रुकता है और लगभग तीन सप्ताह तक गांधी जी इस देश में प्रवास करते हैं। (आगमन/प्रस्थान की तिथियों तथा प्रवास समय की अवधि के विषय में इतिहासकारों में मत वैभिन्य हो सकता है) जब गांधीजी मॉरीशस पहुँचते हैं, तो प्राप्त आंकड़ों के आधार पर उस समय द्वीप की जनसंख्या लगभग तीन लाख पचहत्तर हज़ार थी, जिसमें से ढाई लाख के करीब भारतीय मूल के लोग थे। जब गांधी जी मॉरीशस उतरे उस समय उनकी आयु मात्र 32 वर्ष की थी और उस समय गांधी जी विश्व इतिहास में अपनी पहचान बनाने की प्रक्रिया में थे, ऐसा कहा जा सकता है। हाँ, भारतीय मीडिया में वे सर्वाधिक पसंदीदा व्यक्तित्व बनते जा रहे थे। ऐसे महान व्यक्तित्व का मॉरीशस में आगमन अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, विशेषकर वहाँ रह रहे भारतीय मज़दूरों के लिए। इसका प्रमुख कारण यह था कि मॉरीशस वासी महात्मा गांधी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में किए गए असाधारण संघर्ष के बारे में काफ़ी कुछ परिचित हो चुके थे और कहीं न कहीं उनके मन में भी यह भावना पनपने लगी थी कि गांधी जी के माध्यम से उनके उद्धार की संभावना है। गांधी जी ने अपने मॉरीशस प्रवास में विभिन्न स्थलों का यथासंभव भ्रमण किया, वहाँ के प्रतिष्ठित लोगों से मुलाकातें कीं और इस दौरान कुछ सभाओं को संबोधित भी किया। यथासंभव शब्द का उल्लेख इसलिए किया गया है कि जब गांधी जी मॉरीशस पहुँचे, उससे कुछ समय पूर्व ही द्वीप में 'ला पेस्त' नामक महामारी फैली थी और काफ़ी बड़ी संख्या में लोग इस मृत्यु का शिकार होकर काल के ग्रास में बन गए थे, जिस कारण गांधी जी को देश भ्रमण का अधिक अवसर नहीं मिल सका था। गांधी जी के सम्मान में पोर्ट लुई स्थित ताहेर बाग में एक सभा आयोजित की गई, जिसमें मॉरीशस देश के प्रमुख भारतीय प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था और देश की राजनैतिक संस्थाओं में भारतीयों के अपर्याप्त प्रतिनिधित्व क्षमता पर चिंता दिखाई, उस पर महात्मा गांधी ने कहा कि "जनतंत्र का फल उनको ही मिलेगा जो उसकी कीमत चुकाएँगे और इसका अर्थ है अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए उन्हें कठिन संघर्ष करना है।"[4] इस सभा में मॉरीशस के भारतीयों को संबोधित करते हुए गांधी जी ने कहा था कि "आप अपने बच्चों को शिक्षित करें, अपने अधिकारों की रक्षा के लिए देश की राजनीति में सक्रिय रहें और भारत में होने वाली गतिविधियों से स्वयं को जोड़े रखें।" गांधी जी के ये तीन मूल मंत्र थे, जिन्होंने निराशा के अंधकार में डूबे हुए भारतवंशियों को शिक्षा के प्रकाश द्वारा उज्ज्वल भविष्य की राह दिखाई। गांधी जी के इस संदेश में निहित उनके जीवन दर्शन को उसकी समग्रता में देखा जा सकता है, क्योंकि शिक्षा के संबंध में प्रारंभ से ही यह कहते आ रहे थे कि "शिक्षा में वह समस्त शिक्षण–प्रशिक्षण समाहित है, जो मानव जाति की सेवा के लिए उपयोगी है और विमुक्ति का अर्थ है वर्तमान जीवन की समस्त पराधीनताओं से मुक्ति।"[5] वहीं राजनीति के संबंध में उनके विचार थे कि "जनता के लिए राजनीति एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा वह जीवन के प्रत्येक भाग में अपनी दशा सुधार सके। राजनैतिक शक्ति का अर्थ राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन विनियमित करने की क्षमता से है।"[6]

अपनी इसी विचारधारा से अनुसंचरित होकर गांधी जी ने शिक्षा और राजनीति के विषय में मॉरीशसवासियों को जो सुझाव दिए, उसने निराशा में डूबे लोगों के लिए संजीवनी का कार्य किया। यह गांधी जी की प्रेरणा और मॉरीशसवासियों के ईमानदार प्रयत्नों का ही परिणाम है कि गांधी जी द्वारा इस मिट्टी में वपित बीज आज एक विशाल वटवृक्ष बनकर पुष्पित और पल्लवित हो रहा है। मॉरीशस वासी गांधी जी के इन प्रेरक वचनों के लिए अवसर मिलने पर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना सौभाग्य समझते हैं। अभी हाल ही में मॉरीशस के प्रख्यात साहित्यकार रामदेव धुरंधर ने फ़ेसबुक के माध्यम से गांधी जी की 151वीं जयंती पर उनके प्रति अपने श्रद्धासुमन इन शब्दों में व्यक्त किए हैं – "गांधी जी ने तब मॉरीशस को देखने पर तीन मंत्रों को मानो एक धागे में गूंथकर माला के रूप में हमें थमाया था। गांधी जी आज मुझे बहुत याद आ रहे हैं। याद का यह मेरा सिला बना रहे, विशेषकर लेखन में, गायक तो मैं इसी का हूँ और मैं स्वयं अपने लेखन की तकदीर का निर्धारण करता हूँ, यह छोड़ मेरी न कहीं ज़मीं है और न आसमां।"[7] मॉरीशस के विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी कविताओं, कहानियों, लेखों, संस्मरणों आदि में गांधी जी के प्रभाव, उनके प्रति अपनी एकात्मकता और आत्मिक संबंधों को व्यक्त किया है। जयनारायण राय जी गांधी जी के आगमन की घटना को कुछ इस तरह लिखते हैं – "युवक गांधी के मॉरीशस आने पर तो हम इसलिए अनुप्राणित हुए थे कि अफ्रीका में अपने अद्वितीय संघर्ष से जो नाम उन्होंने

कमाया था, उसने हमें सोने से जगा दिया और दूसरे, अफ़्रीका में उन्होंने आप्रवासी भारतीयों की समस्या को उठाया था।"[8] इसी प्रकार देवलाल ठाकुर भी "गांधी जी के इन सूत्रों को अमृत की बूँद सदृश मानते हैं, जिन्होंने मृतप्राय मॉरीशस वासियों को नया जीवन प्रदान किया।"[9]

यह गांधी जी का भारतीय मज़दूरों के प्रति प्रेम और उनकी चिंता ही कही जा सकती है कि वे मॉरीशस से भारत पहुँचकर भी इस विषय पर चिंतित रहे और उन्होंने भारतीय नेताओं से इस बारे में पर्याप्त चर्चा भी की और पार्लियामेंट में भी कई बार यह प्रश्न उठाया। दस्तावेज़ बताते हैं कि महात्मा गांधी ने सन् 1896 से लेकर 1914 तक के अपने प्रकाशित लेखों में अनेकों बार मॉरीशस का उल्लेख किया था। मॉरीशस से वापिस लौटने के एक महीने पश्चात् ही गांधी जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सत्रहवें अधिवेशन में दिए गए अपने भाषण में फ़िजी तथा दक्षिण अफ़्रीका के साथ–साथ मॉरीशस का भी उल्लेख करते हुए भारतीय मज़दूरों के इन देशों में दिए जा रहे श्रम योगदान की चर्चा की थी। सन् 1947 में भारत में भड़के हिन्दू–मुस्लिम दंगों से दु:खी होकर गांधी जी ने मॉरीशस की इस बात के लिए प्रशंसा की थी कि वहाँ हिन्दू–मुस्लिम आपस में भाईचारा बनाकर सौहार्द से रहते हैं, जिसके लिए प्रोफ़ेसर वासुदेव विष्णुदयाल ने गांधी जी का आभार व्यक्त करते हुए कहा था कि गांधी जी ने भारतीयों से मॉरीशस जैसे छोटे से द्वीप से शिक्षा लेने की बात कही।

भारत पहुँचने के कुछ वर्षों बाद ही गांधी जी ने अपने मित्र मणिलाल डॉक्टर, जो गुजराती थे और व्यवसाय से वकील थे, मॉरीशस के भारतीय मज़दूरों की सहायता करने के लिए मॉरीशस भेजा। मॉरीशस जाकर मणिलाल डॉक्टर ने मॉरीशस के मज़दूरों के पक्ष में मुक़दमे लड़ने शुरू किए और उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया। गांधी जी का मानना था कि कोई भी लड़ाई जिसका आधार आत्मबल हो, अखबार की सहायता के बिना नहीं चलाया जा सकता और इसीलिए महात्मा गांधी की प्रेरणास्वरूप ही मणिलाल डॉक्टर ने 'हिन्दुस्तानी' नामक मॉरीशस के प्रथम पत्र का प्रकाशन सन् 1909 में प्रारंभ किया। यह पत्र हिंदी, गुजराती और अंग्रेज़ी में छपता था, लेकिन बाद में यह सिर्फ़ हिंदी और अंग्रेज़ी में ही प्रकाशित होने लगा था। पत्र का ध्येय वाक्य था – 'व्यक्ति स्वातंत्र्य, मानव बंधुत्व तथा प्रजातिगत समानता'। इन तीन मंत्रों को लेकर यह पत्र इस उद्देश्य के साथ आगे बढ़ा था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार कुछ भी करने का अधिकार है, बशर्ते उससे किसी की आज़ादी बाधित न हो। इस पत्र के माध्यम से द्वीप को नई वाणी मिली और अन्याय के विरुद्ध अभिव्यक्ति का नवीन मार्ग प्रशस्त हुआ। पत्र मॉरीशस वासियों में सामाजिक, राजनैतिक और भाषिक चेतना जागृत करके उन्हें अपनी संस्कृति, आत्मसम्मान, स्वाभिमान और अस्मिता बोध के प्रति जागरूक करने में सहायक बना। मॉरीशस के प्रसिद्ध कवि पूजानंद नेमा मानते हैं कि "भाषा, समाज, धर्म और संस्कृति पर प्रकाश डालकर इस पत्र ने कुलियों को आत्म गौरव प्रदान किया।"[10]

गांधी जी मानते थे कि मनुष्य को गुलाम बनाने वाली कई चीज़ों में से एक है भाषा और संस्कृति की गुलामी, जो दूसरी सभी गुलामियों से खतरनाक होती है। इसीलिए उन्होंने भारत में राजनैतिक लड़ाई से पहले भाषाई स्वतंत्रता के लिए संघर्ष प्रारम्भ किया, जिस कारण हिंदी ने स्थानीयता से आगे बढ़कर देश की संपर्क भाषा का रूप ले लिया और इसी भावना के प्रतिबिंब स्वरूप उन्होंने मॉरीशस में भी गुजराती भाषी और अंग्रेज़ी में धाराप्रवाह दक्षता होने के बावजूद खड़ी बोली हिंदी के माध्यम से अपनी सभाओं को संबोधित किया। जब यहाँ के लोगों ने गांधी जी को हिंदी में वार्तालाप करते देखा, तो उनके हृदय में भी अपनी हिंदी के प्रति गौरव और सम्मान का भाव जागृत हुआ। देखा जाए, तो यहीं से मॉरीशस में हिंदी भाषा के विकास का आरंभ माना जा सकता है। भोजपुरी और कैथी लिपि की जगह हिंदी और देवनागरी का प्रयोग एवं प्रचार–प्रसार में तीव्रता गांधी के आगमन के पश्चात् ही देखने को मिलती है। गांधी जी के प्रयासों से ही भारत की विभिन्न संस्थाओं के प्रचारकों, धर्म गुरुओं, विद्वानों और साहित्यकारों का समय–समय पर मॉरीशस आना–जाना प्रारंभ हुआ, जिससे दोनों देशों के मध्य विचार विनिमय को तीव्रता मिलने लगी। इसके अलावा भारत की स्वतंत्रता आन्दोलन की लड़ाई के समय गांधी जी से संबंधित लेख मॉरीशस मित्र, मॉरीशस आर्य पत्रिका और आर्यवीर आदि पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित होने लगे। मॉरीशस के बहुत से लोगों ने गांधी जी के अनुकरण पर गांधी टोपी और खादी का प्रयोग करना आरंभ कर दिया। गांधी

जी के प्रयत्नों और प्रेरणास्वरूप ही पंडित वासुदेव विष्णुदयाल ने मॉरीशस के भारतीयों को मत देने का अधिकार दिलाने के लिए उन्हें शिक्षित करने का बिगुल फूँक दिया। उन्होंने सन् 1943 में पोर्ट लुई में विशाल यज्ञ का आयोजन किया और उस स्थान का नाम गांधी मैदान रखा गया। इस महायज्ञ में लगभग साठ हज़ार लोगों ने भाग लिया था। इस यज्ञ में पंडित विष्णुदयाल ने गांधी के दर्शन पर आधारित सत्य, अहिंसा और प्रेम का संदेश दिया तथा शिक्षा पर भी ज़ोर दिया। गांधी जी के सिद्धांतों को अपना मूलमंत्र बनाते हुए, उन्होंने देशवासियों में जागृति उत्पन्न की और इस कारण से उन्हें चार बार जेल भी जाना पड़ा, लेकिन वे गांधी–पथ का अनुसरण करने में दिग्भ्रमित नहीं हुए। उनके अनथक प्रयत्नों और उनके द्वारा चलाए गए सिग्नेचर कैम्पेन के फलस्वरूप भारतीय मतदाताओं की संख्या ग्यारह हज़ार से बढ़कर सत्तर हज़ार हो गई और कुल उन्नीस में से ग्यारह सीटों पर भारतीयों का प्रतिनिधित्व हो गया। पंडित विष्णुदयाल के समान ही मॉरीशस के अनेक नेताओं ने गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर मॉरीशस की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न आरंभ कर दिए और उनके सिद्धांतों का अनुकरण कर देश को स्वतंत्रता दिलाई। मॉरीशस के स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्रीय नेताओं पर गांधी जी का चरम प्रभाव इस बात में देखा जा सकता है, जब अंग्रेज़ों ने उनसे मॉरीशस की स्वतंत्रता का दिन चुनने को कहा, तो मॉरीशस के नेताओं ने दांडी मार्च का दिन अर्थात् 12 मार्च अपनी स्वतंत्रता के लिए चुना।

महात्मा गांधी जी की हृदयविदारक हत्या निश्चित ही एक विश्वव्यापी घटना थी, जिसने समस्त विश्व को द्रवित और शोकाकुल कर दिया था। इसी संदर्भ में महात्मा गांधी की मृत्यु ने समस्त मॉरीशस को हिलाकर रख दिया। मॉरीशस के लोग गांधी जी से खुद को इतना जुड़ा हुआ और उनको इतना अपना समझते थे, वे सहज ही इस बात पर विश्वास नहीं कर पाए कि कोई व्यक्ति गांधी जी जैसे सहज, सरल, क्षीणकाय दुर्बल शरीर, लेकिन दृढ़ आत्मा पुरुष की हत्या की कल्पना भी कर सकता है। उनकी मृत्यु के शोक में देश की सारी दुकानें और शक्कर की फ़ैक्टरियाँ बंद कर दी गईं। मंदिर और मस्जिद में शोक सभाएँ आयोजित की जाने लगीं। मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन पर शोक संदेश और गांधी जी के प्रिय भजन प्रसारित किए जाने लगे। देश के विभिन्न नेताओं द्वारा अपनी–अपनी भावनानुसार बिरला हाउस और प्रधानमंत्री निवास पर कुछ अपने शोक संदेश भेजे। ख्यातिलब्ध कवि जयनारायण राय ने इस दुखद समाचार को सुनने के बाद अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था कि "हर शताब्दी में गांधी पैदा नहीं होता। गांधी मर गए किन्तु गांधीवाद निश्चय ही एक बड़ी विश्व शक्ति बनेगा।" देश के महान नेता सर शिवसागर रामगुलाम गांधी जी की हत्या से इतने द्रवित हो गए कि अपने दुख रोक न सके और अपने भावों को उन्होंने इस तरह शब्द दिए – *"यदि हमें उन आदर्शों को पाना है, जिनके लिए गांधी जी जिए, मरे और कष्ट उठाए, तो हम याद रखें कि अहिंसा और सत्य का यह देवदूत हमारे कष्ट के समय हमारा सहारा बना है। ईसा, लेनिन और अब..... गांधी अंधकार के समय वे हमें रास्ता दिखाने वाली मोमबत्ती की तरह थे।"*

गांधी जी की मृत्यु से क्षुब्ध और द्रवित होकर मॉरीशस के साहित्यकारों ने आलेख और कविताओं का सृजन किया। इन कवियों में पंडित वासुदेव विष्णुदयाल, श्रीमती कमला रामा और हज़ारी सिंह आदि कवि प्रमुख हैं। गांधी जी की मृत्यु के पश्चात् कवयित्री कमला रामा ने स्मृति में नमन कविता लिखी जो आर्यवीर और जाग्रति में छपी थी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं :

"पूरा करने को प्रकृति के लक्ष्य को पृथ्वी पर,
वर्ष अठारह सौ उनहत्तर जन्म देता है
पोरबंदर में एक छोटा एकाकी स्थान
जब लाखों रुदन करते हैं गहन वेदना में
उसकी मृत्यु धकेल देती है
विश्व को गहन अन्धकार में,
तभी उभरती है एक मृदुल चिंगारी,
बुद्धिमता का यह प्रकाश शीघ्र ही फैल जाएगा
और वर्षों मानवता को राह दिखाता रहेगा।"[12]

इसके अतिरिक्त फ्रैंक विल्सन ने, जो उस समय मॉरीशस में परामर्शदाता के रूप में नियुक्त थे 'होप एंड डेस्पर' नामक कविता–संग्रह निकाला जिसमें 'गांधी' नामक एक कविता भी थी, जिसकी कुछ पंक्तियों का हिंदी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है :

"मैं रोता नहीं,
तुम्हारा तेज मेरे उभरते हुए आंसुओं को सुखा देता है

और जब भी सामना होता है निराशा का,
उर शरीर की दुर्बलता को चखता हूँ,
तो मैं मानव आत्मा की गहरी गुफ़ा में झाँकता हूँ।
मैं तुम्हें देखता हूँ।"[13]

इसी प्रकार विद्याधर महाजन ने रामचरितमानस के अनुकरण पर 'गांधी चरितमानस' की रचना की, जिसमें गांधी जी के महान व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए उनकी स्तुति स्वरूप कविताएँ की गई हैं।[14]

महात्मा गांधी की स्मृति को नमन करने और उनके प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए यूनेस्को द्वारा उनकी जन्म शताब्दी वर्ष 1968–69 को 'द ईयर ऑफ़ ह्यूमनिज़्म' घोषित किया गया था, जिसके अंतर्गत समस्त विश्व ने अपनी–अपनी तरह से गांधी जी का स्मरण किया और उन्हें अपनी भावांजलियाँ अर्पित की थीं। मॉरीशस में भी वर्ष भर महात्मा गांधी से संबंधित विविध कार्यक्रम आयोजित किए गए। देश की विभिन्न महत्त्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं में उनके जीवन दर्शन और सिद्धांतों से सम्बंधित लेख प्रकाशित किए गए।

विभिन्न अवसरों पर मॉरीशस सरकार द्वारा अनेक डाक टिकट निकाले गए हैं। एक नमूना इस प्रकार है, जो गूगल से लिया गया है :

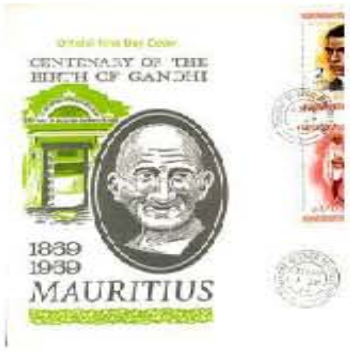

इस अवसर पर स्वामी वेंकटेशानंद द्वारा संकलित लेखों की सीरीज़ – 'The Voice of Truth', डॉ. सोमना की पुस्तक – 'Mahatma Gandhi and other dedicated souls', देवलाल ठाकुर की – 'Mahatma Gandhi in Mauritius' और हिंदी लेखक संघ द्वारा 'गांधी स्मृति' पुस्तक प्रकाशित की गई। आर. के. बुधन द्वारा लिखी गई महात्मा गांधी जी की जीवनी 'The Spiritual Triumph of Gandhi Maharaj' विशेष रूप से उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। आर.के. बुधन, जो एक बैरिस्टर थे, उनकी कई अवसरों पर विभिन्न देशों में गांधी जी से भेंट हुई थी और वे गांधी जी के व्यक्तित्व और विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। गांधी जी की हत्या से दुखी होकर उन्होंने 'The Greatest Historical Tragedy of Modern Times' नामक भावपूर्ण लेख लिखा, जो 'लेब्र दैनिक' में प्रकाशित हुआ था, जिसमें अत्यंत भावविह्वल होकर वे लिखते हैं – "गांधी जी की हत्या एक विश्वव्यापी विपत्ति रही, क्योंकि वे विश्व संपदा थे, ऐसी संपदा जिसकी ज़रूरत एक कलह और द्वेष से भरी और खून की प्यासी दुनिया को आज भी है, क्योंकि इसे मनुष्य की आत्मा को ऊपर उठाना है और जीवन को महान बनाना है। वही हिंसा के द्वारा गांधी जी का चला जाना आधुनिक संसार की सबसे बड़ी त्रासदी है, क्योंकि आत्मपरक और विषयपरक, दोनों ही दृष्टिकोणों से गांधी एक अद्वितीय और विराट व्यक्ति थे, जिनमें अनुपम आध्यात्मिक गुण थे, जो न केवल अपने देश के लिए अलग ही भूमिका अदा करने के लिए जन्मे थे, बल्कि पृथ्वी पर अलौकिक कार्य करने के लिए भी अवतरित हुए थे।"[15]

सन् 1975 में पंडित वासुदेव विष्णुदयाल द्वारा लिखित – 'Mahatma Gandhi : a new Approach', सन् 1980 में के. हज़ारी सिंह द्वारा लिखित – 'Les Pens+es de Gandhi' और 1988 में उत्तम विष्णुदयाल द्वारा लिखित – 'Mahatma Gandhi and other Essays' अन्य उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। सन् 1995 में मॉरीशस के प्रसिद्ध इतिहासकार एवं साहित्यकार प्रह्लाद रामशरण ने गांधी जी के मॉरीशस आगमन के संबंध में शोधपरक विविध तथ्यों को उद्धृत करते हुए 'Mahatma Gandhi and His Impact on Mauritius' नामक पुस्तक लिखी है, जिसका फ्रेंच और हिंदी भाषा में अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुआ है। इस शोध–आलेख में कई उद्धरण और तथ्य प्रह्लाद रामशरण जी की इसी पुस्तक से साभार लिए गए हैं।

मॉरीशस के साहित्य पर गांधी जी का प्रभाव :

गांधी जी अपने विचारों को विभिन्न भाषणों और सभाओं में व्यक्त करने के साथ ही उन्हें अपनी विभिन्न पुस्तकों और लेखों में भी उतारते थे। अपनी सोच और विचारों का एक सिरा जहाँ वे एक ओर सामान्य जन के हाथ में पकड़ाते थे, वहीं दूसरा सिरा वे देश के राजनैतिक प्रहरियों–सा सँभालने की अपेक्षा रखते थे, जिसका परिणाम यह होता था कि व्यक्ति और सत्ता परस्पर अभिन्न होकर राष्ट्र हित में संलग्न हों। उनकी इस सकारात्मक सोच का प्रभाव जहाँ मॉरीशस की राजनीति पर देखा गया, वहीं बुद्धिजीवी साहित्यकारों की कलम और रचनाशीलता भी इससे अछूती न रह सकी। मॉरीशस के जन–जन में गांधी जी एक आदर्श पुरुष के रूप में स्थापित हो चुके थे, जिसका अनुकरण व्यक्तिगत जीवन के साथ–साथ सामजिक उत्थान के लिए नवजागरण का बिगुल बजाने की भी क्षमता रखता था। मॉरीशसीय साहित्यकारों ने स्वतंत्रता के लिए गांधी जी द्वारा किए जा रहे आंदोलन से प्रेरणा लेकर अपनी सृजनात्मकता के माध्यम से लोगों में संघर्ष के प्रति जागृति और चेतना का स्वर प्रस्फुटित किया और समग्र राष्ट्र को एकीकृत किया। गांधी जी के प्रभाव के कारण ही तत्कालीन साहित्यकारों की रचनाओं में भारतीय राष्ट्रीयता का स्वर अत्यंत मुखर दिखाई पड़ता है। इसी भावना के प्रतिफलन में युगीन साहित्य में विभिन्न साहित्यकारों की रचनाओं में महात्मा गांधी किसी न किसी रूप में प्रतिबिंबित होते रहे हैं। पंडित ठाकुर दत्त पाण्डेय की 'बापू के तीन बन्दर' कविता (कविता–संग्रह 'आलोक' में संगृहीत) की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए, जिनमें वे गांधी जी के बंदरों के माध्यम से समाज की प्रवृत्तियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हैं :

"बापू तेरे तीन बन्दर
कल समय के
प्रभाव पाकर
हर देश में मौजूद हैं
अपने रंग बदलकर
हर देश में जाकर
अमर पद पा गए हैं"

मॉरीशस के प्रसिद्ध साहित्यकार अभिमन्यु अनत प्रवासी साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. गोयनका को दिए गए एक साक्षात्कार में गांधी जी के प्रति अपनी सम्मान भावना को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं – "महात्मा गांधी जी ने अपनी मॉरीशस यात्रा के दौरान मॉरीशस की जनता को एक नई चेतना दी। एक अभय दान दिया, शक्ति दी और उन्होंने उस समय यह भी आह्वान किया कि मॉरीशस की भारतीय जनता अपने को राजनीति में सक्रिय करे और अपने देश की प्रतिष्ठा के लिए वह कर दिखाए जिससे उनके पूर्वजों का देश भारत उन पर गर्व कर सके।"[16] मॉरीशसीय साहित्यकारों का तो यह भी मानना है कि गांधी जी का यदि यह आह्वान नहीं होता, तो गाँव की कोठी में दयनीय जीवन जीने वाले मज़दूर का बेटा आगे चलकर मॉरीशस का प्रथम प्रधानमंत्री (डॉ. शिवसागर रामगुलाम) नहीं होता।

अनत जी ने गांधी जी से प्रभावित अपनी उपन्यास त्रयी ('लाल पसीना', 'गांधी जी बोले थे', 'और पसीना बहता रहा') का दूसरा खंड 'गांधी जी बोले थे' को महात्मा गांधी को समर्पित करके अपनी रचनाधर्मिता को जीवंतता दी। यह उपन्यास गांधी जी के स्व धर्म, स्वसंस्कृति, स्वभाषा और स्वदेशी के सिद्धांत को मुखरता देता है। इस उपन्यास के अतिरिक्त अभिमन्यु अनत की अनेक कविताएँ गांधीवाद से प्रभावित हैं। 'एक डायरी बयान' नामक कविता–संग्रह में वे 2 अक्टूबर को लिखते हैं :

"चौराहे पर की उस गांधी की मूर्ति का
उद्घाटन जो नेता कर गया था कल
गांधी महात्मा की उस श्वेत मूर्ति को
किसी ने तीन गोलियाँ मार दीं
खामोशी ऊपर उड़कर गई ,
बादलों को खंजर मार दिया
ज़मीन पर लाल बूंदें टपकने लगीं
गांधी जी की मूर्ति जीवित न हो सकी
वह भी गा रही है गांधी जी की तरह
रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम?"

उनकी पहली कविता 'पसीना किसी का फसल किसी की' भी पूंजीपतियों द्वारा मज़दूरों की शोषण प्रवृत्ति की ओर ही स्पष्ट दिग्दर्शन है, जिसके विरुद्ध गांधी जी ने जीवन भर खिलाफ़त की थी।

जयनारायण राय मॉरीशस के प्रतिष्ठित कवि हैं। वे भारत से शिक्षा प्राप्त करके मॉरीशस आए थे। मॉरीशस आकर उन्होंने समाज को चैतन्य करने के लिए अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग किया और अपनी कविताओं के माध्यम से जनता को गांधी जी के सिद्धांतों पर चलकर स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। अपनी बहुचर्चित 'अहिंसा पथ' नामक कविता, जो मॉरीशस आर्य पत्रिका में सन् 1937 में प्रकाशित हुई थी, इसमें जयनारायण जी लोगों को उद्बोधित करते हुए कहते हैं :

"निशस्त्र लेंगे हक्क अपने
जग तू देख ये खेल
रहेंगे सूर सिपाही यूँ अपने
शस्त्र में लिए तेल
परम धरम पंथ पर चलकर
अहिंसा से ही लेंगे
इस बूढ़े गांधी की राह पर
हम ही डटे रहेंगे।"

मॉरीशस के एक अन्य कवि मुनीश्वरलाल चिंतामणि गांधी जी से अत्यंत प्रभावित रहे हैं। यहाँ तक कि उनके कविता लिखने का उद्देश्य भी महात्मा गांधी के दर्शन से पूर्णतया प्रभावित है, जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने डॉ. कमल किशोर गोयनका को दिए साक्षात्कार में इन शब्दों में की है – "महात्मा गांधी के इस कथन से मैं सहमत हूँ कि वह काव्य जो मानव जीवन को ऊँचा न उठाए और उसमें नई आशाएँ और संभावनाएँ न भरे, काव्य नहीं कहा जा सकता। मेरी यह स्थापना है कि कविता के पठन और श्रवण से पाठक में बदलाव आ सकता है, वह अपनी मानवीय पहचान की टोह लगा लेता है, जिससे उसे अमानवीयता, अन्याय, शोषण और अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा मिलती है।"[17]

कविता 'रंगभेद' की रचना भी उन्होंने गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर लिखी है :

"रंगभेद का कोढ़ अपने शरीर से लपेटे,
तुम सभ्य होने का
कब तक दावा करते रहोगे?"[18]

मॉरीशस के राष्ट्रीय कवि ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' ने भी कई कविताएँ लिखीं, जो महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य के संदेश को प्रतिष्ठापित करती हैं। अपने 'रसरंग'

कविता–संग्रह में 'घुरहू मौसा के सनेस' नामक तेरह भोजपुरी कविताओं के संग्रह में वे अपने समाज को 'एक संग में बंध गेले' का आह्वान करते हुए कहते हैं कि व्यक्ति, समाज और देश का कल्याण महात्मा गांधी के मार्ग का अनुसरण करके ही संभव है–

"गांधी जी के मंतर से ही, तोहार बाटे हो कल्यान"

इसके अतिरिक्त सन् 2001 में प्रकाशित "मिलेनियम पुरुष महात्मा गांधी का पैगाम" नामक पुस्तक गांधी जी के मॉरीशस आगमन पर लिखी है। कवि ने उन्हें अवतारी पुरुष की संज्ञा से विभूषित किया है और उनको मॉरीशस का प्राण, मुक्तिदाता, कुलियों के जीवन धन प्राण, जागृति की मशाल और मानवता का सच्चा दूत कहकर संबोधित किया है। सत्याग्रह के महत्त्व को विश्वव्यापी बनाने और जन–जन तक उसकी महत्ता को सिद्ध करने के लिए गांधी जी ने इक्कीस दिन का व्रत किया। विश्व भर के उनके अनुनायियों और प्रशंसकों ने उनके स्वास्थ्य के प्रति चिंता जताते हुए उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए ईश्वर से प्रार्थनाएँ कीं। पंडित लक्ष्मी नारायण चौबे, जो भारत से आकर मॉरीशस में निवास कर रहे थे, उन्होंने गांधी जी के स्वस्थ होने के पश्चात् 'गांधी जी की महानता' नामक कविता लिखी जो 'जागृति' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। पंडित लक्ष्मी नारायण चौबे ने इस कविता में गांधी जी के प्रति अपनी भावनाओं को इस तरह व्यक्त किया है :

"ये व्रत था इक्कीस दिन का,
बूढ़े आदमी की भीष्म प्रतिज्ञा,
भूख में केवल पानी की बूंदों की अनुमति,
तूने सत्याग्रह का मान रख लिया,
तुझे धन्यवाद हे भगवान।"

गांधी जी की 151वीं जयंती पर मॉरीशस के ख्यातिलब्ध कवि और व्यंग्यकार राज हीरामन वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक विद्रूपताओं पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं :

"बापू, चौथे बन्दर को लाना होगा,
जो अंधे को चश्मा दे,
बहरे को कान दे,
गूंगे को वाणी दे,
फिर उनके हाथ में लाठी,
क्योंकि कुत्ते !! अब मुँह चाटने लगे हैं।"[19]

कहा जा सकता है कि साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक विचारधारा के साथ ही देश का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं रहा, जो महात्मा गांधी के अतुलनीय व्यक्तित्व की प्रभा से प्रभासित न हो सका हो। "मॉरीशस जैसे मिश्रित संस्कृति वाले देश में यह देखना अत्यंत सुखद है कि गांधी जी का प्रभाव यहाँ रहने वाले भारतवंशियों पर ही नहीं पड़ा, बल्कि अन्य धर्म और जाति के लोग भी उनकी विचारधारा से समान रूप से प्रभावित होते देखे गए।"[20] गांधी जी और मॉरीशस के संबंध की एक और महत्त्वपूर्ण कड़ी, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता और वह है गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस जैसा अतुलनीय ग्रन्थ। मॉरीशस रामायण देश कहा जाता है, मॉरीशस का प्रत्येक हिंदू मानस को अमूल्य थाती समझता है और उसके सिद्धांतों का यथासंभव अपने जीवन में अनुकरण करने का प्रयत्न भी करता है। गांधी जी के जीवन पर भी रामायण का अमिट प्रभाव रहा था और मानस के जीवन मूल्यों और दर्शन को गांधी जी भी अपने जीवन में उतारते रहे। मॉरीशसवासी प्रत्येक वर्ष महात्मा गांधी की जयंती को हर्षोल्लास के साथ मनाकर उनको अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं और देश के लिए दिए गए उनके योगदान को कृतज्ञता पूर्वक स्मरण भी करते हैं। भारतीय संस्कृति, परम्परा और शिक्षा के संवर्द्धन और सार्वभौम इंसान बनाने के महात्मा गांधी के स्वप्न को साकार करने के लिए सन् 1970 में मॉरीशस सरकार द्वारा महात्मा गांधी संस्थान स्थापित किया गया, जो देश में उच्चतम अकादमिक संस्था है, जिसे गांधी जी के सिद्धांतों के प्रति देश की प्रतिबद्धता प्रदर्शन के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ :

1. I have presented no new principles, but have to restate old principles. Selections from Gandhi; Nirmal Bose, First Edition 1948, page.IX
2. गांधी और गांधीवाद, डॉ. वी. पट्टाभि सीता रमैया, प्रथम भाग, पृष्ठ–281
3. गांधी साहित्य, भाग–5 : धर्म नीति, पृष्ठ 117
4. मॉरीशस में भारतीयों का इतिहास – के. हज़ारी सिंह, पृष्ठ–3
5. Gandhiji's words came out of his heart and fell as nectar on

the famished ears of his audience. He advised them to give more attention to the education of their children,to consider themselves as citizens of their adopted land and encouraged them to take an active part in the government of the country, Mahatma Gandhi in Mauritius, Deolaall Thacoor, (Port Louis,Mauritius : The Royal printing, 1970, p-126)

6. हरिजन, 1947
7. यंग इण्डिया,
8. मॉरीशस में हिंदी भाषा का संरक्षित इतिहास – जय नारायण राय, पृ.–112
9. रामदेव धुरंधर, 02/10/20 फेसबुक से साभार
10. पूजानंद नेमा (द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका में प्रकाशित लेख, पृष्ठ– 78)
11. The culmination was reached when in October 1947, Mauritans celebrated with éclat the Gandhi week in Laventure and Saint Pierre. Gandhism became a living force. Mahtma Gandhi : A new approach - Basdeo Bissoondayal, (Bombay : Bhartiiya Vidya Bhavan,1975) p. 103
12. प्रह्लाद रामशरण – महात्मा गांधी और मॉरीशस पर उनका प्रभाव 2011 का हिंदी अनुवाद, पृष्ठ 138
13. वही
14. वही
15. Gandhi Charita Manas - Vidyadhar Mahajan, Kamal Mudranalaya, Allahabad 1954
16. हिंदी का प्रवासी साहित्य, अभिमन्यु अनत : एक संवाद–कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ 398
17. वही पृष्ठ 388
18. मॉरीशस मित्र, 27/01/1931
19. राज हीरामन, 02/10/20 फेसबुक से साभार
20. If Gandhi had met Christ the latter would have loved him France Boyer, La Vie Catholique - A Christian Weekly in Mauritius (10.11.1968).

pandeynutan91@gmail.com

'गोदान' की हस्तलिखित पांडुलिपि

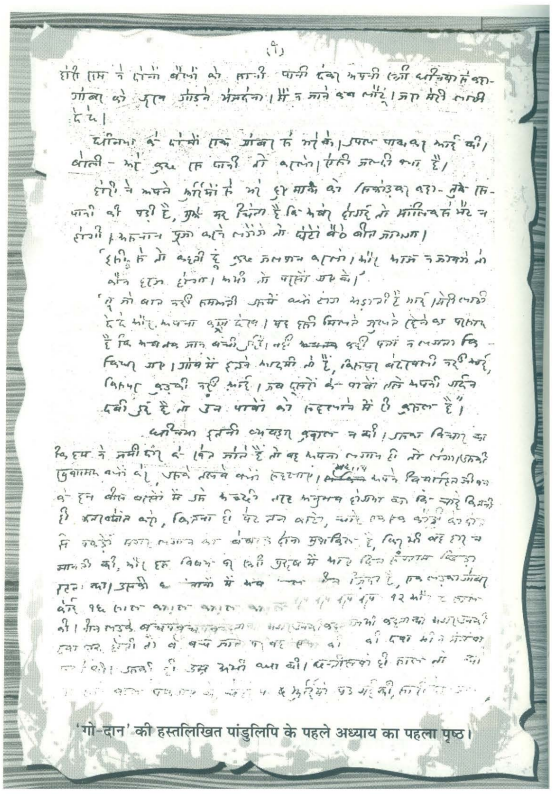

'गो-दान' की हस्तलिखित पांडुलिपि के पहले अध्याय का पहला पृष्ठ।

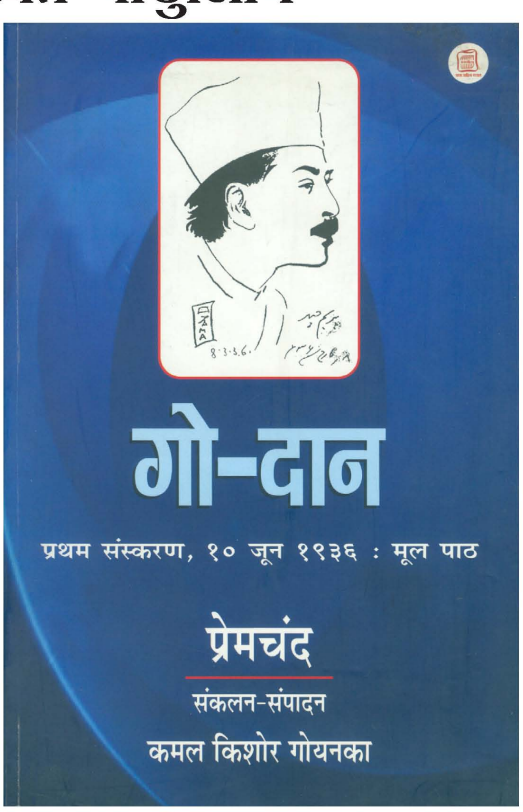

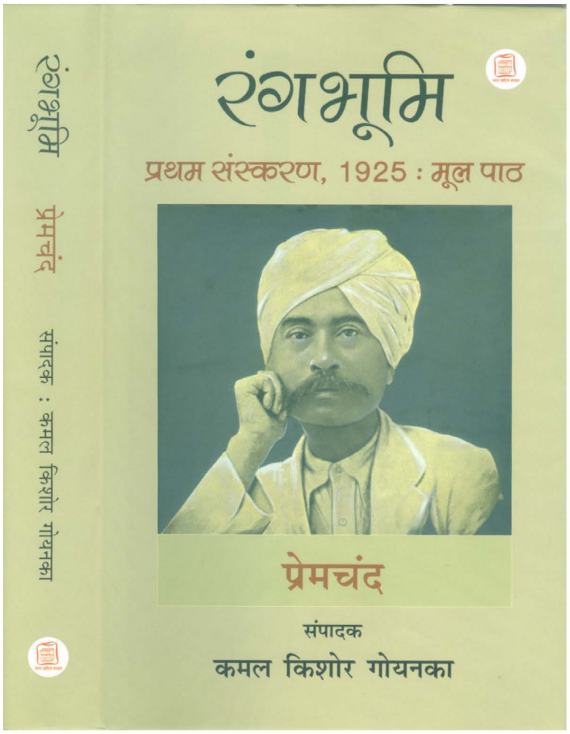

आभार : डॉ. कमल किशोर गोयनका

हिंदी : आज के प्रश्न

35. अंग्रेज़ी के कारण ही आज हिंदी की उपेक्षा हो रही है - श्री गोवर्धन यादव

36. क्या वैश्वीकरण ने सचमुच हिंदी को कुछ दिया है? - श्री संजय कुमार

37. हिंदी भाषा पर अंग्रेज़ी का वर्चस्व - डॉ. काजल पाण्डेय

अंग्रेज़ी के कारण ही आज हिंदी की उपेक्षा हो रही है

– श्री गोवर्धन यादव
छिन्दवाड़ा, भारत

बात सोलह आने सच है कि अंग्रेज़ी के कारण ही आज हिंदी की उपेक्षा हो रही है। यह बात भले ही किसी अंग्रेज़ीदां के गले न उतरे, लेकिन हकीकत तो यही है और इसे नकारा भी नहीं जा सकता। देश में प्रकाशित होने वाले अंग्रेज़ी के अखबार हैं ही कितने? और उनके पाठकों की संख्या भी देश की जनसंख्या का लगभग चार–पाँच प्रतिशत ही होगी, फिर भी अंग्रेज़ी सिरमौर बनी हुई है। इसी तरह हिंदी की पत्र–पत्रिकाओं की संख्या के आगे अंग्रेज़ी की पत्रिकाएँ नगण्य हैं, फिर भी अंग्रेज़ी का वर्चस्व बना हुआ है। कितनी अंग्रेज़ी फ़िल्में तैयार होती हैं? हिंदी–विरोध के नाम पर अहिंदी भाषी खासकर दक्षिण प्रांतो की दुहाई दी जाती है, वहाँ कितने लोग अंग्रेज़ी बोलते हैं? दक्षिण के चेन्नई में अधिकतर फ़िल्में बनती हैं। अंग्रेज़ी फ़िल्मों का तो कहीं नाम भी नज़र नहीं आता। दक्षिण का साहित्य तमिल, तेलुगू, मलयालम तथा कन्नड़ में लिखा जाता है, अंग्रेज़ी में नहीं। कर्नाटक का संगीत अंग्रेज़ी भाषा में नहीं है। समझ नहीं आता कि आखिर क्यों दक्षिण को अंग्रेज़ी से जोड़ दिया जाता है? उत्तर हो या फिर दक्षिण या पूरब–पश्चिम, देश की संस्कृति एवं भाषायी परम्पराओं से दूर–दूर तक अंग्रेज़ी का कोई संबंध नहीं है। केवल और केवल चार–पाँच प्रतिशत लोगों की भाषा से भारतीय भाषाओं की घोर उपेक्षा अथवा भारी क्षति हुई है। इसके लिए और कोई नहीं बल्कि देश के राजनेता, जनप्रतिनिधि, राज्य की सरकारें ज़िम्मेदार हैं। हमारे संविधान में 1950 से 1965 यानी कुल पन्द्रह सालों के अंग्रेज़ी को जारी रखने का प्रावधान किया गया था, किन्तु राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा विधेयक 1967 तथा राजभाषा विधेयक 1976 द्वारा संविधान में संशोधन करके अनिश्चित काल के लिए अंग्रेज़ी को जारी रखने की छूट दे दी गई। यह सारा प्रपंच कांग्रेस की राजसत्ता का रचाया हुआ था। कांग्रेस ही क्यों, इसके लिए अन्य राजनीतिक दल भी तो उतने ही ज़िम्मेदार हैं। यदि वे समय रहते इसका पुरजोर विरोध करते, तो यह नौबत आती ही नहीं। ऐसा नहीं है कि विरोध करने के लिए कोई आगे नहीं आया।

संविधान सभा में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी का ऐतिहासिक भाषण उठाकर पढ़ लीजिए। इस सभा में श्री टण्डन जी के अलावा श्री गोपालस्वामी आयंगर जी, श्री मोटुरी सत्यनारायण जी, श्री शंकरराव देव, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, श्री एच.के. खान्डेकर, डॉ. पी.एस. देशमुख, मौलाना हसरत मोहानी, श्री आर.आर. दिवाकर, पं. लक्ष्मीकांत मैत्र तथा श्री के. सन्तानम आदि शामिल थे। इस सभा में हिंदी भाषा को रोमन में लिखने तथा हिंदी के मानक अंको के प्रयोग को लेकर सघन चर्चाएँ हुई थीं। सभी सदस्य अंग्रेज़ी को पन्द्रह साल तक बनाए रखने के पक्षधर थे, लेकिन टण्डन जी ने इस लम्बी अवधि को स्वीकार न करते हुए पाँच वर्ष रखने का सुझाव दिया था, जिसे बाद में अनेक कारणों को गिनाते हुए, अंग्रेज़ी पन्द्रह वर्ष तक बनी रहेगी, यह निर्णय लिया गया।

श्री टण्डन जी ने आग्रहपूर्वक कहा था कि जो काम आज हो सकता है, शायद बाद में कब संभव होगा, नहीं कहा जा सकता।

महात्मा गांधी ने लन्दन से दक्षिण अफ़्रीका लौटते समय रास्ते में जो संवाद लिखा, वह 'हिंद स्वराज' के नाम से 22 नवम्बर 1909 में प्रकाशित हुआ था। मूल किताब गुजराती में लिखी गई है। उन्होंने हिंदी के बारे में जो विचार लिखे, वे इस प्रकार हैं – "हिन्दुस्तान की आम भाषा अंग्रेज़ी नहीं बल्कि हिंदी है। वह आपको सीखनी होगी और हम तो आपके साथ अपनी भाषा में ही व्यवहार करेंगे।" यह टिप्पणी बापू ने अंग्रेज़ों को सम्बोधित करते हुए की थी। इस पुस्तक में भारतीयों द्वारा अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग पर दुख प्रकट करते हुए लिखा था – "यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में मुझे इंसाफ़ पाना हो, तो मुझे अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग करना चाहिए। बैरिस्टर होने पर भी मैं स्व–भाषा

में बोल ही नहीं सकता! यह कुछ कम दंभ है! यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? इसमें मैं अंग्रेज़ी का दोष निकालूँ या अपना। हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेज़ी जानने वाले ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेज़ों पर नहीं, बल्कि हम पर पड़ेगी।"

राष्ट्रभाषा हिंदी पर महात्मा गांधी के विचारों को विस्तार से जानने के लिए हमें गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए। करीब डेढ़ सौ पृष्ठों की इस किताब से हम उनके दिव्य वचनों से रोशनी पा सकते हैं।

महात्मा गांधी की प्रेरणा से हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए सन् 1918 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास की स्थापना हुई थी। गांधी जी की इस संकल्पना के लगभग ग्यारह वर्ष पूर्व ही मद्रास (अब चैन्नई) में एक तमिलभाषी मनीषी ने हिंदी प्रचार की नींव डाली। यह मनीषी कोई और नहीं, तमिल के सुविख्यात महाकवि सुब्रह्मण्य भारती जी थे। सर्वप्रथम भारती जी ने अपने संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'इंडिया' के 15 दिसंबर, 1906 के अंक में तमिल भाषियों से हिंदी सीखने की अपील की थी। महाकवि ने न केवल समूचे तमिलनाडु वासियों के प्रतिनिधि के रूप में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की थी, बल्कि राष्ट्रीय एकता के भविष्य द्रष्टा के रूप में भी उन्होंने हिंदी का पुरजोर समर्थन किया था। भारती जी के ही नेतृत्व में 1908 में सर्वप्रथम चेन्नई के तिरुवेल्लीकेणि (ट्रिप्लिकेन) में हिंदी वर्गों के संचालन का श्रीगणेश हुआ था। इस घटना के दस वर्ष बाद गांधी जी की संकल्पनाओं के अनुरूप दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की नींव पड़ी। इस कार्य हेतु गांधी जी ने अपने सुपुत्र देवदास गांधी को चेन्नई भेजा था।

गांधी जी की प्रेरणा से हिंदी प्रचार समिति की स्थापना दिनांक 4 जुलाई, 1936 को वर्धा में महात्मा गांधी के निवास स्थान पर इस समिति की पहली साधारण बैठक हुई थी, जिसमें कुल 21 सदस्य थे। इस बैठक में जिन पदाधिकारियों का चुनाव हुआ उसमें डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी को अध्यक्ष, सेठ जमनालाल बजाज को उपाध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष, श्री मोटूरी सत्यनारायण को मंत्री, श्रीमन्नारायण जी अग्रवाल को संयुक्त मंत्री बनाया गया। हिंदी प्रचार समिति का कार्य गांधी जी की देख–रेख में चले, इसीलिए उसका मुख्य कार्यालय वर्धा में रखा गया था।

हिंदी प्रचार समिति राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का प्रचार–प्रसार कर रही थी। अतः हिंदी की जगह 'राष्ट्रभाषा' शब्द लेने का प्रस्ताव पारित हुआ। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की दो बैठकें 12.04.1942 तथा 21.06.1942 को हुई। इन दोनों बैठकों में महात्मा गांधी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, काका साहब कालेलकर तथा श्रीमन्ननारायण उपस्थित थे। दिनांक 12.07.1942 को सेवाग्राम में गांधी जी की कुटी में नवगठित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पहली बैठक हुई थी। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। समिति की इस बैठक में मंत्री पद के लिए भदन्त आनन्द कौसल्यायन को और सहायक मंत्री के लिए श्री रामेश्वरदयाल दुबे को चुना गया।

बापू ने जहाँ हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया, वहीं उन्होंने स्वदेशी अपनाने पर भी ज़ोर दिया था। लेकिन इसे दुर्भाग्य ही कहें कि उनकी बातों को भुला दिया गया और अंग्रेज़ी का वर्चस्व लगातार बढ़ता रहा। समय–समय पर आयोग गठित होते रहे, लेकिन उनकी सिफ़ारिशें रद्दी की टोकरी के हवाले की जाती रहीं। इसी का दुष्परिणाम है, जिसे हम आज तक भुगत रहे हैं। अंग्रेज़ी के माध्यम से जीवन में प्रवेश करने वाले बच्चे आज न तो अंग्रेज़ी के अधिकारी विद्वान बन पाए और न ही हिंदी के।

आज भी केन्द्र के कार्यालयों में, केन्द्र की सरकार के कामकाज में अंग्रेज़ी का प्रभुत्व बना हुआ है। बात यहीं समाप्त नहीं होती, केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच पत्रों के आदान–प्रदान की भाषा अंग्रेज़ी ही बनी हुई है। नागालैण्ड हो या केरल या फिर तमिलनाडु, आंध्र, कर्नाटक, बंगाल, त्रिपुरा, मिज़ोरम आदि में अंग्रेज़ी का एकाधिकार बना हुआ है। साथ ही अन्य प्रदेशों की हालत भी लगभग वही है। प्राथमिक कक्षा से ही अंग्रेज़ी लागू करने के कारण देश की शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर भारी असमानता आ गई है। उच्च शिक्षा, मेडिकल, इंजीनियरिंग प्रबंधन आदि व्यावसायिक शिक्षा, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी शिक्षा तथा इनसे संबद्ध नौकरियाँ पाने वालों में सबसे ज़्यादा अंग्रेज़ी जानने वालों का वर्चस्व है। देश की आम जनता हो या साधारण छात्रों की यहाँ पहुँच ही नहीं है। फिर अखिल भारतीय सेवाओं तथा अन्य नौकरियों पर अंग्रेज़ी वालों का अधिकार होता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हम स्वतंत्र तो हो गए हैं,

लेकिन आज भी अंग्रेज़ी के गुलाम बने हुए हैं। यह सब देखते आज भी बहुत से लोग इस बात को लेकर, परहेज़ न करते हुए कहते हैं कि इससे तो अंग्रेज़ी राज क्या बुरा था? अंग्रेज़ थे तो अंग्रेज़ी भी थी, स्वतंत्रता के बाद गोरे अंग्रेज़ तो चले गए, लेकिन अंग्रेज़ी यहीं छोड़ गए।

हमारा विरोध अंग्रेज़ी भाषा से नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा से। यह भाव न तो कभी था और न ही अब है। हम जितनी भी भाषा के अधिकारी विद्वान बनेंगे, उतना ही हमारा और देश का भला होगा। लेकिन हमें अपनी मातृभाषा को ही प्रयोग में लाना चाहिए।

चीनी, स्पेनिश, अंग्रेज़ी, अरबी, रूसी और फ्रेंच, ये छः भाषाएँ संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाएँ हैं। हमारी हिंदी को अभी तक उसमें स्थान नहीं मिला है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार चीनी पहली भाषा है, जिसके बोलने वाले और समझने वालों की संख्या लगभग 80 करोड़, हिंदी – 55, स्पेनिश – 40, अरबी – 20, रूसी – 17 और फ्रेंच – 9 करोड़ के आसपास है। चीनी बोलने और समझने वालों की संख्या यकीनन अधिक है, परन्तु इसका क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा कम है। एक सर्वेक्षण के अनुसार हिंदी जानने वालों की संख्या सर्वाधिक है। इसके बाद भी हिंदी को अपने ही देश में राष्ट्रभाषा होने का आधिकारिक दर्जा प्राप्त नहीं हुआ है।

आज हिंदी विश्व के कई देशों में संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जा रही है। कई देश तो ऐसे हैं, जहाँ आप्रवासी भारतीयों की संख्या 40 प्रतिशत तक से अधिक है, जैसे बांग्लादेश, भूटान, नेपाल आदि। कुछ देश ऐसे हैं, जहाँ हिंदी को विश्वभाषा के रूप में सिखाया और पढ़या जा रहा है, शोध–कार्य हो रहा है। पी–एच.डी. की उपाधि तक प्राप्त करने की व्यवस्था है। अमेरिका में भारतीय मूल के लोगों की संख्या लगभग दो करोड़ है। वहाँ हॉर्वर्ड, पेन, मिशिगन, येल एवं अन्य 65 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन–पाठन हो रहा है। सूरीनाम में हिंदी सहित क्षेत्रीय भाषाएँ बोली जाती हैं। जैसे अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिली। इन्हीं के मिश्रण से उपजी भाषा को सूरीनाम हिंदी कहा जाता है। पोलैण्ड के वारसा, काकूब, पेनजान एवं अन्य विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। रूस और भारत की घनिष्ठ मैत्री है। रूस में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी का पठन–पाठन हो रहा है। बुल्गारिया में भी हिंदी के साथ संस्कृत के अध्ययन केन्द्र उपलब्ध हैं। फ़िजी में भी हिंदी बोली, समझी और जानी जाती है।

इंग्लैण्ड, अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, मलाया, सिंगापुर, ब्रिटेन, क्यूबा, कोरिया, मंगोलिया, पोलैण्ड आदि में भी हिंदी बोली जाती है। ब्रिटेन के स्कूल ऑफ़ ओरियण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज़ के माध्यम से हिंदी को खूब बढ़ावा मिला। इंग्लैण्ड में अनेक वर्षों से हिंदी का अध्यापन कार्य चला। 'प्रवासी टुडे' एवं 'पुरवाई' जैसी प्रख्यात साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। श्रीलंका के तीन विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। इंडोनेशिया की भाषा में 18 प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं, जो कि देवनागरी लिपि में ही है। मालद्वीप की भाषा भारतीय भाषा के निकट है। थाईलैण्ड में हिंदी का पठन–पाठन होता है। इतना ही नहीं, फ्रांस, इटली, स्वीडन, ऑस्ट्रिया, नॉर्वे, डेनमार्क, स्विटज़रलैंड, हॉलैंड, पोलैंड, चेक गणराज्य, जर्मनी, रोमानिया, बुल्गारिया, हंगरी, तुर्की, इराक, मिस्र, लीबिया, संयुक्त अरब अमीरात, दुबई और पाकिस्तान में भी हिंदी ने आधिपत्य जमा लिया है। फिर क्या कारण है कि हिंदी भारत में पिछड़ती चली गई? जबकि समूचे विश्व में वह अपना प्रभुत्व जमा चुकी है। मुझे लगता है कि लगभग दो सौ साल तक अंग्रेज़ी भारत में शासकों की भाषा बनी रही। शिक्षा में विज्ञान की भाषा भी अंग्रेज़ी ही थी। इतना सब कुछ होने के बाद भी आश्चर्य यह कि विज्ञान में इस देश को एक भी नोबेल पुरस्कार नहीं मिला। जब विश्व के तीस प्रतिशत विज्ञान के स्नातक भारत में हैं और यहूदी भाषी इज़राइल ने, जिसकी आबादी भारत की आबादी के छः प्रतिशत ही बैठती है, ग्यारह नोबेल पुरस्कार अपने नाम किए। दरअसल इज़राइल अपनी भाषा में शिक्षा देता है और अपनी भाषा में जीता है। चीन हो या फिर जापान या हॉलैण्ड, ये सम्पन्न देश अपनी भाषा में जीते हैं।

हमें यह ध्यान में रखना होगा कि हमारी रचनाशीलता हमारी अपनी ही भाषा से प्राप्त होगी। अंग्रेज़ी के प्रति मोहग्रस्त होने के कारण ही हमारी रचनाशीलता का ह्रास हुआ है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि हमारी मौलिकता और सृजन शक्ति कहीं खो गई

है। विश्व के विज्ञान प्रौद्योगिकी की दौड़ में हम अन्य देशों से काफ़ी पीछे रह गए हैं। हम इस बात को लेकर सचेत क्यों नहीं होते कि जापान, चीन, कोरिया, इज़राइल जैसे देश अपनी भाषा में सारे कार्य सम्मानपूर्वक कर रहे हैं और विज्ञान के क्षेत्र में नित नए सोपान गढ़ रहे हैं, क्या हम अपनी भाषा में जीवन नहीं जी सकते? यदि हम ऐसा कर पाए, तो निश्चित ही हम इस दिशा में बहुत कुछ कर सकेंगे। बस आवश्यकता है अपनी छोटी सोच और मानसिकता बदलने की। हमें अब इस बात को जल्दी ही समझ लेना चाहिए कि अंग्रेज़ी के ज्ञान से कहीं ज़्यादा सार्थक होगा कि हम अपनी मातृभाषा हिंदी को अपनाएँ, जिससे हमारा भविष्य उज्ज्वल हो सके।

शुरू से ही हमारे राजनेताओं ने, न सिर्फ़ हिंदी के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया, बल्कि देश में ही दो देश बनाने से भी गुरेज नहीं किया। एक देश में दो देश, दो संविधान और दो झंडे। विश्व में ऐसा होता हुआ, न तो किसी ने सुना है और न ही कभी हुआ है। संविधान लिखते समय भी चालाकी बरती गई। 'इण्डिया दैट इज़ भारत' लिखने पर हमने कहीं भी, कभी भी इस बात का विरोध नहीं किया। भला हो इस वर्तमान सरकार का कि उसने इस कलंक को हटाया। आज एक देश, एक संविधान और एक झंडा लागू हो पाया है।

प्रधानमंत्री बनने के बाद से माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने विश्व के लगभग हर देश का दौरा किया है, इससे मैत्री भाव तो बढ़ा ही, साथ ही विदेश नीति में भी ज़बरदस्त इजाफ़ा हुआ है। जहाँ–जहाँ भी आप गए, हिन्दुस्तानी संस्कृति और परम्परा को साथ भी लेते गए और अपना उद्‌बोधन भी हिंदी में ही दिया। इससे हिंदी की आन–बान–शान तो बढ़ी ही, देश का गौरव भी बढ़ा है। यह सब देखते हुए इस बात की पुष्टि स्वयमेव हो जाती है कि शीघ्र ही हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी का खोया हुआ गौरव उसे प्राप्त हो जाएगा। वह दिन भी शीघ्र ही आने वाला है, जब हमारी हिंदी को राष्ट्रसंघ की भाषा में यथोचित स्थान मिल जाएगा।

वर्ष 2015 में मुझे मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में संपन्न हुए दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में शिरकत करने तथा देश–विदेश से आए हिंदी के आला दर्जे के साहित्यकारों सहित तत्कालीन विदेश मंत्री स्व. श्रीमती सुषमा स्वराज जी एवं माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी को भी सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस सम्मेलन के बाद से ही इस बात के स्पष्ट संकेत मिल चुके थे कि हिंदी को लेकर शीघ्र ही कोई बड़ी और कारगर नीति बन सकती है। अभी हाल ही में भारत सरकार ने नई नीति की घोषणा करते हुए उसे तत्काल प्रभाव से लागू करने के आदेश पारित किए हैं। यह नई शिक्षा नीति तीस साल बाद घोषित हुई है।

इस नीति के आने से पूर्व ही देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आपने दो बड़े मिशन चलाए, जिनके नाम हैं 'मेक इन इण्डिया' और 'स्किल इण्डिया'। इन दोनों मिशनों का उद्देश्य यही है कि नई–नई टेक्नोलॉजी भारत में तो आएँगी ही, लेकिन उसका निर्माण भारत में होगा। मतलब साफ़ है, इस मिशन से जुड़कर हमारे कौशल में चमक आएगी। रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे। आय में बढ़ोतरी होगी और इस तरह भारत आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर होता जाएगा। मिशन तो अनेकों चलाए गए हैं, जिनका फ़ायदा हमें निकट भविष्य में निश्चित ही प्राप्त होगा।

कोरोना महामारी के जनक चीन की कलई खुल चुकी है। इस बात से रुष्ट होकर अनेक विदेशी कम्पनियाँ अपना कारोबार वहाँ से समेट रही हैं। कई कंपनियों ने तो अपने प्रोजेक्ट वहाँ से हटा भी लिए हैं। भारत विश्व का सबसे बड़ा बाज़ार बन सकता है। इस बात की संभावनाएँ शुरू से ही व्यक्त की जाने लगी थीं। चीन के इस डाउनफ़ॉल के चलते अब सारी बड़ी कंपनियाँ भारत की ओर रुख करने लगी हैं। निश्चित ही आने वाले कल में कई विदेशी कंपनियाँ यहाँ से संचालित होंगी। नए–नए कल–कारखाने स्थापित होने से देश की आय में वृद्धि तो होगी ही, साथ ही रोज़गार के बड़े अवसर भी भारतीयों को सहज ही उपलब्ध होंगे। सारी कंपनियाँ 'मेड इन इण्डिया' के मापदण्डों के अनुसार ही चलाई जाएँगी। हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा होगी, जो संपर्क भाषा के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करेगी। हिंदी जगत के लिए यह स्वर्णिम अवसर होगा। शायद आपको याद होगा कि अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री बराक ओबामा ने काफ़ी पूर्व इस बात का संकेत देते हुए अमेरिकन लोगों को हिंदी सीखने का गुरुमंत्र दिया था।

कोरोना महामारी के जनक चीन की तालाबंदी के कारण ही आज भारत स्वदेशी अपनाने का रास्ता स्वयमेव चुनने के लिए

बाध्य हो गया। 'मेक इन इण्डिया' और 'स्किल इण्डिया' के साथ ही भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए 'स्वदेशी मिशन' को भी जोड़ दिया गया है।

महात्मा गांधी जी के उस प्रेरक उद्‌बोधन का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक लगा कि हिंदी के प्रति अनन्य प्रेम को उजागर करते हुए उन्होंने कहा था कि "देश में हिंदी भाषा का प्रयोग होना चाहिए। हिंदी केवल भाषा नहीं अपने स्वाभिमान और संस्कार की भी भाषा है। भाषा के हीनताबोध के कारण हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि आज ग्लोबलाइज़ेशन के युग में दुनिया के सभी बड़े उद्योगपतियों का मार्केट हिंदी है। वह माल अंग्रेज़ी में बनाता है, किन्तु बेचता तो हिंदी में, कन्नड़ में, असमिया में व गुजराती में है। विश्व में पाँच से छः मिलियन लोग हिंदी भाषी हैं। किन्तु हिंदी पर अंग्रेज़ी के दबदबे की मुख्य वजह आम लोगों के भीतर 'भाषा का गौरव' न होना है और अंग्रेज़ी का ऐसा भ्रामक करेंसी बन जाना है, जो नौकरी देती है। अतः आवश्यक है कि हमें अपने हीनताबोध को हटाने और भाषा के स्वाभिमान को अपना स्वाभिमान बनाने की। रोज़गार और तकनीकी की जो बातें हमारे सामने चुनौती और बाधाएँ हैं, वस्तुतः उन्हीं में हमारा समाधान भी है। हमें केवल और केवल अपने राष्ट्रबोध प्राप्त महापुरुषों के सपनों को साकार करने का संकल्प लेना होगा। न केवल संकल्प बल्कि उसको व्यवहार में उतारना होगा। आइए, हम उन्हें अपने से जीना प्रारंभ कर वर्तमान के साथ भविष्य के लिए पथ प्रशस्त करें।

भारत आज तेज़ी के साथ बदल रहा है। अपनी पुरानी सोच को भी बदल रहा है, जो उसकी राह में रोड़ा बनती रही है। बदलती हुई सारी परिस्थितियाँ आज भारत के लिए अनुकूल बनती जा रही हैं। आने वाला समय भारत का ही होगा।

हमें पूरा विश्वास है कि आने वाले दिन, हिंदी के दिन होंगे। हिंदी की रफ़्तार को हिंदी के धुर–विरोधियों ने बलात् रोकने का जो प्रयास किया था और आज भी कर रहे हैं, निश्चित ही वे अब हतोत्साहित होंगे। उन्हें अब यह समझ लेना चाहिए कि अंग्रेज़ी की आड़ में, जो खेल वे बरसों से खेलते आ रहे थे, समाप्त होने की कगार पर आ चुके हैं। अंत में स्व. पं. रामेश्वरदयाल दुबे की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :

"भारत जननी एक हृदय हो, भारत जननी एक हृदय हो।
एक राष्ट्रभाषा हिंदी में कोटि–कोटि जनता की जय हो।
भारत जननी एक हृदय हो?
स्नेह–सिक्त मानस की वाणी, गूँजे गिरा यही कल्याणी।
चिर उदार भारत की संस्कृति सदा अभय हो सदा अजय हो।
भारत जननी एक हृदय हो?
मिटे विषमता, सरसे समता, रहे मूल में मीठी ममता।
तमस कालिमा को विदीर्ण कर जन–जन का पथ ज्योतिर्मय हो।
भारत जननी एक हृदय हो?
जाति–धर्म–भाषा विभिन्न स्वर, एक राग हिंदी में सजकर,
झंकृत करें हृदय तंत्री को स्नेह–भाव प्राणों में लय हो।
भारत जननी एक हृदय हो?"

goverdhanyadav44@gmail.com

क्या वैश्वीकरण ने सचमुच हिंदी को कुछ दिया है?

– श्री संजय कुमार
कानपुर, भारत

भाषा और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। भाषा के बिना समाज गूँगा है और समाज के बिना भाषा का कोई अस्तित्व नहीं है। समाज का प्रत्येक कार्य–व्यवहार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से भाषा से अनुप्राणित है और उसका प्रत्येक घटनाक्रम भाषा को प्रभावित करता है। समाज का दायरा विस्तृत होने पर भाषा के क्षितिज का विस्तार होता है और भाषा परिमार्जित होती है। वहीं, दायरा संकुचित होने पर भाषायी आधार सिमटता है और भाषा में जड़ता आती है। वैश्वीकरण भी एक तरह की वृहद सामाजिक–आर्थिक परिघटना है, जिसने विश्व–समुदाय के विभिन्न अवयवों के साथ–साथ भाषा को भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण से हिंदी को क्या हासिल हुआ, पर मंथन करने के पूर्व वैश्वीकरण को समझ लेना प्रासंगिक होगा।

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण को 'भूमण्डलीकरण' भी कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है – स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं अथवा क्रियाकलापों का विस्तार पूरे विश्व में करना। भूमंडलीकरण एक 'प्रक्रिया' है, जो धीरे–धीरे एवं चरणबद्ध तरीके से वैश्विक समुदाय को एकीकृत करने का प्रयत्न करती है। यह एकीकरण ज्ञान, विज्ञान, कला, विचार, अर्थ, संस्कृति, व्यापार किसी भी रूप में हो सकता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया उतनी ही पुरानी है, जितनी मानव सभ्यता। जंगल के खानाबदोश जीवन से लेकर सुसंस्कृत समाज तक का मानव का सफ़र और गुफ़ा से लेकर चकाचौंध भरे विश्वपटल पर उसकी गरिमामयी उपस्थिति वैश्वीकरण के क्रमिक विकास की कहानी है। हमारे सनातन धर्म में विश्व को एक परिवार माना गया है – "वसुधैव कुटुम्बकम्"। सनातन धर्म की यह विचारधारा दुनिया को एक कुटुम्ब के स्तर पर लाने की बात करती है, जो विश्वग्राम से भी छोटी इकाई है। ऐतिहासिक अध्ययन से हमें ईसा–पूर्व तीसरी शताब्दी में सिंधु घाटी सभ्यता और सुमेरियाई सभ्यता के बीच व्यापारिक संबंध होने का पता चलता है। ईसा–पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक रेशम मार्ग से होने वाला व्यवसाय वैश्वीकरण प्रक्रिया की एक अन्य प्राचीनतम बानगी है। पूरब में चीन से शुरू होकर हिमालय और हिंदुकुश पर्वतमालाओं से होते हुए पश्चिम में मध्य एशिया, अफ़्रीका और यूरोप को जोड़ने वाला लगभग 6500 किलोमीटर का यह मार्ग सिर्फ़ व्यापार का ही मार्ग नहीं था, अपितु इस रास्ते भिक्षुओं, तीर्थ यात्रियों के आवागमन के साथ–साथ ज्ञान, धर्म, संस्कृति, भाषाओं और विचारधाराओं का प्रसार भी हुआ। इसके अतिरिक्त पुर्तगाली नाविकों द्वारा महासागरों की विकराल लहरों के बीच जान जोखिम में डालकर देशों की खोज के लिए प्रयाण वैश्वीकरण की दिशा में उठाए गए शुरुआती कदम कहे जा सकते हैं। पर एक संकल्पना के तौर पर 'वैश्वीकरण (ग्लोबलाइज़ेशन)' शब्द 1980 के दशक में प्रतिष्ठित हुआ, जब 1983 में अमेरिका के हॉर्वर्ड बिज़नेस स्कूल के एक अर्थशास्त्री टेओडोर लेविट (Theodore Levitt) का 'ग्लोबलाइज़ेशन ऑफ़ मार्केट्स' नामक आलेख 'हॉर्वर्ड बिज़नेस रिव्यू' के मई–जून 1983 अंक में प्रकाशित हुआ। अलग–अलग विद्वानों ने वैश्वीकरण को अलग–अलग तरीके से परिभाषित किया है :

ब्रिटिश समाजशास्त्री मार्टिन अल्ब्रो के अनुसार – "वैश्वीकरण उन सभी प्रक्रियाओं का समेकित रूप है, जिनके द्वारा दुनिया के लोगों को एक ही विश्व–समाज में शामिल किया जाता है।"

स्वीडिश पत्रकार थॉमस लार्सन अपनी पुस्तक 'द रेस टू द टॉप : द रीयल स्टोरी ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन' में कहते हैं – "वैश्वीकरण दुनिया के संकुचन की प्रक्रिया है, जिसमें दूरियाँ घट रही होती हैं, चीज़ें नज़दीक आ रही होती हैं और दुनिया के एक छोर पर बैठा व्यक्ति पारस्परिक लाभ के लिए दुनिया के दूसरे

छोर पर बैठे व्यक्ति से संपर्क कर सकता हो।"

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने वैश्वीकरण के चार मूलभूत पहलुओं को रेखांकित किया है : व्यापार और लेन–देन, पूँजी और निवेश संबंधी गतिविधियाँ, प्रवास और पलायन तथा ज्ञान का प्रसार। जब इन गतिविधियों का प्रसार एक देश की सीमा के पार होता है, तो इसे वैश्वीकरण कहा जा सकता है।

इस प्रकार वैश्वीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसका मूलभूत तत्त्व है – प्रवाह। प्रवाह कई तरह का हो सकता है, जैसे – दुनिया के एक हिस्से के विचारों का दूसरे हिस्सों में पहुँचना, पूँजी का एक से ज़्यादा जगहों पर जाना, वस्तुओं और सेवाओं का कई देशों तक पहुँचना और बेहतर आजीविका की तलाश में लोगों का विश्व के विभिन्न हिस्सों में आवगमन और इन सब से उत्पन्न विश्वव्यापी पारस्परिक जुड़ाव और पारस्परिक निर्भरता। यद्यपि पूर्वोक्त तत्व प्राचीन काल में भी थे, पर इन प्रवाहों की गति वह नहीं थी, जो सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, परिवहन के अत्याधुनिक साधनों और बाज़ारवाद की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण वर्तमान समय में हो गई है। अतएव, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सूचना और संचार क्रांति तथा बाज़ारवाद वैश्वीकरण के प्रमुख उत्प्रेरक रहे हैं।

वैश्वीकरण का हिंदी पर प्रभाव

चूँकि, प्रभावित करना एवं होना वैश्वीकरण की अनिवार्य प्रवृत्ति है; अतएव, वैश्वीकरण से समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, राजनीति, भाषा आदि का प्रभावित होना स्वाभाविक है। हिंदी को वैश्वीकरण ने कई रूपों में प्रभावित किया है। इनमें से कुछ प्रभाव सकारात्मक, तो कुछ नकारात्मक रहे हैं।

वैश्वीकरण का हिंदी पर सकारात्मक प्रभाव

वैश्वीकरण के कारण हिंदी के क्षितिज का विस्तार हुआ है और इस विस्तार में निम्नलिखित कारकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है:

1. प्रौद्योगिकी

विश्वग्राम की संकल्पना को साकार करने में प्रौद्योगिकी की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही है। सूचना–प्रौद्योगिकी के प्लेटफ़ॉर्म पर आरूढ़ होकर भाषाएँ अभूतपूर्व गति से सरहदों के पार पहुँची हैं। आज इंटरनेट और सोशल मीडिया के द्वारा हिंदी उन सुदूरवर्ती देशों और क्षेत्रों तक पहुँच चुकी है, जहाँ अभी तक व्यक्तिगत रूप से कोई भारतीय या भारतीय मूल का व्यक्ति नहीं पहुँचा है। यह प्रसार इसलिए भी संभव हुआ है, क्योंकि सीमा पार जाने में भाषा को किसी वीज़ा या पासपोर्ट की ज़रूरत नहीं पड़ती। प्रौद्योगिकी के चलते अब भाषाएँ सीखना भी काफ़ी आसान हो गया है। पहले यदि किसी अहिंदी भाषी को हिंदी सीखनी होती थी, तो उसे किसी हिंदी–शिक्षक के सान्निध्य की आवश्यकता होती थी। किंतु आज की वर्चुअल दुनिया में ज़रूरी नहीं कि गुरुजी के चरणों में बैठकर ही भाषा सीखी जाए। आज यूट्यूब, वेबिनार, स्काइप, वीसी, वीडियो कॉलिंग जैसे तमाम ऑनलाइन शिक्षण–माध्यम हैं, जिनसे दुनिया के किसी भी छोर पर बैठा व्यक्ति आसानी से हिंदी सीख सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी ने भाषा को कागज़ और कलम के बंधन से भी मुक्त किया है। एक अहिंदी भाषी के लिए कलम से हिंदी लिखना कठिन कार्य है। किंतु यूनिकोड के आगमन और फ़ोनेटिक की–बोर्ड की उपलब्धता ने उसकी मुश्किल आसान कर दी है। अब वह अंग्रेज़ी की–बोर्ड का प्रयोग करते हुए हिंदी में दक्षता के साथ काम कर सकता है। विभिन्न प्रकार के ऑनलाइन शब्दकोषों और ट्रांसलेशन एप्लीकेशनों की मदद से अब हिंदी में संप्रेषण की चाहत रखने वाला दुनिया का कोई भी व्यक्ति हिंदी में अपनी बात रख सकता है, जो यह दर्शाता है कि प्रौद्योगिकी के कारण हिंदी की परिधि विस्तृत हुई है।

2. रोज़गार

भाषा का रोज़गार से भी सीधा संबंध है। जिस भाषा को सीखने से रोज़गार प्राप्त होने की सर्वाधिक संभावना होती है, लोग वही भाषा सीखते हैं। यद्यपि हिंदी में वैश्विक स्तर पर रोज़गार की उतनी संभावनाएँ नहीं हैं, जितनी अंग्रेज़ी में हैं, पर हिंदी भाषियों के बीच सेवा प्रदान करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए हिंदी में ही अपार संभावनाएँ हैं। वे हिंदी के द्वारा ही हिंदी–भाषियों के बीच अपने उत्पादों और सेवाओं का विपणन कर सकती हैं। रोज़गार और हिंदी–प्रसार का एक अन्य पहलू यह भी है कि जब रोज़गार के प्रयोजन से एक हिंदी–भाषी विदेशों में जाता है, तो उसकी वृत्ति की भाषा तो अंग्रेज़ी होती है, पर मातृभाषा हिंदी

होने के कारण वह जाने–अनजाने विदेशी धरती पर हिंदी के बीज बिखेरता रहता है। आज अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, कनाडा, फ्रांस सहित खाड़ी देशों में तमाम हिंदी–भाषी नौकरी कर रहे हैं। विदेशी धरती पर हिंदी–भाषियों की बड़ी संख्या में उपस्थिति वहाँ की फ़िज़ा में अनायास ही हिंदी घोल देती है।

रोज़गार के अवसरों से सिर्फ़ विदेशों में ही हिंदी का प्रसार नहीं हुआ है, अपितु देश के उन भागों में भी हिंदी फैली है, जहाँ पहले उसके बोलने और समझने वाले इक्के–दुक्के हुआ करते थे। उदाहरण के लिए दक्षिण भारत में अब से तीस–चालीस बरस पूर्व तक हिंदी बोलने और समझने वाले काफ़ी कम होते थे। पर सन् 1991 में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के फलस्वरूप वहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के तमाम कार्यालय, कारखाने और संयंत्र खुले, जिससे नौकरी के नए अवसर पैदा हुए। इन नौकरियों के लिए जब बड़ी संख्या में उत्तर भारत के पेशेवर वहाँ गए, तो वहाँ बाज़ार, हाट, मॉल, रेस्तोराँ, बस–स्टैण्ड आदि के साथ–साथ गली, मुहल्ले के लोग भी हिंदी से परिचित होने लगे। वर्ष 2011 की जनगणना के आँकड़े बताते हैं कि वर्ष 2001 से 2011 के बीच दक्षिण भारतीय राज्यों में हिंदी बोलने वालों की संख्या में 33 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। हिंदी बोलने वालों की संख्या में वृद्धि के ये आंकड़े प्रवास के बदलते ट्रेंड का परिणाम हैं।

3. व्यापार

देशों को करीब लाने में आर्थिक निहितार्थों की अहम भूमिका रही है। यही कारण है कि कुछ लोग वैश्वीकरण को बाज़ारवाद का पर्याय भी मानते हैं। मुक्त बाज़ार व्यवस्था के दौर में अधिक मुनाफ़े वाले बाज़ारों की तलाश और निवेश पर अधिकतम प्रतिफल अर्जित करने की ख्वाहिश ने व्यावसायिक गतिविधियों का दायरा बढ़ाकर पूरा विश्व कर दिया है। व्यापार भाषा के बिना संभव नहीं है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जितनी तेज़ी से कारोबारी गतिविधियाँ बढ़ी हैं, भाषा का प्रसार भी उसी रफ़्तार से हुआ है। दुनिया में हिंदी–भाषी उपभोक्ताओं की तादाद काफ़ी अधिक है। 2011 की जनगणना के अनुसार सिर्फ़ भारत में ही हिंदी बोलने वालों की संख्या 52 करोड़ थी और इसमें लगभग 25 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि (2001 से 2011) देखी गई। भारत के अलावा नेपाल, मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम, गयाना, त्रिनिदाद, टोबेगो, सिंगापुर, भूटान, इंडोनेशिया, बाली, सुमात्रा, बांग्लादेश और पाकिस्तान में हिंदी खूब बोली व समझी जाती है। विश्व के इस बड़े उपभोक्ता वर्ग तक माल और सेवाएँ पहुँचाने के लिए हिंदी को अपनाना बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मजबूरी बन गई है। आज सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी का जो विकास हुआ है, वह उन देशों/बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रयासों से हुआ है, जिनकी भाषा तो हिंदी नहीं थी, पर कारोबार के लिए अहम ज़रूरत थी। माइक्रोसॉफ़्ट द्वारा हिंदी सहित विभिन्न भाषाओं के कैरेक्टर्स की जो यूनिकोडिंग की गई, उसका मूल उद्देश्य कारोबार की आधार भूमि तैयार करना था। ठीक उसी तरह से, जिस तरह अंग्रेज़ों ने भारत में अपनी कारोबारी ज़रूरतों के लिए रेल, डाक, तार जैसी बुनियादी सुविधाएँ विकसित कीं और जो भारतीयों के काम भी आईं। आज 'स्पीच टू टेक्स्ट' और 'टेक्स्ट टू स्पीच' जैसे कई एप्लिकेशन हैं, जहाँ ट्रांसलेशन टूल की मदद से एक अहिंदी भाषी कारोबारी एक हिंदी भाषी कारोबारी से संवाद स्थापित कर सकता है। माइक्रोसॉफ़्ट के इंजीनियर डॉ. बालेंदु शर्मा दाधीच कहते हैं कि हम कारोबार के क्षेत्र में भाषा–तकनीक की पराकाष्ठा तब समझेंगे, जब भारत का एक अनपढ़ हिंदी–भाषी किसान टेक्सास के कारोबारी को अपने उत्पाद फ़ेस–टू–फ़ेस मोल–तोल के ज़रिए बेच रहा होगा। प्रौद्योगिकी ने यह संभव कर दिखाया है कि कोई एक भाषा जानने पर आप सब भाषा–भाषियों के बीच कारोबार कर सकते हैं। हिंदी भाषियों की तादाद ही उनकी सबसे बड़ी मज़बूती है, जो अंतरराष्ट्रीय कारोबार में हिंदी को हमेशा केंद्रीय भूमिका में रखेगी। आज विश्व के 93 से अधिक देशों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। विदेशों में पठन–पाठन का यह काम हिंदी को बढ़ावा देने या संरक्षित करने की किसी नैतिक अथवा संवैधानिक ज़िम्मेदारी के तहत नहीं हो रहा, बल्कि यह सब हिंदी की संभावनाओं के दृष्टिगत किया जा रहा है।

4. निजीकरण

निजीकरण और मुक्त बाज़ार व्यवस्था वैश्वीकरण के अनिवार्य घटक हैं। कतिपय मामलों में निजीकरण से हिंदी प्रयोग को बढ़ावा मिला है। यदि हम इसे दुनिया के सबसे बड़े हिंदी–भाषी देश भारत के संदर्भ में देखें, तो ज्ञात होता है कि वहाँ

नब्बे के दशक के पूर्व तक इलेक्ट्रॉनिक लोक–संचार का माध्यम केवल आकाशवाणी और दूरदर्शन थे। किंतु नब्बे के दशक में शुरू हुए आर्थिक उदारवाद के फलस्वरूप मीडिया के क्षेत्र में निजी कंपनियों का प्रवेश हुआ और देखते–ही–देखते खेल, समाचार, फ़िल्म, मनोरंजन से जुड़े तमाम हिंदी चैनल अस्तित्व में आ गए। इन चैनलों ने विज्ञापन और खबरों के कारोबार से मुनाफ़ा कमाने के साथ–साथ हिंदी का भी भरपूर प्रचार–प्रसार किया। मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। यह जनता और सरकार के मध्य संपर्क की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। भारत में हाल के वर्षों में हिंदी समाचार चैनलों ने लोकप्रियता का जो मुकाम हासिल किया है, वह अपने आप में एक मिसाल है। निजी चैनलों ने सिर्फ़ खबर सुनाने के एकपक्षीय संप्रेषण–क्रम को तोड़ते हुए ज्वलंत मुद्दों पर पैनल चर्चा का जो अभिनव प्रयोग किया है, उससे न केवल हिंदी भाषा के प्रसार को गति मिली है, अपितु विषय के विविध पहलुओं पर लोगों की समझ भी बढ़ी है। निजी क्षेत्रों द्वारा संचालित हिंदी का प्रिंट मीडिया भी हिंदी प्रसार में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। आज भारत के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले अखबारों में प्रथम चार स्थान पर हिंदी के अखबार (दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, अमर उजाला और हिंदुस्तान) हैं और इनकी रीडरशिप निरंतर बढ़ रही है, जो हिंदी के लिए एक शुभ संकेत है।

5. प्रवास और पलायन

वैश्वीकरण प्रवासन को बढ़ावा देता है और इससे भाषाएँ सरहदों के पार पहुँचती हैं। प्रवासन स्वैच्छिक भी हो सकता है अथवा शासन–प्रायोजित भी। प्रायोजित प्रवासन के तहत सन् 1834 से लेकर 1922 तक ब्रिटिश हुकूमत द्वारा पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से बहुत से श्रमिकों को चाय और गन्ने के खेतों में काम के लिए फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना जैसे उपनिवेशों में ले जाया गया। चूँकि ये लोग बहुत मेहनती थे और अपने सक्रिय योगदान से वहाँ की अर्थव्यवस्था को मज़बूत कर रहे थे, अतएव, वहाँ की सरकारों ने उन्हें वहीं बस जाने का प्रस्ताव दिया और कालांतर में वे हमेशा के लिए वहाँ रच–बस गए। इनके बसने के साथ ही इनकी भाषा (हिंदी) और संस्कृति भी विदेशी भूमि पर पुष्पित और पल्लवित होने लगी। वैश्वीकरण ने टैलेंट के पलायन को बढ़ावा दिया है और इससे स्वैच्छिक प्रवासन तेज़ हुआ है। आज बहुत से हुनरमंद हिंदी–भाषी बेहतर अवसरों की तलाश में विदेशों में नौकरी के लिए जाते हैं और कालांतर में वहीं बस जाते हैं। इस प्रक्रिया से भी हिंदी का बीज–वृक्ष विदेशों में पनपने लगता है।

वैश्वीकरण का हिंदी पर नकारात्मक प्रभाव

वैश्वीकरण के फलस्वरूप जहाँ एक ओर हिंदी का प्रसार विदेशों तक हुआ है, वहीं अपने ही घर में हिंदी की स्थिति (विशेषकर लेखन में) उत्साहजनक नहीं रही है। हिंदी की इस स्थिति के लिए ज़िम्मेदार कारणों को हम निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत स्पष्ट करेंगे :

1. वैश्विक संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार्यता

वैश्वीकरण ने जब रोज़गार का दायरा बढ़ाकर पूरा विश्व कर दिया, तो एक ऐसी भाषा की आवश्यकता महसूस की जाने लगी, जो दुनिया के हर कोने में समझी जाती हो। इस लिहाज़ से एक संपर्क भाषा के रूप में वैश्विक स्तर पर अंग्रेज़ी की स्वीकार्यता हिंदी के मुकाबले काफ़ी अधिक थी। यही कारण रहा कि हिंदी–भाषी क्षेत्रों की नई पीढ़ी अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ाई करने को उन्मुख हुई और देखते–ही–देखते इंग्लिश मीडियम स्कूलों की बाढ़–सी आ गई। इन सबके चलते हिंदी क्रमशः लेखन में नदारद होने लगी और उसका बृहत् शब्द–भंडार प्रयोग के स्तर पर धीरे–धीरे सिकुड़ने लगा। शब्दों की अपनी आयु होती है। जिस शब्द का जितना अधिक प्रयोग होता है, वह उतना दीर्घायु होता है और जिन शब्दों का बहुत कम प्रयोग होता है, वे आहिस्ता–आहिस्ता मृतप्राय हो जाते हैं। शब्दों के मरने से भाषा का क्षरण शुरू हो जाता है और वह अभिव्यक्ति के लिए दूसरी भाषाओं के शब्दों की मोहताज हो जाती है। आचार्य चाणक्य ने ठीक ही कहा है : "अनभ्यासे विषं विद्या अजीर्णे भोजनं विषम्। विषं सभा दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम्।।" अर्थात् जिस प्रकार अभ्यास न करने से विद्या नष्ट हो जाती है, उसी तरह प्रयोग न होने से भाषा नष्ट हो जाती है।

2. तकनीकी विषयों से संबंधित अध्ययन सामग्री का अभाव

वैश्वीकरण ने अर्थवाद को बढ़ावा दिया है या दूसरे शब्दों में कहें, तो अर्थवाद ही वैश्वीकरण का प्रणेता है। आज के आर्थिक

युग में युवा पीढ़ी उन्हीं विषयों का अध्ययन करती है, जिनके अध्ययन से बेहतर आर्थिक ज़रिया पैदा होने की संभावना हो। अब लोग साधारण बी.ए., बी.एस.सी., बी.कॉम., एम.ए., एम.एस.सी. में दाखिला लेने की बजाय, इजीनियरिंग, मेडिकल, वित्त, प्रबंधन, कंप्यूटर आदि से जुड़े पेशेवर पाठ्यक्रमों, डिप्लोमा और डिग्रियों को तरजीह दे रहे हैं। इन कोर्सों की अध्ययन सामग्री या तो हिंदी में नहीं है अथवा अनूदित क्लिष्ट हिंदी में है। इन विशिष्ट विषयों की अध्ययन सामग्री हिंदी में उपलब्ध न होने के कारण हिंदी–भाषी मजबूरन अंग्रेज़ी की शरण में जा रहे हैं। जब वे अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़कर उपरोक्त डिग्रियाँ/डिप्लोमा हासिल करेंगे, तो ज़ाहिर है कि उनकी हिंदी–अभिव्यक्ति उतनी धारदार नहीं रह जाएगी।

3. पाश्चात्य संस्कृति की ओर झुकाव

वैश्वीकरण के कारण दुनिया का सिर्फ़ आर्थिक मोर्चे पर ही एकीकरण नहीं हुआ है, अपितु सांस्कृतिक एकीकरण भी हुआ है। यदि हम भारत की बात करें, तो देखते हैं कि उदारीकरण के बाद से विचारधारा स्तर पर पाश्चात्य संस्कृति तेज़ी से हावी हुई है, जो लॉर्ड मैकाले के उस विज़न को पुष्ट करती है, जो उसने ब्रिटिश भारत में अंग्रेज़ी–शिक्षा के संबंध में 1835 में अपने 'मिनट ऑफ़ एजुकेशन' में व्यक्त किया था – "मैं लोगों का एक ऐसा वर्ग तैयार करूँगा, जो रंग रूप में तो भारतीय होगा, किंतु विचारधारा से बिल्कुल अंग्रेज़ होगा।" यही नहीं, उसने भारत और अरब के साहित्य की उपयोगिता का मज़ाक उड़ाते हुए कहा था – "एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की सिर्फ़ एक शेल्फ़ भारत और अरब के संपूर्ण साहित्य से बेहतर है।" मैकाले के इस विज़न से प्रेरित कुछ हिंदी–भाषी अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व करने की बजाय विदेशी भाषा और संस्कृति का अनुसरण करने में गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं। भाषा का संस्कृति से अविच्छिन्न संबंध होता है। संस्कृति परिवर्तित होने पर भाषा भी परिवर्तित हो जाती है। एक हिंदी–भाषी के दैनिक व्यवहार में पाश्चात्य संस्कृति का जैसे–जैसे दखल बढ़ेगा, वह अपनी ही भाषा से दूर होता जाएगा। हिंदी के साथ आज यही हो रहा है। वैश्वीकरण सैद्धांतिक तौर पर भले ही विश्व को एक समाज के रूप में देखता हो, पर वास्तविकता में इसने समाज को व्यक्ति केन्द्रित कर दिया है। यह समाजवाद की बजाय पूँजीवाद का हिमायती है। इसने शहरीकरण को बढ़ावा दिया है और इससे हमारी लोक भाषाएँ, लोक संस्कृति और लोक कलाएँ, जिनसे हिंदी अभिसिंचित है, विलुप्त हो रही हैं। अब शादी समारोहों में अवधी में सोहर गाती औरतें अथवा भोजपुरी लोकगीतों को गुनगुनाते हुए खेतों में धान की रोपाई करता महिलाओं का झुण्ड बिरले दिखता है। 'टाटा–बाय–बाय', 'हेलो सी यू' जैसी पाश्चात्य पद्धतियों ने 'चरण स्पर्श', 'प्रणाम', 'पाँय लागौं' जैसे आत्मीयतापूर्ण अभिवादन के हमारे संस्कारों को हमसे दूर कर दिया है। हम यजुर्वेद में वर्णित अपनी सनातन संस्कृति "सा प्रथमा संस्कृतिः विश्ववारा" की महत्ता को भूल चुके हैं। आज नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की पथ–प्रदर्शक बनी हुई है और पुरानी पीढ़ी की भाषा, वेशभूषा, खान–पान, संस्कारों, मान्यताओं आदि पर तंज कसते हुए, उन्हें उनके पिछड़ेपन का अहसास कराती है। अपनी संस्कृति के प्रति नई पीढ़ी का ऐसा दृष्टिकोण हिंदी के आधार को धीरे–धीरे कमज़ोर कर रहा है।

4. सूचना–प्रौद्योगिकी के साथ शुरुआती फ़ासला

शुरू–शुरू में जब कंप्यूटर/मोबाइल आए थे, तो वे सिर्फ़ अंग्रेज़ी में कार्य करने में सक्षम थे। यही हाल ई–मेल, ब्लॉग, ऐप्स और सोशल मीडिया के अन्य प्लेटफ़ॉर्मों का भी था। यद्यपि कालांतर में इनपर हिंदी सहित अन्य भाषाओं में कार्य करने की सुविधा हुई, किंतु तब तक देर हो चुकी थी, क्योंकि हिंदी–भाषियों को इनपर अंग्रेज़ी में कार्य करने की आदत लग गई थी। जिस प्रकार ओलम्पिक की 100 मीटर की दौड़ में यदि किसी धावक के शुरुआती कदम लड़खड़ा जाएँ, तो वह लाख कोशिशों के बावजूद रेस जीत नहीं पाता, वही स्थिति हिंदी के साथ भी रही और जिसका दंश वह आज रोमन लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी के रूप में झेल रही है। भाषा लिपि के बिना नहीं चल सकती। हिंदी का सही मायने में विस्तार तभी होगा, जब वह अपनी लिपि अर्थात् देवनागरी के साथ आगे बढ़ेगी।

हिंदी पर वैश्वीकरण के प्रभावों का समग्र विश्लेषण करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कतिपय नकारात्मक प्रभावों के बावजूद वैश्वीकरण के फलस्वरूप हिंदी के प्रचार–प्रसार का क्षेत्र काफ़ी व्यापक हुआ है। इसमें दूसरी भाषाओं के

प्रचलित शब्द भी शामिल हो रहे हैं, जो इसकी जीवंतता और समय– सापेक्षता की निशानी हैं। पहले विदेशियों द्वारा जो भाषा खुफ़िया जानकारियाँ एकत्र करने के सीमित उद्देश्य से सीखी जाती थी, वही अब कारोबार, ज्ञान, कला, संस्कृति जैसे बृहत् उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सीखी जा रही है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाचिक भाषा के रूप में इसका प्रयोग बढ़ रहा है, जो भाषा के भावी अस्तित्व के बारे में स्वर्णिम संकेत है। हिंदी की व्यापक अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति बढ़ती रहे, इसके लिए हिंदी–भाषी देशों का विश्व मंच पर केंद्रीय भूमिका में रहना बहुत ज़रूरी है। हिंदी–भाषी देश आर्थिक, वैज्ञानिक, सामरिक और राजनीतिक रूप से जितना अधिक सशक्त होंगे, विश्व फलक पर हिंदी का परचम उतनी तेज़ी से लहराएगा।

संदर्भ :

1. महोपनिषद्, अध्याय 4, श्लोक 71
2. Jerry Bentley, Old World Encounters: Cross-Cultural Contacts and Exchanges in Pre-Modern Times (New York: Oxford University Press, 1993), 32.
3. Elisseeff, Vadime (2001). *The Silk Roads: Highways of Culture and Commerce*. UNESCO Publishing / Berghahn Books. ISBN : 978-92-3-103652-1.
4. Albrow, Martin; King, Elizabeth (1990). Globalization, Knowledge and Society. London: Sage. ISBN : 0-8039-8323-9. OCLC 22593547.
5. Larsson, Thomas. (2001). *The Race to the Top: The Real Story of Globalization* Washington, DC: Cato Institute. p. 9. ISBN : 978-1-930865-15-0.
6. "Globalization: Threat or Opportunity". International Monetary Fund. 12 April 2000.
7. संयुक्त राष्ट्र में हिंदी, प्रमोद भार्गव का आलेख, 10वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन https://hindi.webdunia.com/10th-world-hindi-conference-articles/vishwa-hindi-sammelan-115090900054_1.html
8. IRS Q3, 2019
9. (चाणक्य–नीतिः 4.15)

sanjaikumarun@gmail.com

हिंदी भाषा पर अंग्रेज़ी का वर्चस्व

– डॉ. काजल पाण्डेय
पुणे, भारत

हम कितना ही कह लें कि हमें हमारी हिंदी भाषा से प्रेम है, लेकिन सच कुछ और ही है। आज भी हमारे भारत देश में कई लोग हिंदी–भाषी होकर हिंदी बोलने में झिझकते हैं और इसमें दो श्रेणी के लोग आते हैं – पहले तो वे, जिन्हें कहीं–न–कहीं ये लगता है कि हिंदी बोलने पर उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाएगा और दूसरे वे जिन्हें ये लगता है कि हिंदी बोलने से उनका समाज में स्तर गिर जाएगा। लोगों की ये भी मानसिकता हो गई है कि जो अंग्रेज़ी बोलना नहीं जानता, वह कम पढ़ा–लिखा है। हिंदी के स्थान पर अंग्रेज़ी बोलना लोग अपनी शान समझते हैं और बड़े गर्व से बोलते हैं कि हमें तो हिंदी बोलना आता ही नहीं है।

इन दिनों सरकारी कार्यालयों के साथ–साथ प्राइवेट कार्यालयों में भी हिंदी पर बहुत काम किया जा रहा है, पर बोलने में कोई आगे आकर यह नहीं कहता कि हिंदी में बात करें। सरकारी कार्यालय हो या फिर प्राइवेट, दोनों में अंग्रेज़ी बोलने वालों को ही ऊँची दृष्टि से देखा जाता है, चाहे वह काम करता हो या न करता हो, चाहे उसे काम का ज्ञान हो या न हो। बस वह अच्छी अंग्रेज़ी बोलता है, इसलिए यह मान लिया जाता है कि उसे सब आता है। जबकि यह देखा गया है कि कई अच्छी अंग्रेज़ी बोलने वालों को तो अंग्रेज़ी में पत्र–व्यवहार तक करना नहीं आता, कई अंग्रेज़ी शब्दों का अर्थ भी पता नहीं होता, जबकि दूसरी ओर, हिंदी कार्यरत कर्मचारी पूरी निष्ठा से काम करे, काम का अच्छा ज्ञान रखता हो, हिंदी के साथ–साथ अंग्रेज़ी में भी कार्यालयी पत्र–व्यवहार भी करे, तब भी उन्हें हीन भावना से देखा जाता है।

जहाँ कार्यालयों में राजभाषा हिंदी को अपनाने की बात कही गई है, वहाँ स्थिति कुछ और ही होती है, जिसे मैंने निम्नलिखित उदाहरणों से बताने का प्रयास किया है :

1. **वार्षिक प्रदर्शन मूल्यांकन रिपोर्ट** – अगर बात की जाए वार्षिक प्रदर्शन मूल्यांकन रिपोर्ट की, जिसे अंग्रेज़ी में 'अप्रेज़ल' कहते हैं, तो वह भी अंग्रेज़ी में होता है, चाहे उसे किसी हिंदी कार्यरत कर्मचारी द्वारा ही क्यों न भरना हो। यह तो बहुत ही हास्यप्रद है कि हिंदी से संबंधित काम करने वाले कर्मचारी को अपनी वार्षिक प्रदर्शन मूल्यांकन रिपोर्ट अंग्रेज़ी में भरनी पड़ती है, क्योंकि उसके कार्यालय में वार्षिक प्रदर्शन मूल्यांकन रिपोर्ट का प्रारूप अंग्रेज़ी में ही उपलब्ध होता है। आजकल वार्षिक प्रदर्शन मूल्यांकन रिपोर्ट में संचार कौशल के लिए भी अंक दिए जाते हैं और जिसे यह मानकर चला जाता है कि इस कार्यालय में अंग्रेज़ी में वार्तालाप करने के लिए ही है। मुझे समझ नहीं आता कि भारत जैसे देश में हिंदी में न बोल पाने वालों को, जहाँ हिंदी बोलने के लिए बढ़ावा देना चाहिए, उसकी जगह अंग्रेज़ी न बोल पाने वाले को कम अंक देकर आँका जाता है।

2. **साक्षात्कार** – अब जब नौकरी के लिए साक्षात्कार की बात आती है, तो यहाँ भी यही देखा जाता है कि साक्षात्कार लेने वाले अंग्रेज़ी में ही प्रश्न पूछते हैं और उम्मीदवार से अपेक्षा करते हैं कि वह अंग्रेज़ी में ही उत्तर दें, जबकि रिक्ति हिंदी अधिकारी या हिंदी अनुवादक या हिंदी कार्य से संबंधित होती है। ऐसा ही पदोन्नति साक्षात्कार के समय भी होता है। साक्षात्कार के समय साक्षात्कार लेने वालों में या तो हिंदी भाषी होते नहीं और अगर होते हैं, तो हिंदी न जानने का नाटक करते हुए अंग्रेज़ी में ही वार्तालाप करते हैं। कई बार तो यह अनिवार्य कर दिया जाता है कि उम्मीदवार अंग्रेज़ी में ही साक्षात्कार दें।

3. **प्रस्तुतीकरण** – प्रायः देखा जाता है कि कार्यालय में कार्य संबंधी प्रस्तुतीकरण दिए और लिए जाते हैं, जो अंग्रेज़ी में ही होते हैं, जबकि वे द्विभाषी होने चाहिए। अब अगर यह उम्मीद की जाए कि हिंदी कार्यरत कर्मचारी हिंदी संबंधित कार्य का अंग्रेज़ी में प्रस्तुतीकरण दे, तो इससे बड़ी बेवकूफ़ी और कोई नहीं है।

4. रिपोर्टिंग अधिकारी – कई कार्यालयों में तो हिंदी कार्यरत कर्मचारी के रिपोर्टिंग अधिकारी का हिंदी से दूर–दूर तक कोई लेना–देना ही नहीं होता। न तो रिपोर्टिंग अधिकारी के पास हिंदी संबंधित योग्यता होती है, न ही उसे हिंदी का सामान्य ज्ञान होता है और ऐसा होने से वह अपने अधीन कार्यरत हिंदी संबंधित कार्य करने वाले कर्मचारी को कोई परामर्श ही नहीं दे सकता है। ये तो कार्यालयों में हिंदी के लिए कार्य करने वालों की स्थिति है।

5. हिंदी सम्मेलन – जो कर्मचारी हिंदी योग्यता प्राप्त होने के साथ–साथ कई वर्षों से हिंदी संबंधित कार्य ही कर रहा है और जो पूर्ण रूप से हिंदी सम्मेलनों में जाने का इच्छुक और योग्य है, उसे न भेजकर उन लोगों को हिंदी सम्मेलनों में भेजा जाता है, जिनका दूर–दूर तक हिंदी कार्यालयी भाषा से कोई संबंध नहीं होता। कार्यालयों में अगर हिंदी में कार्य करना अनिवार्य किया गया है, तो हिंदी संबंधित योग्यता रखने वालों या फिर हिंदी के क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारी को हिंदी सम्मेलनों में भेजना भी अनिवार्य करना चाहिए।

6. सम्मेलनों/आलेखों आदि की सूचना – प्रायः देखा गया है कि कार्यालयों में अंग्रेज़ी से संबंधित सम्मेलनों/आलेखों आदि सभी आवश्यक जानकारी की सूचना संप्रेषित की जाती है और यही बात अगर हिंदी के लिए देखी जाए, तो हिंदी से संबंधित सम्मेलनों/आलेखों आदि किसी भी जानकारी की सूचना को संप्रेषित करना अनिवार्य नहीं समझा जाता, जिसके कारण कई हिंदी प्रेमी हिंदी से संबंधित सम्मेलनों में भाग लेने और अपने आलेखों को प्रस्तुत करने से वंचित रह जाते हैं।

7. हिंदी दिवस पर अंग्रेज़ी का वर्चस्व – अंग्रेज़ी के वर्चस्व को यहाँ तक देखा जा सकता है कि हिंदी दिवस पर भी भारत के हिंदी भाषी अधिकारी अंग्रेज़ी में भाषण देते हैं और साथ में यह कहते हुए ज़रा भी नहीं झिझकते कि 'हमें तो पता ही नहीं था कि आज के दिन हिंदी में भाषण देना है', इससे बड़ा हिंदी का अपमान और क्या होगा?

8. अहिंदी भाषी की नियुक्ति – आजकल कार्यालयों में देखा जाता है कि हिंदी–भाषी और हिंदी के ज्ञान की डिग्री लिए हुए लोगों को नियुक्त करने के स्थान पर दूसरे भाषी जैसे कन्नड़, संस्कृत, उर्दू, मराठी, उड़िया, बांग्ला भाषी लोगों को हिंदी संबंधित काम कराने के नाम पर नियुक्त किया जाता है, क्योंकि कहीं–न–कहीं वे सिफ़ारिश लिए होते हैं। नियुक्ति के समय, पदोन्नति के समय और श्रेय देने के समय उन्हें ही योग्य समझा जाता है, लेकिन जब हिंदी से संबंधित काम कराने की बात आती है, तो या तो उनसे कराया नहीं जाता या उनके अधीन हिंदी ज्ञानियों को नियुक्त कर दिया जाता है या फिर उनके द्वारा किए गए कार्य की त्रुटियों को नज़रअंदाज़ करके दूसरे से वह कार्य ठीक कराया जाता है।

9. कंप्यूटर – आजकल हर कार्यालय में कंप्यूटर पर ही सारा कार्य किया जाता है। पहले यहाँ सिर्फ़ अंग्रेज़ी में ही कंप्यूटर पर कार्य किया जा सकता था, वहीं यूनीकोड फ़ॉण्ट के आने से कंप्यूटर पर अब हिंदी के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं में भी कार्य करना सरल हो गया है, जिसके कारण उच्च अधिकारी, हिंदी से संबंधित कार्य करने वाले अधिकारी से यह आशा करते हैं कि वह अनुवाद संबंधित कार्य को जल्द–से–जल्द करके उनके सम्मुख प्रस्तुत करे। कंप्यूटर पर त्वरित गति से कार्य करने के लिए कंप्यूटर का विन्यास अच्छा होना चाहिए, इसके बावजूद उन्हें अच्छे विन्यास के कंप्यूटर से वंचित रखा जाता है।

10. टीम – सामान्यतः प्रत्येक कार्यालय में किसी भी कार्य को करने के लिए एक टीम बनाई जाती है, ताकि कार्य को सही तरीके से विभाजित करके किया जाए, जिससे एक ही कर्मचारी पर अधिक कार्य का बोझ न पड़े। यहीं हिंदी से संबंधित कार्य करने वाले कर्मचारी के संबंध में यह बात नहीं देखी जाती। उसके साथ कोई टीम नहीं होती। सारा हिंदी संबंधित कार्य उस अकेले कर्मचारी को ही करना पड़ता है और वह भी जल्द–से–जल्द, क्योंकि यह सीधे–सीधे मान लिया जाता है कि हिंदी का कितना ही काम क्यों न हो, वह अकेला कर्मचारी उस काम को अकेले ही कर लेगा।

11. वेबसाइट – राजभाषा नीति के अनुसार कार्यालयों की वेबसाइट भी द्विभाषी होनी चाहिए, लेकिन ऐसा है नहीं। कई कार्यालयों ने वेबसाइट पर या तो अपने संस्थान का नाम सिर्फ़ हिंदी में दिखाया है और या फिर अधिक–से–अधिक होम पेज के विषयों को। उसके बाद सब अंग्रेज़ी में ही होता है।

12. उपकरण / सॉफ़्टवेयर – प्रायः देखा जाता है कि कार्यालय अपने उपकरणों और सॉफ़्टवेयरों के नाम सिर्फ़ हिंदी में रखते हैं, लेकिन आगे का बाकी सब काम अंग्रेज़ी में ही होता है।

13. पुस्तकालय – प्रत्येक कार्यालय में पुस्तकालय होता है और राजभाषा नीति के अनुसार वहाँ हिंदी की पुस्तकें भी होनी चाहिए, लेकिन प्रायः ऐसा देखा नहीं जाता। या तो हिंदी भाषा में पुस्तकें होती नहीं हैं या फिर नाममात्र के लिए कुछ रख दी जाती हैं।

14. टाइपिंग – हिंदी अनुवादक या राजभाषा अधिकारी या हिंदी अधिकारी का काम आजकल अनुवाद करने का कम, टाइप करने का अधिक हो गया है। कार्यालय वाले यह मानकर चलते हैं कि जो भी हिंदी का कार्य करेगा वह हिंदी टाइपिंग जानता भी हो और उसमें काम भी करे। यहाँ तक कि आजकल तो साक्षात्कार में भी पूछने लग गए हैं कि आपको हिंदी टाइपिंग तो आती है न? यह स्तर कर दिया गया है आजकल हिंदी कार्यरत कर्मचारियों का।

यहाँ तो मैंने विभिन्न कार्यालयों में हिंदी संबंधित समस्याओं के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, लेकिन इसके साथ–साथ हमारे दैनिक जीवन में भी हम हिंदी से संबंधित समस्याओं से जूझते हैं :

1. मैंने एक टी.वी. धारावाहिक में देखा कि एक स्कूल में नई अध्यापिका आती है और बोलती है कि मेरे स्कूल में वही अध्यापक रहेगा जिसे अंग्रेज़ी बोलनी आती होगी। अब अगर हिंदी, संस्कृत और हिंदी माध्यम में पढ़ाने वाले अध्यापकों से कोई यह कहे कि आपको अंग्रेज़ी आना अनिवार्य है, तो क्या यह सही है? और जब टी.वी. जैसे संचार माध्यम में भी हिंदी के लिए ऐसा संदेश प्रेषित किया जा रहा है, तो जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

2. आजकल प्रत्येक अभिभावक यही चाहता है कि उसका बच्चा अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़े, क्योंकि हिंदी बोलने से हीन दृष्टि का सामना करना पड़ता है। अगर किसी बच्चे के माता–पिता को अंग्रेज़ी बोलनी नहीं आती, तो ये मान लिया जाता है कि न तो उस बच्चे से दोस्ती करनी है और न ही उसके अभिभावक से। मेरी 5 साल की बच्ची के लिए मैं स्वयं चाहती हूँ कि वह हिंदी के साथ–साथ अंग्रेज़ी का भी ज्ञान अर्जित करे। आजकल स्कूल में तो अंग्रेज़ी सब पढ़ाते हैं, लेकिन हिंदी की तरफ़ खास ध्यान नहीं देते, इसलिए मैंने अपनी बच्ची को हिंदी लिखना और पढ़ना पूरा सिखा दिया है, जबकि अभी उसकी कक्षा में हिंदी आरंभ भी नहीं हुई है, जिसके लिए मुझे गर्व महसूस होता है कि मेरी बच्ची अपनी मातृभाषा बचपन में ही लिखना और पढ़ना सीख चुकी है। वहीं दूसरी ओर, मेरी बच्ची की कक्षा में एक बच्ची की माँ अध्यापिका से कहती है कि उसकी बच्ची को हिंदी नहीं आती, तो क्या आप हिंदी को अंग्रेज़ी में अनुवाद करके बता सकती हैं और हिंदी की कक्षा में अंग्रेज़ी में बात कर सकती हैं। क्या मज़ाक बना रखा है लोगों ने हिंदी का। खुद भारतीय होकर न खुद हिंदी बोलते हैं और न ही अपने बच्चों को हिंदी सिखाते हैं।

3. मेरे एक जानने वाले हैं जिनकी 5 साल की बच्ची को हिंदी बोलनी ही नहीं आती, जबकि माता–पिता दोनों हिंदी भाषी हैं और वो इसलिए, क्योंकि वे दोनों अभिभावक अपनी बच्ची से घर–बाहर दोनों जगह अंग्रेज़ी में ही बात करते हैं, यहाँ तक कि उन्होंने उसका नाम भी अंग्रेज़ी शब्द से प्रभावित होकर 'कैंडी' रखा है। इसी से पता चलता है कि अभिभावक अपने बच्चों के नामकरण से ही अंग्रेज़ी का दामन थाम लेते हैं। ऐसे अभिभ. ावकों या ऐसे भारतीयों से आप क्या आशा करते हैं कि ये अपने बच्चों को कितनी हिंदी और कितनी भारतीय संस्कृति और सभ्यता सिखाएँगे?

4. मेरा ऐसा मानना है कि जिस प्रकार बच्चे को किसी हिंदी शब्द का अंग्रेज़ी अर्थ पढ़ाया जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक अंग्रेज़ी शब्द का हिंदी अर्थ भी पढ़ाना चाहिए। इससे प्रत्येक बच्चा बचपन से ही द्विभाषिकता के महत्त्व को समझेगा, जिससे उसकी दोनों भाषाओं के प्रति बराबर रुचि बनी रहेगी।

मुझे यही लगता है कि प्रत्येक कार्यालय के मानव संसाधन विभाग को हिंदी के क्षेत्र में अग्रणी कदम उठाना चाहिए। साथ–ही–साथ स्कूलों में भी अंग्रेज़ी के स्तर के साथ हिंदी का भी स्तरीकरण करके पढ़ाना चाहिए, तभी हिंदी भारत देश में अपना समुचित स्थान प्राप्त कर सकेगी। विदेशों में यदि हिंदी को पढ़ाया जा रहा है, तो हमें भी हिंदी को सुव्यवस्थित तरीके से अपनाकर देश के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा का परिचय देना चाहिए। जिस दिन प्रत्येक भारतीय हिंदी बोलने में गर्व महसूस करेगा और आने वाली पीढ़ी को हिंदी सीखने के लिए प्रोत्साहित करेगा, उसी दिन से हिंदी का स्तर अपने आप ऊँचा हो जाएगा। हमें देश की जन भाषा के रूप में हिंदी को अंगीकार करना चाहिए।

kajaldelhi2001@gmail.com

श्रद्धांजलि

38. आचार्य नंदकिशोर नवल का आलोचना कर्म - डॉ. अभिषेक शर्मा

39. प्रवासी लेखन का असमंजस और सुषम बेदी का साहित्य - रेखा सेठी

40. गिरिराज किशोर : मानवीय सरोकार के अप्रतिम रचनाकार - प्रो. विनोद कुमार मिश्र

आचार्य नंदकिशोर नवल का आलोचना कर्म

– डॉ. अभिषेक शर्मा
ओड़िशा, भारत

हिंदी भाषा और साहित्य के उन्नयन में नवोदित रचनाकारों के प्रोत्साहन और परिमार्जन का जो कार्य बीसवीं शताब्दी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया, वही कार्य इक्कीसवीं शताब्दी में आचार्य नंदकिशोर नवल ने किया है। प्रतिभाशाली युवा लेखकों को तराशना, उनकी भाषा को दुरुस्त करना, उनके विचारों को साहित्य की कसौटी पर कसना, अध्ययन और लेखन हेतु उन्हें अच्छी पुस्तकें उपलब्ध कराना और उनकी नूतन कृतियों की भूमिका और समीक्षाएँ लिखने जैसा गुरुत्वपूर्ण कार्य उन्होंने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में भी किया है। इस संदर्भ में बहुचर्चित युवा कवि 'राकेश रंजन' के प्रथम उपन्यास 'मल्लू मठफोड़वा' पर आचार्य नंदकिशोर नवल की टिप्पणी विशेष उल्लेखनीय है – *"राकेश रंजन से हिंदी के पाठक कमोबेश कवि–रूप में ही परिचित हैं, लेकिन दो वर्षों तक पत्र–पत्रिकाओं से प्रायः अनुपस्थित रहकर उन्होंने एक छोटा–सा उपन्यास लिखा है : 'मल्लू मठफोड़वा'। कालिदास ने अपने महाकाव्य 'कुमारसंभव' को कुमार के जन्म की संभावना तक लाकर समाप्त कर दिया है, उन्होंने कुमार का जन्म नहीं दिखलाया। बहुत कुछ वैसी ही कुशलता का परिचय देते हुए राकेश ने मल्लू के चरित्र की परिणिति नहीं दिखलाई, सिर्फ़ उसकी संभावनाओं की ओर संकेत करके उपन्यास को समाप्त कर दिया है। निश्चय ही राकेश के भीतर एक महान उपन्यासकार छिपा हुआ है, जिसकी पहली और हल्की–सी झाँकी हमें इस उपन्यास में मिली है। इच्छा तो होती है कि इसके रचयिता की कलम चूम ली जाए। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' की सफलता और विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास 'हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी' की असफलता के बाद यह दूसरा उपन्यास आया है, जो हवा के ताज़े झोंकों की तरह लगता है।"*[1]

उपरोक्त टिप्पणी को उद्धृत करने का आशय यहाँ सिर्फ़ इतना ही है कि एक नए नवेले लेखक को आलोचक उसकी पहली ही औपन्यासिक कृति से कथा जगत में स्थापित करने का स्नेहिल किंतु गंभीर प्रयास करता है। निःसंदेह हिंदी भाषा और साहित्य के विकास हेतु ऐसा दूरदर्शी प्रयास कोई लोकमान्य और महामना आलोचक ही कर सकता है। और नए लेखकों के समक्ष आचार्य नंदकिशोर नवल कुछ इसी रूप में प्रस्तुत होते थे। उन्हें कभी नागार्जुन जैसी उदारता, निष्पक्षता, वाक्चातुर्य और व्यंग्यात्मकता प्राप्त थी। कवि राकेश रंजन को स्थापित करने के उपरांत वे उन्हें कथा साहित्य का भी एक असाधारण लेखक बनाना चाहते थे और इसी योजना के तहत वे कवि राकेश रंजन के औपन्यासिक संवेदना और शिल्प की प्रशंसा करते हैं और उन्हें महाकवि कालिदास, शीर्षस्थ कथाकार काशीनाथ सिंह और विनोद कुमार शुक्ल के समानांतर खड़ा करते हैं। हिंदी भाषा और साहित्य की महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'सापेक्ष' के संपादक श्री महावीर अग्रवाल को दिए गए एक साक्षात्कार में अपने आलोचना कर्म पर प्रकाश डालते हुए आचार्य नंदकिशोर नवल कहते हैं कि "आलोचना वस्तुतः मेरे लिए आत्माभिव्यक्ति और आत्मान्वेषण का स्वाभाविक माध्यम है। मुझे आलोचना लिखनी होती है, तो पहले विषय आयत्त होता है, फिर मुख्य बिंदु मानस में उभरते हैं, फिर एक असह्य दबाव में लेख लिखकर मैं अपने को उससे मुक्त करता हूँ। मेरे लिए यह एक 'ट्रांस' की अवस्था होती है, जिससे मैं तभी निकल पाता हूँ, जब मस्तिष्क को बेचैन बनाए रखने वाली बातें कागज़ पर उतर आती हैं। यह प्रक्रिया कष्टकर भी होती है, पर उससे अधिक आनंददायक। मेरे आलोचनात्मक लेखन में ज़्यादा काट–पीट नहीं होती, क्योंकि विचार और विश्लेषण अपनी भाषा लिए हुए दिमाग में आते हैं। उसके वाक्य और अनुच्छेद मुझे जागृतावस्था में क्या नींद में भी परेशान कर डालते हैं।"[2]

आचार्य नंदकिशोर नवल जिस रचनात्मक बेचैनी का हवाला अपने साक्षात्कार में देते हैं, उसका बहुत कुछ श्रेय कवि 'निराला' और 'मुक्तिबोध' के साहित्य को भी जाता है। जहाँ एक तरफ़ उन्होंने अपने शोध प्रबंध के लिए 'निराला का काव्य विकास' शीर्षक चुना, वहीं दूसरी तरफ़ निराला : कवि छवि, निराला : कृति से साक्षात्कार (दो खंड), निराला : काव्य की छवियाँ, पार्श्व छवि, असंकलित कविताएँ : निराला, निराला रचनावली (आठ खंड), निराला और मुक्तिबोध : चार लंबी कविताएँ, मुक्तिबोध : रचना का पक्ष, मुक्तिबोध की कविताएँ : बिंब प्रतिबिंब और मुक्तिबोध : कवि छवि जैसी प्रौढ़ आलोचनात्मक कृतियों का सृजन भी किया है। आचार्य नंदकिशोर नवल की आलोचना पद्धति की विवेचना करते हुए प्रो. अपूर्वानंद लिखते हैं कि "विचारधारा की जकड़न से विचारों की स्वतंत्रता की नवल जी की यात्रा कष्ट साध्य रही। उन्हें खुद को ही कई जगह अस्वीकार करना पड़ा। लेकिन क्योंकि उनकी प्रतिबद्धता रचनाकार से भी आगे बढ़कर रचना से थी और विचारधारा से तो कतई नहीं थी, तो उन्हें खुद को बदलने में संकोच नहीं हुआ।"[3]

आचार्य नंदकिशोर नवल के आलोचना कर्म पर यदि हम सूक्ष्मता से विचार करें, तो पाएँगे कि उनकी आलोचना शैली बहुत हद तक 'निर्णयात्मक आलोचना' की कोटि में आती है। कवि राकेश रंजन के उपन्यास पर की गई टिप्पणी इसका एक उदाहरण तो है ही, मसलन ऐसे अनेक उदाहरण उनकी आलोचनात्मक कृतियों में भरे पड़े हैं और इसके लिए मैं उनकी लेखकीय निष्पक्षता को ज़िम्मेदार मानता हूँ और जो सर्वथा उचित भी है। 1 सितंबर, 2012 को स्वतंत्र पत्रकार 'श्री निराला' को दिए गए एक इंटरव्यू में वे कहते हैं कि *"धूमिल के बाद हिंदी में कोई कवि अब तक नहीं हो सका, जिसके रचनात्मक व्यक्तित्व का निर्माण पूरी तरह से हो गया हो। सब अभी मेकिंग प्रोसेस में हैं। विनोद कुमार शुक्ल, विष्णु खरे, आलोक धन्वा, मंगलेश डबराल, ज्ञानेंद्रपति, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, अरुण कमल की कविताओं को हमने देखा, जाना, पढ़ा है। इनकी कविताओं पर ठीक से एक लेख तक नहीं लिखा जा सकता, आलोचना की पुस्तक में शामिल करने की तो बात ही दूर। जीवित कवियों में सिर्फ़ कुँवर नारायण और केदारनाथ सिंह दो ही ऐसे हैं, जिनके रचनात्मक व्यक्तित्व का निर्माण हो गया है, इसलिए हमने उन्हें शामिल किया है। विजेंद्र को तो मैं कवि ही नहीं मानता। उनकी कविताओं में मार्क्सवादी विचारधारा हावी रहती है, जबकि कविता संवेदना की चीज़ है। कविता से संवेदना का ही पता चलना चाहिए। विचारों को संवेदना में परिवर्तित करना ही कविता है।"*[4] संपूर्ण साक्षात्कार पढ़ने से यह पता चलता है कि साहित्यिक लेखन का कोई भी ऐसा पहलू इस इंटरव्यू में छूटा नहीं है। वस्तुतः यह इंटरव्यू एक मर्मज्ञ पत्रकार द्वारा लिए किसी असाधारण साक्षात्कार जैसा है। इस इंटरव्यू में अपने विचारों द्वारा आचार्य नंदकिशोर नवल उन सभी रचनाकारों और संपादकों (श्री राजेंद्र यादव) आदि को खारिज करते हैं, जिन्हें समाज ने तो खारिज कर दिया है, किंतु वह किसी संगठन या सत्ता के माध्यम से महत्त्वपूर्ण और नियामक स्थानों पर काबिज हैं। इस साक्षात्कार के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंदी आलोचना में डॉक्टर रामविलास शर्मा के बाद 'स्पष्टवादिता' के संदर्भ में दूसरा नाम आचार्य नंदकिशोर नवल का ही आता है। उनके द्वारा लिखित पुस्तक हिंदी आलोचना का विकास सन् 1981 में प्रकाशित हुई थी और यह पुस्तक भी आलोचना पत्रिका में प्रकाशित लेखों का संकलन है, किंतु इसकी निष्पत्ति आज भी निर्विवाद है। इसी तरह उन्होंने अपने समय के महत्त्वपूर्ण, किंतु किन्हीं कारणों से ओझल हो गए रचनाकारों पर भी आलोचनाएँ लिखी हैं, जिनमें उत्तर छायावादी कवि रामगोपाल शर्मा 'रुद्र', राम जीवन शर्मा 'जीवन', राम अवतार शर्मा और राम इकबाल सिंह 'राकेश' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आचार्य नंदकिशोर नवल आलोचक नामवर सिंह की इस बात से हमेशा सहमत थे कि "आलोचना का काम अतीत की कृतियों को पुनर्जीवित करना है।"[5] आचार्य नंदकिशोर नवल सिर्फ़ आलोचक ही नहीं अपितु संपादक के रूप में भी ख्यातिलब्ध रहे हैं। उन्होंने 'ध्वजभंग', 'सिर्फ़', 'धरातल', 'उत्तरशती', 'आलोचना' और 'कसौटी' जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं का संपादन किया था, जो विद्वानों के साथ–साथ विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी थीं। उनके साहित्यिक अवदान पर विचार करते हुए 'ओम निश्चल' लिखते हैं कि "उन्होंने जो काम हिंदी साहित्य के क्षेत्र में किया है, वह सचमुच स्तुत्य है। उन्होंने अपने विपुल और विभिन्न वैचारिक अवधारणा के लेखकों–कवियों पर लिखकर यह

जताया कि मार्क्सवादी होकर भी साहित्य के व्यापक परिदृश्य के साथ कैसे समावेशी रुख अपनाया जा सकता है।"[6] वस्तुतः ओम निश्चल यहाँ आचार्य नंदकिशोर नवल जी की उस चिंतन पद्धति का हवाला दे रहे हैं, जो उन्हें किसी भी पंथ विशेष और विचारधारात्मक दुराग्रहों से अलग एक निष्पक्ष आलोचक की संज्ञा प्रदान करता है। अपने रचनात्मक लेखन पर बातचीत करते हुए आचार्य नंदकिशोर नवल ने कहा था कि "आलोचना में मेरा सहयात्री कोई नहीं है, क्योंकि सभी आलोचक दो धड़ों में बँटे हुए हैं – वामपंथी और वामपंथ विरोधी। मैं इस प्रकार के बँटवारे को मूलतः साहित्य विरोधी मानता हूँ, इसलिए अब अकेला हूँ।"[7] आचार्य नंदकिशोर नवल के यह शब्द आज भी प्रतिभा सम्पन्न और निष्पक्ष लेखकों के लिए किसी 'आप्तवचन' से कम नहीं है और यह भी उनके साहित्यिक अवदान का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रंजन राकेश : मल्लू मठफोड़वा : उपन्यास के अग्रभाग के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित टिप्पणी से : टिप्पणीकार नंदकिशोर नवल, प्रथम संस्करण : सन् 2012, प्रकाशन संस्थान, 4268 8/3, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
2. अग्रवाल महावीर (सं.) : सापेक्ष 50 आलोचक और आलोचना अंक : 2009, पृष्ठ संख्या 352–353, प्रकाशक : ए. 14 आदर्श नगर, दुर्ग छत्तीसगढ़
3. https://m.thewirehindi.com/article/hindi–literature-remembering-nand-kishor-naval/121628.
4. https://amppointsatyagra.scroll.in/article/135387-nand-kishor-naval-baatcheet.
5. अग्रवाल, महावीर (सं.) : सापेक्ष 50 आलोचक और आलोचना, अंक : जनवरी–जून 2009, पृ. सं. – 353, प्रकाशक : ए. 14 आदर्श नगर, दुर्ग छत्तीसगढ़
6. https://www.aajtak.in/literature/profile/story/dr.nandkishore-naval-an.obituary-by-omnish-chal-for-a-great-hindi-critic-1067609-2020-05-14?utmSOURCE=atweb_story_share.
7. अग्रवाल, महावीर (सं.) : सापेक्ष 50 आलोचक और आलोचना, अंक : जनवरी–जून 2009, पृ. सं. – 357, प्रकाशक : ए. 14 आदर्श नगर, दुर्ग छत्तीसगढ़

abhisheksharmalba@gmail.com

प्रवासी लेखन का असमंजस और सुषम बेदी का साहित्य

– रेखा सेठी
दिल्ली, भारत

20 मार्च, 2020 को सुषम बेदी हमारे बीच से चली गईं। थोड़े दिनों की बीमारी के बाद न्यूयॉर्क में उनका देहावसान हो गया। सुषम बेदी का जाना हिंदी साहित्य में एक अंतराल छोड़ गया है। किन्हीं अर्थों में उनका साहित्य, एक लंबे समय से प्रवासी लेखन की नुमाइंदगी करता रहा है। उनकी अधिकांश प्रकाशित कृतियाँ उनके विदेश प्रवास के बाद ही लिखी गईं, लेकिन अपने लिए प्रवासी लेखन की अलग नाम–पट्टी उन्हें कतई स्वीकार नहीं रही। वे बड़ी अदा से कहतीं *"तो क्या मैं भारतीय नहीं हूँ?"* प्रवासी लेखक होने का अर्थ यदि भारत से इतर होने की पहचान से बनता है, तो उनका मानना था कि उस पर गंभीरता से विचार होना चाहिए। उन्होंने हमेशा कोशिश की कि इस तरह की पहचान से अलग यदि हिंदी साहित्य की कोई मुख्य धारा है, तो वे उसी में रहना चाहेंगी।

अपनी लेखन यात्रा के दौरान उनके सम्मुख बहुत बार ऐसे अवसर आए, जब प्रवासी लेखन से संबंधित असमंजस भरे सवालों को उन्होंने बहुत तीव्रता से महसूस किया। श्री अनिल जोशी की पुस्तक 'प्रवासी लेखन : नई ज़मीन, नया आसमान' की भूमिका में सुषम जी ने ऐसी ही एक घटना का वर्णन किया है। एक गोष्ठी में ऐसा प्रसंग आने पर सुषम जी ने जो उत्तर दिया– *"तब किसी ने यह सवाल उठाया कि चूँकि प्रवासी अहिंदी भाषी विदेशों में बैठकर हिंदी में लिख रहे हैं, तो उनके साथ रियायत की जाए, जिसका मैंने डटकर विरोध किया कि अगर प्रवासी साहित्य अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता, तो मरने दीजिए उसे। और देखिए खड़ा हो ही गया। बाकायदा स्वस्थ युवक या युवती, किसी का सहारा नहीं चाहिए उसे। अपने बूते जिएगा, फलेगा, फूलेगा। देखा जाए तो कभी–कभी यह भी लगता है कि जिस तरह अमेरिका और इंग्लैंड–रिटर्न्ड भारतीयों को भारत में यूँ ही महत्त्व मिल जाता है, वैसा ही कहीं इस साहित्य के साथ भी न हो रहा हो। पश्चिम की दौलत की चमक आँखें चुँधिया तो देती ही हैं। खैर असलियत तो वक्त ही बताता है – क्या रहेगा, क्या बेमौत मारा जाएगा!"* इस विषय पर उनके विचारों में पैनी आक्रामकता दिखती है। वे पूरी स्पष्टता और प्रखरता से अपनी बात कहती हैं।

इन बातों में जहाँ प्रवासी साहित्य की स्वीकृति के लिए आरंभिक संघर्ष दिखता है, वहीं सुषम जी के मन की खिन्नता भी सामने आती है। हालाँकि बाद के वर्षों में उन्होंने प्रवासी लेखन की अपनी विशिष्टताओं पर गंभीरता से विचार किया और उसे दोहरी संवेदनाओं की मिलन भूमि के रूप में देखा। लेकिन जो भी हो ऐसी घटनाओं से उनके मन में कहीं न कहीं यह धारणा अवश्य बनी रही कि *"हिंदी के लेखक कहलाने लायक लोग वही हैं, जो भारत में छपने वाली मुख्य साहित्यिक पत्रिकाओं में छपते हैं। वही असली कसौटी है और जो यहाँ नहीं छपते, वे कितने भी बड़े लेखक क्यों न हों, उनकी पहचान नहीं बन पाती।"* उन्होंने तय किया कि उनकी कहानियाँ 'हंस', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' जैसी मुख्य पत्रिकाओं में छपती रहें और यही पत्रिकाएँ वे खुद भी पढ़ती रहीं। अमेरिका से लिखने वाले बहुत कम लोग ही थे, जो इन पत्रिकाओं में छपते थे। हिंदी कथा–लेखन में उषा प्रियंवदा का नाम ज़रूर आता था, लेकिन उनके अतिरिक्त ज़्यादा लेखक नहीं थे।

सुषम जी का जाना उनके भौतिक जीवन का अवसान अवश्य है, लेकिन एक रचनाकार का उत्तर जीवन उसकी रचनाओं के माध्यम से रूप धरता है। प्रायः अधिकांश रचनाकारों के जीवन–काल के बाद ही उनकी रचनाओं का गंभीर मूल्यांकन होता है और ऐसे सभी प्रयासों में, वे सदा हमारे बीच रहेंगी। चार दशक से अधिक के लंबे रचनात्मक जीवन में उन्होंने अनेक कहानियाँ, उपन्यास तथा कविताओं की रचना की,

लेकिन उनकी ख्याति का मुख्य आधार उनकी कथात्मक रचनाएँ ही हैं। उनके उपन्यास हैं – 'हवन' (1989), 'लौटना' (1992), 'कतरा–दर–कतरा' (लघु–उपन्यास 1994), 'इतर' (1998), 'गाथा अमरबेल की' (1999), 'नवाभूम की रस कथा' (2002), 'मोर्चे' (2009), 'मैंने नाता तोड़ा' (2009), 'पानी केरा बुदबुदा' (2017)। उनकी कहानियों के चार संकलन प्रकाशित हुए – 'चिड़िया और चील' (1995), 'यादगारी कहानियाँ' (2019), 'तीसरी आँख' (2015), 'सड़क की लय' (2017)। उनके कविता–संग्रह हैं – 'शब्दों की खिड़कियाँ' (2006) तथा 'इतिहास से बातचीत' (संभावित प्रकाशन वर्ष 2006 से 2008। अभिव्यक्ति पोर्टल से इस पुस्तक की सूचना मिली है)। आलोचना की पुस्तक है – 'हिंदी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में' (1984) तथा निबंध–संग्रह है – 'हिंदी भाषा का भूमंडलीकरण' (2012) तथा 'आरोह–अवरोह' (2017)।

अपने लिखने को लेकर वे बड़े मज़ेदार ढंग से बताती थीं कि कैसे कहानियाँ स्वयं उनके भीतर कुलबुलाने लगती हैं। उन्होंने स्कूल–कॉलिज के दिनों से ही लिखना शुरू कर दिया था। *"कॉलिज में किसी गंभीर विषय पर आलोचना लिखने को कहा जाता, तो मेरे अन्दर बड़े ज़ोर से कहानी आने लगती और जब तक मैं रात भर जागकर वह कहानी लिख नहीं लेती, मुझसे कोई और काम नहीं होता।"* तो कथा–कहानियाँ उनके भीतर यूँ ही जन्म ले लेतीं। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के सबसे पुराने महिला कॉलिज इंद्रप्रस्थ महाविद्यालय की छात्रा रहीं, जहाँ उनकी प्राध्यापिकाओं में हिंदी की प्रसिद्ध कवयित्री इंदु जैन भी थीं। उनसे उन्हें कविताएँ लिखने की प्रेरणा तो मिली ही और उससे बढ़कर सतत लिखते रहने, अपने लिखे को सँवारते रहने की प्रेरणा भी मिली। उनकी कविताएँ नाजुक मन की अभिव्यक्तियाँ हैं। 'शब्दों की खिड़कियाँ' काव्य संकलन की एक छोटी–सी कविता 'परिभाषाएँ' उनके काव्य स्वभाव को अभिव्यक्त करती है। कम से कम शब्दों में, तरलता से बहती शब्द–सरिता, जो भावात्मकता की गहराई के साथ–साथ दर्शन की उदात्त ऊँचाइयों को छूने की सामर्थ्य रखती है

"क्या है प्यार?
शब्दों का जोड़–तोड़
छन्दमय उद्‌गार
या सागर को आह्वान देती
बधिर बेथोवन की नवीं सिम्फनी!
पीड़ा क्या है?
ओस की तरल बूँदें
ज्वालामुखी की दबी–घुटी साँसें
रात का घुल जाना
या पहाड़ का भरभराकर मिट्टी हो जाना!
गीत क्या है?
अंतड़ियों की चीख़
रेंगती हुई चींटियों का अद्‌भुत संयोजन
कँपकँपाती उंगलियों के थरथराते स्पर्श
या लय का सुरापान!"

कविताओं की ही तरह उनका कथा साहित्य भी कवि मन की सूक्ष्म संवेदनशीलता से सिरजा जाता है। उनका पहला उपन्यास था – 'हवन' (1989)। इसमें अमेरिकी परिवेश में भारतीय मन और संस्कार की टकराहट को अत्यंत तीव्रता के साथ उपस्थित किया गया। उस समय इस विषय पर कोई उपन्यास नहीं लिखा गया था। कुछेक कहानियाँ अवश्य आई थीं। सुषम जी ने इस उपन्यास के साथ पहली बार हिंदी साहित्य में इस जीवन स्थिति को उपन्यास के विस्तृत कैनवस पर बुना। संभवतः सभी प्रवासी लेखकों को अस्मिता का द्वंद्व बहुत तीव्रता से कचोटता रहा है। इसीलिए दो परिवेशों के बीच त्रिशंकु की–सी स्थिति, उनके लेखन का केन्द्रीय थीम बनती है। सुषम बेदी के उपन्यासों और कहानियों में भी यह थीम बार–बार, नए सिरे से रूप बदल–बदलकर आती है। फिर भी अपनी ऐसी किसी भी पहचान से उन्हें परहेज़ रहा, जिसमें उन्हें भारतीय लेखक के अतिरिक्त किसी और रूप में देखा जा सकता है।

'हवन' उपन्यास में सुषम जी ने बहुत बारीकी से उस भारतीय परिवार की मनःस्थिति का विश्लेषण किया है, जो अमेरिकी ऐश्वर्य की लालसा में स्वयं हवन की समिधा बन जाते हैं। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इस उपन्यास पर टिप्पणी करते हुए दो महत्त्वपूर्ण तथ्य रेखांकित किए हैं। पहली बात इसके कथ्य को लेकर है – *"हवन उपन्यास एक प्रकार से भारतीयता*

(इंडियननैस) तथा अमेरिकनवाद के द्वन्द्व का उपन्यास है।" दूसरी बात कथ्य से अधिक, सुषम जी की कथा–संरचना की पद्धति पर है। वे लिखते हैं – *"हवन को पढ़ते समय कई बार ऐसी अनुभूति हुई, मानो मैं भी उसका एक पात्र हूँ और मैं भी कुछ बोलना चाहता हूँ, पात्र के पक्ष–विपक्ष में खड़ा होना चाहता हूँ तथा जीवन–संघर्ष में जुटे पात्रों को प्रोत्साहित करना चाहता हूँ। इसका अर्थ है कि 'हवन' उपन्यास मेरे जैसे पाठक की एक जीवंत दुनिया का वास्तविक चित्र देता है और यह वास्तविकता इतनी सत्य है कि 'हवन' एक काल्पनिक उपन्यास न रहकर जीवन का एक यथार्थ बिम्ब बनकर मन में उतरने लगता है।"* यह टिप्पणी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि साहित्य सृजन की प्रक्रिया में कैसे कोई लेखक पाठक को शामिल कर लेता है, यह इसका साक्ष्य है। कथा–संरचना की यह शैली पाठक को चमत्कृत करने की अपेक्षा अपनी यात्रा का सहचर बनाती है।

'हवन' का अंग्रेज़ी अनुवाद *'The Fire Sacrifice'* शीर्षक से ऑक्सफ़ोर्ड ने प्रकाशित किया। अंग्रेज़ी में भी इस उपन्यास को विशेष मान्यता मिली। इसका प्रकाशन दक्षिण एशियाई साहित्य की एक सीरीज़ के अंतर्गत किया गया। उस सीरीज़ में बाकी उपन्यास रवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि के प्रतिष्ठित लेखकों के थे। इन सब के बीच 'हवन' उपन्यास का चयन इसलिए किया गया था कि वह हिंदी साहित्य में एक नई धारा का प्रतिनिधित्व कर रहा था। अमेरिका में हिंदी डायस्पोरा के प्रतिनिधि के रूप में हिंदी साहित्य में विकसित होने वाली प्रवासी लेखन की नई धारा को रेखांकित करने के लिए इस उपन्यास की विशेष उपस्थिति बनी। लंदन में आयोजित कॉमनवेल्थ साहित्य सम्मेलन में उन्हें ऑक्सफ़ोर्ड की ओर से आमंत्रित किया गया। यू.के. में अनेक भारतीय लेखकों – गिरीश कर्नाड, अनंतमूर्ति, मृणाल पांडे आदि की रचनाओं के अनुवाद हुए थे, इन्हीं सब के बीच सुषम बेदी के उपन्यास 'हवन' के अंग्रेज़ी अनुवाद का लोकार्पण हुआ। यह अनुभव उनके लिए अभिभूत करने वाला क्षण था। इस अवसर से सुषम जी के लिए विश्व साहित्य के दरवाज़े खुल रहे थे, लेकिन उनके मन में अफ़सोस भी था। उन्होंने बहुत भारी मन से मुझसे एक बातचीत में कहा *"भारतीय लेखन की मुख्य धारा में होना ही मेरा अभीप्सित था और अमेरिका तब तक मेरे लिए एक अस्थायी निवास था। अपना इस तरह देखा जाना मुझे भला नहीं लगा। भीतर एक मूक विरोध उठता रहा कि मैं अमेरिकी साहित्यकार भला कैसे हो गई? अमेरिका की भाषा तो हिंदी है ही नहीं, तब भला अमेरिकी लेखक कैसे? वहाँ तो मुझे अंग्रेज़ी के ज़रिए से ही जितना जानते हैं, सब जानते हैं या अमेरिका के हिंदी पढ़ने वाले भी, हिंदी की लेखिका के रूप में। यही मेरी पहचान थी। अब एक अलग पहचान थोपी जा रही थी मुझ पर, जबकि वह मेरी पहचान बन ही कैसे सकती है। अगर अमेरिकी लेखक होना था, तो फिर अंग्रेज़ी में लिखती।"* उनका यह आग्रह अंत तक बना रहा।

किसी भी साहित्यकार के लिए उसका देशकाल भौगोलिक जगत या समय से निश्चित नहीं होता। निश्चित होता है मानवीय संवेदना के ग्राफ़ से, जिसके पैमाने हर व्यक्ति के लिए अपने–अपने होते हैं, लेकिन अपने मूल रूप में वह निज से मुक्त होकर व्यापक मनुष्यता से जुड़े होते हैं। सुषम बेदी की कहानियाँ बार–बार इसी सत्य का एहसास कराती हैं। इन कहानियों के केंद्र में परिस्थितियाँ या जीवन–स्थितियाँ छोटी–छोटी हैं, यानी हमारी रोज़मर्रा के जीवन में आने वाली असंख्य स्थितियाँ, जो अक्सर हमारी नज़र से छूट जाती हैं या जिनको कभी हमने इतना महत्त्व नहीं दिया कि वह साहित्य के माध्यम से मानवीय सभ्यता के संकट को निर्देशित कर सकें। सुषम जी अपनी सूक्ष्म दृष्टि से इन्हीं जीवन स्थितियों को अपने साहित्य में पुनर्जीवित करती हैं और बड़े धैर्य के साथ छोटे–छोटे ब्यौरे, छोटे–छोटे प्रसंग जीवन व्यापी प्रश्नों को हमारे समक्ष उपस्थित कर देते हैं। जिस बारीकी से वे अपनी कहानियों के आख्यान बुनतीं और पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्वों को उकेरतीं, वह उन्हें कहानी–लेखन की अलग पंक्ति में खड़ा करता है। उनकी अधिकांश कहानियों की थीम उन भारतीयों से संबद्ध थी, जो अमेरिका जाकर बस गए, लेकिन मन से वे हिंदुस्तान से दूर नहीं हो सके और अमेरिका में भी अपने साथ एक हिंदुस्तान ले गए। ये कहानियाँ अपने पूर्ण उत्कर्ष पर तब पहुँचती हैं, जब भारतीय एवं अमेरिकी जीवन–शैली के अंतर एक ऐसी स्थिति पैदा करते हैं, जिनकी टकराहट में मानवीय संवेदना को बिल्कुल अछूते ढंग से छूआ जा सकता है।

'चिड़िया और चील' से लेकर 'सड़क की लय' तक अपनी

कहानियों में उन्होंने प्रवासी जीवन की अलग–अलग समस्याओं को पूरी सहानुभूति और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। उनका फ़ोकस केवल स्त्री समस्याओं पर नहीं है। वृद्ध जीवन की समस्याएँ और अकेलापन, गोरे–काले का भेद, अमेरिकी जनतंत्र का खुलापन आदि अनेक विषयों को पारखी नज़र से देखा गया है। एक मायने में सुषम बेदी का लेखन प्रवासी साहित्य की ज़मीन और आसमान यानी दृष्टि बोध व लक्ष्य दोनों को एक साथ साकार करता है। 'कितने–कितने अतीत', 'अवसान', 'अवशेष' आदि विशेष रूप से जीवन की ढलान की कहानियाँ हैं। इनमें भी 'उसकी माँ यानी ग्लोबल नियति' तथा 'गुनहगार' विशिष्ट मनःस्थिति की कहानियाँ हैं। 'एक अधूरी कहानी' हो या 'चट्टान के ऊपर, चट्टान के नीचे' अश्वेत लोगों के प्रति हमारी मानसिकता, अप्रिय व्यवहार के साक्षी हैं। सुषम जी की कहानियों की विशिष्टता इस बात में भी है कि वे किसी भी स्थिति–परिस्थिति का वर्णन करते हुए दृष्टि अपनी ओर लौटा लाती हैं, यानी समाज में बतौर लेखक और पाठक सभी की ओर। किसी भी वंचित के प्रति हमारा सामाजिक व्यवहार हमें अपनी ओर देखने की भी दृष्टि देता है। व्यक्ति की सोच बदलने से ही सामाजिक बदलाव संभव होता है। इन कहानियों पर डॉ. शैलजा सक्सेना लिखती हैं *"ये कहानियाँ अपने सच्चे कहन के कारण हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं और देर तक याद रहने वाली हैं।"*

उनके कई उपन्यासों और कहानियों के अंत पर मेरे मन में असमंजस बना रहता। खासतौर पर जहाँ स्त्री की स्थिति का वर्णन है, वहाँ उनकी नायिकाएँ सरल समझौते कैसे कर सकती हैं? जैसे 'लौटना' उपन्यास पढ़ने के बाद मुझे कुछ निराशा हुई। मुझे ताज्जुब हुआ कि जिस सुषम बेदी को मैं जानती हूँ, वह तो बहुत तरक्कीपसंद हैं, जो हमेशा अपने युवा साथियों से कहती रहीं हैं कि 'नए ज़माने में नई तरह से जीना सीखो'। मैंने सुषम जी से इसका रहस्य जानना चाहा, तो उन्होंने कहा कि *"यदि तुम इसे स्त्री–विमर्श के नज़रिए से पढ़ोगी, तो निराशा ही होगी, लेकिन अगर यह सोचकर पढ़ो कि ये सब व्यवस्थाएँ उन स्त्रियों के साथ आईं, जो भारत से अमेरिका आईं और भारत के संस्कार अपने मन में लिए आईं। उनके लिए बिल्कुल नाता तोड़ लेना या जिसे यूँ कहें कि रेडिकल परिवर्तन से जीवन जीना और सोचना इतना आसान नहीं था।"* बाद में जब उन्होंने 'मैंने नाता तोड़ा' उपन्यास लिखा, संभवतः तब तक उन्होंने अपने मन में इस परिवर्तन को आत्मसात कर लिया था कि एक लड़की अपनी अलग पहचान बनाकर विदेश की मिट्टी में सिर उठाकर जीने का फैसला कर सकती है। उनका कहना था कि *"उसे यह दृढ़ता और आत्मविश्वास बहुत हद तक अमेरिकी परिवेश से मिलता है।"*

सुषम जी ने खुद भी अमेरिकी परिवेश से बहुत कुछ सीखा था। वे उन सभी तत्त्वों को ग्रहण करने के लिए उत्सुक रहतीं, जो उन्हें प्रगतिशील लगते, फिर चाहे वह जिस भी समाज और संस्कृति से आते हों। किसी भी व्यक्ति की निजता का सम्मान अमेरिकी समाज में रहते हुए और दृढ़ हो गया और एक तरह से जीवन–मूल्य बन गया। किन्हीं अर्थों में सुषम बेदी ने अपने लेखन में बड़ी कठिन साधना की है। भारतीयता को बचाए रखते हुए पश्चिम के समाज की तरफ़ देखना और दोनों समाजों के प्रति ऐसी दृष्टि विकसित करना, जिसमें सजग मानवीयता के तत्त्व बचे रहें। भारत हो या पश्चिम की दुनिया, मानवीय–बोध के व्यापक क्षितिज पर दोनों एक–दूसरे के बिल्कुल निकट जान पड़ती हैं। सुषम बेदी के लेखन में देश–काल, परिवेश बदलता रहता है, लेकिन अंतःसूत्र एक ही रहता है, मानवीय संवेदनाओं की खरी पहचान। उनके लेखन का स्वभाव है, अपने पात्रों के मन में गहरे उतर जाना और फिर भी वह दूरी बनाए रखना, जो लेखन के लिए ज़रूरी होती है। संलिप्तता और निर्लिप्तता का अनूठा सामंजस्य।

उनके लेखन में दो संस्कृतियों के बीच का अंतराल, जीवन जीने की शैलियाँ और जीवन को महसूस करने की उनकी अपनी–अपनी फ़ितरत, सहज ही उजागर हो जाते हैं, लेकिन महत्त्व इस बात का है कि दो संस्कृतियाँ परस्पर प्रतिस्पर्द्धा के भाव से एक–दूसरे के सामने नहीं आतीं। यहाँ सब अपने हैं, पराया कोई नहीं। दोनों का सुख–दुख समान रूप से व्यापता है। प्रायः अपनी जड़ों को न छोड़ पाने के कारण कभी–कभी प्रवासी साहित्य को नॉस्टालजिक कहा जाता है, लेकिन सुषम जी ने निराधार द्वंद्वों को खारिज कर, उसके गुणात्मक पक्ष को रेखांकित किया है – *"पाश्चात्य जगत में हिंदी में लिखने वाले*

प्रवासी लेखक ज़्यादातर पहली पीढ़ी के ही हैं। इसलिए दोहरी चेतना उनमें रहती ही है। इसे नॉस्टालजिक कहकर दुत्कारने की ज़रूरत नहीं है। यह तो यहाँ के जीने का एक तरीका है, जहाँ हम लगातार दो संस्कृतियों, दो तरह की संवेदनाओं और नज़रियों के साथ जीते हैं।" उनका अपना लेखन भी इन दोहरी संवेदनाओं से बल पाता है और स्थायी महत्त्व अर्जित करता है।

संदर्भ :

1. अनिल जोशी, प्रवासी लेखन : नई ज़मीन, नया आसमान, भूमिका
2. रेखा सेठी, सुषम बेदी का जाना..., हंस (पत्रिका) मई 2020, पृ. 14
3. वही, पृ. 13
4. परिभाषाएँ, शब्दों की खिड़कियाँ, पृ. 48
5. कमल किशोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ. 452
6. वही, पृ. 451
7. रेखा सेठी, सुषम बेदी का जाना..., हंस (पत्रिका) मई 2020, पृ. 14
8. शैलजा सक्सेना, साहित्य कुँज http://sahityakunj.net/blog/jeevan-sthitiyon-ki-gathakar-susham-bedi-vishesh-san-darbh-sadak-ki-lay-aur-anya-kahaniyan
9. रेखा सेठी, सुषम बेदी का जाना..., हंस (पत्रिका) मई 2020, पृ. 16
10. वही, पृ. 16
11. प्रवासी साहित्य : दोहरी संवेदनाओं की मिलन भूमि, साक्षात्कार आजकल (पत्रिका) मई 2020, पृ. 22

rsethi@ip.du.ac.in

गिरिराज किशोर : मानवीय सरोकार के अप्रतिम रचनाकार

– प्रो. विनोद कुमार मिश्र
विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

कथाकार गिरिराज किशोर का सृजनात्मक कृतित्व इतना बहुआयामी और समृद्ध रहा है, निःसंदेह समकालीन कथाकारों में उनका स्थान एक श्रेष्ठ रचनाकार के रूप में लिया जाता है। वे हिंदी साहित्य जगत में उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, निबंधकार, समीक्षक–आलोचक एवं विचारक के रूप में पहचान बना चुके थे। गिरिराजजी उन विशिष्ट कथाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं को ज़िंदगी के अनुभवों से जोड़ने की चुनौती स्वीकार की है और उन्हें गहरे यथार्थ से जोड़ा है। उनमें उतनी ही विविधता है, जितनी जीवन में होती है। चाहे उपन्यास हो, कहानी हो या नाटक हो सब जीवन के गहरे अनुभवों से गुज़रकर ही लिखा गया। वस्तुतः वे मानवीय सरोकार के अप्र. तिम रचनाकार थे।

जहाँ तक सृजन कर्म की बात है, तो गिरिराज जी सातवीं–आठवीं कक्षा से ही उपन्यास, कहानियाँ पढ़ने लगे थे। घरवालों के प्रबल विरोध के बावजूद छिप–छिपकर पढ़ना जारी रहा। प्रेमचंद, शरतचंद्र, प्रसाद, अज्ञेय, जैनेन्द्र और यशपाल के प्रभाव में वे विद्यार्थी जीवन से ही लिखना आरम्भ कर चुके थे। पंडित रमानाथ अवस्थी, नीरज, उपेन्द्र जैसे गीतकार, प्रतापनारायण मिश्र, विशंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' सरीखे गद्य लेखक थे। उनकी पसंदीदा पुस्तकें – नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु' था, यशपाल का – 'झूठा सच', अज्ञेय की – 'शेखर एक जीवनी' काफ़ी पसंद थीं। पाकिस्तान जाने पर उन्हें वहाँ झूठा सच बहुत याद आया था। शरद जोशी और ज्ञान चतुर्वेदी भी उनके पसंदीदा व्यंग्य लेखक रहे। बचपन से ही गम्भीर प्रकृति और किसी भी बात को बारीकी से देखने की उनकी प्रवृत्ति रही। यह उनके अति संवेदनशील होने का प्रमाण है। सामंती परिवार से सम्बन्ध के होने के बावजूद, सामंती अहंकार से वे अछूते थे। वे मात्र इंसान एवं इंसानी सरोकार को ही महत्त्व देते थे। उनमें महज़ एक लेखक बनने की चाह थी। ऐसा लगता है मातृ विहीन होना भी एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा। कभी–कभी ज़िंदगी की कोई बहुत बड़ी कमी, जो बाह्य तौर पर उतनी महसूस नहीं होती है, पर इनसान को इस तरह के रास्तों की ओर ले जाती है। अतः उन्होंने लेखन आरम्भ छठी क्लास से शुरू किया और जीवन–पर्यन्त लिखते रहे। उनकी पहली कहानी सन् 1959 में आगरा से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक अखबार 'सैनिक' में छपी थी। सन् 1960 में उनकी रचना 'दैनिक हिंदुस्तान' के रविवारीय परिशिष्ट में प्रकाशित हुई। उसके बाद 'मध्य प्रदेश संदेश', 'कादम्बिनी' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में उनकी रचनाएँ निरंतर छपती रहीं। गिरिराज जी स्वतंत्र लेखन तथा कानपुर से निकलने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'अकार' त्रैमासिक के संपादक भी रहे। उन्होंने कहानियाँ केवल पाठकों को रिझाने के उद्देश्य से नहीं लिखीं, बल्कि उनके अनुभव को विस्तार दिया। उनकी कहानियाँ ज़िंदगी की उन सँकरी और कशमकश से भरी पगडंडियों पर ले जाती हैं, जहाँ से गुज़रकर इंसान को अपनी वास्तविक पहचान मिलती है। वास्तव में इनकी कहानियाँ इंसानी जद्दोजहद का पूर्ण साक्षात्कार हैं, जिनमें तल्खी भी है और बेचैनी भी। वे अनुभव, भाषा और मानवीय सरोकारों के विलक्षण कथाकार थे। अनुभव को भाषा से और भाषा को अनुभव से उकेरने की उनकी जैसी क्षमता कम ही कथाकारों में परिलक्षित होती है। उनकी यही विशेषता उनको अपने समकालीन कथाकारों से अलग करती है और विशिष्ट पहचान भी बनाती है। मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् के वीरसिंह देव पुरस्कार, साहित्य अकादेमी पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिंदी सम्मेलन के वासुदेव सिंह स्वर्ण पदक तथा हिंदी संस्थान के साहित्य भूषण सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित भी हुए।

दुनिया के जिस किसी भी मंच पर जब–जब महात्मा गांधी की चर्चा होती है, तो 'पहला गिरमिटिया' की बात ज़रूर होती

है। गांधीजी के दक्षिण अफ़्रीका के प्रवास के समय के आधार पर लिखी गई यह जीवनी लोगों के लिए वह खिड़की है, जिससे गांधी के निर्माण की प्रक्रिया को जाना और समझा जा सकता है। 'पहला गिरमिटिया' के लेखक गिरिराज जी के लिए गांधी के बारे में लिखना आत्म–साक्षात्कार का एक ज़रिया रहा। हिंदी साहित्य में आपको बेशक एक अच्छे कथाकार के रूप में याद किया जाएगा। इतना ही नहीं महात्मा गांधी की स्मृति को शाश्वत बनाने के लिए उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने गांधी जीवन से संबंधित दो उपन्यास लिखे – 'पहला गिरमिटिया' और 'बा'। 'बा' कस्तूरबा गांधी पर केंद्रित है। उनके दोनों उपन्यास कितने महत्त्वपूर्ण हैं, इसका मूल्यांकन भी इस बात से होना चाहिए कि आज जिस तरह गांधीजी के जीवन और विचारों पर विमर्श हो रहा है, उसमें इन उपन्यासों की क्या भूमिका हो सकती है। वैसे तो आज़ादी की लड़ाई के दौरान गांधी को केंद्र में रखकर हिंदी में काफ़ी कुछ लिखा गया, पर बाद में वह सिलसिला रुक–सा गया। उन्होंने उस रुके हुए सिलसिले को आगे बढ़ाया। यही कारण है कि उनके ये दोनों उपन्यास साहित्यिकता के अतिरिक्त वैचारिक महत्त्व भी रखते हैं। गांधी–विचार व्यक्ति केंद्रित विचार नहीं है। यह पूरी मानवता और प्रकृति को बचाने का विचार है। इसी कारण हिंदी और दूसरी भाषाओं के साहित्य के पाठकों के लिए उनका लेखन एक सार्वजनीन व सार्वकालिक संदर्भ–ग्रन्थ रहेगा। पहला गिरमिटिया लिखने का श्रेय वे कानपुर के प्रौद्योगिकी संस्थान को देते थे। वहाँ उन्होंने जिस अपमान, ज़लालत व कठिनाइयों का सामना किया था, कहीं न कहीं गांधीजी के साथ दक्षिण अफ़्रीका में जो कुछ हुआ, उनके बारे में सोचने की मानसिकता यहीं से बनी। उन्हें यह लगा कि वह ऐसी कौन–सी शक्ति थी, जिसने मोहनदास करमचंद को महात्मा बनाया। एक आम, डरपोक किस्म का आदमी, जो अच्छा बोलने वाला भी नहीं था, वकालत में भी असफल ही रहा। इतने शानो–शौकत में जीनेवाला आदमी कैसे इतना त्यागी और देश के लिए जीने मरने वाला बना। उन्होंने हमेशा महसूस किया था कि ज़रूर उसने अपने तिरस्कार से ऊर्जा ग्रहण की है, जिसके कारण वह अपने को इतना ताकतवर बना पाए। इसी भावना ने गिरिराज जी को भी प्रेरित किया होगा।

ध्यातव्य हो कि उन्होंने सबसे पहले भारत के गांधी के बारे में लिखना शुरू किया था, किन्तु जब वे दक्षिण अफ़्रीका गए, तो वहाँ हासिम नाम के एक व्यक्ति ने उनसे कहा कि गांधी हमारे यहाँ खान से निकले अनगढ़ हीरे की तरह आए थे, जिन्हें हमने तराशकर कोहिनूर बना दिया और आपको सौंप दिया। इसके लिए भारत के लोगों को हमारा शुक्रिया अदा करना चाहिए। हासिम भाई ने यह भी कहा था कि अगर आपको लिखना ही है, तो इस गांधी पर लिखिए। उनकी बात ने गिरिराज जी को भीतर तक प्रभावित किया और उन्होंने उस दक्षिण अफ़्रीका वाले गांधी पर लिखा। प्रायः यह देखा गया है कि लेखक की प्रारंभिक दौर में लिखी गई किसी महत्त्वपूर्ण कृति की छाया के प्रभाव से बाद की रचनाएँ मुक्त नहीं हो पातीं, किन्तु गिरिराज जी का लेखन इसका अपवाद है और इनकी हर नई रचना का कद पिछली रचना से ऊँचा होता ही गया। अपनी विनम्रता और सहजता के लिए जाने जाने वाले गिरिराज जी का मानना था कि कठोर से कठोर बात भी शिष्टाचार के घेरे में रहकर भी कही जा सकती है। भाषा बड़ी से बड़ी कमियों को ढँक लेती है। लेखकों का जीवन ही शब्दों के इर्द–गिर्द घूमता है, वही उसका जीवन और शक्ति होता है। उसको कम–से–कम अवश्य बढ़ाना चाहिए। उनकी रचना–यात्रा में कानपुर के प्रौद्योगिकी संस्थान का खासा योगदान रहा। इस दौरान उन्हें काफ़ी कष्ट भी उठाने पड़े। जब वे वहाँ गए, तो वहाँ दो बातें थीं – एक तो वे हिंदी के थे, दूसरे प्रौद्योगिकी से उनका दूर–दूर तक कोई नाता न था। वहाँ के लोगों ने शुरू में उनका बिल्कुल सम्मान नहीं किया, बल्कि विरोध किया, जिसके कारण उन्हें तमाम कष्ट उठाने पड़े। यद्यपि उनका लगाव वहाँ के छात्रों तथा दूसरी–तीसरी श्रेणी के कर्मचारियों से ज़्यादा था, जिसे वहाँ के प्रबंधन के लोग और अध्यापक नापसंद करते थे। परिणामस्वरूप वे निलंबित हुए, मुकदमा लड़ना पड़ा। हाईकोर्ट से जीतकर बहाल भी हुए। इतना ही नहीं, संस्थान के निदेशक और अध्यक्ष दोनों को अपने–अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। खैर, तमाम कष्ट के बावजूद उनकी कोशिश यही रही कि संस्थान का कोई नुकसान न हो। उनके संस्थान में जाने से पहले हिंदी में कोई बात नहीं करता था। सब जगह अंग्रेज़ी में बोर्ड लगे थे, उसे उन्होंने द्विभाषी करवाया। धीरे–धीरे लोगों में बदलाव भी आया और लोग हिंदी में बात करने लगे।

जैसा गिरिराज जी चाहते थे, वैसा वे लिख नहीं पाए।

रचनात्मकता में प्रायः ऐसा होता है कि रचनाकार जो करना चाहता है, वह नहीं कर पाता। सृजन क्रम में और चीज़ें भी जुड़ती जाती हैं। मानव मस्तिष्क भी कुछ इस तरह का है कि जब वह कुछ करना शुरू करता है, तो नई–नई संभावनाएँ नज़र आने लगती हैं। वह उस रास्ते चल देता है, पुरानी चीज़ें छूट जाती हैं और नयी दिशाएँ खुलती जाती हैं। गिरिराज जी के साथ ऐसा ही हुआ। जब उन्होंने गांधी पर लिखना शुरू किया, तो भारत के गांधी का किरदार उनके सामने था, किन्तु जब दक्षिण अफ्रीका गए, तो पाया कि असली गांधी तो वहाँ हैं। फिर वे उस तरफ़ ही चल पड़े। यह उनकी रचनात्मकता के सामर्थ्य की सीमा भी थी और उसका विस्तार भी।

गिरिराज किशोर का जन्म मुज़फ़्फ़र नगर के एक जमींदार परिवार में हुआ था। ज़मीनदार परिवार होने के कारण तत्कालीन अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ियत का उन पर प्रभाव पड़ना लाज़िमी था, सामंती आचरण और संस्कारों के साथ–साथ अंग्रेज़ी तौर–तरीके भी ज़मीनदार परिवार में रूढ़ हो चुके थे। फिर भी उनका परिवार सनातनी हिंदू ही था। उनके दादाजी स्वधर्म के प्रति अति संवेदनशील थे। रूढ़ि, परम्परा एवं अंधविश्वासों का पालन भी परिवार द्वारा होता था। पर्दा प्रथा जैसी प्रथाएँ भी थीं। उनके दादाजी बड़े ही गुस्सैल और आत्मसम्मानी थे, किंतु बदलते समय के साथ एवं हालात के साथ वे समायोजन नहीं कर पाए। समय ऐसा था, जब कांग्रेस पक्ष पूर्ण रूप से आज़ादी के संग्राम में संघर्षरत था। तेज़ी से स्थितियों में परिवर्तन आ रहा था। लेकिन इस सामंती परिवार की अपनी कुछ मान्यताएँ और धारणाएँ थीं। उनके अपने परिवार में हठ, अहंकार, विश्वासों एवं रुतबे को बनाए रखने की कोशिशें भी अधिक थीं। गिरिराज जी की माँ का देहावसान उस समय हुआ, जब उनकी उम्र मात्र डेढ़ साल की थी। माँ के बाद, माँ के आँचल की छाया न होने की वजह से एक तरह का बेगानापन उनकी ज़िंदगी में शुरू ही से रहा। इस बेगानेपन को दूर करने का प्रयास उनके दादाजी करते रहे। वे हमेशा उन्हें अपने साथ रखा करते थे। संभवतः इसी कारण उनके व्यक्तित्व पर उनके दादाजी का गहरा प्रभाव पड़ा। उनको कला एक तरह से विरासत में मिली। उनके दादाजी एवं माँ को संगीत से लगाव था। परिवार में उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेज़ी का प्रचलन था। दादाजी अंग्रेज़ी, फ़ारसी और अरबी के विद्वान थे। ज़मीनदारी व्यवस्था और अंग्रेज़ों से संबंध बने रहने के लिए इन्हीं भाषाओं का महत्त्व था। 'हिंदी' को कांग्रेसी भाषा कहकर हिकारत भरी नज़र से देखा जाता था, इसीलिए उनके पिता स्व. श्री सूरज प्रकाश जी का अध्ययन–अध्यापन इन्हीं भाषाओं में हुआ। न जाने क्यों गिरिराज किशोर ने अंग्रेज़ी या फ़ारसी की बजाय पहली कक्षा से ही हिंदी को चुना, जबकि घरवालों की इच्छा थी कि वे अंग्रेज़ी या फ़ारसी पढ़ें। उनकी आरम्भ से लेकर स्नातक स्तर की पढ़ाई मुज़फ़्फ़र नगर में ही हुई। स्नातक की उपाधि मुज़फ़्फ़र नगर से प्राप्त की। समाज–कार्य (मास्टर ऑफ़ सोशल वर्क) स्नातकोत्तर उपाधि भी सामाजिक विज्ञान संस्थान, आगरा विश्वविद्यालय से प्राप्त की।

ज़मीनदारी प्रथा समाप्ति के बाद उनके परिवार को घोर आर्थिक संकट से गुज़रना पड़ा। आजीविका के लिए गिरिराज जी ने नौकरी को ज़रिया बनाया। आत्म सम्मानी और निर्भीक गिरिराज किशोर ने नौकरी की शर्तों के साथ कभी समझौता नहीं किया। उनकी प्रतिबद्धता मात्र लेखन से रही और जीवन उद्देश्य भी लेखनी बना। सर्वप्रथम वे एक फ़ैक्ट्री में लेबर ऑफ़िसर हो गए। यह नौकरी भी छूट गई, फिर उत्तर प्रदेश शासन के श्रम एवं प्रशिक्षण निदेशालय में सहायक सेवायोजन अधिकारी के रूप में बड़ी ही मेहनत और लगन से कार्य किया। किंतु प्रतिकूल परिस्थितियों में वहाँ से भी त्यागपत्र दे दिया। उत्तर प्रदेश शासन के हरिजन एवं परिवार कल्याण निदेशालय में प्रोबेशन अधिकारी के पद पर उनकी पुनः नियुक्ति हुई। यहाँ उन्होंने दो वर्ष तक कार्य किया। फिर थक–हार कर वे हिंदी लेखक के रूप में इलाहबाद में रहकर मुक्त लेखन करते रहे। फिर उनकी नियुक्ति सहायक कुलसचिव के पद पर कानपुर विश्वविद्यालय में की गई। बाद में वे उपकुलसचिव के पद पर नियुक्त किए गए। कानपुर विश्वविद्यालय का सेवा काल 1975 तक रहा। 1975 में ही वे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में कुलसचिव पद पर स्थानापन्न हुए। लगभग चार वर्ष तक यह सेवा काल ठीक तरह से चलता रहा। तत्पश्चात् निदेशक ने गिरिराज को निलंबित कर दिया। लगभग सत्रह महीने, बिना वेतन व भत्ते के निलंबित रहे। निलंबन एक नौकरी पेशे आदमी के लिए अपमानजनक और प्राणलेवा होता है, क्योंकि यह धारणाएँ बनती है कि हो–न–हो कुछ खाने–पीने या गबन का चक्कर है। आप करीब डेढ़ साल

तक भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में निलंबित रहे। निलंबन अवधि का करीब डेढ़ वर्ष कठिनाइयों से भरा रहा। उन दिनों उनको काफ़ी अपमान भरा जीवन जीना पड़ा, किन्तु निलंबन और उससे जुड़ा अनुभव बड़ा अनोखा था। उन्होंने चुनौती को अवसर में बदल डाला व इसे अर्जित पूंजी माना। एक ऐसा अनुभव जो मान्यताओं के संरक्षण के विनिमय स्वरूप उन्होंने पाया था। इस अनुभव ने उन्हें तोड़ा नहीं, बल्कि खुद को पहचानने का सुन्दर अवसर दिया। उनका मानना था कि सत्य परेशान हो सकता है, किन्तु पराजित नहीं। सच्चाई उनके साथ खड़ी थी और सच्चाई में ठोकरें भी खानी पड़ती है। आदमी गिर–गिर कर उठता भी तो है–

''गिरते हैं सह सवार ही मैदाने जंग में।
वह तिफ़्ल क्या गिरेगा, जो घुटनों के बल चले।।''

सचमुच सच्चाइयाँ उनके साथ खड़ी थी। गिरिराज किशोर हाईकोर्ट से मुकदमा जीत गए। और ससम्मान भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में उसी पद पर पुनः विराजमान हो गए। तत्पश्चात् उन्हें तरक्की देकर उसी संस्थान के रचनात्मक लेखन एवं प्रकाशन केंद्र का अध्यक्ष बना दिया गया। नौकरी का बार–बार छूटना एवं दूसरी नौकरी पा लेना उनके आत्मसम्मान और बेबाक व्यक्तित्व की ओर इशारा करता है।

गिरिराज जी एकदम देशी प्रकृति के थे, लेकिन उतने ही मिलनसार भी। किसी प्रकार की दकियानूसी का संस्पर्श नहीं और न ही अभिजात्य अहंकार उन्हें छू पाया था। वे सदैव प्रदर्शन की वृत्ति से दूर ही रहे। अपने आप को किसी भी दल–विशेष से अलग ही रखा और किसी भी तरह के अतिवाद से स्वयं को बचाया भी। विज्ञान प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में जब वे कुलसचिव थे, हर तरह के लोग उन्हें मिलने आते थे– बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक, साहित्यिक, कलाकारों के अतिरिक्त कर्मचारी आदि। विशेष रूप से चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी तो उनके भक्त थे। शायद उनकी रचनात्मकता के मानवीय स्तर ने उन सबको बाँध रखा था। अक्सर ऐसा होता था कि जब कोई उनसे मिलने आता था, वे पूरी आत्मीयता से बातें करते, बातचीत के दौरान भी उनकी सृजनात्मक प्रक्रिया सजग और सक्रिय रहती थी। अतिथि को बिदा करके वे पुनः लिखने लग जाते। कहीं कोई बिखराव नहीं।

वक्त बीता और आगे चलकर ऐसा हुआ कि गिरिराज जी साहित्य के इलाके में अखाड़ेबाज़ बनकर उभरे और उन्होंने हिंदी के एक दूसरे बड़े अखाड़ेबाज़ को साहित्य की राजनीति में मात दी। ये दूसरे अखाड़ेबाज़ थे नामवर सिंह। लेकिन इस दंगल में नामवर सिंह की हार अवश्य हुई, लेकिन वे चित्त नहीं हुए। चित्त हुए कवि केदारनाथ सिंह। यह घटना इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दौर की है। साहित्य अकादमी के अध्यक्ष का चुनाव होना था। एक तरफ़ थे उर्दू के लेखक गोपीचंद नारंग और दूसरी तरफ़ थी बांग्ला की लेखिका महाश्वेता देवी। महाश्वेती देवी को ये चुनाव लड़ाने में जिनकी प्रमुख भूमिका थी, वे थे नामवर सिंह। नामवर जी की तूती बरसों तक साहित्य अकादमी में बोलती रही। इसी कारण ये आम धारणा भी बन गई थी कि अकादमी में हिंदी को लेकर हर फ़ैसले में नामवर जी की चलती है। खैर, इसकी प्रतिक्रिया तो होनी ही थी। इसी कारण चुनाव के दौरान हिंदी के कई लेखक गोपीचंद नारंग के साथ हो गए थे। इनमें से प्रमुख थे कमलेश्वर और गिरिराज किशोर। राजस्थानी के लेखक विजयदान देथा ने नारंग के पक्ष में अखबारो में लिखित अभियान चलाया।

नामवर सिंह से खार खाए हिंदी के कुछ लेखकों का ये सवाल भी था कि अगर महाश्वेता देवी अध्यक्ष चुनी गईं, तो हिंदी का संयोजक कौन होगा? नामवर जी चाहते थे कि संयोजक केदारनाथ सिंह बने। इस बात पर भी नामवर जी और गिरिराज जी में ठन गई। गिरिराज जी का कहना था कि क्या साहित्य अकादमी पर नामवर सिंह और उनके संबंधियों का ही राज रहेगा? इशारा केदारनाथ सिंह की तरफ़ था, जो नामवर जी के समधी भी थे। यद्यपि केदार जी एक सर्वप्रिय व्यक्ति थे, अजातशत्रु की तरह और एक बहुत अच्छे कवि, पर हिंदी साहित्य की राजनीति में उनको नामवर जी के साथ जोड़कर ही देखा जाता था।

खैर, चुनाव हुआ। महाश्वेता जी हार गईं और गोपीचंद नारंग जीत गए। यह तो होना ही था, क्योंकि महाश्वेताजी ने चुनाव जीतने के लिए अपनी तरफ़ से कुछ खास नहीं किया। वे चुनाव में खड़ी तो हुईं, पर अपने लिए किसी तरह का प्रचार नहीं किया। चुनावी कमान उन्होंने नामवर सिंह के हाथों सौंप रखी थी। नामवर जी बड़े विद्वान होने के साथ–साथ साहित्य की राजनीति भी करते थे। पर जिस तरह की वे राजनीति करते थे, उसे

आजकल 'बंद कमरे की राज नीति' की संज्ञा दी जाती है। यानी बंद कमरे में शतरंजी चाल चलना। परन्तु नारंग जी भी इस कला में पारंगत थे।

नारंग की जीत के बाद गिरिराज जी साहित्य अकादमी में हिंदी के संयोजक बने। पर गिरिराज जी स्वतंत्र–चेता थे और इसी कारण आगे चलकर नारंग जी से उनके मतभेद भी हुए। ये सब हुआ अकादमी के तत्कालीन प्रशासन में हिंदी के सहायक सचिव को लेकर। गिरिराज जी का मानना था तत्कालीन सहायक सचिव नाकारा भी है और हिंदी की एक बेहद स्तरहीन साहित्यिक पत्रिका का संपादक भी हैं। गिरिराज जी का कहना था यह काम वह सहायक सचिव रहते हुए या बिना साहित्य अकादमी की अनुमति के नहीं कर सकता। लेकिन नारंग जी इससे सहमत न थे। इसके बाद गिरिराज जी ने अकादमी के कार्यक्रमों में आना लगभग बंद–सा कर दिया।

साहित्य अकादमी में बतौर हिंदी संयोजक गिरिराज किशोर के कार्यकाल को भी याद रखा जाएगा। इसी दौरान कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी और वीरेन डंगवाल जैसों को साहित्य अकादमी पुरस्कार जो मिले। यदि नारंग जी का पूर्ण सहयोग मिला होता, तो गिरिराज जी हिंदी के लिए वहाँ कुछ और बड़ा कर पाते।

आज गिरिराज जी हमारे बीच स्थूल रूप में भले नहीं है, फिर भी उनकी सूक्ष्म उपस्थिति हिंदी के पाठकों, विद्यार्थियों और रचनाकारों को निरंतर प्रेरित करती रहती है और आगे भी करती रहेगी। भारत में जब–जब हिंदी के चुने हुए रचनाकारों का ज़िक्र मात्र होगा, गिरिराज जी जैसी विभूतियों को आदर सहित याद किया जाएगा इतिहास में कभी–कभार ऐसी शख्सियत पैदा होती है –

''हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पर रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा।।''

sg@vishwahindi.com

विश्व हिंदी पत्रिका
2020

विश्व हिंदी सचिवालय

World Hindi Secretariat

इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423, मॉरीशस

Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius

फ़ोन / Phone: 00-230-6600800

इ-मेल/E-mail : info@vishwahindi.com

वेबसाइट / Website: www.vishwahindi.com डेटाबेस / Database: www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications PVT LTD, Hindi Book Centre, New Delhi - 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com